वीर-सेवा-मन्दिर-ग्रन्थ-माला पुष्प १४

जैन-ग्रन्थ-प्रशस्ति-संग्रह

(अपभ्रंश जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह)

द्वितीय भाग

सम्पादक
पं० परमानन्द जैन शास्त्री

प्रकाशक
वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी
२१ दरियागंज, दिल्ली

प्रथम संस्करण ज्येष्ठ शुक्ला १४ वी० नि० सं० २४८९
जून सन् १९६३, वि० सं० २०२०

प्रकाशक
वीर-सेवा मन्दिर-सोसाइटी
२१ दरियागंज, दिल्ली

मूल्य १२ रुपया
प्रथम संस्करण
कापी ५००

मुद्रक
रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस,
२३, दरियागंज, दिल्ली-६

Jain Granth Prashasti Sangrah

PART II

Edited by

Pt. Parmanand Jain Shastri

Published by

Vir Sewa Mandir Society

21 DARYAGANJ, DELHI

Jetha, Shukla 14, Vira N. Samvat 2489, Vikram Samvat 2020

June 1963

Publisher
VIR SEWA MANDIR SOCIETY
21, Daryaganj, Delhi

PRICE Rs. 12
FIRST EDITION
Copies 500

Printers
ROOPVANI PRINTING HOUSE
23, Daryaganj, Delhi.

प्रकाशकीय

प्रस्तुत प्रशस्ति संग्रह पाठकों के समक्ष उपस्थित है। इससे पाठकों को वीर-सेवा-मन्दिर के अनुसंधान कार्य का आभास मिल सकेगा। इस ग्रन्थ में अनुसन्धान से सम्बन्ध रखने वाली सभी सामग्री को आकलन करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अधिक विलम्ब हो गया है, और उसका कारण प्रेस आदि की अव्यवस्था है। ग्रन्थ के तय्यार करने में भी काफी समय और श्रम करना पड़ा है, और यह अनुसन्धत्सुओं के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होगा; क्योंकि इसमें अपभ्रंश भाषा के साहित्य की कृतियों और ग्रन्थकर्ताओं के परिचय तथा समयादि पर प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना पं० परमानन्द शास्त्री ने बड़े परिश्रम से लिखी और वह प्रमेय बहुल है तथा उपयोगी परिशिष्टों से अलंकृत है।

सबसे महत्व की बात यह है कि इस ग्रन्थ का प्राक्कथन डाक्टर श्री वासुदेव जी शरण अग्रवाल हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस ने लिखा है, और प्रिफेस (PREFACE) दिल्ली विश्वविद्यालय के रीडर डा० श्री दशरथ शर्मा, डी० लिट् ने अंग्रेजी भाषा में लिखा है। इससे ग्रन्थ की महत्ता और भी अधिक बढ़ गई है। मैं संस्था की ओर से उन दोनों ही मान्य विद्वानों का बहुत ही आभारी हूँ। आशा है विद्वान, विश्वविद्यालयों, लायब्रेरियों और कालेजों के पुस्तकालयाध्यक्ष इस ग्रन्थ को मंगाकर उससे अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

जयभगवान जैन, एडवोकेट
मंत्री—वीर-सेवा-मंदिर सोसाइटी
२१ दरियागंज, दिल्ली

सम्पादकीय

वीर-सेवा-मन्दिर एक ऐतिहासिक संस्थान है, जो एक जैन रिसर्च इन्स्टिट्यूट के रूप में प्रसिद्ध है। उसके उद्देश्यों में पुरातन-ग्रन्थों का अन्वेषण, पुस्तकालय का संकलन, पुरातन जैनाचार्यों, राजाओं, विद्वानों और भट्टारकों आदि के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाशित करना भी शामिल है। वीर-सेवा मन्दिर सोसाइटी अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के अनुरूप ही कार्य कर रही हैं। उसके सामने 'जैन साहित्य का इतिहास, भगवान नेमिनाथ के समय से लेकर अब तक ऐतिहासिक प्रसाधनों का संकलन, संयोजन और महत्व की सामग्री के प्रकाशन की ओर रहा है। परन्तु समाज का पूर्ण सहयोग न मिलने से वह जैसा चाहिये था वैसा कार्य सम्पन्न करने में समर्थ न हो सका। पर जितना भी कार्य कर सका वह सब उसकी प्रगति का संसूचक है, उसने अपने प्रतिष्ठित और ख्याति प्राप्त अनेकान्त पत्र द्वारा ऐतिहासिक साहित्यिक एवं पुरातत्त्व समबन्धी अनुसन्धानात्मक सामग्री को प्रकाशित किया है और कर रहा है

आवश्यकता

जैन साहित्य और संस्कृति का इतिहास लिखने के लिये जिस तरह शिलालेख, ताम्रपत्र, पुरातात्त्विक अवशेष और भूउत्खनन से प्राप्त विविध सभ्यताओं के अलंकरणों से बड़ी सहायता मिलती है। अतएव अनुसंधान कर्ताओं को विविध भाषाओं के साहित्य से साहाय्य मिलता है। अतएव ऐतिहासिक अनुसन्धत्सुओं के लिये भारतीय साहित्य के परिशीलन, मनन, और अनुसंधान करने की महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि अपभ्रंश का जैन साहित्य, जो दिल्ली, ग्वालियर, जयपुर, व्यावर, बम्बई, कारंजा, झालरापाटन और नागौर आदि के विवध जैन ग्रन्थागारों में सुरक्षित है उनके ग्रन्थों के आदि अन्त भाग का संग्रह कर ऐतिहासिक प्रशस्तियों को प्रकाशित किया जाय। और उनकृतियों के परिचयादि के साथ ग्रन्थकर्ता विद्वानों के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए उनके समय की भी चर्चा की जाय। जिससे हिन्दी के आदिकाल पर प्रकाश पड़ सके, और हिन्दी के उद्गम एवं विकास को भी अच्छा संकेत मिल सके। साथ ही, विविध उप जातियों द्वारा समय समय पर निर्माण कराये गये और प्रति लिपि कराने वालों का इतिवृत्त भी अंकित हो सके। और उस समय की धार्मिक जागृति तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का भी परिज्ञान हो सके। इन्हीं सब कार्यों को ध्यान में रखते हुए अपभ्रंश प्रशस्यों के संकलन का विचार स्थिर किया गया।

वीर सेवा मन्दिर की इस योजना को कार्य में परिणत करने के लिये मैं मई सन् १९४४ में सरसावा से जयपुर गया, और वहाँ के प्रतिष्ठत विद्वान् पं० चैनसुखदास जी और महावीर तीर्थक्षेत्र कमेटी के मंत्री रामचन्द्र जी खिन्दुका आदि महानुभावों के सहयोग से आमेर का भट्टारकीय भंडार जयपुर लाया गया, और सेठ बधीचन्द जी के कमरे में रक्खा गया। मैंने बड़े परिश्रम से उन गट्ठडों को खोला और ग्रंथों को निकाल कर उनके आदि अन्त भाग का संकलन शुरु कर दिया; परन्तु बीच में ही सरसावा लौटना पड़ा, जिससे पूरा भंडार न देखा जा सका, जितना देखा और नोट कर सका उसका परिचय अनेकान्त वर्ष ६ किरण ११-१२ के पृष्ठ २७२ में 'जयपुर में एक महीना' नाम के लेख में प्रकाशित कर दिया। और बाद में संस्कृत ग्रन्थों की प्रशस्तियों का संग्रह भी प्रकाशित हो हो गया। अपभ्रंश प्रशस्तियों के संकलित मैटर की प्रेस कापी तय्यार की गई, और अन्य अपभ्रंश ग्रन्थों को मंगवा कर उनकी भी प्रेस कापी करली गई, प्रकाशन का विचार किया गया किन्तु आर्थिक कठिनाई ने उसे कार्य रूप में परिणत न होने दिया।

सन् १९५६ में अपभ्रंश प्रशस्तियों को अनेकान्त की प्रत्येक किरण में एक फार्म रूप से प्रकाशित करने का निश्चय डा० ए० एन० उपाध्ये कोल्हापुर की सम्मति से किया गया, और १४ वें वर्ष के अनेकान्त में प्रशस्ति संग्रह के १० फार्म छपगए, उसके बाद आर्थिक कठिनाई आदि के कारण पत्र का प्रकाशन स्थगित हो गया, और मेरा भी संस्था से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने से प्रशस्तियों का प्रकाशन अधूरा ही रह गया। किन्तु सन् ६० में उसे प्रकाशित करने का पुन: निश्चय हुआ, और बाबू जयभगवान जी एडवोकेट, मंत्री वीर-सेवा-मंदिर सोसाइटी ने मुझ से प्रशस्तियों का मैटर देने तथा प्रस्तावना लिखने की प्रेरणा की। मैंने मैटर देने और प्रस्तावना लिखना स्वीकृत कर लिया, मैटर दे दिया गया, परन्तु संस्था में योग्य विद्वान के अभाव में प्रशस्तियों का प्रकाशन उतारा-सतारा हुआ, कुछ मैटर भी प्रेस वालों से गुम गया और एक प्रशस्ति के अन्त का भाग भी प्रकाशित नहीं हुआ, फिर भी दूसरी प्रशस्ति प्रकाशित हो गई, श्रावक-श्राविकाओं के नाम वाले परिशिष्ट का पूरा चार पेज का अन्तिम मैटर भी खो गया। मैंने उसे पुनः तय्यार करके दूसरे प्रेस में छपवाया, उसमें भी टाइप की विभिन्नता रही। प्रस्तावना का मैटर भी प्रेस में दे दिया गया, परन्तु प्रेस में कार्याधिक्य के कारण ५-६ महीने यों ही पड़ा, रहा, बाद में प्रेरणा पाकर १०-१२ दिन में ८ फार्म छाप दिये गए और फिर कम्पोज रुक गया, इस तरह बड़ी कठिनता से छपाई का कार्य पूरा हो पाया है। यही सब उसके प्रकाशन में विलम्ब का कारण है।

आभार प्रदर्शन

मुझे यह लिखते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि श्रीमान् डा० वासुदेव शरणजी अग्रवाल हिन्दी विश्वविद्यालय बनारस ने प्राक्कथन लिखने की मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया और मित्रवर पं० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य एम० ए० को प्राक्कथन लिखवा कर अनुगृहीत किया, और वह मुझे तत्काल प्राप्त हो गया मैं इसके लिये डाक्टर साहब का और कोठिया जी का बहुत ही आभारी हूँ। साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के रीडर श्रीमान् डा० दशरथ शर्मा डी० लिट् का भी मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को मान्य करते हुए अंग्रेजी भाषा में प्रफेस लिख देने की कृपा की।

इनके अतिरिक्त बा० जयभगवान जी एडवोकेट पानीपत, बा० छोटेलाल जी सरावगी कलकत्ता, श्री पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार दिल्ली, पं० दीपचन्द जी पाण्ड्या केकड़ी, डा० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल जयपुर, और डा० प्रेमसागर जी का आभारी हूँ, जिन्होंने उचित सलाह-मशवरा दिया।

शास्त्र समुद्र अत्यन्त विशाल और गंभीर है यद्यपि मैंने पूरी सावधानी वर्ती है फिर भी मेरे जैसे अल्पज्ञ का स्खलित हो जाना संभव है। आशा है विद्वज्जन प्रस्तावना का अध्ययन कर मुझे उस सम्बंध में विशेष जानकारी देकर अनुगृहीत करेंगे।

परमानन्द जैन शास्त्री

REVIEW

It was with great interest that I went through the "Jaina-grantha-prasasti-sangraha" edited by Pandit Paramanand Jain Shastri. The work includes 122 prasastis from Apabhramsa work by Jain authors.

The prasastis are a mine of historical information. They are important source material because most of them are from unpublished works. The author has taken pains to collect all availadle information about the poets and their patrons. An exhaustive introduction of over 140 pages and 11 appendices make the work useful even to a general student of history, who cannot read Praorits, particularly Apabhramsa. I congratulate Pandt Parma-Nand Shastri on his excellent performance.

L. G. PARAB
Librarian—Central Archaeological Library
Janpath, New Delhi-11.

New Delhi, the 23rd July, 1963.

प्रस्तावना का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१	३१	१३ (आगे)	और युद्धकाण्ड में २१	८१	२२	कुहाकवि	कुकवि
				८६	—	मणिपुर	जोयणिपुर
४७	१६	प्राति	प्राप्ति	७५	८	अपनी	अपनी रानी
५७	१७	सुभद्रा (के आगे)	धारिणी	८९	३६	णेमिमिणाह चरिउ	णेमिणाह चरिउ
६३	२	१०५२ में या उसके एक दो वर्ष पूर्व ही	१०५२ से ११०० के मध्य	९२	३० टि०	सरदादर	सरदार
				९२	३४	इहीं	इन्हीं
७५	३५	रत्नवण	राजवंश	१२८	३	औव	और
८०	२६	उड़ा	वड़ा	१२८	१०	पद्मवती	पद्मावती
७८	३०	जायस या जैसवाल	लंबकंचुक	१३४	४	मणिकचन्द	माणिकचन्द
७९	४	उभयश्री	उदयश्री				

प्राकथन

श्री परमानन्द जी जैन द्वारा लिखित इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का मैं स्वागत करता हूँ। इसमें ११४ अपभ्रंश हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रशस्तियों और पुष्पिकाओं का खोजपूर्ण संग्रह किया गया है। अपभ्रंश साहित्य हिन्दी के लिए अमृत की घूंट के समान है। इसका कारण स्पष्ट है। भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश भाषा प्राचीन हिन्दी का एक महत्वपूर्ण मोड़ प्रस्तुत करता है। जब प्राकृत भाषा के प्रति उत्कर्ष के बाद जनता का सम्पर्क जनपदीय संस्कृति से हुआ और उसे साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई, तब अपभ्रंश भाषा साहित्यिक रचना के योग्य करली गई। सप्तम शती के आचार्य दण्डी ने अपने युग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि आभीर आदि अनेक जातियाँ, जो राज्याधिष्ठित होकर भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थीं, उनकी जो उच्चारण क्षमता थी उनसे अपभ्रंश भाषा का जन्म हुआ और उसे काव्य स्वरूपों में मान्यता प्राप्त हुई। याद होता है कि दण्डी से भी ३०० वर्ष पूर्व भाषा सम्बन्धी यह तथ्य भारतीय वाङ्मय का अंग बन गया था; क्योंकि पश्चिमी भारत में आभीरों के व्यवस्थित राज्य का प्रमाण प्रागुप्तयुग के लगभग मिलता है। विक्रमोर्वशीय में जो अपभ्रंश भाषा के सजे हुए ललित छन्द पाए जाते हैं उन्हें कुछ विद्वान् कालिदास की रचना मानते हैं और कुछ नहीं मानते हैं। विक्रमोर्वशीय के नवीनतम संशोधित संस्करण के सम्पादक श्री वेलणकरने उन्हें महाकवि कालिदास की रचना मानकर अपने संस्करण में स्थान दिया है। हमारी धारणा है कि इस विषय में अपने किसी पूर्वाग्रह को स्थान न देकर जो पारस्परिक अनुश्रुति है, उसे ही मान लेना ठीक है। महाकवि कालिदास ने संस्कृत और प्राकृत में जहां इतनी प्रभूत रचना की, वहीं उन्होंने विशेष रचना के अनुसार अपभ्रंश के भी कुछ छन्द लिखे हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, कहने का तात्पर्य यह कि अपभ्रंश की जो परम्परा इस प्रकार आरम्भ हुई, उसे इस प्रकार बल मिलता गया और ८वीं शती के लगभग तो वह साहित्यिक रचना का भी एक प्रमुख माध्यम ही बन गई। सिद्धों की पद रचना अपभ्रंश में ही हुई। आगे चलकर नाथों ने भी इसी परम्परा को अपनाया। इधर जैन आचार्यों ने अपभ्रंश भाषा के माध्यम को अधिक उदार मन से ग्रहण किया। क्योंकि लोक में विचरण करने के कारण वे जन सम्पर्क के अधिक निकट थे। ११वीं शती मे लिखे गए 'कण्ठाभरण' नामक अपने ग्रन्थ में भोजदेव ने अपभ्रंश के कुछ और विकसित रूप का उल्लेख करते हुए उसे अपभ्रंश कहा है। आगे चलकर उसी का रूप अवहट्ट भाषा हो गया, जिसका उल्लेख १५वीं शती के आरम्भ में विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता में किया है। वस्तुत. विद्यापति की कीर्तिलता और कीर्तिपताका ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमे एक ओर अवहट्टभाषा और दूसरी ओर मैथिली इन दोनों का प्रयोग मिला-जुला किया गया है। विद्यापति से पहले ही लगभग ३०० वर्षों तक यही क्रम देखने में आया है। अर्थात् एक ओर अपभ्रंश अवहट्ट के माध्यम से ग्रन्थ रचना होती थी और दूसरी ओर प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन ब्रज, प्राचीन अवधी और प्राचीन मैथिली भाषाओं में स्वच्छन्द ग्रन्थ रचना हो रही थी। उनका अन्वेषण हिन्दी के आदिकालीन इतिहास का उज्ज्वल अध्याय है।

अपभ्रंश एवं अवहट्ट भाषा ने जो अद्भुत विस्तार प्राप्त किया उसकी कुछ कल्पना जैन भंडारों में सुरक्षित साहित्य से होती है। अपभ्रंश भाषा के कुछ ही ग्रन्थ मुद्रित होकर प्रकाश में आये हैं। और भी सैकड़ों ग्रन्थ अभी तक भंडारों में सुरक्षित हैं। एवं हिन्दी के विद्वानों द्वारा प्रकाश में आने की बाट देख रहे हैं। अपभ्रंश साहित्य ने हिन्दी के न केवल भाषा रूप साहित्य को समृद्ध बनाया, अपितु उनके काव्यरूपों तथा कथानकों को भी पुष्पित और पल्लवित

किया। इन तीनों तत्वों का सम्यक् अध्यापन अभी तक नहीं हुआ है। जो हिन्दी के सर्वांगपूर्ण इतिहास के लिए आवश्यक है। वस्तुतः अपभ्रंश भाषा का उत्तम कोष बनाने की बहुत आवश्यकता है; क्योंकि प्राचीन हिन्दी के सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ अपभ्रंश भाषा में सुरक्षित है। इसी के साथ-साथ अपभ्रंशकालीन समस्त साहित्य का एक विशद इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता अभी बनी हुई है।

जब हम अपभ्रंश के साहित्य की चर्चा करते हैं, तो हमारा मन उन अनेक ग्रन्थों की ओर जाता है जो ग्रन्थ भंडारों में बड़ी सावधानी से अभी तक सुरक्षित रक्खे गये हैं। उन ग्रन्थों का लेखन काल विक्रम की दूसरी सहस्राब्दि है।

जैन लेखक अपने ग्रन्थों की प्रशस्ति अर्थात् आरम्भिक भाग में और पुष्पिका अर्थात् अंत के भाग में देवता नमस्कार आदि के अतिरिक्त आचार्य, गच्छ, शिष्य परम्परा, सम सामयिक शासक, अपने आश्रयदाता, उसके परिवार, इष्टपूर्ति, धार्मिक कार्य, तिथि, सम्वत्, स्थान एवं लेखक-पाठक के सम्बन्ध में बहुत-सी महत्वपूर्ण जानकारी लिख देते थे। वह सब इतिहास और वाङ्मय के लिए महत्वपूर्ण है। जैन भंडारों से ओत-प्रोत संस्कृत ग्रन्थों की भी इस संबंध में ऐसी ही स्थिति है। जैन संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की प्रशस्तियों के दो संग्रह पहले प्रकाशित हो चुके हैं। अब अपभ्रंश हस्तलिखित ग्रंथों से उसी प्रकार का यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है। इसकी सामग्री भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैसा कि पाठक देखेंगे कि इसमें लगभग १४० पृष्ठों में प्रस्तावना के रूप में विद्वान् सम्पादक ने अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह किया है और लगभग १५० पृष्ठों में ११४ हस्तलिखित ग्रन्थों से काव्यबद्ध अपभ्रंश प्रशस्तियों का संग्रह दिया है। अन्त में प्रशस्तियों में आये हुए आचार्य नाम, श्रावक नाम, संघ-गण-गच्छ नाम, एवं ग्रंथ नामों का उपयोगी संग्रह किया है। इनमें विशेषतः श्रावक-श्राविकाओं के नाम अध्ययन के योग्य हैं, क्योंकि वे अपभ्रंश और अवहट्ट भाषा रूपों के परिचायक हैं। यदि अपभ्रंश और प्राकृत ग्रन्थों एवं संस्कृत ग्रन्थों की प्रशस्तियों में आये हुए समस्त स्त्री-पुरुषों के नाम रूपों पर अलग एक शोधनिबन्ध ही लिखा जाय तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा। श्री परमानन्द जी ने तिल-तिल सामग्री जोड़कर ऐतिहासिक तथ्यों का मानों एक सुमेरु ही बनाया है। मुझे उनका यह परिश्रम देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

वासुदेवशरण अग्रवाल
आचार्य, भारती महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

२० जनवरी १९६३

Preface

I have enjoyed going through the *Jaina-grantha-prasasti-sangraha*, Vol. II, edited by text of the 122 *prasastis* presented here would of Indian languages, literature, history and ntroduction appended to them by the Editor, their value has become much greater, for he throws therein considerable light on important (b) Apabhramsa, its meaning and develop- arly Indian languages dialects and their inter- varieties, and (e) Apabhramsa writers and rmation in the last section is only about available Apabhramsa works, Jaina as well as non-Jaina, which the Editor has given, should give the reader a fairly comprehensive idea of the subject and encourage him to pursue his studies in the direction he chooses.

Under all the heads, often new information, as a Bhandars. But I personally Apabhramsa literature under each comprising generally ize, (3) *Sandhikavya* which consists only independent verses in the form of *dohas* *Charchari*, he has criticised incisively but convincingly some theories of earlier writers and given a well-balanced view of the nature and objectives of Jaina poetry. He has also taken a rapid survey of early books on Apabhramsa metrics and grammar and added a few remarks about the nature of Apabhramsa used in Sanskrit plays.

The final section of the Introduction, pp. 41-136, begins with the account of Svayambhu's), one dealing with i, Both the works had comparison with the best *kavyas* in Sanskrit or in any other language for their graphic description of scenes of nature as well as battles, successful depiction of various poetic sentiments and aesthetically controlled use of figures of speech.

Originally a Brahmana, Svayambhu had become a Jaina, and most of his literary work was done at Manyakheta where he was patronised by Dhananjaya and Dhavalaiyya. Tribhuvanasvayambhu mentions Vandaiyya as his patrons. These three patron were, probably, related to one another.

In the 104th *sandhi* of the *Ritthanemichariu* is a very valuable list of 70 earlier poets, Jaina as well as non-Jaina.[1]

The 3rd and 17th *prasastis*, respectively, are of Nayanandin's *Sudamsanachariu* and *Sayala-vihi-vihana-kavya*, of which the former is a beautiful *khandakvya* written at Dhara in V. 1100 (1043 A.D.) in the reign of Bhoja Paramara, and the latter a religio-philosophic work in verse, which in its *prasasti* mentions about 33 earlier poets.[3]

Padmakirti's *Parsavapurana* (*prasasti* No. 4) is again a *khandakavya* written in V. 999 (942 A.D.). Later than it by nearly 45 years (V. 1044) is the *Dharmapariksa* of Harisena who belonged to Chittor but wrote the work at Achalapura where he had gone to transact some state business.

Far more poetic than these is Vira's *Jambusvamichariu* (*prasasti* No. 6) which like, No. 3, was written in Malwa in the reign of Bhoja. Vira's father, Devadatta, also must have been a good poet. He restored the *Varangacharita* and *Ambadevi-rasa*, both of them unfortunately unavailable now, The *chariu* deserves being published for its beautiful poetry and vigorous description and also for popularising further the story of the last *kevalin*, Jambusvamin. Jhunjhuna, the place where the work was copied out in V. 1516, should in my opinion be identified with Jhunjhanu in Shekhawati, Rajasthan.

The *prasastis* No. 7 and 8 are, respectively, of Srichandra's *Kathakosa* and *Ratnakarandasravakachara*, of which the former deals with *kathas* relating to various Jaina *vratas* and the latter is a good explanatory commentary on Svami Samantabhadra's *Ratnakaranda*. The *Sravakachara* was completed in V. 1123 during the reign of the Chaulukya ruler, Karna. This being so, I am not sure whether the Editor is right in assigning the composition of Srichandra's other work, the *Kathakosa* to a period before 1052, *i.e.*, not less than 71 years before the composition of his other work. It may be well to remember also that according to the *prasasti* of the *Kosa*, Srichandra was not a contemporary of Mularaja's courtier, Sajjana, but of his son, Krsna, who at the time of writing the work, was old enough to have three sons (who are described as proficient in the knowledge of *dharma* and *karma*) and also four daughters. Thus it would probably be best to assign its composition to the end of the 11th Century.

The *Sukumaracharita* of Sridhara (*prasasti* No. 9) deals with the well-known story of Sukumara *muni*. As the work was composed in V. 1208 in the reign of Govinda-chandra, I feel like identifying the ruler with Govindachandra Gahadavala of Kannauj who ruled from V. 1171 to V. 1212.

The 10th *prasasti* is of Dhavala's *Harivamsa-purana*. It is a well-written *kavya*, the utility of which to historians of Apabhramsa literature is increased by its list of earlier poets.[4] The Editor puts him after V. 999 on the basis of the poets he mentions.

Prasastis 11-13 are of works written by Amarakirti. His *Chhakammovaesa* was written at Godhra during the reign of Kanha-narendra, a son of Vandiggadeva, in V. 1247. Another of his works, the *Neminahachariu* was written in V. 1244. It is known from various sources that Godhra was a strong principality of *Mahitata*, which defied more than once the might of the Chaulukyas of Anahillapattana.[5]

The 13th and 18th *prasastis*, respectively, are of Laksmana's *Jinadattacharita* and *Anuvayarayanapaiva*. Of these the former, a beautiful *kavya* setting forth the ideal of real love in the form of Jinadatta's story, was written in V. 1275 (1218 A.D.), at *Bilarampur* in the present Etah district to which the poet and his relatives had fled after the sack of Tribhuvanagiri (Tahangarh)[6] by the Muslims in 1196 A.D. (V. 1253). The *Anuvayarayanapaiva* deals with *Samyagdarsana* and the twelve *vratas* of a Jaina householder. It was written in V 1313 (1256 A.D.), at Raybaddiya which was then ruled by the Chauhan king, Ahavamalla.[7] The poet was patronised by Ahavamalla's minister, Kanha, of the Lambakanchuka or Lemchu family.

The *Sulochana-charita* of Devasena-gani (*prasasti* No. 14) was composed in the city of king Mammala[8], probably in V. 1132, and is practically an Apabhramsa rendering of Kundakunda's work of this name. Of the earlier poets he mentions Valmiki, Vyasa, Kalidasa, Bana, Mayura, Haliya, Govinda, Chaturmukha, Svayambhu, Puspadanta and Bhupala.

The *Pajunnacharia* was begun by Siddha and completed by Simha. Siddha mentions Brahmanavataka, its ruler Ballala, son of Ranadhoritya, and Ballala's servant, the Guhilaputra Bhullana. Brahmanavataka is known to have been in *Nirmada-mandala*.[10] This Ballala could have been, as surmised by the Editor, Ballala of Malwa; whose servant the Guhilaputra Bhullana might then be regarded as the man put in charge of the Brahmanavataka area.

The 16th *prasasti* is of the *Parsvanathacharita* of Devachandra which was composed at Gundijjangara (the location of which is uncertain).[11] The work might have been written in the 10th or 12th century A.D., our dating depending in this case on the identification of Devachandra's *guru*, Vasavachandra.

The author of the *Bahubalicharita* (*prasasti* No. 19) was Dhanapala. He wrote it in V. 1454 at the instance of Vasadhara, a minister of the Chauhan ruler Ramachandra, of Chandwar. The poet himself belonged to Palanpur and was a disciple of Prabhachandra who is said to have pleased Mahmudshahi at Yoginipura. This Mahmud should in my opinion be identified with Muhammad bin Tughlaq, as Prabha Chandra ascended the *gaddi* at Delhi before V. 1416 (1359).

... Yasahkirti was written at Unmattagrama in Gurjaradesa. ... from Bhattaraka Yasahkirti, four *prasastis* of whose ... in the *Sangraha*. The *Pandavapurana* was written in V. 1497 at the instance of Hemaraja who is described as a *mantrin* of "Suratana Mumarakha" (Mubarak Shah). But as Saiyyad Mubarak Shah was no longer on the throne in 1440 A.D. or V. 1497, Are we to suppose that by that time Hemaraja had retired from ministership?

Yasahkirti's *Harivamsapurana* was written in V. ... of Jalal Khan who should be identified with the Mewati c... trouble to Saiyyad Mubarak Shah and was besieged ... *Mubarakshahi*, p. 211). Elsewhere we find Indore menti... Nos. 23 and 24 are *vrata-kathas*. Yasahkirti, as pointed out by the Editor, was one of the most influential religious figures of his time.

Prasasti No. 25 is of Sridhara's *Parsvanathacharita* written in V. 1189 at the instance of Nattula Sahu of Dhilli which was then being ruled by Anangapala Tomara. Another of his work was the *Vardhamanacharita*, the *prasasti* of which has been given in an appendix to the *Sangraha*. Both these *prasastis* contain valuable material about the economic and political conditions of that period.[13]

Prasasti No. 26 is of Halla's *Srenikacharita* which was written before V. 1471. Halla wrote also the *Mallinaha-kavya* (*prasasti* No. 104). He was patronised by Amarasimha, a minister of the Chauhan chief Bhojaraja of Karahal, a place about 13 miles from Etah.

The *Bhavisattakaha* (*prasasti* No. 27) was written by Sridhara who was probably different from Sridhara, the author of the *Parsvanathacharita*. He wrote his work in V. 1230 (1173 A D.).

Prasastis 28-29 and 100 are of works by Tejapala. They were written at Sripatha (not Sriprabha) of the Bhadanaka-desa, which was then ruled by Daud Shah Auhadi. I have found this reference extremely important, because it has helped me in locating definitely Bhadanaka

which, thanks to Muslim historians and Prakrit phonology, turned into Bhayanaya and then into Bhayanaa and Bayana.[13] The poet's *Varangacharita* was written in V. 1507 and the *Pasapurana* in 1515 V.

The 30th *prasasti* is of the *Sukumalacharia of Purnabhadra* who flourished before 1632 A.D. Much more poetic than it is the *Neminahachariu* of Laksmana (*prasasti* No. 31) which must have been writren before V. 1510. *Prasastis* No. 32 and 33 are of two works by Manikyaraja. Of these the *Amarasenacharita* was written at Rohtak in V. 1576 (1519 A.D.). The second work, the *Nagakumaracharita*, was written in V. 1579.

Prasastis Nos. 35-49, 99 and 106 are of works by Raidhu, one of the best Apabhramsa poets of this later period. He belonged to the *Pomavai-Poravada-kula* and passed much of his time at Gwalior which was during his days ruled first by Dungarsimha of the Tomara dynasty and then by his son, Kirtisimha.

Prasastis No. 50-64 are of *kathas* by Gunabhadra. He lived at Gwalior in the sixteenth century of the Vikrama era.

Prasasti No. 65 is of an anonymous *Anantavratakatha*, and the 66th of the *Aradhanasara* by a poet named Vira. The 67th *prasasti* is of an anonymous *Harisenachariu*.

The 68th *prasasti* is of Haradeva's allegorical poem, the *Mayanaparajaya* in which Jinaraja is represented as defeating Kamadeva and marrying *Mukti-kanya*. The poet flourished before V. 1551.

The *Siddhachakra-kaha* and *Jinarattivihana* (Nos. 69 and 105) are by Narasena. He might have been a poet of the fourteenth century.

The *Anatthamiyakaha* (No. 70) was written by Harichanda and is directed against *ratribhojana* (taking food at night). It might have been written in the 15th century.

The *prasastis* 71-73 are of works by Vinayachandra. The *Chunadirasa* is a short but exquisite piece written at Tribuvanagadha in the Ajayanarendra-vihara. The *Nirjharapanchami-rasa* is another *katha* in the form of a *rasa*. The third work is the *Kalyanaka-rasa*. Dr. Prem Sagar has put Vinayachandra in V. 1576. Actually, however, as the Editor of our *Sangraha* points out, he cannot be put later than the 14th century.

The 75th *prasasti* is of Lakhu's *Chandana-chhatthikaha*, and the *prasastis* No. 76-77 of works by Balachandra who probably lived in the thirteenth century.

Prasastis No. 78-80 are of various *kathas*. No. 81 is the *Anupeharasa* by Jalhiga and No. 82 of *Anuvekkha-rasa* by Yogadeva. Nos. 83-84 are also similar works.

Prasastis 85-86 and 107 are of works by Srutakirti, who lived in the middle of the sixteenth century. Of these the *Harivamsapurana* was written in V. 1552. Its copy from Jorhat in Damoh District mentions its governor, the Great Khan Bhoj Khan, under whom the affairs at Jorhat were managed by Soni Shri Isura. The *Paramestiprakasa-sara* was writteu in V. 1553 during the reign of Nasiruddin of Malwa and the Yogasara in V. 1552.

Mahindu wrote the *Santinaha-chariu* (No. 87) in V. 1587 during the reign of Babar. Nos. 88, 108 and 109 are *prasastis* of the works of another prolific Apabhramsa writer, Bhagavatidasa of Buria (Ambala District). His *Miyankalekha-chariu* was written at Hissar in V. 1709. His Apabhramsa brings us fairly near Hindi, though he was a good scholar of Sanskrit, Prakrit as

well as Apabhramsa. His works were written at Buria, Dilli, Agra, Hissar, Kapisthala, Siharadi and Sankasa and he lived on at least up to V. 1712.

The 89th *prasasti* is of Vijayasimha's *Ajita-purana* written in V. 1505 and the *prasastis* 90-98 of 9 works by Brahma Sadharana who mentions himself as a disciple of Narendrakirti.

The 101st *prasasti* is of Damodara's *Siripalachariu*. The writer was a disciple of Bhattaraka Jinachandra.

Oswal's *Pasachariu* (No. 102) was written in V. 1479 (1422 A.D.) in the reign of Chahamana Bhoja of Karahala at the instance of Lonasimha whose family had been responsible for much of the good literary work done at Karahala even earlier. The *prasasti* is thus of great importance for literary and political history.

Thakur's *Santinaha-chariu* (No. 103) was written in V. 1652 when Akbar ruled at Delhi and Mansingh at Amer. The work gives a good genealogy of the Sarasvati-gachchha. The poet was a disciple of Visalakirti.

Appendix 1 has 6 *prasastis* of works already printed, and Appendix 2 of 3 important *lipi-prasastis*. Of these latter the first *prasasti*, which is dated in V. 1521, throws important light on the political as well as cultural set-up of Gwalior. The second *prasasti* is of V. 1530. and the third of V. 1607.

The three *prasastis* in Appendix 3 are of *Rohinivihana-katha* of Devanandi, *Vaddhamana-chariu* of Sridhara, and *Neminahachariu* of Damodara. All the three are important additions to the works of these authors already noted in the *Sangraha*.

One need hardly emphasise the importance of this collection of *prasastis* which opens a new door of research in the little-known political, social, cultural, religious and linguistic questions of a period of nearly eight hundred years. The publication of these works is the prime duty not only of the Jaina community but also of non-Jaina institutions of learning. The Editor has discharged well his duty by bringing these priceless treasures to their notice; let others now perform theirs by spending like their ancestors a part of their money in popularising works and teachings which are their priceless heritage.

Pandit Parmanand Shastri's work has been done with the greatest care and deserves the appreciation of every lover of oriental learning. We have seen also other *prasasti-sangrahas* but this one surpasses them, not of course in the amount of material it puts together, for a few bigger catalogues have been published, but in the way all this material has been systematised. He has thrown new light on the lives of some of [illegible] mentioned also the earlier poets whose writings inspired [illegible] standing of the Jaina theory of poetics than many other writers on the subject whose views have been largely influenced by the writings of western scholars. And even when one does not fully agree with him, one has to respect his views on account of the reasoned way in which they have been presented. When future writers compile either the history of Apabhramsa or early Rajasthani and Hindi literatures, Shri Parmanand Jain Shastri's work will be found not only useful but indispensable.

'Navin-vasant'
E-4/1, Krishnanagar,
Delhi-31

Dasharatha Sharma
Reader, History Department
University of Delhi

Footnotes

1. See for instance his criticism of the view of Dr. Shambhunath Singh, pp. 22 ff.
2. See page 46 of the Introduction.
3. See pages 50-1 of the Introduction. I do not, however, find the name of Magha in the original *prasasti.*
4. See page 65 of the Introduction.
5. *Prabandhakosa*, p. 107. 101 Rajputs are said to have died fighting against him. He was subdued by Vastupala. The same story is found in the *Puratanaprabandhasangraha* which speaks also of the subduing of Godhra by Kumarapala.
6. On the identification of Tribhuvanagiri with Tahangarh see our paper in the *Bharatiya Vidya*, (Hindi edition), Vol. II, pp. 62-66.
7. For an assessment of the historical material in the *Anuratna-pradipa* see our paper the *Jainasiddhantabhaskara*, VII, part 1, p. 11.
8. Can it be Mammalapuram founded by Mahamalla Pallava ?
9. The line containing the information is prosodically defective.
10. In Ajayapala Chaulukya's reign, Brahmanavataka of Narmadamandala was governed by Vaijaladeva Chahamana.
11. There is one Gundoch in former Jodhpur State. The Editor thinks that it was somewhere in the south.

11a. See my paper "Revenue in 1680 A.D.", *Journal of Ganganatha Jha Research Institute*, Vol. IV. p. 72.

12. Partly utilised by us in our *Early Chauhan Dynasties* in the chapter on Arnoraja.
13. For my earlier view on the subject which has been adopted by some historians see *IC*, Vol. X and *Early Chauhan Dynasties*, pp. 91-92.

प्रस्तावना

प्रशस्तियों की उपयोगिता

भारतीय इतिहास के अनुसंधान में जिस तरह शिलालेख, प्रशस्तियां, दानपत्र, स्तूप, मूर्तिलेख, ताम्रपत्र और सिक्के आदि उपयोगी होते हैं। उसी तरह पुरातन ग्रन्थों के उल्लेख, ग्रन्थकर्ता विद्वानों के ग्रन्थों के आदि अन्त में दी हुई प्रशस्तियां और लिपि प्रशस्तियां भी उपयोगी होती हैं। इनमें दिए हुए ऐतिहासिक उल्लेखों से अनेक तथ्य प्रकाश में आते हैं। इनकी महत्ता भारतीय अन्वेषक विद्वानों से छिपी हुई नहीं है। ये सब चीजें भारत की प्राचीन आर्यसंस्कृति की समुज्ज्वलधारा की प्रतीक हैं और ये इतिहास की उलझी हुई समस्याओं एवं गुत्थियों को सुलझाने में अमोघ अस्त्र का काम देती है। इनमें पूर्वजों की गुण-गरिमा का सजीव चित्रण एवं इतिवृत्त गुंफित मिलता है।

ये महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रशस्तियां भारतीय साहित्यादि के अन्वेषण में ग्रन्थकर्ता विद्वानों, आचार्यों और भट्टारकों द्वारा लिखी गई होने से विद्वानों के समयादि का निर्णय करने में अथवा वस्तुतत्व की जांच करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं और कहीं-कहीं प्रशस्तियों में अंकित इतिवृत्त उलझी हुई समस्याओं का केवल समाधान ही नहीं करते; प्रत्युत वास्तविक स्थिति को प्रकट करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं।

अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थकारों ने ग्रन्थ निर्माण कराने में प्रेरक अनेक अग्रवाल खंडेलवालादि कुटुम्बों का परिचय दिया है, और उनके तीर्थयात्रा और मन्दिर निर्माण, मूर्ति निर्माण एवं बिम्ब प्रतिष्ठा, राजमंत्री, कोषाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी आदि पदों का भी उल्लेख किया है, जिनसे उस कालके जैनियों की धार्मिक परिणति और उदारता आदि के साथ तात्कालिक सामाजिक राजनैतिक वातावरण का भी पता लग जाता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी से अन्वेषकों और इतिहासज्ञों के लिये इस प्रकार की ग्रन्थ प्रशस्तियां अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुई हैं। शिलालेखों और ताम्रपत्रादि से इनकी महत्ता किसी प्रकार कम नहीं है।

प्रस्तुत प्रशस्ति संग्रह में अप्रकाशित ग्रंथों की १०६ प्रशस्तियां दी गई हैं परिशिष्ट नम्बर एक में छः प्रशस्तियां मुद्रित ग्रन्थों की दी हुई हैं, और परिशिष्ट नं० दो में तीन लिपि प्रशस्तियां दी गई हैं, तथा परिशिष्ट नं० ३ में चार अप्रकाशित ग्रन्थों की प्रशस्ति दी हैं। इस तरह प्रशस्तियों की कुल संख्या एक सौ बाईस हो गई है। ये प्रशस्तियां जहां साहित्य और इतिहास की मौलिकता को प्रकट करती हैं—उसकी कड़ी जोड़ती हैं। वहां वे तात्कालिक सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज पर भी अच्छा प्रकाश डालती हैं अतएव उपलब्ध अपभ्रंशसाहित्य का यह प्रशस्तियों का संग्रह विशेष लाभप्रद होगा। इनके अध्ययन एवं संकलन से इतिहास का मूर्तिमान रूप प्रकट होता है, इतना ही नहीं; किन्तु ये जैन संस्कृति की उत्तम प्रतीक हैं। इन में उल्लिखित ग्रन्थकर्ता, विद्वानों, आचार्यों, भट्टारकों, राजाओं, राजमंत्रियों, श्रावक-श्राविकाओं और उनकी गुरु परम्परा तथा संघ, गण-गच्छादिका वह परिचय भी प्राप्त हो जाता है। जिन पर से अनेक वंशों जातियों, गोत्रों और गुरुपरम्पराओं, उनके स्थान, समय, कार्यक्षेत्र तथा लोगों की ज्ञान लिप्सा के साथ-साथ

तात्कालिक परिस्थितियों, राजाओं, महामात्यों, सेनापतियों और नगरसेठ आदि के इतिवृत्त सहज ही संकलित किये जा सकते हैं।

इस प्रशस्ति संग्रह में अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों की प्रशस्तियों का ही संग्रह किया गया है। ये सब प्रशस्तियाँ हस्तलिखित ग्रन्थों पर से समुद्धृत की गई हैं। यह सब संग्रह दिल्ली, जयपुर, आमेर अजमेर, ब्यावर आदि स्थानों के जैन ग्रन्थ भंडारों के ग्रन्थों पर से किया गया है, जिससे अपभ्रंश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर से उसके उत्थान और पतन का क्रमवार इतिहास लिखा जा सके। ये प्रशस्तियां अपभ्रंश भाषा के इतिहास संकलित करने में जहाँ मूल्यवान् सिद्ध होंगी वहाँ अध्येता अन्वेषकों के लिये भी उपयोगी रहेंगी।

इस प्रशस्ति संग्रह के अंत में कुछ परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जिनमें प्रथम परिशिष्ट में कुछ मुद्रित ग्रन्थों की ऐतिहासिक प्रशस्तियों का भी संकलन दिया है। उसका एक मात्र कारण रिसर्च स्कालरों या अन्वेपकों के लिए उपयुक्त सामग्री का संचित करना है। अन्य परिशिष्टों में भौगोलिक ग्राम-नगरादि के नामों, संघों, गणों, गच्छों, अन्वय, या वंशों, जातियों, गोत्रों राजमंत्रियों, राजाओं, विद्वानों, आचार्यो भट्टारकों श्रावक-श्राविकाओं और ग्रंथों की सूची अकारादि क्रम से दी गई है। जिससे अन्वेषक विद्वानों को बिना किसी विशेष परिश्रम के उनका परिचय मिल सके और उन्हें ऐतिहासिक स्थलों आदि का भी परिचय सुलभ हो सके।

इस संग्रह में वर्तमान में उपलब्ध अपभ्रंश के दिगम्बर साहित्य-विषयक प्रशस्तियां ही दी गई हैं। किन्तु प्रस्तावना में अपभ्रंश साहित्य की एक ऐसी सूची दे दी गई है, जिसमें प्रायः उपलब्ध अनुपलब्ध ग्रंथों को भी संकलित किया गया है। इससे विद्वानों को अपभ्रंश के साहित्य की पर्याप्त जानकारी हो सकेगी। इस तरह यह प्रशस्ति संग्रह अपने विशाल रूप में साहित्यिक अनुसंधाताओं के लिए विशेष उपयोगी रहेगा।

प्रस्तुत प्रस्तावना को तीन भागों में विभक्त किया गया है जिनमें पहला भाग अपभ्रंश भाषा के इतिहास का है, जिसमें शताब्दी क्रम से अपभ्रंश के ऐतिहासक निर्देश दिये गये है, जिनसे अपभ्रंश के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश का वर्तमान साहित्य ९वीं से १७वीं शताब्दी तक का उपलब्ध है। ५वीं से ८वीं शताब्दी तक उसका प्रारम्भिक काल और ९वीं से १३वीं तक मध्यान्ह काल और १४ वीं से १७ वीं शताब्दी तक उसका अपरान्ह काल समझना चाहिये। मध्यान्ह काल ही उसके विकास का समय है।

दूसरे विभाग में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिसमें भारतीय भाषाओं के विकास के साथ अपभ्रंश के विकास एवं साहित्य की चर्चा की गई है और वर्तमान में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की एक सूची भी दी गई है।

तीसरे विभाग मे प्रशस्ति संग्रह में मुद्रित प्रशस्तियों के ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का परिचय कराया गया है।

भारतीय साहित्यिक भाषाओं में प्राकृत संस्कृतादि की तरह अपभ्रंश भी सदियों तक साहित्यिक भाषा रही है और जनता के कण्ठ को विभूषित करती रही है। अपभ्रंश प्राकृत भाषा का ही एक रूप है। जिसे 'अवहट्ट, अवहंस, अपभ्भट्ट, अपभृष्ट या अपभ्रंश के नाम से उल्लेखित किया जाता है। देश विशेष के कारण उनकी बोलियों और प्रांतीय भाषाओं के उच्चारण में अन्तर पड़ जाता है, और वही अन्तर धीरे-धीरे भाषाओं के आदान-प्रदान में व्यवहृत होने लगता है। पाली और प्राकृत भाषा में प्रचुर साहित्य रचा गया है। प्राकृत भाषा देश भेद के कारण अनेक रूपों में विभक्त है, फिर भी उसके मुख्य दो रूप दृष्टिगत

होते है। महाराष्ट्री और शौरसैनी। इन दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य रचा हुआ उपलब्ध होता है। यद्यपि अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया। अतएव उसका पूरा इतिवृत्त लिखना तो यहाँ सम्भव नहीं प्रतीत होता; किन्तु उनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार जरूर किया जायगा।

अपभ्रंश भाषा का जो भी पुरातन साहित्य वर्तमान में उपलब्ध होता है यद्यपि राज्यविप्लवादि के कारण बहुमूल्य पुरातन साहित्य विनष्ट हो चुका है, फिर भी जो किसी तरह अवशिष्ट रह गया है, वह अपनी महत्ता का स्पष्ट द्योतक है। उसका उद्गम कब और कहां पर हुआ, और कैसे वह साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति पा सका, उसमें क्या कुछ विशेषतायें थीं, कैसे वह आम लोगों के लिए बोलचाल की भाषा में परिणत होता हुआ साहित्यिक भाषा बनने का श्रेय प्राप्त कर सका, यह सब अभी विचारणीय है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी अपभ्रंश भाषा के साहित्य का अध्ययन बड़ा महत्व रखता है। भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य का अध्ययन तब तक सुसम्पन्न नही कहा जा सकता, जब तक अपभ्रंश भाषा के साहित्य का विधिवत् पारायण न कर लिया जाय। इतना ही नहीं; किन्तु विविध प्रादेशिक भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए अपभ्रंश भाषा का मौलिक अध्ययन करने की जरूरत है। साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश भाषा ने क्या कुछ योगदान दिया है। अपभ्रंश भाषा ने केवल हिन्दी के विकास में ही सहयोग नहीं दिया किन्तु उसे प्रभावित और प्रतिष्ठित भी किया है। अतः भाषा विज्ञान की दृष्टि से अपभ्रंश का साहित्य प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अध्ययनीय है।

अपभ्रंश भाषा का कोई प्रामाणिक इतिहास न लिखा जाने से उसके साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार नहीं हो सका है, उसमें साहित्य का अभी तक अप्रकाशित रहना भी एक कारण है। अपभ्रंश भाषा के साहित्य की जब हम विपुलता देखते हैं और उसकी रचनाओं का ध्यान से समीक्षण करते हैं तब हमें उसकी विशेषता और महत्ता का यथेष्ट परिज्ञान होता है। वर्तमान में अपभ्रंश भाषा का समुपलब्ध साहित्य ८वीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक का रचा हुआ अवलोकन करने में आया है। यद्यपि ६वीं से १३वीं शताब्दी तक के साहित्य में जो प्रौढ़ता देखी जाती है, वह आगे के साहित्य में नही पाई जाती; क्योंकि उसमें देशी भाषा के तत्सम शब्दों का बहुलता से समावेश पाया जाता है, अतः उसमें उत्तरोत्तर हिन्दी भाषा के विकास का औचित्य उपलब्ध होता है।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पुरातन उल्लेख हमें पतञ्जलि के महाभाष्य[1] में मिलता है। उसमें उन्होंने लिखा है :—"अपशब्दों का उपदेश बहुत विस्तृत या व्यापक है; क्योंकि एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हैं। जैसे एक ही गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि बहुत से अपभ्रंश होते हैं।"

दूसरा उल्लेख 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ के कर्ता भर्तृहरि ने संग्रहकार 'व्याडि' नामक आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए किया है :—

"शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम्॥"

वार्तिक—शब्द प्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंशः स्वतन्त्रः कश्चिद्विद्यते। सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः। प्रसिद्धेस्तु रूढतामापद्यमानास्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र

१. "गरीयानपशब्दोपदेशः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्येवमादयो अपभ्रंशाः॥" —पतंजलि महाभाष्य १, १, १।

गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्तया प्रमादिभिर्वा गाव्यादयस्तत्प्रकृतोपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते ।"

—वाक्यपदीयम् प्रथम कांड का० १४८

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तत्सम अपभ्रंश किसी भाषा विशेष का नाम नहीं था किन्तु संस्कृत के विकृत रूप ही अपभ्रंश कहलाते थे।

अपभ्रंश का तीसरा उल्लेख हमें भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र में मिलता है।[२] जिसमें भाषाओं की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बतलाया गया है कि—'हिमवत, सिन्धुसौवीर तथा अन्य देशों के आश्रित लोगों में नित्य ही उकार बहुला भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के ३२ वें अध्याय में जो वाक्य उपलब्ध होते हैं वे अपभ्रंश के प्रारम्भ की सूचना देते हैं। 'मोरुल्लउ-नच्चन्तउ। महागमे संभत्तउ। मेहउ हलुँ गोइ जोण्हउ। णिन्च णिण्पहे एहु चंदहु।' आदि समुद्धृत वाक्य अपभ्रंश के प्रारम्भिक रूप हो सकते हैं। इनमें कुछ विशेषतायें अपभ्रंश भाषा की देखी जाती हैं।

इससे ध्वनित होता है कि नाट्यकार के समय हिमालय से सिन्धु तक के देशों में जो बोली प्रचलित थी उसमें उकार का प्रयोग विशेष रूप से होता था। समस्त प्राकृत भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है जिसमें कर्ता और कर्म कारक की विभक्ति में 'उ' होने से उकार का बाहुल्य पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश भाषा का आदि क्षेत्र हिमालय से सिन्धु तक का भारत का वह पश्चिमोत्तर प्रदेश ही है। परन्तु भरत मुनि के समय वहां अपभ्रंश एक प्रकार की बोली ही थी, जिसे विभाषा कहा गया है, उसने तब तक साहित्यिक रूप धारण नहीं कर पाया था, और न वह अपभ्रंश विशेष से प्रसिद्धि को ही पा सकी थी, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस भाषा ने परवर्ती काल में बड़ी उन्नति की है और उसने इतना अधिक विकास पाया कि विक्रम की ६वीं ७वी शताब्दी से कुछ समय पूर्व उसमें गद्य-पद्य में रचना होने लगी थी। कवि भामह ने अपने काव्यालंकार में संस्कृत प्राकृत की रचनाओं के साथ अपभ्रंश की गद्य-पद्य मय रचना का भी उल्लेख किया[३] है।

महाकवि दण्डी ने इस सम्बन्ध में कुछ मौलिक सूचनायें भी की[४] हैं। और वे इस प्रकार हैं—

(१) दण्डी के समय तक ग्रन्थकार संस्कृत के सिवाय अन्य समस्त भाषाओं को अपभ्रंश कहते थे, जिसकी परम्परा का उल्लेख पतंजलि ने अपने महाभाष्य में किया है।

---

२. हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये जनाः देशान् समुपाश्रिताः।
उकारबहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत्॥ —नाट्यशास्त्र १७-६२

३. "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा॥" —काव्यालंकार १-३६

४. "तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्॥
संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
तद्भवास्तत्समो देशी नित्यनेकः प्राकृतक्रमः॥
आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः।
शास्त्रे तु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम्॥" —काव्यादर्श १, ३२, ३३, ३६

(२) जिन भाषाओं ने उस समय तक अपभ्रंश के नाम से काव्य-क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त कर लिया था, वे सब भाषायें आभीरादि जातियों की बोलियां थी। नाठ्यकार भरत मुनि ने आभीरों की बोली को 'शावरी' बतलाया है[५]।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आभीरों की शक्ति का लोक में जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे ही उनकी संस्कृति में भी चेतना का जागरण होता गया और फलतः उनकी काव्य-कला अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

सौराष्ट्र देश से प्राप्त होने वाले वलभी के राजा धरसेन द्वितीय के सन् ५५६ (वि० सं० ६१६) के उत्कीर्ण ताम्रपट में राजा धरसेन के पिता गुहसेन को संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश रूप भाषात्रय में प्रबन्ध रचना करने में निपुण बतलाया गया है[६]। बुल्हर ने इस ताम्रपट-लेख को जाली बतलाया है और वे उसे बाद का मानते हैं। हो सकता है कि यह लेख बाद में उत्कीर्ण किया गया हो, किन्तु घटना-क्रम तो उसी काल का है। भले ही इस लेख के काल में सौ, पचास वर्ष का फर्क हो सकता है, पर उसकी बारीकी से जांच करना अभी आवश्यक है।

भाषा शास्त्र के विद्वान अपभ्रंश साहित्य का प्रारम्भ ५०० या ६०० ईस्वी से मानते हैं किंतु अपभ्रंश भाषा के सम्बन्ध में वैयाकरणों ने जो लक्षण निर्दिष्ट किये हैं, उनके कुछ उदाहरण हमें अशोक के शिलालेखों में दृष्टिगत होते हैं। उनमें संयुक्त 'र' और उकारान्त पदों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है। इसी तरह 'धम्मपद' में भी अनेक शब्दों के अपभ्रंश रूप दृष्टिगत होते हैं। ललितविस्तर और महायान सम्प्रदाय के अन्य बौद्ध ग्रंथों की संकृत में भी अपभ्रंश रूप उपलब्ध होते हैं। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान तारानाथ ने यह स्पष्ट उल्लेखित किया है कि—'बौद्धों के सम्मितीय समुदाय के त्रिपिटक के संस्करण पाली संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में भी लिखे गये हैं[७]।' इससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि नाट्यकार भरत के समय और उसके बाद अपभ्रंश बीज रूप से विद्यमान थी और उसका अर्थ शब्द का विकृत या बिगड़ा हुआ रूप उस काल में देशवासियों के व्यवहार में प्रयुक्त होता था।

इस तरह अपभ्रंश का उत्तरोत्तर विकास होता गया और विक्रम की ८वीं शताब्दी में तो अपभ्रंश का काव्यरूप बहुत प्रसिद्ध और लोकरंजक हो चुका था। विक्रम की ६वीं शताब्दी के विद्वान उद्योतन सूरि ने अपनी कुवलयमाला में संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की तुलना करते हुए संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश की महत्ता का उल्लेख किया है। जिससे अपभ्रंश की उस समय की लोकप्रियता का सहज ही परिज्ञान हो जाता है। उन्होंने लिखा है कि—'संस्कृत अपने बड़े-बड़े समासों, निपातों, उपसर्गों, विभक्तियों और लिङ्गों की दुर्गमता के कारण दुर्जन हृदय के समान विषम है। प्राकृत समस्तकला-कलापों की मालारूप जल कल्लोलों से संकुल लोक वृत्तान्त रूपी महोदधि, महापुरुषों के मुख से निकली हुई अमृतधारा का बिन्दु संदोह तथा एक एक क्रम से वर्ण और पदों के संघटन से नाना प्रकार की रचनाओं के योग्य होते हुए भी सज्जन वचन के समान सुख-संगम[८] है और अपभ्रंश वह काव्य-शैली है जिसमें दोनों भाषाओं (संस्कृत-

५. आभीरोक्तिः शावरी स्यात्······ नाट्यशास्त्र १८-४४।

६. संस्कृतप्राकृतापभ्रंशभाषात्रय प्रतिबद्ध प्रबन्ध रचना निपुणान्तःकरणः।

—इण्डियन् एण्टीक्वेरी भा० १० पृ० २८०

७. देखो, त्रिपिटिक के सम्मितीय संस्करण।

८. देखो वलयमाला।

प्राकृत) के शुद्ध अशुद्ध रूप पदों का मिश्रित रूप पाया जाता है, जो नव वर्षाकालीन मेघों के प्रपात से पूर द्वारा प्लावित गिरि नदी के वेग समान सम और विषम होता हुआ भी प्रणय कोप से युक्त कामिनी के वार्तालाप की तरह मनोहर है[१]।

इसी तरह स्वयंभू ने भी अपभ्रंश काव्य-रचना की तुलना एक नदी से की है, जो संस्कृत और प्राकृत दोनों के तटों का स्पर्श करती हुई घनपद—संघटना की चट्टानों से टकराकर बहती है[२]।

उद्योतनसूरि की 'कुवलय माला' में जहां अपभ्रंश का चर्चरीरास' समाविष्ट है। वहां लोक-भाषा सूचक अपभ्रंश गद्य के नमूने भी उपलब्ध हैं। यद्यपि वे प्राकृत के प्रभाव से परिलक्षित हैं, फिर भी मायादित्य और ग्राम-महत्तरों का परस्पर कथनोपकथन अपभ्रंश भाषा में दिया हुआ है और अवशिष्ट कथन प्राकृत में अङ्कित है। इससे स्पष्ट है कि उस समय अपभ्रंश का प्रयोग लूले-लंगड़े, रोगी और दरिद्री भी करते थे, और वह साहित्यिक विकास में अग्रसर हो रही थी।

इसी ग्रंथ के एक दूसरे उद्धरण में कथानायक राजकुमार का शूरसेन देश के केन्द्रस्थल मथुरा के एक अनाथ मण्डप में पहुंचने पर वहां के दीन-हीन, कोढ़ी और लंगड़े आदि रोगी गंवार लोगों से जो बातचीत या संवाद हुआ है वह बड़ा ही सजीव है[३]। यहां यह अवश्य विचारणीय है कि उन लोगों से शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग न कराकर अपभ्रंश का प्रयोग कराना खास विशेषता रखता है। वहां उसमें शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट है और उन शब्दों की ध्वनि में उदार प्रवृत्ति और देशी शब्दों का बाहुल्य आदि अपभ्रंश का स्पष्ट इंगित कराता है।

नवमी शताब्दी के विद्वान कवि रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में काव्य का गद्य-पद्य में विभाजन के अनन्तर भाषा के आधार पर उसे छह भागों में विभक्त किया है, और देश भेद से अपभ्रंश के बहुत भेद होने की सूचना भी की है[४]। इससे स्पष्ट है कि कवि रुद्रट अन्य साहित्यिक प्राकृतों के समान ही अपभ्रंश को गौरव प्रदान करते हैं। रुद्रट के इस कथन पर विक्रम की बारहवीं शताब्दी के विद्वान नमि साधु ने (१०६९ ई०) अपनी टीका में अपभ्रंश को प्राकृत में अन्तर्भुक्त करते हुए लिखा है—कि अन्य लेखकों ने उस अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं, उपनागर, आभीर और ग्राम्य[५]। इसी का निराकरण करने के लिए रुद्रट ने भूरिभेद बतलाते हुए उसके अनेक भेदों की सूचना की है; क्योंकि देश की विशेषता के कारण भाषा में भी विशेषता पाई जाती है। साथ ही प्राकृत को ही अपभ्रंश माना है।

---

१. ता किं अवहंसं होहइ ? हूँ तं पि णो जेण सक्कअ-पाय उभयसुद्धासुद्ध पयसमतरंगरंगंतवग्गिरं णव पाउस जलयपवाह पूर पव्वालिय गिरिणइ सरिसंसमं विसमं पणयकुविर्यापियपणइणी समुल्लावसरिसं मणोहरं ॥'

—कुवलयमाला

२. सक्कय-पायय-पुलिणांलंकिय देसी भासा उभय तडुज्जल। कवि दुक्कर-घण सद्द-सिलायल।

स्वयम्भू-पउम चरिउ।

३. देखो, कुवलय माला कहा पृ० ५५।

४. 'भाषाभेदनिमित्तः षोढा भेदोऽस्य संभवति।
प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः। —काव्यालंकार २, ११-१२।

५. "प्राकृतमेवापभ्रंशः, स चान्यैरूपनागराभीरग्राम्यावभेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्तं भूरिभेद इति। कुतो देशविशेषात्। तस्य च लक्षणं लोकादेव सम्यगवसेयम् ॥" —काव्यालङ्कारटीका २-१२

कवि राजशेखर ने (८८० से ९२० ई०) अपनी काव्यमीमांसा में अनेक स्थलों पर अपभ्रंश का निर्देश किया है। साथ ही अपने से पूर्ववर्ती कवियों की तरह स्वयं भी संस्कृत प्राकृतादि भाषाओं के समान अपभ्रंश को भी पृथक् साहित्यिक भाषा स्वीकार किया है तथा काव्य-पुरुष के शरीर का कथन करते हुए संस्कृत को मुख, प्राकृत को बाहु; अपभ्रंश को जघन—मध्यभाग, पैशाची को पैर, और मिश्र को उरस्थल बतलाया है[1] और तदनुसार राजा की काव्य-सभा में संस्कृतकवि उत्तर, प्राकृतकवि पूर्व, अपभ्रंशकवि पश्चिम, और पैशाची कवि दक्षिण में बैठें[2] ऐसी व्यवस्था का उल्लेख किया है। कवि ने दूसरे स्थल पर सौराष्ट्र और त्रवण देश को अपभ्रंश भाषा भाषी प्रकट किया[3] है। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के क्षेत्र का निर्देश करते हुए मरु (मारवाड) टक्क (ठक्क) पंजाब का एक भाग भादानक—पंजाब के झेलम जिले के भद्रावती देशों में अपभ्रंश के प्रयोग होने का संकेत भी किया[4] है।

महाकवि पुष्पदन्त (वि० सं० १०१६) ने अपने 'महापुराण' में संस्कृत और प्राकृत भाषा के साथ अपभ्रंश का भी समुल्लेख किया है। उस काल में संस्कृत प्राकृतादि के साथ अपभ्रंश का भी ज्ञान राजकुमारियों को कराया जाता था[5]।

अमरचन्द ने तो अपभ्रंश की गणना षड्भाषाओं में की है—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शौरसेनी च मागधी।
पैशाचिकी चापभ्रंशं षड् भाषाः परिकीर्तिताः॥ —काव्य कल्पलता वृत्ति पृ० ८

अपभ्रंश भाषा के उल्लिखित ये भिन्न भिन्न निर्देश उसके विकास में निम्न बातें फलित करते हैं और उसकी ऐतिहासिक कड़ी जोड़ने में सक्षम हैं—

प्रारम्भ में अपभ्रंश का अर्थ बिगड़ा हुआ रूप था। उस समय भारत में 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग होने लगा था और नाट्यकार के समय अपभ्रंश बीजरूप से विद्यमान थी और उसका प्रयोग आभीर एवं शबर आदि वनवासी जातियों में प्रयुक्त किया जाता था, पर उस समय तक उसका कोई साहित्यिक रूप पल्लवित नहीं हुआ था। किन्तु छठी शताब्दी में 'अपभ्रंश का प्रयोग वैयाकरणों और आलंकारिकों के ग्रन्थों में भी उल्लिखित होने लगा और वह साहित्यिक भाषा का सूचक भी माना जाने लगा इतना ही नहीं, किन्तु उसका स्वतन्त्र रूप भी विकसित होने लगा था और जो दण्डी तथा भामह जैसे आलंकारिक साहित्यकों की स्वीकृति भी पा चुका था, इस तरह वह ८ वीं शताब्दी में सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा मानी जाने लगी और उसका विस्तार सौराष्ट्र से लेकर मगध तक हो गया था[6]। हां देशभेद के कारण उसमें कुछ भिन्नता अवश्य आ गई थी, किन्तु काव्यादि रचना में आभीरादि की अपभ्रंश का ही प्रयोग होता था। ११ वीं से लेकर १३ वीं शताब्दी तक के कवियों—मम्मट, वाग्भट्ट, हेमचन्द्र,

---

१. "अहो श्लाघनीयोऽसि। शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादो उरो मिश्रम्।" काव्यमीमांसा अ० ३।

२. मध्येसमं राजासनम्। तस्य चोत्तरतः संस्कृतकवयो निविशेरन्।...पूर्वेण प्राकृताः कवयः।...पश्चिमेनाप भ्रंशिनः कवयः...दक्षिणतो भूतभाषाकवयः।" —काव्यमीमांसा अ० १०

३. सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च। काव्यमीमांसा, अ० १०

४. सौराष्ट्र त्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पित सौष्ठवम्। —काव्यमीमांसा अ० ७

५. सक्कउ पायउ पुण अवहंसउ, वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ। —महापुराण ५-१८-६

६. आभीरी भाषापभ्रंशस्था कथिता क्वचिन्मागध्यामपि दृश्यते। — काव्यालंकारटीका पृष्ठ १५

रामचन्द्र, गुणचन्द्र और अमरचन्द्र आदि ने अपभ्रंश को संस्कृत प्राकृतादि के समान ही साहित्यिक भाषा माना। ८वीं से ११ वीं शताब्दी में साहित्यकों ने महाकाव्यों और खण्डकाव्यों को गुंफित किया। उसे रस और अलंकारों से केवल पुष्ट ही नहीं किया; किन्तु पल्लवित, पुष्पित भी किया तथा उसके माधुर्य की सरस सरिता में जन साधारण को निमज्जन उन्मज्जन करने की सुविधा भी प्रदान की।

इस विवेचन पर से अपभ्रंश के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। साथ ही आगे होने वाले साहित्यिक परिचय से उसके विकास और ह्रास का भी पता चल जाता है। प्रत्येक भाषा अपने प्रारम्भिक काल के बाद विकास पाती है। अपभ्रंश ने भी इसी तरह विकास पाया, और बाद में वह पतन को प्राप्त हुई।

भारतीय साहित्यिक भाषायें

आत्म-अनात्म भावनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य है। साहित्य के सृष्टिकर्ता विद्वानों ने अपनी चिरसाधना और अन्तर्मानस की अनुभूति द्वारा सुख, दुःख, जीवन, मरण, आशा, निराशा, भय निर्भयता, हास्य, शोक और विलाप तथा प्राकृतिक रहस्यों से विस्मित करने वाले दृश्यों एवं सौन्दर्य की अनुपम छटा को वाणी द्वारा प्रकट किया है उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य की महत्ता उसमें चर्चित वस्तु तत्त्व से होती है। इसी से साहित्य सार्वकालिक और सार्वदेशिकता से ओत-प्रोत रहता है, वह किसी सम्प्रदाय, देश या व्यक्ति विशेष का समर्थक नहीं होता; किन्तु उसमें सार्वभौमता होती है। वह किसी एक अङ्ग का सम्पोषक नहीं होता। उसमें देश, काल, ऋतु, क्षेत्र, पर्वत और तद्देशीय युवति-जनों के वेष-भूषा के साथ धर्म के सिद्धान्तों का भी यथा स्थान संक्षिप्त या विशद रूप में निर्देश किया गया है।

साहित्य की सृष्टि अनेक भाषाओं में की गई है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती, मराठी आदि।

संस्कृत

संस्कार की गई भाषा का नाम संस्कृत है। वैदिक कालीन संस्कृत प्राचीन है और अवैदिक कालीन अर्वाचीन। पाणिनीय ने संस्कृत को व्याकरण से परिष्कृत कर उसके रूप को स्थिर किया। पश्चात् व्याकरण के विकास के साथ-साथ संस्कृत के प्रयोग और नियम भी सुस्थिर होते गये। व्याकरण के प्रयोग से शिक्षित समुदाय की भाषा शुद्ध और परिमार्जित होती गई। किन्तु व्याकरण विहीन जन साधारण की भाषा अपरिमार्जित और स्खलित ही रह गई। संस्कृतभाषा में प्रबन्ध काव्य चरित, पुराण, कथा, सिद्धान्त, व्याकरण, दर्शन, वैद्यक ज्योतिष कोष, छन्द, नाटक, चम्पू और अलंकार आदि विषयों पर विविध एवं विशाल ग्रन्थ लिखे गये। जैन जैनेतर ग्रन्थकारों ने संस्कृत के भण्डार को खूब ही समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। उसमें विपुल साहित्य की सृष्टि ही उसकी महत्ता की संद्योतक है। संस्कृत का साहित्य प्रौढ़ और उच्चकोटि का है। परन्तु संस्कृत भाषा साम्प्रदायिक व्यामोह के कारण जन साधारण की भाषा नहीं कहला सकी। वह शिक्षित और शिष्ट लोगों की ही भाषा बनी रही। परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश जन साधारण की भाषा बनी, और साहित्यिक महत्ता को भी प्राप्त हुई। संस्कृत की अपेक्षा ये दोनों भाषाएं सरल और सुकोमल हैं। जन साधारण उनके अर्थ को शीघ्र ही अवगत कर लेता है। यहां प्राकृतादि भाषाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए अपभ्रंश के विकास-सम्बन्ध में विचार किया जायगा।

प्राकृत भाषा

जो प्रकृति से सिद्ध हो अर्थात् स्वभाव से निष्पन्न हो, उसे प्राकृत कहते हैं। जो लोग प्राकृत भाषा को संस्कृत से निष्पन्न बतलाते हैं[1]। उनका वह कथन संगत नहीं जान पड़ता; क्योंकि प्राकृत जन साधारण की भाषा थी, अथवा जिस कथ्य भाषा को जनसाधारण अपने व्यवहार में लाते हों, वही प्रकृति निष्पन्न भाषा है। प्राकृत भाषा की महत्ता जनसाधारण से छिपी हुई नहीं है। उसका सरल और मधुर साहित्य आज भी लोगों के हृदयों में अपने गौरव को अंकित किये हुए हैं। भगवान महावीर ने अपना उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया था वह आधी मगध देश की भाषा थी और आधी भाषा शूरसेन देश की। पर उसमें अन्य भाषाओं के हृदयस्थ करने की क्षमता थी। बुद्ध ने भी तात्कालिक देश भाषा को अपनाया था, बाद में वही भाषा पालि के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्राकृत की महत्ता उसके हृदयंगम करने से सहज ही ज्ञात हो जाती है। प्राकृत बड़ी सरल और सहज बोधगम्य भाषा है जबकि संस्कृत दुरूह और कठिन है। इसी कारण वह जनसाधारण की भाषा नहीं बन सकी है। यद्यपि प्राकृत को गिराने का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया; परन्तु फिर भी उनका अस्तित्व बना ही रहा। काव्यालंकार के टीकाकार नमि साधु ने लिखा हैं कि "सकल जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः, तत्र भवं, सैव वा प्राकृतं। 'आरिसं वयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागही वाणी' इत्यादि वचनात् वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राक्कृतं—बाल-महिलादिसुबोधं सकल-भाषा-निबन्धनभूतं वचनमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैक स्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितं सत् संस्कृताद्युत्तर विभेदानाप्नोति। अतएव शास्त्रकृता प्राकृतमादौ निर्दिष्टं तदनु संस्कृतादीनि।" (काव्यालंकारटीका २,१२)

इसमें बतलाया गया है कि—लोगों के व्याकरण आदि के संस्कार से रहित स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते हैं उसे ही प्राकृत कहा है। आर्ष वचन में (द्वादशांग में) ग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी थी, इससे प्रकट हैं कि जो बालक तथा महिलाओं आदि के लिए सहजबोधगम्य है, वही भाषा सकल भाषाओं की मूल कही गई है और वह मेघ वर्षा के जल की तरह पहले एक रूप होने पर भी देश भेद से और संस्कार करने से वह अनेक भेदों में परिणत हो जाती है। अतएव शास्त्रकारों ने पहले प्राकृत को कहा है। बाद में (व्याकरणादि द्वारा संस्कारित हुई भाषा) संस्कृत आदि को कहा है।

इस प्राकृत भाषा का भी क्रमशः परिष्कार हुआ और उसने अपने को साहित्यिक वेश-भूषा से अलंकृत किया। शिलालेखों की भाषा और व्याकरण सम्बन्धी प्राकृत साहित्य का अध्ययन करने से इस बात का सहज ही आभास हो जाता है। बौद्धों के हीयमान सम्प्रदाय के मान्य त्रिपिटकों की पालि और जैनागमों की अर्धमागधी प्राकृत बोलियों के ही साहित्यिक रूप हैं। प्राकृत भाषा के साहित्य को संस्कृत की तरह समृद्ध एवं संगठित बनाने के लिए वैयाकरणों ने व्याकरण के अनेक नियम भी बनाये। परन्तु प्राकृत की बोलियां अपने भिन्न-भिन्न अनेक रूपों में प्रचलित रहीं और उसमें संस्कृत के समान एक रूपता न आ सकी। क्योंकि एक भाषा के लक्षण दूसरी भाषा के लक्षणों से जुदा थे। इसी कारण त्रिविक्रम और आचार्य हेमचन्द्र आदि व्याकरणकर्ताओं ने नियमों में 'प्रायः' 'क्वचित्' में 'बहुल' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जिनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि ये नियम किसी भाषा के लिए शाश्वत रूप में लागू नहीं हो सकते। यद्यपि व्याकरणों से भाषा में थोड़ा बहुत सुधार भी हुआ है। फिर भी देशभेद और विभिन्न बोलियों के कारण प्राकृत

१. प्रकृतेः संस्कृतादागतम् प्राकृतम्—वाग्भट्टालंकारटीका २,२ अथवा प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत् आगतं वा प्राकृतम्। —हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण

भाषा अनेक रूपों में विभक्त हो गई। प्राकृत के अर्धमागधी, मागधी, शौरसैनी महाराष्ट्री और पैशाची भेद आज भी मिलते हैं। श्वेताम्बर जैनागमों की भाषा 'अर्धमागधी प्राकृत' और दिगम्बर जैनों के प्राचीन आगम साहित्य की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' कही जाती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र (१७-४८) में मागधी अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या नाम की सात प्रकार की प्राकृत भाषाएँ बतलाई हैं। प्राकृत भाषा में विशाल साहित्य रचा गया है। वर्तमान में उपलब्ध साहित्य से उसकी समृद्धि का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है। यहां प्राकृत भाषा के उक्त भेदों पर कुछ विचार किया जाता है।

जैन प्राकृत और साहित्यिक प्राकृतों का उल्लेख मध्य काल के वैयाकरणों और आलंकारिकों के ग्रन्थों में मिलता ही है। उनमें शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी पैशाची, और अपभ्रंश के नाम पाये जाते हैं।

शौरसेनी भाषा

शूरसेन देश में स्थित मथुरा नगर के आस-पास की भाषा शौरसेनी कहलाती है। इसका प्रयोग संस्कृत के नाटकों में स्त्री-पात्रों और मध्यकोटि के पुरुषपात्रों में पाया जाता है। दो स्वरों के मध्य में संस्कृत के त, थ, का क्रमशः द और ध हो जाना इसकी विशेषता है। इस भाषा में र का ल क्वचित् ही होता है। तीनों सकारों के स्थान में 'स' ही होता है। कर्त्ता कारक पुल्लिग के एक वचन में 'ओ' होता है। 'थ' के स्थान में क्वचित् 'ध' भी होता है और पूर्वकालिक कृदन्त के रूप में संस्कृत प्रत्यय 'त्वा' के स्थान पर 'त्ता'—इय, या 'दूण' होता है। जैसे सुत-सुदो, कथम्-कधं, कृत्वा-करित्ता, करिअ, करिदूण होता है। इस भाषा के ग्रन्थ दिगम्बर जैन साहित्य में पाये जाते हैं। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द का प्रवचनसार, पंचास्तिकाय इसी भाषा के ग्रन्थ हैं, परन्तु पंचास्तिकाय में अर्धमागधी का प्रभाव भी परिलक्षित है। शिवकोटि की भगवती आराधना इस भाषा का मौलिक ग्रन्थ है, वट्टकेरका मूलाचार भी इसी भाषा की देन है। इस में जैन साहित्य की वहुलता होने से इसे जैन शौरसेनी भी कहा जाता है।

महाराष्ट्री

यह काव्य की पद्यात्मक भाषा है। काव्य-ग्रन्थों में इसी का प्रयोग किया जाता था। गाथा सप्त-सती, सेतुवन्ध, गउडवहो और रावणवध जैसे उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थ इसी में रचे गए हैं। पहले महाराष्ट्री महाराष्ट्र देश की भाषा मानी जाती थी, किन्तु अब वह शौरसेनी के विकास का उत्तर रूप है। ऐसा डाक्टर मोहन घोष का कहना है। दो स्वरों के मध्य के अल्पप्राण स्पर्श-वर्ण का लोप और महाप्राण का 'ह' रूप में परिणत हो जाना इसकी विशेषता है। महाराष्ट्री के विशेष लक्षण जो इसे शौरसेनी से विभक्त करते हैं इस प्रकार हैं—यहाँ मध्यवर्ती 'त' का लोप होकर केवल स्वर रह जाता है, किन्तु 'द' में परि-वर्तित नहीं होता। उसी तरह यहाँ 'थ' ध में परिवर्तित न होकर 'ह' में परिवर्तित हो जाता है और क्रिया का रूप पूर्वकालिक 'ऊण' लगाकर बनाया जाता है, इनके सिवाय जैन महाराष्ट्री में कहीं-कहीं 'र' का 'ल' तथा प्रथमान्त 'ए' हो जाता है। जैसे जानाति-जाणइ, कथं-कहं, और भूत्वा होऊण आदि।

इस भाषा में भी जैन साहित्य ही विशेष उपलब्ध होता है। विमलसूरिका 'पउम चरिउ' इसी भाषा का पद्य-बद्ध काव्य है। पर इसमें 'य' श्रुतिका अत्यधिक प्रयोग पाया जाता है। श्वेताम्बर जैन

(१) 'मागहद्ध विसयभासाणिवद्धं अद्धमागहं अट्ठारस देसी भासा भासणिययं वा अद्धमागहं॥'—निशीथचूर्णि

(२) मागधभाषा लक्षणं किंचित् किंचिन्च प्राकृत भाषा लक्षणं यस्यामस्ति सा अर्धमागध्याः।

साहित्य की इसमें अधिकता है। आगम ग्रन्थों पर लिखी हुई चूर्णिकाएँ, कथा और चरित साहित्य, जैसे समराइच्चकहा, सुरसुन्दरीचरिअं, पासणाहचरिअं और आगमिक ग्रन्थ हैं। हाल की सतसई और जयवल्लभ का वज्जालग्ग महाराष्ट्री प्राकृत के श्रेष्ठ मुक्तक काव्य हैं। संघदास गणी की वसुदेवहिण्डी गद्य काव्य है। इनका समय विक्रम की छठवीं शताब्दी माना जाता है। इनके अध्ययन से यह अवश्य जाना जाता है कि इनसे पूर्व भी कोई साहित्य अवश्य रहा है।

मागधी

यह मगध देश की भाषा कही जाती है। नाटकों में निम्न वर्ग के पात्रों द्वारा इसका प्रयोग करना पाया जाता है। अन्य प्राकृत भाषाओं में 'य' के स्थान में जहां 'ज' का प्रयोग होता है वहां इसमें 'य' ही रहता है। हां 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग अवश्य पाया जाता है जैसे राजा-लाआ। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के अनुसार इस भाषा में वर्ग के तीसरे, चौथे अक्षरों के स्थान में वर्ग के पहले और दूसरे अक्षर हो जाते हैं। जैसे गिरि-किरि धूली-थूली आदि। इसी तरह अन्य वर्णों में भी विशेषता है। इस भाषा का प्राकृत साहित्य उपलब्ध नहीं है किन्तु व्याकरण ग्रन्थों और नाटकों में इसका प्रयोग अवश्य हुआ मिलता है।

अर्धमागधी

शौरसेनी और मागधी भाषाओं प्रदेशों के मध्य के कुछ भाग में दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप अवश्य पाया जाता है, इसी को अर्धमागधी कहते हैं। ७वीं शताब्दी के आचार्य जिनदास गणी, (६३५) महत्तर ने अपनी निशीथ चूर्णी में आधे मगध देश की भाषा को अर्धमागधी बतलाया है। जो अष्टादश देशी भाषाओं से युक्त थी।[१] टीकाकार अभयदेव ने इसमें कुछ लक्षण मागधी और प्राकृत के बतलाये हैं।[२] जैनियों के आगम साहित्य में और अन्य धार्मिक साहित्य में इसका प्रयोग खुलकर पाया जाता है। मागधी के समान इसमें भी अकारान्त संज्ञा के मुख्य रूप से इसका प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं र के स्थान पर ल का भी प्रयोग पाया जाता है; और कर्ता कारक एक वचन में ओ का ए हो जाता है किन्तु इसमें 'श' का प्रयोग न होकर 'स' का ही प्रयोग पाया जाता है। भगवान महावीर ने अपना धर्मोपदेश इसी भाषा में दिया था।[२] परन्तु महावीर के निर्वाण से ९८० वर्ष के बाद वलभी में संकलित कर लिपिबद्ध होने वाले श्वेताम्बरीय सूत्र-ग्रन्थों की भाषा में अवश्य परिवर्तन पाया जाता है। इस परिवर्तन के साथ-साथ ईस्वी सन् ३१० से पूर्व मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य काल में मगध देश में पड़ने वाले द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष का प्रभाव भी उस पर पड़े बिना नहीं रह सका। दूसरे साधु संघ का विविध देशों में भ्रमण तथा उन-उन देशी भाषाओं के आदान प्रदान से भी उसमें परिवर्तन होना संभव है, आगम साहित्य का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय तो उसमें यह परिवर्तन अवश्य ज्ञात हो जायगा। इसी को लक्ष्य में रखकर आचार्य हरिभद्र ने जैनागमों की भाषा को अर्धमागधी न कहकर प्राकृत नाम से उल्लिखित किया है[३]। डा० जैकोबी ने जैन वर्तमान सूत्रों की भाषा को अर्धमागधी न बतलाकर जैन महाराष्ट्री बतलाया है[४]। इसी को आर्ष और ऋषिभाषिता भी

---

(२) 'भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ'। —समवायांग सूत्र पत्र ६०

(३) दश वैकालिक वृत्ति पृ० २०३।

(४) Kalpa Sutra : Sacred Book of the East Vol. XII.

कहा जाता रहा है।[५] अतः अर्धमागधी आर्ष और ऋषिभाषिता ये तीनों एक ही भाषा के पर्यायवाची नाम हैं।

पैशाची

यह एक बहुत प्राचीन प्राकृत बोली है। इस भाषा का साहित्य नहीं के बराबर है, गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इस भाषा में रची गई थी, परन्तु दुर्भाग्य से यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। पर उसके आधार से रचित ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध है। दो स्वरों के मध्य में वर्गों का तीसरा चौथा वर्ण पहला और दूसरा वर्ण हो जाता है। जैसे वारिद—वारितो आदि। चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ट्री शिलालेखों में पैशाची की विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। वररुचि के प्राकृतप्रकाश में (पृ० १०) पैशाची को शौरसेनी की आधार-भूत भाषा स्वीकृत की है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व में कांची देश, पाण्ड्य, पांचाल, गौड, मगध, व्राचड, दाक्षिणात्य शौरसेन, कैकय, शाबर और द्राविड़ देशों को पिशाच देश बतलाया है।

अपभ्रंश भाषा और उसका विकास

वैदिक कालीन विभाषाओं—बोलियों—का धीरे-धीरे विकास होता गया, और वे आर्यों की भाषा के उत्तर-पश्चिम प्रदेश से धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैलती गई। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध के जन्म समय तक यह भाषा विदेह (उत्तर बिहार) और मगध (दक्षिणी बिहार) तक फैल गई थी। इस आर्य भाषा का रूप उत्तर भारत, वज़ीरिस्तान, मध्यप्रदेश और पूर्वी भारत में उस समय पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। इसी से उन प्रदेशों की भाषा को उदीच्या, प्राच्या और मध्यदेशीया के नाम से उल्लेखित किया गया है।

उदीच्या—पेशावर और उत्तरीय पंजाब की भाषा कहलाती थी, इसमें अधिक परिवर्तन तो नहीं हुआ; किन्तु प्राच्या का प्रयोग करने वाले वैदिक मर्यादाओं का पालन नहीं करते थे, और वे वेदों को नहीं मानते थे, और न ब्राह्मणों के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों का आचरण ही करते थे; क्योंकि वे व्रात्य थे, अर्हन्तों के उपासक थे[१] और चैत्यों के पूजक थे। किन्तु मध्यदेशीया भाषा उदीच्या और प्राच्या के मध्य मार्ग का अनुसरण करती थी। उदीच्या और प्राच्या में व्यंजन समीकरण के अतिरिक्त 'र' और 'ल' के प्रयोग में भी भिन्नता थी। उदीच्या में जहाँ 'र' के प्रयोग की प्रचुरता थी वहाँ प्राच्या में 'र' के स्थान पर

(५) सक्कता पागता चेव दुहा भणितीओ आहिआ।
सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्था इसिभासिता॥ —स्थानांग ७ पत्र ३९४।
सक्कया पायया चेव भणिईओ होंति दोण्णि वा।
सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्था इसिभासिआ॥ —अनुयोगद्वार पत्र १३१

१. देखो, इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृ. ५६

अथर्ववेद के १५ वें काण्ड में एक व्रात्य सूक्त है, व्रात्य व्रती का पर्यायवाची है। अथर्ववेद के काण्ड ४ सू० ११ मंत्र ११ में व्रत का पर्यायवाची 'व्रत्य' शब्द आया है। जिसका अर्थ व्रत धारण करने वाला होता है। उक्त वेद के ४ थे काण्ड में व्रात्य को मागध विज्ञान भी बतलाया है। जिससे स्पष्ट है कि व्रात्य लोग मगध देश के रहने वाले थे। अतएव इनकी संस्कृति 'मगध' कहलाती थी। सामवेदी ताण्ड ब्राह्मण में एक 'व्रात्य स्तोम' है, जिसमें व्रात्यों का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि 'व्रात्य लोग वैदिक यज्ञादि से घृणा करते थे, तथा अहिंसा को अपना मुख्य धर्म मानते थे।' (ताण्ड ब्राह्मण १७·१-५)

"अर्हन्तों के अनुयायी व्रात्य कहलाते थे, जिन का उल्लेख अथर्ववेद में है। लिच्छविलोग प्राचीन भारत की एक प्रसिद्ध व्रात्य जाति के थे।"

(भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ३५६)

'ल' की ओर मध्य देशीया में 'र' 'ल' दोनों का प्रयोग होता था। बाद में इस में भी परिवर्तन और विशेषताएं होती गई।

पूर्वकाल में यद्यपि यात्रा करने के साधन सुलभ नहीं थे। किन्तु व्यापारीजन पूर्व-पश्चिमी-देशों में अपने व्यापार के निमित्त जिस-तिस प्रकार आया जाया करते थे। उससे उन देशों से भाषा सम्बन्धी व्यवहार का आदान-प्रदान बराबर होता रहता था। इसी से अनेक शब्दों का प्रयोग दूसरे देशों की भाषाओं में भी व्यवहृत होने लगा था।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने सन् १५०० ई० पूर्व से लेकर सन् ६०० ईस्वी पूर्व तक प्रथम प्राकृतों अथवा विभाषाओं के अनेक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप बुद्ध और महावीर के समय भारत में भाषा के निम्न रूपों का संकेत किया है।

उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या रूपमें तीन विभाषाएँ विकास पा गई थीं।

वैदिक सूक्तों की प्राचीन भाषा छान्दस थी जिसका व्यवहार ब्राह्मण वर्ग में चल रहा था।

तीसरी वह जो छान्दस भाषा के नूतन संस्करण और उदीच्या के प्राचीन रूप से विकसित हुई थी, जिसमें प्राच्या और मध्यदेशीया के तत्वों का समिश्रण था। इसी भाषा में संभवतः वैदिक ग्रन्थों के भाष्यादिक भी उस समय लिखे गए थे।

भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध ने अपनी-अपनी देशना और उपदेश का माध्यम उस समय की बोलचाल की जन साधारण की भाषा को बनाया। इस कारण तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओं के विकास में क्रान्ति आ गई और परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं के साहित्यिक विकास का सूत्र-पात प्रारम्भ हो गया।

उस काल में संस्कृत का विकास शिक्षितोंमें अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था, परन्तु उसमें साम्प्रदायिक संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण उसका पूर्णविकास जैसा चाहिए था वैसा न हो सका। यद्यपि वह भारत से बाहर भी गई और वह वहां भी फैली, पर उसे सार्वभौमता का पद प्राप्त नहीं हो सका।

ईसा की छठी शताब्दी से ईसा की १० वीं शताब्दी तक की प्रचलित विभाषाओं को ग्रियर्सन ने दूसरी श्रेणी की प्राकृत (Secondary Prakrits) बतलाया है[२]।

किन्तु डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उस काल की भाषा को मध्यकालीन आर्य भाषा (Middle Indo Aryan Speech) कहा है और उसे तीन भागों में विभक्त किया है। इस काल को मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल कहा जा सकता है।

(१) मध्य कालीन आर्यभाषा की प्रारम्भिक अवस्था (४०० ई० पूर्व से लेकर १०० ईस्वी तक) प्रारम्भिक प्राकृत भाषाओं का काल माना जाता है।

(२) भारतीय आर्य भाषा की मध्यकालीन अवस्था (१०० ई० से ५०० ई० तक) साहित्यिक प्राकृतों का काल माना जाता है। किन्तु वर्तमान में प्राकृत भाषा का साहित्य ५०० ईस्वी के बाद का रचा हुआ भी उपलब्ध होता हैं। कौतूहल की 'लीलावती' निस्सन्देह उत्तर काल की रचना है और 'गोउडवहो' का रचना काल भी ७ वीं ८ वीं शताब्दी माना जाता है। इसके अतिरिक्त हरिभद्र, कुमारस्वामी, देवसेन, पद्मनन्दि, नेमिचन्द्र, पद्मसिंह (१०८६) और हेमचन्द्र आदि अनेक जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में (६६०) अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं। जिससे उक्त सीमा का निर्धारण विचारणीय है।

---

२. देखो, लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया पृ० १२१ (१६२७ ई० पू०)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की उत्तर कालीन अवस्था का समय ५०० ई० से १००० ई० तक भाषा विज्ञानी प्रकट करते हैं और उसे अपभ्रंश का नाम दिया गया है। किन्तु यह भी चिन्तनीय है; क्योंकि वर्तमान में अपभ्रंश भाषा का साहित्य ८ वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक का रचा हुआ उपलब्ध होता है। अतएव अपभ्रंश का रचना काल ५०० ई० से १३०० ई० तक मानना ही चाहिये। कारण कि उत्तरवर्ती साहित्य में हिन्दी का विकसित रूप भी देखने में आता है और १३ वीं शताब्दी तक की रचनाओं में उतनी प्रौढ़ता तो नहीं है। किन्तु रचना शैथिल्य भी नहीं पाया जाता आठवीं शताब्दी से १३ वीं, १४ वीं तक अपभ्रंश के साहित्य की प्रचुरता रही है।

प्रान्तीय भाषाओं का विकास

द्वितीयश्रेणी की प्राकृत भाषाओं से भिन्न-भिन्न प्रादेशिक अपभ्रंश भाषाओं की उत्पत्ति मानी जाती है और वर्तमान प्रान्तीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। शौरसेनी अपभ्रंश से व्रज भाषा, खड़ी बोली राजस्थानी, पंजाबी और गुजराती भाषाओं का सम्बन्ध है। किन्तु इनमें से शौरसेनी के 'नागर अपभ्रंश' से राजस्थानी और गुजराती का सम्बन्ध विशेषरूपसे स्वीकृत किया जाता है। 'मागध 'अपभ्रंश' से भोजपुरी, उड़िया, बंगाली, आसामी, मैथिली और मगही का विकास हुआ माना जाता है। सिन्धी भाषा का विकास व्राचड़ अपभ्रंश से हुआ कहा जाता है महाराष्ट्री से मराठी के विकास का सम्बन्ध अब विद्वान नहीं मानते। इन प्रान्तीय भाषाओं के विकास के पूर्वकाल में ये सब भाषाएं अपनी अपनी भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों से प्रभावित हुई दिखलाई देती हैं और उत्तरकालीन अपभ्रंश का साहित्य भी प्रान्तीय भाषाओं से प्रभावित हुआ जान पड़ता है। उसमें प्रचुरता से तत्सम देशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। आज जिसे हम पुरानी हिन्दी कह कर पुकारते हैं वही वर्तमान हिन्दी का पूर्व रूप है। इससे यह स्पष्ट है कि वे पुरातन रचनाएं हिन्दी की जनक हैं। अथवा हिन्दी के विकास में उन का योग दान महत्वपूर्ण है।

देशी भाषा की महत्ता

अपभ्रंश देशी भाषा कहलाती थी। संस्कृत भाषा को शुद्ध मानने वाले वैयाकरण भी देशी भाषा को भ्रष्ट-अपभ्रष्ट या बिगड़ी हुई भाषा कहते थे। स्वयंभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, लक्ष्मण, लाखू, वाग्भट्ट, पादलिप्त आदि कवियों ने भी अपभ्रंश को देशी भाषा बतलाया है।[1] और विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता में देशी वचनों को मिष्ट प्रकट किया है—

१ (क) देशी भासा उभय तडुज्जल, कवि दुक्कर घण सद्द सिलायल —स्वयंभू पउम चरिउ।

(ख) देस देसि भाषा लिवि ठाणइं, कइ वायालंकार विहाणइं। —पुष्पदन्त महापुराण ५, ६-१०

(ग) वायरण देसि सद्दत्थ गाढ, छंदालंकार विलास पोढ।
स-समय-पर समय वियार सहिय, अवसद्द वाय दूरेण रहिय ॥
—पद्मकीर्ति पासणाह चरिउ

(घ) ण समाणमि छंदु ण बंधभेउ, ण उ हीणाहिउ मत्ता समेउ।
ण उ सक्कअ पाउअ देसभास, णउ सद्दु वण्णु जाणमि समास ॥
लक्ष्मण णेमिणाहचरिउ पीठिका

सक्कय वाणी बहुअ [न] भावइ, पाउअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तं ते सन जंपिउ अवहट्ठा॥

अर्थात संस्कृत वाणी बहुतों को अच्छी नहीं लगती, प्राकृत रस का मर्म नहीं प्राप्त करती। देशी वचन सबसे मीठे होते हैं। इसीलिए मैं अपभ्रंश में कथा कहता हूं।

पादलिप्त ने अपनी तरंगवती कथा देशी भाषा में बनाई थी[२]। ग्रन्थ कारों ने अपभ्रंश भाषा में जो ग्रंथ बनाये, उन्होंने उन ग्रंथों की भाषा देशी बतलाई है। वही देशी भाषा अपभ्रंश है। वैयाकरण जिस भाषा को अपभ्रंश प्रकट करते है उसमें ग्रंथ रचना करने वाले ग्रंथकार उसे देशी भाषा कहते हैं।

वास्तव में अपभ्रंश या देशी भाषा में स्वभावतः माधुर्य तो है ही, पद लालित्य की भी कमी नहीं, पद सरल सरस तथा सुबोध हैं इसी से उस काल में देशी भाषा जनसाधारण के गौरव को प्राप्त कर सकी। पर संस्कृत में वैसी क्षमता नहीं, क्योंकि वह साम्प्रदायिकता से ऊंचे नहीं उठ सकी। यद्यपि जैन और बौद्धों का विशाल साहित्य भी संस्कृत में रचा गया; परन्तु उसकी विशेष महत्ता ब्राह्मण साहित्य में ही रही, वह साम्प्रदायिक संकीर्ण दृष्टिकोण से निकलकर जन साधारण का गौरव प्राप्त नहीं कर सकी।

पर अपभ्रंश दृष्टिकोण के चक्रव्यूह से अलग रहती हुई अपनी निंदा और बुराई को सुनती हुई भी जनसाधारण के कण्ठ को विभूषित करती रही, राज्य सभाओं में भी आदर पा सकी और विद्वानों के कण्ठ का भूषण बनी रही। इसी से उसका लोकव्यापी महत्व रहा है। जब वह अपने मध्यान्ह काल में बहुमूल्य प्रबन्धकाव्यों में गुम्फित हो रही थी, तब उसकी तेजस्विता, वाक्य विन्यास और पद गाम्भीर्य अर्थ के प्रतिपादक थे, उनमें महानता और सरसता आदि सद्गुण स्वभावतः अङ्कित हो रहे थे। धर्म भाषा और साहित्य के विकास में राज्याश्रय का मिलना अपना खास महत्व रखता है। इनके विकास और समृद्ध होने में राज्याश्रय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बिना राज्याश्रय के उक्त भाषा अथवा धर्म पनप नहीं सके। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन धर्मों और भाषाओं को उचित राज्याश्रय मिला वे लोक में समुन्नत और विकास पाते गये। लोक में वे आगे बढ़ने में समर्थ हो सके। अपभ्रंश भाषा के विकास में भी राज्याश्रय की आवश्यकता हुई।

राज्याश्रय

अपभ्रंश भाषा का उपलब्ध साहित्य विभिन्न देशों और विभिन्न समयों में रचा गया है। अपभ्रंश के विकास में अनेक राजवंशों और देशों के राजाओं का सहयोग मिला है। इसी से वह अपना विकास कर सकी। गान्यनेट (बरार), गुजरात, मालवा, मारवाड़, राजस्थान, बंगाल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश में अपभ्रंश साहित्य रचा गया।

(इ) देस भास लक्खण ण तक्कओ, मुणमि णेव आयमहि गुरुक्कमो।
पय समित्ति किरिया विसेसया, संधि छंदु वायरण भासया॥
—लाखू जिनदत्तचरित संधि १

पालित्तएण रइया वित्थरओ तहव देसिवयणेहिं।
णामेण तरंगवई कहा विचित्ता य विउला य॥ —पादलिप्त, तरंगवती

२. देखो डा० जैकोबी कृत सणकुमारचरिउ की भूमिका, पृ० नं० १८।

यद्यपि स्वयंभू से पूर्ववर्ती अनेक कवि हो गये हैं किन्तु उनका साहित्य अभी उपलब्ध ही नहीं है। कविवर चउमुह (चतुर्मुख) का भी साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतएव वर्तमान में स्वयंभू को ही आद्य कवि माना जाने लगा है।

मान्यखेट के सभी राष्ट्रकूट राजागण जैन नहीं थे, किन्तु वैष्णव धर्मानुयायी भी थे, हां, अमोघवर्ष अवश्य जैन हो गया था। उनके राज्य में जैनधर्म को कोई आंच नहीं आई थी; क्योंकि उन राजाओं के राजमन्त्री प्रायः जैनधर्मावलम्बी थे। अमोघवर्ष जिनसेनाचार्य का शिष्य था, जैनधर्म पर उसकी बड़ी आस्था थी, इतना ही नहीं, वह विवेकपूर्वक अपने राज्य का परित्याग कर तपस्वी बन गया था। उनके राज्यों में जैन मुनियों और विद्वानों को आश्रय मिला हुआ था, इसी से वे ग्रंथ रचनादि कार्य में प्रवृत्त हो सके।

राष्ट्रकूट राजा ध्रुव (वि० सं० ८३७-८५१) के अमात्य रयडा धनंजयने महाकवि स्वयंभू को आश्रय दिया था, और उनके पुत्र धवलासिय ने त्रिभुवनस्वयंभू को। पउमचरिउ और रिट्ठणेमिचरिउकी रचना उन्हीं के अनुरोध से हुई थी। इसी तरह कृष्ण तृतीय (वि० सं० ९९६-१०२५) के मंत्री भरत और उनके पुत्र नन्न ने महाकवि पुष्पदन्त को आश्रय दिया था। मंत्री भरत की प्रेरणा से ही महापुराण की रचना हुई थी। उस समय वरार जैन वैश्यों का केन्द्र था, और वरार गुजरात मालवा आदि प्रदेशों का वाणिज्य भी प्रायः उन्हीं के हाथ में था। यद्यपि जैन लोग भारत के प्रायः सभा देशो में व्यापार के निमित्त आया जाया करते थे। (व्यापार और तीर्थयात्रा का जैनियों में खूब प्रचार रहा) है। उन्होंने संस्कृत की अपेक्षा देशी भाषा को अधिक प्रश्रय दिया था और उन्हीं के सहयोग से अपभ्रंश राष्ट्रीय भाषा के रूप में पल्लवित हो सकी थी।

दशवीं शताब्दी के बाद जब राष्ट्रकूटों का पतन हो गया, तब गुजरात केन्द्र बन गया। ११ वीं शताब्दी में गुजरात के सोलंकी राजाओं ने भी अपभ्रंश साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता की और ग्यारहवीं शताब्दी में गुजरात के सोलंकी राजाओं ने भी अपभ्रंश साहित्य के विकास में पर्याप्त सहायता प्रदान की। वहाँ जैनधर्म का विकास भी हुआ और राजा कुमारपाल ने तो स्वयं आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जैनधर्म स्वीकृत किया था। उनके राज्य में ही हेमचन्द्र ने 'अपभ्रंश व्याकरण, और देशीनाममाला की रचना की। सोलंकी राजा कर्णदेव के समय में सं० ११२३ में कवि श्रीचन्द ने रयणकरण्डसावयायार' और कथाकोश की रचना की थी।

चालुक्य वंशी राजा वद्दिगदेव के पुत्र कृष्ण नरेन्द्र के राज्यकाल में गोध्रा में अमरकीर्ति ने नेमिणाह चरिउ (१२४४) और षट कमेपिदेश की रचना सं० (१२४७) में की थी। मालवा में राजा भोज (जयसिंह) के राज्य में नयनन्दी ने सं० ११०० में सुदंसण चरिउ और सयलविहिविहाणकव्व की रचना की। साथ ही परमारवंशी राजा देवपाल के समय में कवि दामोदर ने 'णेमिणाहचरिउ' की रचना सं० १२८७ में की।

बंगाल में पालवंश के राज्यकाल में अपभ्रंश को उचित सम्मान मिला। बंगाल दीर्घकाल तक बौद्धों का केन्द्र रहा। पालवंश के राजा स्वयं बौद्धधर्मानुयायी थे। अतएव बौद्धतांत्रिकों के अपभ्रंश साहित्य के निर्माण में उनका पूरा सहयोग रहा। पालों के बाद बंगाल में सेनवंश का राज्य रहा, उनसे अपभ्रंश को कोई सहयोग नहीं मिला; क्योंकि वे ब्राह्मण धर्मानुयायी थे।

दिल्ली के तोमरवंशीय राजा अनंगपाल तृतीय के राज्यकाल में भी अपभ्रंश ग्रंथों की रचना हुई। अनंगपाल के मंत्री नट्टलसाहुकी प्रेरणा से सं० ११८९ में कवि श्रीधरने 'पासणाहचरिउ' की रचना

की थी। मुसलमानी शासनकाल में—मुगल बादशाह बाबर के समय दिल्ली में कवि महिंदु या महाचन्द ने सं० १५८७ में 'संतिणाहचरिउ' की और मुबारिक शाह के राज्यकाल में उनके मंत्री साह हेमराज के अनुरोध से भ० यशःकीर्ति ने सं० १४९७ में पांडवपुराण की तथा सं० १५०० में हरिवंश पुराण की रचना की। ग्वालियर के तोमर वंशी राजाओं के राज्य काल में भी जैनधर्म और जैन साहित्य के निर्माण में अच्छा प्रोत्साहन मिला। राजा डूंगरसिंह और कीर्तिसिंह (पिता-पुत्र) दोनों ही जैनधर्म पर पूर्ण आस्था रखते थे। ग्वालियर के किले में जैनमूर्तियों के निर्माण में इन्होंने पर्याप्त धन खर्च किया था। इनके शासन काल (वि० सं० १४८१ से १५३६ तक) में कवि रइधू ने लगभग २५ अपभ्रंश'ग्रंथों की रचना की थी।उस काल में वहाँ जैनधर्म का खूब प्रसार रहा।

चन्द्रवाड आदि के चौहानवंशी नरेशों के राज्य काल में, यद्यपि ये नरेश जैनधर्म के अनुयायी नहीं थे, किन्तु; उनका जैनधर्म के प्रति कोई अनादर भाव न था, प्रत्युत जैनधर्म के प्रति उनका सदा सद्भाव बना रहा, कारण कि उनके मन्त्रीगण और राजश्रेष्ठी जैनधर्म के अनुयायी थे। उनका जैन साहित्य की रचना और मन्दिरों के निर्माण मे पूरा सहयोग रहा है। इसी समय कवि लक्ष्मण ने 'अणुवयरयणपईव' और धनपाल ने 'बाहुबलीचरिउ' की रचना की।

इटावा के समीप करहल के चौहानवंशी राजा भोजराज के समय उनके मन्त्री गोलालारीय साहू अमरसिंह की प्रेरणा से कवि असवाल ने सं० १४७९ में 'पार्श्वनाथ चरित' की रचना की थी। इस तरह राज्याश्रय को पाकर अपभ्रंश साहित्य का विकास हुआ। आगे चलकर इस भाषा की धारा देशभाषा का आश्रय लेकर हिन्दी के रूप में विकास पाती रही, और नाथ-सिद्धों की वाणियों में, कबीर आदि सन्तों के पद-साखी आदि में और जैन कवियों की रचनाओं में उज्जीवित होती रही। इस तरह इस अपभ्रंश भाषा का विकास बराबर होता रहा, पश्चात् वही हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित होगई। हिन्दी भाषा के कवियों ने अपभ्रंश की सरणी का अनुसरण करते हुए अपनी कृतियों को उपयोगी बनाने का प्रयत्न भी किया है। इसीलिए आज अनेक विद्वान् इस अपभ्रंश भाषा के साहित्य को पुरानी हिन्दी या हिन्दी का साहित्य मानने लगे हैं। यद्यपि अब अपभ्रंश भाषा में साहित्य रचना नही हो रही है, परन्तु अपभ्रंश के अध्ययन के बिना हिन्दी का विकास भी पूर्णता को नही पा सकता। अतः आज अपभ्रंश भाषा के विशिष्ट अध्ययन की पूर्ण आवश्यकता है।

अपभ्रंश भाषा का उपलब्ध साहित्य और उसका वर्गीकरण

अपभ्रंश भाषा के उपलब्ध साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तब हमे इसकी विशेषताओं का परिज्ञान सहज ही हो जाता है। इस साहित्य में कथन की क्रमबद्धता, छन्दविस्तार, घटना-बाहुल्य, सत्पात्रों का चुनाव, आदि गुण इसकी महत्ता के द्योतक हैं। रसात्मकता, भाषा में ओज और माधुर्य गुण इस के आकर्षणके कारण रहे हैं। इसी से यह जन साधारण द्वारा अपनायी गई जान पड़ती हैं। अपभ्रंश साहित्य का मनन करने से हिन्दी भाषा के विकास का अच्छा इतिवृत्त संकलित किया जा सकता है। यह साहित्य प्रबन्ध या महाकाव्य, खण्डकाव्य, रूपककाव्य, मुक्तककाव्य, सन्धिकाव्य, कथाकाव्य और रासाकाव्य आदि के रूप में मिलता है। वर्तमान मे न अपभ्रंश का कोई स्वतन्त्र गद्य ग्रंथ उपलब्ध है और न कोई नाटक ही। पर संस्कृत के नाटकों में अपभ्रंश भाषा के गद्य पद्य दोनों के दर्शन अवश्य होते हैं। कुवलयमाला में भी अपभ्रंश गद्य मिलता है। अपभ्रंश भाषा के दो शिलालेख भी उपलब्ध हैं।[1]

१. देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० ६, अङ्क ४, पृष्ठ ५ में रायबहादुर हीरालाल का इन्ट्रक्शन। यह लेख विक्रम की १२वीं शताब्दी का बतलाया जाता है। दूसरा लेख बम्बई म्यूजियम में सुरक्षित है।

प्रवन्धकाव्य

विश्व साहित्य में संभवतः सबसे प्रथम भारतवर्ष में ही काव्य-ग्रन्थ लिखे गये। इस देश में प्रवन्ध काव्य लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इससे पहले पुराणादि ग्रन्थ ही लिखे जाते थे। ये पुराण प्रवन्ध-काव्यात्मक रचना हैं। प्रवन्धकाव्यों में इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार वर्णन, भावाभिव्यंजना और संवाद ये चार अवयव होते हैं। कथा में पूर्वापर क्रमवद्धता आवश्यक है इसके विना कोई काव्य प्रवन्धकाव्य नहीं कहला सकता। अपभ्रंश भाषा में प्रवन्ध काव्य वहुसंख्या में लिखे गए उपलव्ध हैं, उनमें पूर्वापर क्रम-वद्धता के साथ कथा के मार्मिक स्थलों की परख होना जरूरी है, इससे प्रवन्धकाव्य की रचना में सफलता मिलती है। जैन अपभ्रंश प्रवन्ध काव्यों में वस्तुव्यापार वर्णन तो सुन्दर है ही; किन्तु संवाद इतने प्रभावक और आकर्षक होते हैं कि उनसे इन प्रवन्ध काव्यों के निर्माताओं की सहृदयता का सहज ही आभास मिल जाता है। इन प्रवन्धकाव्यों का विषय प्रायः राम और कृष्ण की कथा ही रहा है।

संस्कृत प्रवन्धकाव्यों में नायक के चरित-चित्रण के अतिरिक्त उषाकाल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, संध्या, रजनी, नदी, पर्वत, समुद्र, ऋतु, युद्ध और यात्रा आदि दृश्यों का वर्णन सालंकार किया गया है[1]। ऐसा करते हुए भी कवियों ने उनमें अनेक चमत्कारों को भी दिखलाया है। ये सव कथन अल्प या वहुत मात्रा में सभी भाषाओं के प्रवन्धकाव्यों में उपलव्ध होते हैं। हाँ, प्राकृत प्रवन्धकाव्यों में कुछ नई प्रवृत्तियां भी देखने को मिलती हैं। उनमें अनेक स्थलों पर ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र अंकित मिलते हैं। अपभ्रंश प्रवन्ध काव्यों में ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं जो जीवन के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध रखते हैं।

संस्कृत भाषा में हमें दो प्रकार के काव्य मिलते हैं। उनमें कुछ काव्य ऐसे हैं जिनमें कथा का विस्तार, घटनावाहुल्य और उसके साथ ही साथ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन प्रचुरता से किया गया है और कुछ ऐसे भी हैं जिनमें कथा वहुत ही संक्षिप्त है, किन्तु प्राकृतिक वर्णनों के विस्तार में प्रचुर काव्यत्व दृष्टिगोचर होता है। प्राकृत में भी इन दोनों शैलियों के दर्शन होते हैं। यदि सेतु-वन्ध में रामकथा का विस्तार है, तो गउडवहो में गौड राजा के वध का कथन अति संक्षिप्त (३-४ पद्यों) में ही दिया गया है और अन्य काव्योचित वर्णनों का पर्याप्त रूप में स्थल-स्थल पर समावेश है।

अपभ्रंश के महाकाव्यों में भी हमें वर्ण्य विषय का पर्याप्त विस्तार मिलता है। कथा-पात्रों के अलौकिक चमत्कारों, भवान्तरों की कथाओं और पौराणिक आख्यानों के कारण कथा का विस्तार अधिक वढ़ गया है, जिससे कथा-सूत्र के समझने में कठिनाई हो जाती है। अनेक कथाओं और अवान्तर उप कथाओं में उलझे हुए अनेक स्थलों में यद्यपि सुन्दरता के दर्शन होते हैं, फिर भी उन में कवित्व प्रचुर परिमाण में प्रकट नहीं हो सका है और कविता में विषय की अपेक्षा कवित्व का विस्तार कम ही हुआ है।

---

१. सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगा अमी इह।

साहित्यदर्पण ६ परि० से ३२२-३२४

महाकाव्य

साहित्यकारों ने 'सर्गबन्धो महाकाव्यं'—[1] इस लक्षणानुसार महाकाव्य का विभाजन अनेक सर्गों में किया है। कथा का सर्गबद्ध होना आवश्यक है, सर्गों की संख्या का भी वहां निर्देश किया गया है। संस्कृत महाकाव्यों में कथा अनेक आश्वासों (सर्गों) में विभक्त मिलती हैं; किन्तु प्राकृत में कुछ काव्य ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें पद्य-कथा को आश्वासों में विभक्त नहीं किया गया। 'गउडवहो' में विभिन्न विषयों और घटनाओं को कुलकों और महाकुलकों में बांधा गया है। 'लीलावइकहा' आदि कुछ काव्य सर्गों या आश्वासों में विभक्त नहीं हैं। इस तरह प्राकृत महाकाव्यों में आश्वासों और सर्गोंका लोप होगया। प्राकृत काव्यों की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रभाव संस्कृत महाकाव्यों पर भी पड़ा है।

अपभ्रंश महाकाव्य में कथा वस्तु अनेक सन्धियों में विभक्त होती है और प्रत्येक सन्धि अनेक कडवकों के मेल से बनती है. संधियों की संख्या का वहाँ कोई नियम नहीं है। धवल कवि के 'हरिवंश' में १२२ संधियां हैं और पुष्पदन्त के महापुराण में १०२ सन्धियां दी हुई हैं। अपभ्रंशभाषा के महाकाव्यों में यद्यपि वर्णनीय विषय को संस्कृत महाकाव्यों के अनुसार ही दिया है, किन्तु वे काव्योचित मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन करने में असमर्थ रहे हैं। इन महाकाव्यों में अपभ्रंश की कुछ परम्परागत रूढियों का भी पालन होता रहा है। अपभ्रंश के प्रायः सभी महाकाव्य सन्धियों में विभक्त हैं। किन्तु स्वयंभू के दोनों महाकाव्य काण्डों में विभक्त होकर भी संधियों में रखे गए हैं। यह पद्धति बहुत पुरानी है। संस्कृत भाषा के काव्यों और ग्रन्थों में इसका प्रचलन था, आचार्य अकलंकदेव ने अपने तत्त्वार्थराजवार्तिक ग्रन्थ को अध्यायों में विभक्त करके भी उन्हें आह्निकों में विभाजित किया है। महाभारत में यह क्रम अध्यायों में पर्वों या सर्गों के रूप में मिलता है, और रामायण में काव्यों को सर्गों में विभाजित कर दिया गया है। एक एक अध्याय में अनेक आह्निक मिलते हैं।

कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में भ्रमवश यह लिख दिया कि—अपभ्रंश महाकाव्यों में सर्गों की जगह कुडवक या कडवक होते हैं[2]। पर ऐसा नहीं है। अपभ्रंश महाकाव्यों में संधि या सर्ग अनेक कडवकों के समूह से बनती है। कडवकों का प्रयोग वहाँ पद के रूप में हुआ है। १५ से ३० कडवकों या इससे अधिक की एक संधि होती है। इसी कारण सन्धियों का आकार छोटा या बड़ा देखने को मिलता है। अपभ्रंश काव्यों में प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ में और अन्त में एक घत्ता रहता है। इस नियम का निर्वाह कुछ काव्यों में पूर्ण रूप से मिलता है और कुछ में कम। अपभ्रंश काव्यों की कडवक-योजना का प्रभाव हिन्दी भाषा के प्रबन्ध काव्यों पर पड़ा है। रामचरित मानस और पद्मावत आदि में कुछ चौपाइयां रखकर दोहा या कहीं कहीं हरिगीतिका छन्द रक्खा गया है। कवि लक्ष्मण का 'णेमिणाहचरिउ' रड्ढा छन्द में रचा गया है और सुदंसणचरिउ पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त विविध छन्दों से विभूषित है। अब्दुलरहमान के सन्देशरासक में कडवकबद्धता नहीं है। पुष्पदन्त के काव्यों में नाना छन्दों का प्रयोग हुआ है। पर वे सब कडवकबद्ध ही हैं। संस्कृत के कुछ महाकाव्यों में मंगलाचरण और वस्तुनिर्देश के बिना भी काव्यारंभ देखा जाता है, यह परम्परा परवर्ती काव्यों में नहीं है। अपभ्रंश भाषा के प्रायः सभी काव्य मंगलाचरण और वस्तु निर्देश आदि की परम्परा को लिये हुए हैं, इसी का हिन्दी के काव्यों में अनुसरण किया गया है।

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं—साहित्यदर्पण ६ परि० ३१५।

२. अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन्सर्गाः कुडवकाभिधाः।
तथापभ्रंश योग्यानि छन्दांसि विविधान्यपि ॥ —साहित्यदर्पण ६-३२७

अपभ्रंश काव्यों में रोमांचकता

कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश काव्यों में रोमांचकता को रूढिपरक बतलाकर उनके औचित्य को निरर्थक सिद्ध किया है। डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने 'हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास' नाम के ग्रन्थ में रोमांचक शैली के महाकाव्यों के कुछ नाम गिनाये हैं और उन्होंने उन पर विचार करते हुए उनकी कुछ परम्परागत रूढियों को दिखाने का प्रयत्न किया है :

(१) भविसयत्तकहा—धनपाल।
(२) सुदंसणचरिउ—नयनन्दि सं० ११००।
(३) विलासवइकहा—साधारण कवि ११२३।
(४) करकंडुचरिउ—कनकामर।
(५) पज्जुण्णकहा—सिद्ध तथा सिंह।
(६) जिणदत्तचरिउ—कविलक्ष्मण वि० सं० १२७५।
(७) णायकुमारचरिउ—माणिक्कराज सं० १५७५।
(८) सिद्धचक्कमाहप्प (श्रीपाल कथा)—रइधू।

डा० साहब की मान्यता है कि—

(१) वस्तुतः ये कथाएँ लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं के आधार पर लिखी गई हैं। जिनमें कवियों ने कुछ धार्मिक बातें जोड़कर कथात्मक काव्य या चरित काव्य बनाने का प्रयत्न किया है।

(२) इन काव्यों में युद्ध और प्रेम का वर्णन पौराणिक शैली के काव्यों की अपेक्षा अधिक है, और विकसनशील महाकाव्यों में रोमांचक तत्त्व अधिक होते हैं। जैनों ने धार्मिक आवरण में रोमाँचक काव्य लिखे हैं।

(४) इन काव्यों में अतिशयोक्ति पूर्ण बातें अधिक हैं। इनमें साहसपूर्ण कार्य, बीहड़ यात्राएँ, उजाड़नगर, भयंकर वन में अकेले जाना, मत्त गज से युद्ध, उग्र अश्व को वश में करना, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरादि से युद्ध, समुद्रयात्रा और जहाज टूटने आदि का वर्णन मिलता है। इससे कथा में रोमांचकता का गुण बढ़ जाता है और पाठक की जिज्ञासा की तृप्ति होती है। यह कथा-आख्यायिका का गुण है, जिसे इन काव्यों में अपना लिया गया है। इस विषय में मेरा विचार इस प्रकार है :—

डा० साहब की उक्त मान्यतानुसार इन जैन काव्यों को रोमांचक मान भी लिया जाय, तो भी इनसे रागवृद्धि और अनैतिकता को कोई सहारा नहीं मिलता; क्योंकि जैन कवियों का लक्ष्य 'विशुद्धि' रहा है। इन अपभ्रंश काव्यों में शृंगारादि सभी रसों का वर्णन है। किन्तु ग्रन्थकारों ने शृंगार को वैराग्य में और वीर रस को शान्तरस में परिवर्तित किया है, और नायक के विशुद्ध चरित को दर्शाने का उपक्रम किया है। अन्य रोमांचक काव्यों में जैसी रागवर्द्धक कथाओं, लोक-गीतों, यात्रा और वन-गमनादि की घटनाओं को अतिरंजित रूप में उल्लिखित किया गया है, साथ ही शृंगारादि रसों का वर्णन भी रागोत्पादक हुआ है, जो मानव जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध नहीं होता, वैसा वर्णन इन जैन अपभ्रंश काव्यों में नहीं मिलता। अतः उन्हें अन्य रोमांचक काव्यों की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। यहाँ सुदंसणचरिउ की मौलिकता और विशेषता पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

सुदंसणचरिउ

नयनन्दि के 'सुदंसणचरिउ' में सतर्कता खूब बरती गई है। उसमें 'भविसयत्त कहा' और 'जिनदत्त चरिउ' जैसी लौकिक तथा आश्चर्यजनक घटनाओं को स्थान नहीं दिया गया। ग्रंथ में एक व्यंतर का धाड़ी वाहन राजा से युद्ध करने और राजा को सुदर्शन की शरण में पहुंचाने का उल्लेख अवश्य है, जो सुदर्शन के शील और पुण्य का परिचायक है। इतने मात्र से उस पर वैसी रोमांचकता नहीं लादी जा सकती। वह खंड काव्य होकर भी महाकाव्य की कोटिका ग्रन्थ है। ग्रन्थ में णमोकार मंत्र के फल का वर्णन किया है। उसमें सेठ का एक मात्र ध्येय आत्म-विकास करना, और अभयारानी आदि की कुत्सित वृत्तियों से अपने को संरक्षित कर तथा ब्रह्मचर्यव्रत में निष्ठ रहकर पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त करना रहा है।

सुदर्शन के स्वभाव में अपनी विशेषता है, वह धीर, उदात्त और प्रशान्त नायक है, वह अपनी प्रतिज्ञा पर अडोल रहता है, उसे संसार का कोई भी प्रलोभन पथभ्रष्ट करने में समर्थ नहीं हो सका। कंचन और कामिनी के राग से विरले ही अपने को अलग रख पाते हैं, बड़े-बड़े तपस्वी भी भ्रष्ट हो जाते हैं।

कवि ने इसका मौलिक विवेचन किया है। उससे उक्त काव्य की आत्मा चमक उठी है। इस कारण उसे भविसयत्तकहा के समान रोमांचक काव्य नहीं कहा जा सकता। सुदर्शन ने अपने चरित की विशुद्धता से मानवता के कलंक को धो दिया है। अतएव मैं ही इसे विशुद्ध काव्य नहीं कहता; नयनन्दि ने स्वयं भी उसे निर्दोष काव्य माना है जैसा कि उनके निम्न पद्य से स्पष्ट है :—

रामो सीय-विओय-सोय-विहुरं संपत्तु रामायणे।
जादं पंडव-धायरट्ठ सददं गोत्तं-कलीभारहे॥
डेडा कोलियचोररज्जुणिरदा आहासिदा सुद्दये।
णो एक्कं पि सुदंसणस्स चरिदे दोसं समुब्भासिदं॥

उन्होंने काव्य का आदर्श व्यक्त करते हुए लिखा है कि रामायण में राम और सीता के वियोग और शोक जन्य व्याकुलता के दर्शन होते हैं, और महाभारत में पांडवों और धार्तराष्ट्रों (कौरवों) के परस्पर कलह और मारकाट के दृश्य अंकित मिलते हैं तथा लोक-शास्त्र में भी कौलिक, चौर-व्याध आदि की कहानियां सुनने में आती हैं किन्तु इस सुदर्शनचरित में ऐसा एक भी दोष नहीं कहा गया है।

इस ग्रंथ की कथन शैली, वाक्य-विन्यास, सुन्दर सुभाषित और विविध छन्दों में वस्तु वर्णन, पाठक के हृदय को आकर्षित करते ही है।

डा० हरिवंश कोछड़ ने भी अपभ्रंश साहित्य में युद्ध प्रसंगादि की घटनाओं को अनावश्यक माना है।

इस सब कथन पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन अपभ्रंश काव्यों के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों द्वारा अब तक जो भी लिखा गया है वह सब एकांगी है। जैन विद्वानों का कर्तव्य है कि वे निष्पक्ष दृष्टि से इस पर विचार करें और रोमांचक काव्यों की परिभाषा का विश्लेषण कर उसके औचित्यअनौचित्य पर प्रकाश डालें और अपभ्रंश साहित्य की महत्ता को लोक में प्रतिष्ठित करें।

सन्धि-काव्य

एक ही सन्धि में विभक्त होने वाले काव्यों को एक सन्धि काव्य कहा जाता है। अपभ्रंश के खण्ड सन्धि काव्यों की परम्परा केवल श्वेताम्बर सम्प्रदाय में पाई जाती है। किन्तु ये सब परवर्ती काल की रचनायें हैं। इनमें भी जीवन चरित की परम्परा उपलब्ध होती है। उपलब्ध सन्धिकाव्य सं० १२८७ से १४५० तक के रचे हुए हैं; संभव है इसके बाद भी कुछ रचे गए हों, पर वे अपभ्रंश भाषा के न होकर हिन्दी या राजस्थानी भाषा में ही लिखे गए जान पड़ते हैं। ये सन्धिकाव्य पाटन आदि के जैन शास्त्रभण्डारों से उपलब्ध हुए हैं। उदाहरणार्थ जिनप्रभसूरि ने अनाथ सन्धि सं० १२९७ में, जीवानुसंधी ३१८ पद्यों में और मयण-रेहा-सन्धि १२९७ में बनाई है। वरदत्त ने वज्रस्वामिसन्धि, रत्नप्रभ ने अन्तरंगसन्धि, तथा सं० १२९८ में जिनप्रभ सूरि के शिष्य ने नर्मदासुंदरीसंधि की रचना की है।[1]

अपभ्रंश के सन्धि-काव्यों के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए राजस्थानी पत्रिका में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का 'अपभ्रंश भाषा के सन्धि-काव्य और उनकी परम्परा' नाम का लेख पढ़े।

कथा साहित्य

भारतीय वाङ्मय में कथा, पुराण और चरित ग्रन्थों का उल्लेखनीय बाहुल्य है। प्रायः सभी सम्प्रदायों के विद्वानों ने विविध भाषाओं में पुराणों, चरितों और काव्य, चम्पू आदि विविध ग्रंथों का निर्माण किया है। जहां जैनेतर विद्वानों ने अपभ्रंश को गौण कर संस्कृत आदि अन्य भाषाओं में कथा-साहित्य की सृष्टि की हैं, वहां जैन विद्वानों ने प्राकृत और संस्कृत के साथ अपभ्रंश भाषा में भी कथा, चरित और पुराण ग्रन्थ निबद्ध किये हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने भारत की विविध प्रान्तीय भाषाओं में—मराठी, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी आदि में भी पुष्कल कथा-साहित्य रचा है।

कथायें कई प्रकार की होती हैं; परन्तु उनके दो भेद मुख्य हैं—लौकिक और धार्मिक (आध्यात्मिक)। इन दोनों में सभी कथाओं का समावेश हो जाता है, धार्मिक कथाओं में तो आध्यात्मिकता की पुट रहती है और लौकिक कथाओं में पशु-पक्षियों, राजनीति, लोकनीति, हाव-भाव, शृंगार आदि रागोत्पादक और लौकिक मनोरंजक आख्यानों का सम्मिश्रण रहता है। इनमें आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत धार्मिक कथाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध आन्तरिक जीवन-घटनाओं के साथ रहता है, इनमें व्रतों का सदनुष्ठान करने वाले भव्य श्रावकों की धार्मिक मर्यादा के साथ नैतिक जीवनचर्या का भी अच्छा चित्रण पाया जाता है; साथ ही उनके भारी संकट उपस्थित होने पर धीरता से विजय प्राप्त करने, अपने पुरुषार्थ को सुदृढ़ रूप में कायम रखने तथा धार्मिक श्रद्धा में अडोल (निश्चल) रहने का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। कितनी ही कथाओं में जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्व का संकलन यथेष्ट रूप में पाया जाता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन सफल बनाने के लिए आवश्यक होता है। असल में सत्-पुरुषों का उच्चतर जीवन दूसरों के लिए आदर्शरूप होता है, उस पर चलने से जीवन में विकास और नैतिक चरित्र में वृद्धि होती है, एवं स्वयं का जीवन आदर्श बनता है। इससे पाठक सहज ही में कथाओं की उपयोगिता और महत्ता का अनुभव कर सकते हैं।

---

१. देखो, पाटन भंडार सूची, जो गायकवाड ओरियन्टल सीरीज बड़ौदा से प्रकाशित हुई है।

प्राकृत भाषा में अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें वसुदेवहिण्डी गद्य और कुवलयमालाकथा तो गद्य-पद्य रूप में प्रसिद्ध ही हैं। कुवलयमाला में कहीं-कहीं अपभ्रंशभाषा के गद्यके भी दर्शन होते हैं पर बहुत ही कम। हाँ अपभ्रंशभाषा का पद्यात्मक कथासाहित्य प्रचुरता से उपलब्ध होता है; परन्तु कोई गद्यात्मक स्वतन्त्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ।

कथाग्रन्थों के निर्माण का उद्देश्य

जैनाचार्यों अथवा जैन विद्वानों द्वारा कथा ग्रंथों के बनाए जाने का उद्देश्य केवल यह प्रतीत होता है कि जनता असंयम से बचे और व्रतादि के अनुष्ठान द्वारा शरीर और आत्मा की शुद्धि की ओर अग्रसर हो। कथाओं में दुर्व्यसनों और अन्याय, अत्याचारों के बुरे परिणामों को दिखाने का अभिप्राय केवल उनसे अपनी रक्षा करना, और जीवन को उच्च बनाना है। व्रताचरण-जन्य पुण्य-फल को दिखाने का प्रयोजन यह है कि जनता अपना जीवन अधिक से अधिक संयत और पवित्र बनावे। असघात, प्रमादकारक, अनिष्ट, अनुपसेव्य, तथा अल्पफल बहु-विघातरूप अभक्ष्य वस्तुओं के व्यवहार से अपने को निरन्तर दूर रखे। ऐसा करने से ही मानव अपने जीवन को सफल बना सकता है। जैन विद्वानों का यह दृष्टिकोण कितना उच्च और लोकोपयोगी है।

अपभ्रंश के जैन कथा ग्रन्थों मे अनेक कवियों ने व्रतों का अनुष्ठान अथवा आचरण करने वाले भव्य श्रावकों के जीवन-परिचय के साथ व्रत का स्वरूप, विधान और फल-प्राप्ति का रोचक वर्णन किया है, साथ ही व्रत का पूरा अनुष्ठान करने के पश्चात् व्रत के उद्यापन करने की विधि, तथा उद्यापन की सामर्थ्य न होने पर दुगुना व्रत करने की आवश्यकता और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। उद्यापन करते समय उस भव्य-श्रावक की कर्तव्यनिष्ठा, धार्मिक श्रद्धा, साधर्मि-वत्सलता, निर्दोष व्रताचरण की क्षमता और उदारता का अच्छा चित्रण किया गया है और उससे जैनियों की उन समयों में होने वाली प्रवृत्तियों, लोकसेवार्थ, आहार, औषध, ज्ञान और अभय रूप चार दानों की प्रवृत्ति, तपस्वी-संयमी जनों की वैयावृत्त्य तथा दीन दुखियों की समय समय पर की जाने वाली सहायता का उल्लेख पाया जाता हैं। इस तरह यह कथा-साहित्य और पौराणिक चरितग्रन्थ ऐतिहासिक व्यक्तियों के पुरातन आख्यानों, व्रताचरणों अथवा ऊँच-नीच व्यवहारों की एक कसौटी है। यद्यपि उनमें वस्तुस्थिति को आलंकारिक रूप से बहुत कुछ बढ़ा चढ़ाकर भी लिखा गया है; तो भी उनमें केवल कवि की कल्पना ही नहीं; कितनी ही ऐतिहासिक आख्यायिकायें (सच्ची घटनायें) भी मौजूद हैं जो समय समय पर वास्तविक रूप से घटित हुई हैं। अतः उनके ऐतिहासिक तथ्यों को यों ही नहीं भुलाया जा सकता। जो ऐतिहासिक विद्वान इन कथाग्रन्थों और पुराणों को कोरी गप्प या असत्य कल्पनाओं का गढ़ कहते हैं वे वस्तुस्थिति का मूल्य आँकने में असमर्थ रहते हैं। अतः उनकी यह मान्यता समुचित नही कही जा सकती।

प्राकृत भाषा में अनेक कथाग्रन्थ लिखे गये हैं। वसुदेव हिण्डी प्राकृत गद्य कथा-ग्रन्थ हैं। कुवलयमाला गद्य-पद्य कथा-ग्रन्थ हैं। समराइच्चकहा हरिभद्र की सुन्दर कृति है। कथारयणकोष में अनेक कथाएँ दी हुई हैं। इस तरह प्राकृत का कथा-साहित्य भी विपुल सामग्री को लिए हुए है, जिनमें अनेक कथाएँ लौकिक हैं तथा लोकगीतों से निर्मित हुई हैं।

अपभ्रंश भाषा में कथा-साहित्य कब शुरू हुआ, यह निश्चित नही हैं किन्तु विक्रम की ८ वीं-९ वीं शताब्दी में रचे हुए अपभ्रंश कथा-साहित्य के उल्लेख जरूर उपलब्ध होते हैं, यद्यपि उस समय

का रचा हुआ कथा-साहित्य अभी उपलब्ध नहीं हुआ। महाकवि चउमुह (चतुर्मुख) और स्वयंभू की रची हुई पंचमी-कथाएँ थीं अवश्य और अन्य कथाग्रन्थ भी रचे गए होंगे। परन्तु वे अप्राप्य हो रहे हैं। अपभ्रंश में दो तरह की कथाएँ उपलब्ध होती हैं—बड़ी और छोटी; पर वे सब पद्य में हैं, गद्य में कोई कथा मेरे देखने में नहीं आई। वे उसमें न रची गई हों, ऐसा तो ज्ञात नहीं होता किन्तु वे रचनाएँ विरल होने से संभवतः विनष्ट हो गई हैं।

प्रस्तुत प्रशस्तिसंग्रह में ४० के लगभग अपभ्रंश कथाग्रन्थों की प्रशस्तियां दी गई हैं। उनमें कई कथा-ग्रन्थों के कर्ता अभी अज्ञात हैं। शास्त्रभण्डारों में अन्वेषण करने पर इस तरह की अन्य कवियों द्वारा रचित कथाएँ और भी मिलेंगी, ऐसी संभावना है। क्योंकि अभीतक समस्त जैन ग्रन्थालय देखे नहीं गए हैं। उनके देखे जाने पर अपभ्रंश के कथा-साहित्य पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा। अपभ्रंश की अनेक कथाओं के आधार पर संस्कृत में और हिन्दी में रचा हुआ विपुल कथा-साहित्य उपलब्ध होता है।

दोहा साहित्य या मुक्तककाव्य

जैसे संस्कृत साहित्य में ही 'अनुष्टुप् छंद' प्रसिद्ध रहा है वैसे ही अपभ्रंश में दोहा छंद है। इस छंद को अपभ्रंश की देन कहा जा सकता है। दोहा छंद का लक्षण प्राकृत पिङ्गल में इस प्रकार है—

तेरह मत्ता पढम पअ पुणु एयारह देह।
पुणु तेरह एआरहइं दोहा-लक्खणु एह ॥७८॥

जिसके प्रथम चरण में तेरह मात्रा, फिर दूसरे चरण में ग्यारह मात्रा, अनन्तर ३-४ चरणों में क्रमशः तेरह मात्रा और ग्यारह मात्रा हों वह दोहा छंद कहलाता है।

जब इसी छंद को लय में गाया जाता है, तब चरणों की अंतिम मात्रा पर जोर दिया जाता है, इस अपेक्षा से हेमचन्द्राचार्य ने दोहे में चौदह और बारह मात्राओं का भी उल्लेख किया है सो ठीक है। दोहे को दोधक—दोहक भी कहते हैं। क्वचित् दोहे का नाम 'दुविहा' भी पाया जाता है। 'दुविहा' का संस्कृत रूपांतर 'द्विधा है'[1]। दोहा छंद की प्रत्येक पंक्ति दो भागों में (१३-११ मात्रा रूप में) विभक्त होने से यह छंद मात्रिक अर्धसम जाति का है और इसके लिए 'दुविहा' यह रूढ़ अन्वर्थ संज्ञा है। दोहा छंद सरल होने के साथ-साथ व्याकरण के नियमों से भी कम बंधा है, यही कारण है कि दोहा-साहित्य का अपभ्रंश में बाहुल्य है। हेमचंद्र आदि लक्षण-शास्त्रियों ने जो अपने व्याकरण ग्रंथों में अपभ्रंश के उदाहरणों के लिए प्रायः दोहा उद्धृत किये हैं यह भी बाहुल्य का परिचायक है। आगे चलकर इस दोहा छंद को उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में अपनाया गया है। दोहा छंद के माध्यम से गुजराती, व्रज, राजस्थानी भाषाओं में ढाल—रासो आदि की रचना खूब हुई और होती रहती है। राजस्थानी में लौकिक गीत, ख्यालों के बोल, नोटंकी चोबोलों के बोल, कहावतें और चारणों का साहित्य प्रायः इसी भाषा छंद में कुछ मात्राएँ जोड़कर प्रचुर मात्रा में पाया जाता और सुना जाता है इससे यह छंद सर्वाधिक लोकप्रिय और सरल रहा है। मुक्तक काव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंश के सुलोचनाचरिउ, बाहुबलिचरिउ, संदेशरासक, कीर्तिलता आदि खंडकाव्यों में यशःकीर्ति भट्टारक के पाण्डवपुराण और अन्यान्य प्रबन्ध काव्यों में भी दोहा छंद का प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध है। हिन्दी भाषा

[1] देखो विरहांक का वृत्त जाति समुच्चय 'दो पाया भण्णइ दुविहउ'।
—H. D. वेलणकर ने 'विरहांक' का समय ईसा की ९ वीं शताब्दी बतलाया है।

के प्रसिद्ध कविगण तुलसी, कबीर, रहीम, बनारसीदास, भूधरदास, भगवतीदास, बुधजन, वृन्द, महाचन्द्र, बिहारी आदि ने दोहा छंद में अनेक भावपूर्ण रचनाएँ और सुभाषित प्रस्तुत किए हैं।

हमें कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में, जिसका काल विक्रम की ५ वीं शताब्दी कहा जाता है अपभ्रंश भाषा के अनेक दोहे उपलब्ध मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि दोहा साहित्य उस समय रचा जाने लगा था[1] बौद्ध सिद्ध सरहप्पा और कण्हपा आदि के दोहाकोश में जिसका रचना काल ईसा की १० वीं शती से पूर्व है अनेक दोहे गम्भीर अर्थ के प्रतिपादक हैं। दोहाकोश के दोहों की रचना कितनी उत्तम हुई है यह देखिए—

जाव ण आप जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अंधा अंधकडाव तिम विण्णि वि कूव पडेइ॥

—इसमें बतलाया है कि 'जब तक आप अपने को नहीं जानते तबतक शिष्य मत बनाइये', यदि अंधा दूसरे अंधे को निकालने का प्रयत्न करे तो दोनों ही कुंये में पड़ेंगे।

जहि मण पवण ण संचरइ रवि ससि णाहि पवेस।
तहि वढ़, चित्त विसामकरु सरहें कहिउ उवएस॥४॥

सरह उपदेश करते हैं कि—'जहाँ पर मन और पवन भी संचार नहीं करते, रवि और शशि का भी प्रवेश नहीं है, हे मूढ़ चित्त, तू वहीं पर विश्राम कर।

दोहों में दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—एक भावात्मक शृंगार, वीर और करुण आदि रसों से आप्लावित मुक्तक पद्य और दूसरा संतों की आध्यात्मिक वाणी रूप मुक्तक पद्य। प्रथम प्रकार के दोहा हेमचन्द्र के व्याकरण आदि में उपलब्ध हैं, शृंगार विरह आदि के दोहा जहाँ रागोत्पादक हैं वहाँ नैतिक पतन में भी निमित्त हैं। यहाँ यह जानना जरूरी है कि जैनेतर कवियों का लक्ष्य जहाँ रागोत्पादक रहा है, वहाँ जैन कवियों का उद्देश्य नैतिकता को प्रोत्साहन देने के साथ मानव जीवन को उन्नत बनाने का रहा है अतः दूसरे प्रकार के दोहा मुक्तक काव्यों के रूप में जोइन्दु के परमात्मप्रकाश और योगसार ग्रंथ, रामसिंह का दोहापाहुड़, सुप्रभाचार्य का वैराग्यसार, लक्ष्मीचंद्र का दोहानुप्रेक्षा और सावयधम्मदोहा, जल्हिग, धांगा, महाचन्द्र, शालिभद्र का दूहामातृका, पद्मसिंह मुनि की ७१ दोहात्मक रचनाएँ अध्यात्मरस से परिपूर्ण हैं।

'जोइन्दु' ने परमात्म-प्रकाश ग्रंथ के दोहों में अत्यन्त सरस अध्यात्म रस की पावन सरिता के प्रवाह को प्रवाहित किया है, इसी तरह रामसिंह ने दोहापाहुड़ में और लक्ष्मीचन्द्र आदि आध्यात्मिक जैन सन्तों ने अध्यात्म रस की धारा को बहाया है।

रूपक-काव्य

कुमारपाल-प्रतिबोध

अपभ्रंश भाषा में भी संस्कृत भाषा के समान रूपक-काव्यों की परम्परा पाई जाती है। परन्तु अपभ्रंश भाषा में तेरहवीं शताब्दी से पूर्व की कोई रचना मेरे देखने में नहीं आई। सोमप्रभाचार्य का

१. मइं जाणियइं मिअलोअणी णिसिअर-कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ॥
('जब तक नई बिजली से युक्त श्यामल मेघ बरसने लगा, तब तक मैंने यही समझा था कि मेरी मृगलोचनी प्रिया को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है।")

'कुमारपाल-प्रतिवोध' प्राकृत-प्रधान रचना है और जिसका रचनाकाल संवत् १२४१ है। परन्तु उसमें कुछ अंश अपभ्रंश भाषा के भी उपलब्ध होते हैं। उसका एक अंश 'जीव मनःकरण संलाप कथा' नाम का भी है। जो उक्त ग्रंथ में पृ० ४२२ से ४३७ तक पाया जाता है। यह एक धार्मिक कथा-वद्ध रूपक खण्ड-काव्य है। इसमें जीव, मन और इन्द्रियों के संलाप की कथा दी गई है। इतना ही नहीं इसमें एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक को भी जोड़ दिया गया है। ऐसा होने पर भी उक्त अंश की रोचकता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस रूपक-काव्य में मन और इन्द्रियों के वार्तालाप में जगह-जगह कुछ सुभाषित भी दिए हुए है, जिनसे उक्त काव्य-ग्रंथ की सरसता और भी अधिक वढ़ गई है।

जं पुणु तुहु जंपेसि जड़ तं असरिसु पडिहाइ।
मण निल्लक्खण किं सहइ, नेवरु उट्टह पाइ॥

अर्थात् हे मूर्ख ! तुम तो कहते हो कि वह तुम्हारे योग्य नहीं प्रतीत होता, हे निर्लक्षण मन। क्या ऊँट के पैर में नूपुर शोभा देते हैं।

काया नगरी में लावण्य रूप लक्ष्मी का निवास है। उस नगरी के चारों ओर आयुकर्म का भारी प्राकार है, उसमें सुख-दुःख क्षुधा-तृषा हर्ष-शोकादि रूप अनेक प्रकार की नदियाँ एवं मार्ग हैं। उस काया नगरी में जीवात्मा नामक राजा अपनी वुद्धि नाम की पत्नी के साथ राज्य करता है। उसका प्रधान मंत्री मन है और स्पर्शनादि पाँचों इन्द्रियां प्रधान राजपुरुष हैं। एक दिन सभा में परस्पर उनमें विवाद उत्पन्न हो गया, तव मन ने जीवों के दुःखों का मूल कारण अज्ञान को वतलाया; किन्तु राजा ने उसी मन को दुःखों का मूल कारण वतलाते हुए उसकी तीव्र भर्त्सना की। विवाद वढ़ता ही चला गया। उन पांचों प्रधान राज पुरुषों की निरंकुशता और अहं मन्यता की भी आलोचना हुई। प्रधान मंत्री मन ने इन्द्रियों को दोषी वतलाते हुए कहा कि जव एक-एक इन्द्रिय की निरंकुशता से व्यक्ति का विनाश हो जाता हैं तव जिसकी पाँचों ही इन्द्रियाँ निरंकुश हों, फिर उसकी क्षेम-कुशल कैसे हो सकती है[1]। जिन्हें जन्म कुलादि का विचार किये विना ही भृत्य वना लिया जाता है तो वे दुःख ही देते हैं। उनके कुलादि का विचार होने पर इन्द्रियों ने कहा—हे प्रभु ! चित्त-वृत्ति नामकी अटवी में महामोह नामका एक राजा है, उसकी महामूढ़ा नामक पत्नी के दो पुत्र है, उनमें एक का नाम रागकेशरी है, जो राजस-चित्त-पुर का स्वामी है और दूसरा द्वेष-गजेंद्र नामका है, जो तामस-चित्तपुर का अधिपति हैं, उसका मिथ्या-दर्शन नामका प्रधान मंत्री है, क्रोध लोभ, मत्सर, काम मद आदि उसके सुभट हैं। एक वार उसके प्रधान मंत्री मिथ्यादर्शन ने आकर कहा कि हे राजन् ! वड़ा आश्चर्य है कि आपके प्रजाजनों को चारित्र-धर्म नामक राजा का सन्तोष नामक चर, विवेकगिरि पर स्थित जैनपुर में ले जाता है। तब मोह राजा ने सहायता के लिए इन्द्रियों को नियुक्त किया। इस तरह कवि ने एक रूपक के अन्तर्गत दूसरे रूपक का कथन जोड़ते हुए उसे और भी अधिक सरस वनाने की चेष्टा की है।

इस प्रकार मन द्वारा इन्द्रियों को दोषी वतलाने पर इन्द्रियों ने भी अपने दोष का परिहार करते हुए मन को दोषी वतलाया और कहा कि जीव में जो राग द्वेष प्रकट होते हैं वह सव मोह का ही माहात्म्य

१. इय विषय पल्लकओ, इहु एक्केक्कुइंदिउ जगडइ जगु सयलु।
जसु पंचवि एयइं कयवहुखेयइं, खिल्लहिं पहु तसु कउ कुसलु॥ २६॥

है। क्योंकि मन के निरोध करने पर हमारा (इन्द्रियों का) व्यापार रुक जाता है[1]। इस तरह ग्रंथ में क्रम से कभी इन्द्रियों को, कभी कर्मो को और कभी कामवासना को दुःख का कारण बतलाया गया है। जब वाद-विवाद बढ़ कर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया, तब आत्मा अपनी स्वानुभूति से उन्हें शान्त रहने का आदेश देता है अन्त में मानव जीवन की दुर्लभता का प्रतिपादन करते हुए तथा जीव दया और व्रतों के अनुष्ठान का उपदेश देते हुए कथानक समाप्त किया गया है।

मयणपराजय

'मयण-पराजय' अपभ्रंश भाषा का एक छोटा सा रूपक काव्य है, जो दो संधियों में समाप्त हुआ है। इसके कर्त्ता कवि हरदेव हैं। हरदेव ने अपने को चंगदेव का तृतीय पुत्र, और अपने दो ज्येष्ठ भाइयों के नाम किंकर और कण्ह (कृष्ण) बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है। ग्रन्थ में पद्धडिया छन्द के अतिरिक्त रड्ढा छन्द का भी प्रयोग किया गया है, जो इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। इसमें कामदेव राजा, अपने मोह मंत्री, अहंकार और अज्ञान आदि सेनापतियों के साथ भवनगर में राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु हैं; क्योंकि वे मुक्ति रूपी कन्या से अपना पाणिग्रहण करना चाहते हैं। कामदेव ने राग-द्वेष नामके दूतों द्वारा जिनराज के पास यह सन्देशा भेजा कि आप या तो मुक्ति कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड़ दें और अपने दर्शन-ज्ञान चारित्र रूप सुभटों को मुझे सौंप दें, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाय। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अन्त में कामदेव को पराजित कर अपना मनोरथ पूर्ण किया। ग्रंथ की दूसरी सन्धि का ७ वां कडवक द्रष्टव्य है जिसमें कामदेव से युद्ध करने वाले सुभटों के वचन अंकित हैं।

वज्जघाउ को सिरिण पडिच्छइ, असिधारापहेण को गच्छइ।
को जमकरणु जंतु आसंघइ, को भुवदंडइं सायरु लंघइ।
को जममहिसंसिग उप्पाडइ, विप्फुरंतु को दिग्गमणि तोडइ।
को पंचाणणु सुत्तउ खवलइ, कालकुट्टु को कवलहि कवलइ।
आसीविसमुहि को करु छोहइ, धगधगंत को हुववहि सोवइ।
लोहपिंडु को तत्तु धवक्कइ, को जिणसंमुहु संगरि थक्कइ।
णिय घरमज्झि करहि बहुधिट्टिम, महिलहं अग्गइ तोरी वड्डिम।

ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया, किन्तु आमेर भंडार की यह प्रति वि० सं० १५७६ की लिखी हुई है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उससे पूर्व की रचना है, कितने पूर्व की यह अभी विचारणीय है। पर भाषा साहित्यादि की दृष्टि से प्रस्तुत रचना १४ वीं-१५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

तीसरी कृति 'मनकरहा रास' है, जिसके कर्त्ता कवि पाहल हैं। रचना सुन्दर और शिक्षाप्रद है, इसमें ८ कडवक दिये हुए हैं, जिन में पांचों इन्द्रियों की निरंकुशता से होने वाले दुर्गति के दुःखों का उद्भावन करते हुए मन और इन्द्रियों को वश में करने और तपश्चरण-द्वारा कर्मो की क्षपणा करने का सुन्दर उपदेश दिया गया है। ग्रन्थ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है। यह रचना भी सं० १५७६ के गुटके परसे संगृ-

१. जं तमु फुरेइ रागो दोसो वा तं मणस्स माहप्पं।
विरमइ मणम्मि रुद्धे जम्हा अम्हाण वावारो ॥४७॥

हीत की गई है जिससे स्पष्ट है कि ग्रंथ इससे पूर्व रचा गया होगा[1]। इसकी भाषा देखने से प्रतीत होता है कि इसका निर्माण वि० की १४-१५ वीं शताव्दी में हुआ होगा।

चौथी कृति 'मदन-जुद्ध' है। जिसके कर्त्ता कवि वूचिराज या 'वल्ह' हैं। ग्रन्थ में इक्ष्वाकुकुल-मंडन नाभिपुत्र ऋषभदेव के गुणों का कीर्तन करते हुए, उन्होंने कामदेव को कैसे जीता, इसका विस्तार से कथन किया गया है। ग्रन्थ में उसका रचनाकाल वि० सं० १५८९ आश्विन शुक्ला एकम शनिवार दिया हुआ है[2]।

संस्कृत और अपभ्रंश के रूपक-काव्यों के समान हिन्दी भाषा में भी अनेक रूपक-काव्य लिखे गये हैं। जिनमें से एक का परिचय अनेकान्त में दिया गया है[3] और शेष का परिचय अभी अप्रकाशित है। जैसे पंचेन्द्रिय सम्वाद' सूवा वत्तीसी आदि।

रासा साहित्य

रासक स्वर-ताल नृत्य और लय के साथ गाई जाने वाली एक कला है। रास वह है जिसमें संगीत की रसानुभूति हो, अथवा जिसकी मधुर सुरीली तान और गंभीर नृत्य कला दर्शक के मन को आनन्द—विभोर कर दें। इस कला में गान और नृत्यकला को ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल में स्त्रियां लास्यनृत्य' करती थीं, पर उसमें देश-भेद के कारण विविधता दृष्टिगोचर होती थी। उससे जनता का मनोरंजन और उसके प्रति आकर्षण भी होता था। यह संगीत कला का ही एक भेद ज्ञात होता है।

रास-परम्परा का पुरातन उल्लेख भरत के नाट्य शास्त्र में पाया जाता है। अतः इसे केवल अपभ्रंश युग की देन कहना उचित नहीं है जब अपभ्रंश में साहित्यिक रचनाएं नहीं होती थीं तब भी नृत्य और गान के रूप में रास प्रचलित थे। भरत ने नाट्यशास्त्र में रासक को एक उपरूपक माना है और उसके तालरासक, दण्डरासक और मण्डलरासक ये तीन भेद बतलाये हैं[4]।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी काव्यानुशासन में रासक को गेय काव्य माना है[5]। हेमचन्द्र ने 'अनेकार्थ-संग्रहकोष में रास का अर्थ—'क्रीडासु गोदुहाम् भाषा श्रृङ्खलि के' दिया है। जिसका अर्थ 'ग्वालों की क्रीड़ा' तथा भाषा में श्रृङ्खलाबद्ध रचना होता है।

---

१. देखो, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, अप्रकाशित रचना।

२. राइ विक्रम तणों संवत् नव्वासीय पनरहसइ सरद रुति आसु बखाणु।
तिथि पडिवा सुकल पख, सनीचरवार करणक्खत्त जाणु॥ — मदनजुज्झ प्रशस्ति

३. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (अप्रकाशित) और रूपक-काव्य-परम्परा अनेकान्त वर्ष १४

४. (क) 'तालरासकनाम स्यात् तत् त्रिधा रासकं स्मृतम्।
......दंडरासकं तु तथा मंडलरासकम्॥

(ख) अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारती' में रासक को गेयरूपक का एक भेदमाना है। गेयरूपक में ताल और लयका विशेष स्थान होता है और इसमें अधिक से अधिक ६४ युगल भाग ले सकते हैं।
अनेकनर्तकी योज्यं चित्रताललयान्वितम्।
आचतुः षष्टि युगलाद्रासकं मसृणोद्धतम्॥

५. (क) गेयंडोम्बिकाभाणप्रस्थानशिङ्गभाणिकाप्रेरणरामाक्रीडहल्लीसकरासकगोष्ठीश्रीगदितरागकाव्यादि।
काव्यानुशा० ८-४- पृ० ३२७

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में रासक का लक्षण हेमचन्द्र के लक्षणसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है किन्तु उसके नृत्यगीत वाले पहलू को पूर्ण से रूप माना है[१]।

वाग्भट्ट ने भी हेमचन्द्र का अनुसरण करते हुए उसे गेय रूप में स्वीकार किया है[२]। हां विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में रासक के लक्षण पर विचार करते हुए पात्र, वृत्ति आदि की पूर्ण रूप में व्याख्या करने का प्रयत्न किया[३] है।

महाकवि स्वयंभू ने अपने छन्द ग्रन्थ में 'रास' का लक्षण बतलाते हुए उसे जन-मन अभिराम बतलाया है,। घत्ता, छड्डणिया, पद्धडिया तथा ऐसे ही अन्य सुन्दर छन्दों से युक्त रासाबन्ध काव्य जन-मनअभिराम होता है[४]। इसके बाद ही कवि ने २१ मात्रावाले रासा छन्द का लक्षण भी दिया है। स्वयंभू के इस छन्दलक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में रासाबन्ध छन्द प्रचलित था। उस रासक या रासा छन्द के लक्षण पर विचार करने से अब्दुलरहमान का 'सन्देश रासक, अपभ्रंश भाषा का सुन्दर काव्य-ग्रन्थ कहा जा सकता है[५]। अन्य अनेक रास यद्यपि इस कोटि के नहीं हैं परन्तु वे जीवन परिचयात्मक रास भी अपनी महत्ता कम नहीं रखते।

कवि शारङ्गधर के द्वारा संगीत में दी हुई रास-सम्बन्धी कथा भी इस के मूलरूप पर बहुत कुछ प्रकाश डालती है। इस कथा में बतलाया गया है कि शिव नेताण्डव नृत्य किया और पार्वती ने लास्य नृत्य। पार्वती ने उसे बाणासुर की पुत्री उषा को सिखलाया, जो कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को विवाही गई थी। उषा ने द्वारावती की गोपियों को और गोपियों ने सौराष्ट्र देश की नव-युवतियों को सिखलाया, और वहां से वह समस्त भूमंडल में विस्तृत हुआ।

व्रज की रासलीला तो लोकप्रसिद्ध है ही। यह प्राचीन परम्परा अपभ्रंश भाषा के विकास काल में उच्च स्तर पर थी। विक्रम की १० वीं से १३ वीं शताब्दी तक इसमें अनेक रास रचे गये हैं और बाद में राजस्थानी हिन्दी और गुजराती मिश्रित अनेक रास रचनाएं देखने में आती हैं। विक्रम की १५ वीं शताब्दी में भ० सकल कीर्ति के लघुभ्राता एवं शिष्य अकेले ब्रह्म जिनदास के रचे हुए ४४ रासे मिलते हैं।

---

१. षोडश द्वादशाष्टौ वा यस्मिन् नृत्यन्ति नायिका.।
पिंडीबन्धादि विन्यासै रासकं तदुदाहृतम् ॥
पिंडनात् तु भवेत् पिंडी गुम्फनाच्छृंखला भवेत्।
भेदनाद् भेद्यको जातो लता जालापनोदतः॥
कामिनीभिर्भुवो भर्तुश्चेष्टितं यत्तुनृत्यते।
रागाद् वसन्तमासाद्य स ज्ञेयो नाट्यरासकः॥
नाट्य दर्पण ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा १९२९ भा० पृ० २१४

२. डोम्बिकाभाणप्रस्थानभाणिकाप्रेरणशिङ्गकरामाक्रीडहल्लीसकश्रीगदितरासक गोष्ठी प्रभृतीनि गेयानि। काव्यानुशासन २, पृ० १८

३. साहित्यदर्पण पृ० १०४-१०५।

४. घत्ता-छड्डणिआहि पद्धडिआहि सुअण्णरूएहिं।
रासाबंधो कव्वे जण-मण-अहिरामओ होइ॥ ८-४९

५. एक्कवीसमत्ता णिहणउ उद्दामगिरु,
चउदसाइ विस्सामहो भगण वि रइउ थिरु
रासाबंधु समिद्धु एउ अहिराम अरू॥ ८-५०

रास परम्परा का उद्देश्य

किसी व्यक्ति विशेष, या देवी देवता की आराधना, और साधु या किसी सेठ की जीवन-गाथा को अंकित करने में, अथवा किसी विरहिणी नारी के सन्देश को उसके विरही पति तक पहुँचाने के लिए अथवा आत्म-सम्बोधन के लिए रासा साहित्य की सृष्टि की गई है।

अपभ्रंश का प्राचीन 'चर्चरी' रास

उपलब्ध रास-रचनाओं में उद्योतनसूरि का चर्चरी रास सबसे पुराना है[1]। यह कुवलयमालाकहा के प्रारम्भ में निबद्ध है। इसकी रचना सम्राट् वत्सराज के समय जालौर (जावालिपुर) के आदिनाथ के मन्दिर में बैठ कर शक संवत् ७०० (वि० सं० ८३५) में की गई थी। इसमें बतलाया गया है कि—मनुष्य सचेत होकर काम करे, अन्यथा मृत्यु के घेर लेने पर कुछ भी नहीं हो सकेगा[2]। इस रास में चार ध्रुवकों की परिपाटी है, जिनमें एक ध्रुवक—जहाँ कामोन्मादक रस का जनक है वहाँ दूसरा विषय वासना से परान्मुख करने वाला है, तीसरा ध्रुवक अशुचि मल-मूत्रादि से संयुक्त घृणित अस्थिपंजर को दिखाकर ज्ञान और विवेक की ओर ले जाता है तो चौथा ध्रुवक वैराग्य की ओर आकृष्ट करता है। इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैन कवियों की रास-रचना का मूल उद्देश्य राग से हटाकर जनसाधारण को ज्ञान-वैराग्य की ओर आकर्षित कर हित के मार्ग में संलग्न करना रहा है।

उद्योतनसूरि की इस कृति में अनेक रसों का संमिश्रण है। इसमें भगवान् महावीर के गणधर सुधर्म स्वामी की एक जीवन घटना को अंकित किया गया है—'वे एक दिन अकेले ही एक ऐसे वन में गए जहाँ ५०० भयंकर डाकुओं का समूह रहता था। वहाँ उन्होंने 'चर्चरीरास' युक्त, एक गान गाया और ऐसा नृत्य किया कि डाकू दल ने सदा के लिए डाकेजनी छोड़कर आत्म-बोध प्राप्त किया[3]। इससे इस रास की महत्ता ज्ञात होती है।

उपमिति भव-प्रपंचा कथा के अन्तर्गत 'रिपुदारणरास' नाम का एक रास है। जिसकी रचना कवि सिद्धर्षि ने वि० सं० ९६२ में की थी। यह कृति संस्कृत भाषा के ५ ध्रुवक पदों में रची गई है। उसका नाम सार्थक है और वह गान, नृत्य, लय आदि से समन्वित हैं। इसमें वृहद् देश के सार्वभौम राजा तपन द्वारा सिद्धार्थपुर के मिथ्यावादी और अहंकारी उद्दण्ड राजा रिपुदारण को तांत्रिक योगी से दण्ड दिलाने या उसे वश में कर उसके विनाश करने का उल्लेख किया गया है। रिपुदारण की

---

१ देखो, कुवलयमाला कथा पृ० ४

२ संबुज्झह किं ण बुज्झह एत्तिए वि मा किंचि मुज्झह।
कीरउ जं करियव्वयं पुण ढुक्कइ तं करियव्वयं॥

कुवलयमाला पृ० ४

३ 'जहा तेण केवलिणा अरण्णं पविसिऊण पंच-चोर-सयाइं रास-णच्चणच्छलेण महामोहग्गहगहियाइं अक्खिविऊण इमाए चच्चरीए संबोहियाइं।' × × × एवं च जहा काम-णिव्वेओ तहा कोह-लोहमाण-मायादीणं कुलित्ययाणं च। समकालं चिय सव्व-भाव-वियाणएण गुरुणा सव्वण्णुणा तहा तहा गायंतेण ताइं चोराणं पंच वि सयाइं संभरिय-पुव्व-जम्म-वुत्तंताइं पडिवण्ण-समण-लिंगाइं तहा कयं जहा संजमं पडिवण्णाइं ति।'

—कुवलयमाला पृ० ४-५।

उद्दण्डता का उल्लेख उक्त रास के—'यो हि गर्वमविवेक भरेण करिष्यते' वाक्य से ज्ञात होता है[१] इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में अन्य कोई प्राचीन रास देखने में नहीं आया।

रासक-रचनाओं में कई रचनाएँ उपदेशक भावना के साथ सम्बोधक भावना से ओत-प्रोत हैं। इन रास-रचनाओं से ज्ञात होता है कि पुरातन काल में जो रास या रासक रचनाएँ रची जाती थीं, वे सारगर्भित होती थीं। किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों उनका विस्तार होता गया त्यों-त्यों उन रचनाओं की सार-परकता भी कम होती गई।

रास या रासक रचनाएँ जैन सम्प्रदाय के अतिरिक्त हिन्दू सम्प्रदाय में भी पाई जाती हैं। परन्तु जैनियों में इसका रिवाज बहुत पुराना है। वीर कवि के विक्रम संवत् १०७६ में रचित 'जम्बूसामिचरिउ' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उनके पिता कविवर देवदत्त ने अपभ्रंश भाषा में 'अम्बादेवी चर्चरी रास' नामक ग्रन्थ बनाया था।[२] जिसका रचनाकाल संवत् १०५० के लगभग है। यह रास ताल, स्वर, लय और नृत्य के साथ गाया जाता था। यह रचना अभी अनुपलब्ध है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रासो की रचनाएँ अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती भाषाओं में चारसौ-पांचसौ होंगी, उनमें दिगम्बर रासा-ग्रन्थों की संख्या २०० के लगभग है। दिगम्बर सम्प्रदाय का रासा साहित्य अभी अप्रकाशित है। उसके प्रकाश में आने पर अनेक ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश पड़ सकेगा।

जैनेतर कवियों ने भी रास ग्रन्थ बनाये हैं। उनमें 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो', 'खुमान रासो' और 'सन्देश रासो' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे पुराना पृथ्वीराज रासो बतलाया जाता है, परन्तु उसका वर्तमानरूप बहुत-कुछ अस्त-व्यस्त है, तो भी वह अपभ्रंश भाषा के बहुत नज़दीक है। हां, उसकी कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ जरूर खटकने वाली हैं। उनका उपलब्ध इतिहास के साथ ठीक मेल नहीं बैठता। अतः वह आज भी चर्चा का विषय बना हुआ है। मुसलमान कवि 'अब्दुलरहमान' का सन्देश रासक उल्लेखनीय है। यह रचना सिंघी सीरीज बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय बम्बई से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और त्रिपाठी के सम्पादन में इसका हिन्दी अनुवाद सहित एक नया संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है। उसमें उसकी कई ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है।

रासक रचनाओं के प्रकार

रास या रासो रचनाएँ तीन प्रकार की दृष्टिगोचर होती हैं। पहली राग परक अर्थात् शृङ्गार तथा विरहसूचक, दूसरी अध्यात्मरस से युक्त या उपदेशपरक और तीसरी जीवन-चरित सम्बन्धी। इनमें अब्दुलरहमान की कृति संदेश रास प्रथम प्रकार की रचना है। इसमें एक विरहिणी नायिका का विरह-सूचक-सन्देश विरही पति के पास पहुंचाने का वर्णन किया गया है। जैसा कि उस ग्रन्थ के निम्न दोहों से स्पष्ट है।

जसु पवसंत ण पवसिआ मुइअ विओइ ण जासु।
लज्जिज्जइ संदेसडउ, दिंती पहिय पियासु ॥३७॥

हे पथिक! जिसके प्रवास करते हुए प्रवास नहीं किया और न जिसके वियोग से मरी ही, उस प्रिय को सन्देश देती हुई लज्जित हो रही हूं।

---

१. देखो, उपमितिभवप्रपंच कथा प्रस्ताव ४ श्लोक ४३७ से ४४२।
२. चच्चरि बंधि विरइउ सरसु गाइज्जइ संतिउ तारजसु।
णच्चिज्जइ जिण पय सेवर्याहि, किउ रासउ अंबादेवर्याहि ॥ —जम्बूस्वामिचरित १—४

आगे नायिका उस पथिक से कहती है कि—'सन्देश बहुत विस्तृत है परन्तु मुझ नहींकहा से जाता। जो कनगुरिया की मुंदरी (अंगूठी) थी वह बांह में समा जाती है[1]। इससे उसके विरह-सम्बन्धी परितापका अन्दाज लगाया जा सकता है।

दूसरी रचनाएँ अध्यात्मरस संयुक्त हैं, जिनमें राग से विराग उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। उनमें आत्म-सम्बोधजनक उपदेश की प्रधानता है। जैसा कि कुवलयमाला के उक्त 'चर्चरी रास' में अङ्कित है। देवभक्ति रूप रचनाएँ भी जहां देव में अनुरागवर्धक हैं वहा देह-भोगों से विराग की भी संसूचक हैं। इसी से उनकी गणना अलग नहीं की है। आध्यात्मिक रचनाओं में कवि विनयचन्द्र का चूनडी-रास, निर्झरपंचमीकहा रास तथा पण्डित योगदेव का 'सुव्रतानुप्रेक्षारास' और जल्हिगका अनुप्रेक्षा रास आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। कवि लक्ष्मीचन्द का दोहा अनुपेक्खारास भी महत्वपूर्ण कृति है, जो संवेग-निर्वेद भाव की संसूचक है। इन रचनाओं में संसार और शरीर के स्वरूप का निर्देश करते हुए वैराग्य की अनुपम छटा को जागृत किया गया है, और कर्मास्रव तथा कर्मबन्ध से छुड़ाने का यत्न किया गया है। साथ ही बारह भावनाओं द्वारा वस्तुतत्त्व का विवेक कराते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

तीसरी प्रकार की रासक रचनाओं में किसी व्यक्ति विशेष राजा, देवी, देवता या सामान्य पुरुष का जीवन-परिचय अंकित किया हुआ मिलता है। ऐसे अनेक रास लिखे गये हैं, जैसे जंबूसामिरास, बाहुबलीरास, सुकमालसामिरास, पृथ्वीराज रासो और अम्बादेवीरास आदि। ये सब रास ग्रन्थ एक प्रकार के चरित रास हैं। एक व्यक्ति विशेष के जीवन की मुख्यता से लिखे गए हैं। परन्तु उनमें से जैन चरित रासो में जीवन-घटनाओं के परिचय के साथ सांसारिक देह-भोगों से विरक्ति दिखलाते हुए आत्म-साधना की ओर ले जाने का स्पष्ट प्रयास किया गया है।

छन्द ग्रन्थ

अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों, मुक्तक-काव्यों और चरितात्मक, स्तुत्यात्मक तथा रास आदि ग्रन्थों में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में वर्णवृत्तों का और अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। पर वहाँ वर्ण-वृत्तों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। अपभ्रंश कवियों ने संस्कृत के उन्हीं छन्दों को ग्रहण किया है, जिसमें उन्हें विशेष प्रकार की गति मिली है और इसीसे उन्होंने संस्कृत वर्ण-वृत्तों में अपनी कुछ इच्छानुसार सुधार या परिवर्तन और परिवर्धन कर उन्हें गान तथा लय के अनुकूल बना लिया है। छन्दों में अन्त्यानुप्रास की परम्परा अपभ्रंश कवियों की देन है। इससे पद्य की ज्ञेयरूपता अधिक वृद्धि को प्राप्त हुई। अपभ्रंश के कवियों ने अन्त्यानुप्रासका प्रयोग प्रत्येक चरण के अन्त में तो किया ही है; किन्तु उसका प्रयोग कहीं-कहीं मध्य में भी हुआ है। तुकान्त या तुक का प्रयोग लय को उत्पन्न करना या उसे गति प्रदान करना है। अथवा ऐसी शब्द योजना का नाम ही तुक है। प्राकृत कवियों ने प्राय: मातृक-छन्दों का ही प्रयोग किया है उनमें तुक का प्रयोग नहीं पाया जाता। हिन्दी के तुलसीदास आदि कवियों की रचनाओं में चौपाई या दोहा छन्द ही आता है किन्तु अपभ्रंश कवियों की कड़वक शैली में सभी वर्ण और मात्रिक-छन्दों को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इतना ही नहीं किन्तु संस्कृत के वर्ण वृत्तों से उन्होंने एक ही छन्द में नवीनता उत्पन्न कर अनेक नूतन छन्दों की सृष्टि भी की है। संस्कृत के

१. संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहणु न जाइ।
जो कालंगुलि मूंदडउ, सो बाहडी समाइ॥ संदेश रासक

मालिनी छन्द में प्रत्येक पंक्ति में ८ और ७ अक्षरों के बाद यति के क्रम से १५ अक्षर होते हैं। उसे अपभ्रंश भाषा के कवि ने प्रत्येक पंक्ति को दो भागों में विभाजित कर यति के स्थान पर तथा पंक्ति की समाप्ति पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर छन्द को नवीन रूप में ढाल दिया है यथा—

"विविह रस विसाले, णेय कोऊ हलाने। ललिय वयण माले, अत्थ संदोह साले।
भुवण-विदिद णामे, सव्व-दोसो वसामे। इह खलु कह कोसे, सुन्दरे दिण्ण तोसे॥"
सन्नयण सिर सूलं सज्जणाणंद मूले। पसरइ अविरोलं मागहाणं गुरोलं।
सिरि णविय जिणिदो, देह वायं वणिदो। वसु हय जुइ जुत्तो, मालिणी छंदु वुत्तो॥ सुदं० ३-४।

दो छन्दों को मिलाकर अनेक नये छन्द भी बनाये गए हैं, जैसे छप्पय कुंडलिया, चान्द्रायन और वस्तु आदि।

अपभ्रंश भाषा के काव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—

पज्झटिका, पादाकुलिक, अलिल्लाह, रड्डा, प्लवंगम, भुजंग प्रयात, कामिनी, तोटक, दोधक, रागिणी, घत्ता, दोहा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वंसस्थ, आरणाल, तोमर, दुवई, मदनावतार, चन्द्रलेखा, कुवलयमालिनी, मोत्तियदाम, उपजाइ विलासिनी, शालिभंजिका, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, प्रियंवद, अनंत-कोकिला, रथोद्धता, मंदारदाम, आवली, नागकन्या, पृथिवी, विद्युन्माला, अशोकमालिनी और निसेणी आदि।

इससे यह सहज ही ज्ञात होता है कि अपभ्रंश कवि छन्दों की विशेषताओं से परिचित थे, इसी से वे अपने ग्रन्थों में विविध छन्दों का प्रयोग कर सके। कवि नयनन्दी ने अपने 'सकल विधि-विधान काव्य' में ६२ मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। इससे प्रमाणित होता है कि नयनन्दी छन्द-शास्त्र के महान वेत्ता थे।

कवि श्रीचन्द ने 'रयणकरण्ड सावयायार' की १२वीं संधि के तीसरे कडवक में कुछ अपभ्रंश छन्दों का नामोल्लेख किया है।

णिरयाल, आवली, चर्चरीरास, रासक, ध्रुवक, खडय, उपखडय, घत्ता, वस्तु, अवस्तु, अडिल, पद्धडिया, दोहा, उपदोहा, हेला, गाहा, उपगाहा, आदि छन्दों के नाम दिये हैं[1]।

इसी तरह कवि लक्ष्मण ने अपने 'जिनदत्तचरिउ' की चार संधियों में वर्णवृत्त और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

विलासिणी, मदनावतार, चित्तगया, मोत्तियदाम, पिंगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जंभेटिया, भुजंगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमिणी, चच्चर, पंचचामर, णराच, निभंगिणिया, रमणीलता, चित्तिया, भमरपय, मोणय, अमरपुर, सुन्दरी और लहुमत्तिय आदि।

अपभ्रंश में अनेक छन्द ग्रंथ भी लिखे गये होंगे। परन्तु वे आज उपलब्ध नहीं हैं। केवल स्वयंभू का छन्द ग्रंथ प्राप्त है यह अपभ्रंश की महत्वपूर्ण देन है। परन्तु वह जनरलों में प्रकाशित होने के कारण लोगों के पठन-पाठन में बहुत कम आ सका है, अतएव बहुत से लोग उसकी महत्ता से अनभिज्ञ ही हैं। इस ग्रंथ की

1. खंडनिरयाल आवलियहिं, चच्चरि रासय रासहिं ललियहिं।
वत्थु अवत्थु जाइ विसेसहिं, अडिल मडिल पद्धडिया घत्तहिं।
दोहय उवदोहय अवभंसहिं, दुवई हेला गाहु व गाहहिं।
धुवय खंड उवखंडय घत्तहिं, सम-विसमद्ध समेहिं विचित्तहिं॥ रयणकरंडसावयायार

एक अपूर्ण प्रति रामनगर में सं० १५२७ की लिखी हुई प्रो० एच० डी० वेलंकर महोदय को प्राप्त हुई थी और उन्होंने उसे सम्पादित कर प्रकाशित कराया[१]। इस छन्द ग्रंथ के पहले तीन अध्यायों में प्राकृत के वर्ण वृत्तों का और अन्त के ५ अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का कथन किया गया है। और छन्दों के अनेक उदाहरण भी पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से तथास्वोपज्ञ ग्रन्थों से भी दिये गये हैं। इस ग्रंथ का प्रारम्भिक अंश नहीं है, और न परिचयात्मक अन्तिम प्रशस्ति ही है। हां, ग्रंथ के अंतिम अध्याय में गाहा, अडिल्ला, पद्धडिया आदि छन्दों के जिनदेव की स्तुतिपरक स्वोपज्ञ उद्धरण भी दिए हुए हैं[२]। छन्द ग्रंथ के सातवें अध्याय का जो २७वां पद्य घत्ता छन्द के उदाहरण में दिया गया है वह 'पउमचरिउ' की पांचवीं संधि का पहला पद्य है[३]। ६-४२ का 'वम्महतिलअ' का जो उद्धरण है वह राम कथा की ६५वीं सन्धि का प्रथमपद्य है[४]। इसी तरह ६-७४ में 'रणावली' का जो उदाहरण दिया है वह पउमचरिउ की ७७वीं संधि के १३वें कडवक का अन्तिम पद्य है[५]। और छटे अध्याय का ७१वां पद्य पउमचरिउ की ७७वीं संधि का प्रारम्भिक पद्य है[६]। इनसे स्पष्ट है कि कवि ने अपने ग्रंथ के भी उद्धरण दिए हैं[७]। और अन्य कवियों के ग्रंथों पर से उद्धरण देकर कवि ने अपने छन्द नैपुण्य को सूचित किया है।

कविवर जयकीर्ति ने छन्दोनुशासन में स्वयंभूदेव के मत का उल्लेख करते हुए नन्दिनी छन्द "तौ ज्यौ तथा पद्मनिधिर्जतौ जरौ। स्वयम्भूदेवेश मते तु नन्दिनी।" वाक्य के साथ दिया है जिससे जयकीर्ति के सामने स्वयंभू का छन्द ग्रंथ रहा है। जयकीर्ति कन्नड़ प्रान्त के निवासी दिगम्बर विद्वान् थे। इनका समय विक्रम की दशवीं शताब्दी या उससे पूर्व होना चाहिए; क्योंकि दशवीं शती के कवि असग ने इनका उल्लेख किया है। इनके छन्दोऽनुशासन की प्रति सं० ११९२ की लिखी हुई जैसलमेर के भंडार में मिली है।[८] इस से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वयंभू का उक्त छन्द ग्रंथ ७वीं शताब्दी की रचना है। स्वयंभू

१. देखो, रायल एशियाटिक सोसाइटी वाम्बे जनरल सन् १९३५ पृ० १८-५८।
और वोम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जिल्द ५ नं० ३ नवम्बर १९३६।"

२. "तुम्ह पअ कमल मूले अम्हं जिण दुःख भावत विआइं।
दुरु दुरुल्लियाइं जिणवर जं जाणसु तं करेज्जासु ॥३८
जिणणामें छिंदे वि मोहजालु, उप्पज्जइ देवल समिसालु।
जिण णामें कम्मइं णिद्दलेवि, मोक्खग्गे पइसिअ सुह-लहेवि ॥"४४

३. "अक्खइ गउतमसामि, तिहुअण लद्ध पसंसहो।
सुण सेणिय उप्पत्ति, रक्खस-वाणर-वंसहो ॥"

४. "हणुवंतरणे परिवेढिज्जइं णिसियरेंहि।
णं गयणयले वाल दिवायरु जलहरेंहि ॥

५. "सुरवर डामरु रावणु दट्ठु जासु जग कंपइ।
अण्णुकहिं महु चुक्कइ एवणाइ सिहिजंपइ ॥"

६. "भाइ विओएं जिह जिह करइ विहीसणु सोउ।
तिह तिह दुक्खेण सहरि वाल वाणर लोउ ॥

७. इस ग्रंथ का विशेष परिचय जैन साहित्य और इतिहास में पृष्ठ २०५ से २०७ तक देखें।

८. संवत् ११९२ आषाढ़ सुदि १० शनौ लिखितम्।

का यह छन्द ग्रंथ हिन्दी अनुवाद के साथ सम्पादित होकर प्रकट होना चाहिए, जिससे छन्द शास्त्र के रसिक जन लाभ उठा सकें।

अपभ्रंश व्याकरण

अपभ्रंश भाषा के जो व्याकरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्राचीन समय में अपभ्रंश भाषा में व्याकरण अवश्य लिखे गए होंगे, किन्तु वे वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। स्वयंभूदेव के पउमचरिउ के ५ वें पद्य में यह बतलाया है कि—अपभ्रंश वाला मदोन्मत्त हाथी तब तक ही स्वच्छन्दता से विचरण करता है जब तक कि उस पर स्वयंभू-व्याकरणरूप अंकुश नहीं पड़ता[1]। त्रिभुवनस्वयंभू के इस उल्लेख से कि स्वयंभूदेव ने अपभ्रंश का व्याकरण भी बनाया था, परन्तु खेद है कि वह इस समय उपलब्ध नहीं होता। उसीके छठे पद्य में स्वयंभू को पंचानन (सिंह) की उपमा दी गई है। जिसकी सच्छन्दरूप विकट दाढ़ें, जो छन्द और अलंकाररूप नखों से दुष्प्रेक्ष्य है और व्याकरणरूप जिसकी केसर (अयाल) है[2]। इससे भी उनके व्याकरण ग्रन्थ होने की सूचना मिलती है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि स्वयंभू ने छंद और अलंकार के ग्रन्थ भी बनाये थे। जिनमें छन्द ग्रन्थ तो उपलब्ध भी है। शेष नहीं।

अपभ्रंश के प्रचलित व्याकरणों में हेमचन्द्र का व्याकरण सबसे अच्छा है। इस व्याकरण का अध्ययन करने से यह विदित है कि उसमें कई भाषाओं का मिश्रण है। प्राकृत और शौरसैनी इन दो भाषाओं का मिश्रण तो ग्रन्थकर्ता ने स्वय ही स्वीकार किया है जैसाकि उनके निम्न वाक्यों से प्रकट है[3]—"प्रायो ग्रहणाद्यस्यापभ्रंशे विशेषो वक्षते तस्यापि क्वचित् प्राकृत शौरसैनी वच्च कार्यं भवति।" हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के स्वपरिवर्त्तन में काफी स्वतत्रता दी है किन्तु परमात्मप्रकाश के कर्त्ता जोइन्दु ने यह स्वतंत्रता नहीं दी है। व्यंजनों के परिवर्तन में (४-३९६ सूत्र में) असंयुक्त 'क-ख, त-थ, प-फ, के स्थान में क्रम से 'ग-घ, द-ध, ब-भ' होते हैं। किन्तु उसका निर्वाह उनके द्वारा उद्धृत उदाहरणों में नहीं हो सका है फिर भी यह व्याकरण अपनी विशेषता रखता ही है।

नाटकों में अपभ्रंश का प्रयोग

विक्रम की द्वितीय शताब्दी के विद्वान अश्वघोष के 'सारिपुत्र प्रकरण नाटक में 'मक्कट हो' रूप उल्लिखित मिलता है जो 'मर्कटस्य' का अपभ्रंश रूप माना जा सकता है। चतुर्थ शताब्दी के भास के 'पंचरात्र, नाटक में ग्वालों के संवाद में मागधी का प्रयोग होने से उसे भी मागधी अपभ्रंश कहा जा सकता है। जैसे पद्मंडलु पुय्यो...शतमण्डलः सूर्यः।

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'ओ' विभक्ति का अपभ्रंश की विभक्ति में परिवर्तित होने का समय ईसा की तृतीय शताब्दी अनुमानित किया है[4]।

---

१. तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भंस-मच्च (त्त) मायंगो।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो तच्छिरे पडइ ।५।

२. सच्छंद-वियड-दाढो, छंदो (दा) लंकार-णहर-दुप्पिच्छो।
वायरण-केसरड्ढो सयंभु-पंचाणणो जयउ ।६।

३. देखो, हेमचंद्र का प्राकृतव्याकरण ४।३२९ सूत्र।

४. इण्डो आर्यन एण्ड हिन्दी पृष्ठ ९९

मुद्रा राक्षस के (लगभग चतुर्थ शताब्दी) दूसरे अंक में माथुर ने जिस बोली का प्रयोग किया वह मागधी होते हुए भी उकार वहुला होने के कारण मागधी अपभ्रंश कहा जा सकता है। यद्यपि टीकाकारों ने उसे 'टक्की' बतलाया है, किन्तु उसका शुद्ध रूप 'ठक्की' जान पड़ता है[१]।

कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक (ई० स० चतुर्थ शताब्दी) के चतुर्थ अंक में सोलह पद्य अपभ्रंश भाषा के दिये हुए हैं जिनमें के एक दो पद्य विभिन्न छन्दों के निम्न प्रकार हैः—

मइँ जाणियइँ मिअलोअणी णिसिअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णव तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ।

अर्थात् 'जब तक नई बिजली से युक्त श्यामलमेघ बरसने लगा, तब तक मैंने यही समझा था कि मेरी मृगलोचनी (प्रिया) को शायद कोई निशाचर हरण किये जा रहा है।'

'रे-रे हंसा किं गोविज्जइ, गइ अणुसारें मइं लक्खिज्जइ।
कइं पइं सिक्खिउ ए गइ-लालस, सापइं दिट्ठी जहण-भरालस ॥'

अपभ्रंश के इन पद्यों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि ईसा की चतुर्थ शताब्दी के समय अपभ्रंश में विभिन्न छन्दों में पद्य रचना होने लगी थी। यह बात और भी ध्यान में रखने लायक है कि प्राकृत भाषा में प्रायः तुकान्त छन्दों का प्रयोग नहीं मिलता, जबकि अपभ्रंश भाषा में इसकी बहुलता है, ध्वनि और पद-गठन भी इसी ओर संकेत करते हैं।

देशी भाषायें ही अपने शुद्ध अशुद्ध पदों के साथ अपभ्रंश में परिणित हुई हैं। उनका शुद्ध प्रतिष्ठित रूप प्राकृत कहलाता था और अपभृष्ट रूप अपभ्रंश। देशी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश में मिल जाता है—वह विरूप नहीं जान पड़ता, इसीसे कविजनों ने देशी भाषा को अपभ्रंश बतलाया है।

अपभ्रंश-साहित्य-सूची

अंबदेव सूरि —	समरारास (रचना सं० १३७१) (मुद्रित)
अब्दुल रहमान —	संदेश रासक (मुद्रित)
अभयगणि —	सुभद्राचरित (र० सं० १३६१)
अभयदेवसूरि —	जयतिहुअणस्तोत्र (र० च० १११९) (मुद्रित)
अमरकीर्तिगणी	नेमिनाथचरिउ (र०च० १२४४) षट्कर्मोपदेश (र०च० १२४७) पुरंदरविहाण कहा, महावीरचरिउ जसहरचरिउ, झाणपईव (अनुपलब्ध)
आसवाल	पासनाहचरिउ (र० च० १४७९)
उद्योतनसूरि —	कुवलयमाला (वि० सं० ८३५) (मुद्रित)

कण्हपा आदि चौरासी बौद्ध सिद्धों की दोहा कोष आदि रचनाएं प्रकाशित

कनककीर्ति	नन्दीश्वर जयमाला
कनकामर	करकंडुचरिउ (मुद्रित)
गुणभद्र भट्टारक	(वि० की १५वीं १६वीं शताब्दी) अणंतवयकहा, सवणबारसिविहाणकहा, पक्खवइ कहा, णहपंचमी कहा, चंदायणकहा, चंदणछट्ठी कहा, णरय उतारी दुद्धारसकहा, णिद्दुहसत्तमी कहा, मउडसत्तमी कहा, पुप्फंजलिवय कहा,

१. डा० कीथकृत संस्कृत ड्रामा पृ० ८९,१४१,१६६, पंजाब का वह प्रदेश 'ठक्क' ही कहलाता है।

	रयणत्तयविहाण कहा, दहलक्खणवय कहा, लद्धविहाण कहा, सोलहकारण वयविहि, सुयंधदहमीकहा। (भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित) हो रही है
चउमुंह (चतुर्मुख)	पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ, पंचमी कहा (अनुपलब्ध)
जयदेव	भावनासंधि (र० सं० १६०६)
जल्हिग	अनुप्रेक्षारास
जिनदत्तसूरि	उपदेस रसायन (सं० ११३२-१२१०)
जिनदत्तसूरि	चर्चरी (रास)
जिनपद्मसूरि	स्थूलभद्रफाग (सं० १२५७ के आस-पास) मुद्रित
जिनप्रभसूरि	अनाथसंधि, अंतरंगरास, अंतरंगविवाह।
जिनप्रभसूरि	आत्मसम्बोधनकुलक
जिनप्रभसूरि	मोहराजविजय
जिनप्रभसूरि	वज्रस्वामिचरिउ (सं० १३१६)
जिनभद्र	सुभाषितकुलक
जिनवरदेव	बुद्धिरसायण
तेजपाल	संभवनाथचरिउ, वरांगचरिउ (र० सं० १५०७), पार्श्वपुराण
त्रिभुवनस्वयंभू	पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ पंचमीकहा (विक्रम ९वीं शताब्दी का अन्त)
दामोदर	णेमिणाहचरिउ (र० सं० १२८७)
दामोदर	सिरिपालचरिउ, णेमिणाहचरिउ, चंदप्पहचरिउ
देवचन्द	पासणाहचरिउ (लिपि० सं० १४९४)
देवदत्त	वरांगचरिउ, शान्तिनाथपुराण, अंबादेवीरास (अनुपलब्ध) रचनाकाल सं० १०५० के लगभग
देवनन्दि	रोहिणीवयकथा
देवसूरि	उपदेशकुलिक
देवसेन	सुलोयणाचरिउ
देल्हड	गयसुकमालरास (सं० १३००) के लगभग
धनपाल	भविसदत्तपंचमीकहा (वि० की १०वीं शताब्दी)
धनपाल	बाहुबलीचरिउ (र० स० १४५४)
धर्मसूरि	जंबूस्वामि रास (र० सं० १२६६)
धवलकवि	हरिवंस पुराण (संभवत: विक्रमी ११वीं शताब्दी
धाहिल	पउमसिरिचरिउ (मुद्रित)
नयनन्दी	सुदंसणचरिउ, सयलविहिविहाणकव्व (र० सं० ११०० के आस-पास)
नरसेन	सिद्धचक्कविहि, जिणरत्तिविहाण कहा (लिपि० सं० १५१२ से पूर्ववर्ती)
नेमचन्द	रविवउकहा, अनन्तवयकहा
पद्मकीर्ति	पासणाहचरिउ (वि० सं० ९९९)
पुष्पदंत	महापुराण, (वि० सं० १०१६-१०२२) नागकुमारचरिउ, जसहरचरिउ मुद्रित

पूर्णभद्रमुनि	सुकमालचरिउ
प्रज्ञातिलक —	कच्छूलीरास (सं० १३६२)
वालचन्द्रमुनि	निरय-दुह-सत्तमीकहा
बूचिराज (वल्ह)	मयणजुज्झ (वि० सं० १५८६)
भगवतीदास	मृगांककलेखाचरिउ, (१७००), मउडसत्तमीकहा, सुयंध दसमी कहा।
महणसिंह —	त्रिंशत् जिनचउवीसी
महाचन्द	शान्तिनाथपुराण (र० सं० १५८७)
महेश्वरसूरि —	संयममंजरी
माणिकचन्द	अमरसेनचरिउ (सं० १५७७) णागकुमारचरिउ (सं० १५७६)
यशःकीर्ति	चंदप्पहचरिउ (संभवतः १२वीं १३वीं शताब्दी)
यशःकीर्ति	पाण्डवपुराण (र० सं० १४९७) हरिवंसपुराण (र० सं० १५००) जिनरत्तिविहाण कहा रविवउकहा (आदित्यवय कहा)
योगीन्द्रदेव	परमप्पयासु, जोयसार
रइधू	पउमचरिउ (वलहद्दचरिउ) हरवंसपुराण, आदिपुराण, (अनुपलब्ध) पासपुराण, सम्मत्तगुणनिधान, मेहेसरचरिउ, जीवंधरचरिउ, जसहरचरिउ, पुण्णासवकहाकोस, धनकुमारचरिउ, सुकोसलचरिउ, सम्मइ जिनचरिउ, सिद्धचक्कवयविहि, वृत्तसार, सिद्धान्तार्थसार आत्मसम्बोहकव्व, अणथमीकहा, सम्मत्तकउमदी, (करकंडुचरिउ, सुदंसणचरिउ, अनुपलब्ध) दशलक्षण जयमाला, षोडसकारण जयमाला, सोहंथुदि, मुद्रित अनेकांत वर्ष १३ कि० ४) सम्यक्त्व भावना तेरापंथीमंदिर जयपुर गु० नं० २५७१)
राजशेखरसूरि	नेमिनाथफाग (सं० १३७१)
रामसेनमुनि	दोहापाहुड़ (वि० १० वीं शताब्दी)
रत्नप्रभसूरि	अंतरंगसंधि (सं० १३९२)
लक्ष्मण (लाखू)	जिणदत्तचरिउ, (सं० १२७५) अणुवयरयणपईव (सं० १३१३)
लक्ष्मण	नेमिनाथचरिउ (आसाइयपुरी)
लक्ष्मीचन्द	दोहाणुप्रेक्षारास (अनेकान्त वर्ष १२ किरण ६ पृ० २०२)
विजयसिंह	अजितनाथपुराण (१५०५)
विजयसेनसूरि —	रेवंतगिरिरास (वि० सं० १२८८) मुद्रित
विद्यापति —	कीर्तिलता मुद्रित
विनयचन्द	चूनडीरास, निर्झरपंचमीकहारास कल्याणकरास लिपि० सं० १४४५ दुद्धारसकहा
विनयचन्द्रसूरि	नेमिनाथचउपई (सं० १२५७)
विमलकीर्ति	सोखवइविहाणकहा, सुयंधदसमी कहा
वीरकवि	जंबूस्वामीचरिउ (र० सं० १०७६)
वीरकवि —	णाणसारकीपाथडी

विबुधश्रीधर	पासपुराण(र०सं० ११८९), वड्ढमाणचरिउ (र०सं० ११६०), चंदप्पहचरिउ (अनुपलब्ध)
शालिभद्रसूरि	पंचपंडवचरितरास (सं० १४१०)
शालिभद्रसूरि	भरतबाहुबलीरास (सं० १२४१) मुद्रित
शुभकीर्ति	शान्तिनाथचरिउ
श्रीचन्द	कहाकोसु, रयणकरंडसावयायार (र० सं० ११२०)
श्रीधर	सुकमालचरिउ (र० सं० १२०८)
श्रीधर	भविसदत्त पंचमीकहा (र० सं० १२३०)
श्रुतकीर्ति	हरिवंस पुराण(सं०१५५२) परमेष्ठीप्रकाशसार, धर्मपरीक्षा, जोगसार (१५५२)
सहणपाल	सम्यक्त्व कौमुदी
सागरदत्तसूरि	जंबूस्वामीचरित्र (सं० १०६०)
साधारण ब्रह्म	कोकिला पंचमीकहा, मुकुट सत्तमी, दुधारसी कथा, आदित्यवारकथा, तीन चउवीसीकथा पुष्पांजलिवयकहा, निर्दुहसत्तमी कथा निज्झरपंचमी कहा, अनुप्रेक्षा (सं० १५०८ से पूर्व)
सिद्धकवि	पज्जुण्णचरिउ, खंडित
सिंहकवि	" पूर्ण (उद्धारित, संभवतः १२वीं १३वीं शताब्दी)
सुप्रभाचार्य	सुप्पयदोहा (वैराग्यसार)
सोमप्रभसूरि	कुमारपाल प्रतिबोध (सं० १२४१) मुद्रित
स्वयंभू	पउमचरिउ, हरिवंसपुराण, पंचमीकहा, स्वयंभू व्याकरण (अनुपलब्ध)
हरइंद (अग्रवाल)	अणत्थमीकहा
हरइंद (हल्ल या जयमित्र)	वड्ढमाणकव्व, मल्लिनाथकव्व
हरिदेव	मदन पराजय संभवतः वि० की १५वी शताब्दी
हरिभद्र	सनत्कुमारचरिउ (सं० १२१६)
हरिभद्र	णेमिकुमारचरिउ मुद्रित
हरिषेण	धम्मपरिक्खा (सं० १०४४)
हेमचन्द्र	हेमशब्दानुशासन देशीनाममाला मुद्रित

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

पहली और दूसरी प्रशस्तियां क्रमशः 'पउमचरिउ और रिट्ठणेमिचरिउ' की हैं। उनके कर्ता कवि स्वयंभू व त्रिभुवन स्वयंभू हैं। स्वयंभू की रामकथा पउमचरिउ या रामायण बहुत ही सुन्दर कृति है। इसमें ९० सन्धियां हैं, जो पांच काण्डों में विभक्त हैं। विद्याधर काण्ड में २०, अयोध्याकाण्ड में २२, सुन्दर काण्ड में १४, और उत्तर काण्ड में १३ सन्धियां हैं। जिनमें स्वयंभूदेव रचित ८३ सन्धियां हैं, शेष उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रची गई हैं। ग्रन्थ में प्रारम्भिक पीठिका के अनन्तर जम्बूद्वीप की स्थिति, कुलकरों की उत्पत्ति, अयोध्या में ऋषभदेव की उत्पत्ति तथा जीवन-परिचय; लंका में देवताओं और विद्याधरों के वंश का वर्णन, अयोध्या में राजा दशरथ और राम-लक्ष्मण आदि की उत्पत्ति, बाल्यावस्था, जनक पुत्री सीता से

विवाह, राम-लक्ष्मण-सीता का वनवास, संबूकमरण, सीताहरण, रावण से राम-लक्ष्मण का युद्ध, सुग्रीव आदि से राम का मिलाप, लक्ष्मण के शक्ति का लगना, और उपचार आदि। विभीषण का राम से मिलना, रावणमरण, लंका-विजय, विभीषण को राज्य प्राप्ति, राम-सीता-मिलाप, अयोध्या को प्रस्थान, भरतदीक्षा व तपश्चरण, सीता का लोकापवाद से निर्वासन, लव-कुश उत्पत्ति, सीता की अग्नि परीक्षा, दीक्षा और तपश्चरण, लक्ष्मण मरण, राम का शोकाकुल होना, और प्रबुद्ध होने पर दीक्षा लेकर तपश्चरण करके कैवल्य प्राप्ति, और निर्वाण लाभ, आदि का सविस्तार कथन दिया हुआ है।

इस ग्रन्थ में रामकथा का वही रूप दिया हुआ है, जो विमलसूरि के पउमचरिउ में और रविषेण के पद्मचरित में पाया जाता है। ग्रन्थ में रामकथा के उन सभी अंगों की चर्चा की गई है जिनका कथन एक महाकाव्य में आवश्यक होता है। इस दृष्टि से पउमचरिउ को महाकाव्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ग्रन्थ में कोई दुरूहता नहीं हैं, वह सरल और काव्य-सौन्दर्य की अनुपम छटा को लिए हुए है। समूचा वर्णन काव्यात्मक-सौन्दर्य और सरसता से ओत-प्रोत है, पढ़ने के साथ ही मन रमने लगता है।

कविता की शैली जहां कथा-सूत्र को लेकर आगे बढ़ती है और वहां वह सरलता और स्वाभाविकता का निर्वाह करती है। किन्तु जहां कवि प्रकृति का चित्रण करने लगता है। वहां एक से एक अलंकृत संविधान का आश्रय कर ऊँची उड़ानें भरता है। गोदावरी की उपमा द्रष्टव्य है—गोदावरी नदी वसुधारूपी नायिका की बंकित फेनावली के वलय से अलंकृत दाहिनी बांह ही हो। जिसे उसने वक्षस्थल पर मुक्ताहार धारण करने वाले पति के गले में डाल रक्खा है।[1]

कवि को कुछ पंक्तियां वसुधा की रोम-राजि सदृश जान पड़ती हैं।[2]

युद्ध में लक्ष्मण के शक्ति लगने पर अयोध्या के अन्तः पुर में स्त्रियों का विलाप कितना करुण है 'दुःखातुर होकर सभी रोने लगे, मानों सर्वत्र शोक ही भर दिया हो। भृत्यजन हाथ उठा उठाकर रोने लगे, मानों कमलवन हिम पवन से विक्षिप्त हो उठा हो। राम की माता सामान्य नारी के समान रोने लगी, सुन्दरी उर्मिला हतप्रभ रोने लगी, सुमित्रा व्याकुल हो उठी, रोती हुई सुमित्रा ने सभी जनों को रुला दिया—कवि कहता है कि कारुण्यपूर्ण काव्य-कथा से किसके आंसू नहीं आ जाते[3]। भरत और राम का

१. "फेणावलि बंकियवलयालंकिय, णं महि वहु अहें तणिया।
जण-णिहि भत्तार हो मोत्तिय-हार हो, वांह पसारिय दाहिणिया॥
२. "कत्थवि णाणा विह रुक्खराइ, णं महिकुल वहु अहि रोम-राइं॥"
—पउमचरिउ
३. "दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ, णं चप्पिवि चप्पिवि भरिउ सोउ।
रोवइ भिच्च-यणु समुद्दहत्थु, णं कमल-संडु हिम-पवण घत्थु।
रोवइ अवरा इव राम जणणि, केक्कय दाइय तरु-सूल-खणणि।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय, रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय।
हा पुत्त पुत्त! केत्तहि गओसि, किह सत्तिएँ वच्छ थलें हओसि।
हा पुत्तु! मरंतुम जो हओसि, दइवेण केण विच्छो इओसि।
घत्ता—रोवंतिएँ लक्खण-मायरिएँ समल लोउ रोमा वियउ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ॥" १३
—पउमचरिउ ६९, १३

विलाप किसे अश्रु विगलित नहीं करता [1]। इसी तरह रावण की मृत्यु होने पर विभीषण और मन्दोदरी के विलाप का वर्णन केवल पाठकों के नेत्रों को ही सिक्त नहीं करता; प्रत्युत रावण-मन्दोदरी और विभीषण के उदात्त भावों का स्मरण कराता है[2]। इसी तरह अंजना सुन्दरी के वियोग में पवनंजय का विलाप-चित्रण भी संसार को विचलित किये बिना नहीं रहता।

ग्रन्थ में ऋतुओं का कथन तो नैसर्गिक है ही, किन्तु प्रकृति के सौंदर्य का विवेचन भी अपूर्व हुआ है। नारी-चित्रण में राष्ट्रकूट नारी का चित्रण बड़ा ही सुन्दर है।

कवि ने राम और सीता के रूप में पुरुष और नारी का रमणीय और स्वाभाविक चित्रण किया है। पुरुष और नारी के सम्बन्धों का जैसा उदात्त और याथातथ्य चित्रण सीता की अग्नि परीक्षा के समय हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रंथ में सीता के अमित धैर्य, साहस और उदात्त गुणों का वर्णन नारी की महत्ता का द्योतक है, उसके सतीत्व की आभा ने नारी के कलंक को धो दिया है।

ग्रन्थ का कथा भाग कितना चित्ताकर्षक है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। सहस्रार्जुन की जल क्रीड़ा का वर्णन अद्वितीय है[3]। युद्ध के वर्णन करने में भी कवि ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है जिसे पढ़ते ही सैनिकों के प्रयाण की पग-ध्वनि कानों में गूंजने लगती है और शब्द योजना तो उनके उत्साह की संवर्द्धक है ही[4]।

ग्रंथ में वीर, शृङ्गार, करुण और शांत रसों का मुख्य रूप से कथन है। वीर रस के साथ शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति अपभ्रंश काव्यों में ही दृष्टिगोचर होती है। अलंकारों में उपमा और श्लेष का प्रयोग किया गया है।

दूसरी प्रशस्ति 'रिट्ठणेमिचरिउ' (हरिवंश पुराण) की है। जिसमें ११२ सन्धियां और १६३७ कड़वक हैं। इनमें ७७ संधियां स्वयंभू द्वारा रची गई हैं। शेष १३ संधियां स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवनस्वयंभू की बनाई हुई हैं; किन्तु अंतिम कुछ संधियां खंडित हो जाने के कारण भट्टारक यशःकीर्तिने अपने गुरु गुण-कीर्ति के सहाय से गोपाचल के समीप स्थित कुमार नगर के पणियार चैत्यालय में उनका समुद्धार किया था और परिणामस्वरूप उन्होंने उक्त स्थानों में अपना नाम भी अंकित कर दिया। ग्रंथ में चार काण्ड हैं यादव, कुरु, युद्ध और उत्तर कांड।

प्रथम कांड में १३ संधियां है। जिनमें कृष्ण जन्म, बाल-लीला विवाह-कथा, प्रद्युम्न आदि की कथाएं और भगवान् नेमिनाथ के जन्म की कथा दी हुई है। ये समुद्र विजय के पुत्र और कृष्ण के चचेरे भाई थे। दूसरे कांड में १९ संधियां हैं, जिनमें कौरव-पांडवों के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा आदि का कथन,

---

१. देखो पउमचरिउ संधि ६७।३-४। संधि ६६, १०-१२।

२. देखो पउमचरिउ ७६, ४-११, ७६-२-३

३. देखो संधि १४, ६।

४. केवि जम रुद्ध, सण्णद्ध कोह। केवि सुमित्त-पुत्त, सुकलत्त-चत्त-मोह।
केवि णीसरंतिवीर। भूधरव्व तुंग धीर।
सायरव्व अप्पमाण, कुंजरव्व दिण्णदाण।
केसरिव्व उद्धकेस, चत्त सव्व-जीवियास।
केवि गामि-भत्ति-वंत, मच्छिरग्गि-पज्जलंत।
केवि आहवे अभंग, कुं भुसं पसाहि अंग। —पउमचरिउ ५७-२

परस्पर का वैमनस्य, युधिष्ठिर का जुआ खेलना और पराजित होना, द्रोपदी का चीर हरण, तथा पांडवों के वारह वर्ष के वनवास आदि का विस्तृत वर्णन है।

तृतीय कांड में ६० संधियां हैं कौरव-पांडवों के युद्ध वर्णन में पांडवों की विजय और कौरवों की पराजय आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है और उत्तर कांड की २० संधियों में कृष्ण की रानियों के भवांतर, गजकुमारका निर्वाण, द्वीपायन मुनि द्वारा द्वारिका-दाह, कृष्ण-निधन, वलभद्र-शोक, हलधर दीक्षा, जरत्कुमार का राज्य लाभ, पांडवों का गृह-वास, मोह-परित्याग, दीक्षा, तपश्चरण और उपसर्ग सहन, तथा उनके भवांतर आदि का कथन, भगवान नेमिनाथ के निर्वाण के बाद ७७वीं संधि के पश्चात् दिया हुआ है। रिट्ठणेमिचरिउ की संधि पुष्पिकाओं में स्वयंभू को धवलइया का आश्रित, और त्रिभुवन स्वयंभू को वन्दइया का आश्रित वतलाया है।

मत्स देश के राजा विराट का साला कीचक जिस समय सवके सामने द्रोपदी का अपमान करता हैं। कवि कल्पना द्वारा उसे मूर्तिमान वना देता है।

यम दूत की तरह कीचक ने द्रोपदी का केश-पाश पकड़कर खींचा और उसे लात मारी। यह देख कर राजा युधिष्ठिर मूर्छित हो गए। भीम रोष के मारे वृक्ष की ओर देखने लगे किस तरह मारें। किन्तु युधिष्ठिर ने पैर के अंगूठे से उन्हें मना कर दिया। उधर पुर की नारियां व्याकुल हो कहने लगीं कि इस दग्ध शरीर को धिक्कार है इसने ऐसा जघन्य कार्य क्यों किया? कुलीन नारियों का तो अव मरण ही हो गया, जहां राजा ही दुराचार करता हो वहां सामान्य जन क्या करेंगे?

सो तेण विलक्खी हूवएण, अणुलग्गें जिह जम दूयएण।
विहुरे हि धरेवि चलणेहिं हय, पेक्खंतहं रायहं मुच्छ गय।
मणि रोस पवट्टिय वल्लभ हो, किर देइ दिट्ठ तरु पल्लव हो।
मरु मारमि मच्छु स-मेहुणउं, पट्ठवमि कयंत हो पाहुणउं।
तो तव-सुएण आरुट्टएण, विणिवारिउ चलणंगुट्ठएण।
ओसारिउ विओयरु सण्णियउ, पुर-वर णारिउ आदण्णियउ।
धि धि दट्ढ सरीरें काइं किउ, कुल-जायहं-जायहं मरणथिउ।
जहि पहु दुच्चारिउ समायरइ, तहिं जण तम्मण्णु काइं करइ।

—संधि २८-७

इसी संधि के १५वें कडवक में द्रोपदी के अपमान से क्रुद्ध भीम का और कीचक का परस्पर वाहु युद्ध (कुश्ती) का वर्णन भी सजीव हुआ है—

रण में कुशल भीम और कीचक दोनों एक दूसरे से भिड़ गए। दोनों ही हजारों युवा हाथियों के समान वल वाले थे। दोनों ही पर्वत के वड़े शिखर के समान लम्वे थे। दोनों ही मेघ के समान गर्जना वाले थे। दोनों ने ही अपने-अपने ओंठ काट रखे थे, उनके मुख क्रोध से तमतमा रहे थे। नेत्र गुंजा (चिरमटी घुंधची) के समान लाल हो गये थे। दोनों के वक्षस्थल आकाश के समान विशाल और दोनों के भुजदंड परिघि के समान प्रचंड थे[१]।

---

१ "तो भिडिवि परोधप रण कुसल, विण्णि वि णयणाय सहस्स-वल।
विण्णि वि गिरि तुंग-सिग सिहर, विण्णि वि जल हरख गहिर गिर।
वि ण्णिवि दट्टोट्ठ रुट्ठ वयण, विण्णिवि गुंजाहल सम-णयण।
विण्णिवि णहयल णिरु-वच्छ थल, विण्णिवि परिहोवम-भुज-जुयल। —रिट्ठणेमिचरिउ २८-१५

इस तरह कवि ने शरीर की असारता का दिग्दर्शन करते हुए लिखा है कि मानव का यह शरीर कितना घिनावना और शिराओं-स्नायुओं से बंधा हुआ अस्थियों का एक ढांचा या पोट्टल मात्र है। जो माया और मद रूपी कचरे से सड़ रहा है, मल पुंज है, कृमि-कीटों से भरा हुआ है, पवित्र गंध वाले पदार्थ भी इससे दुर्गन्धित हो जाते हैं, मांस और रुधिर से पूर्ण चर्मवृक्ष से घिरा हुआ है—चमड़े की चादर से ढका हुआ है, दुर्गन्धकारक है, आंतों की यह पोटली और पक्षियों का भोजन है, कलुषता से भरपूर इस शरीर का कोई भी अंग चंगा नहीं है। चमड़ी उतार देने पर यह दुष्प्रेक्ष्य हो जाता है, जल विन्दु तथा सुर धनु के समान अस्थिर और विनश्वर है। ऐसे घृणित शरीर से कौन ज्ञानी राग करेगा ? यह विचार ही ज्ञानी के लिए वैराग्यवर्द्धक है।[1]

कवि परिचय

स्वयंभू कुल से ब्राह्मण थे परन्तु जैनधर्म पर आस्था हो जाने के कारण उनकी उस पर पूरी निष्ठा एवं भक्ति थी। कवि के पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था।[2] स्वयं कवि ने अपने छन्द ग्रंथों में मारुतदेव का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि वे कवि के पिता ही हों। पुत्र द्वारा पिता की कृति का उल्लिखित होना आश्चर्य की बात नहीं है।

कवि की तीन पत्नियां थी। आदित्य देवी जिसने अयोध्या कांड लिपि किया था।[3] दूसरी आमिअब्बा, (अमृताम्बा) जिसने पउमचरिउ के विद्याधरकांड की २० संधियां लिखवाई थीं और तीसरी सुअब्बा, जिसके पवित्र गर्भ से 'त्रिभुवन स्वयंभू' जैसा प्रतिभा सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो अपने पिता समान ही विद्वान् और कवि था।[4] इसके सिवाय अन्य पुत्रादिक का कोई उल्लेख नहीं मिलता। कविवर का शरीर दुवला-पतला और उन्नत था। उनकी नाक चपटी और दांत विरल थे।[5]

कवि स्वयंभू कोशल देश के निवासी थे। जिन्हें उत्तरीय भारत के आक्रमण के समय राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का मंत्री रयडा धनंजय मान्यखेट ले गया था। राजा ध्रुव का राज्य काल वि० सं० ८३७ से ८५१ तक रहा है।[6] पउमचरिउ में स्वयंभू देव ने अपने को धनंजय के आश्रित बतलाया है और रिट्ठणेमिचरिउ में धवलइया के आश्रित। और त्रिभुवन स्वयंभू ने अपने को वंदइया के आश्रित।

धनंजय, धवलइया और वंदइया ये तीनो ही पिता पुत्र आदि के रूप में सम्बद्ध जान पड़ते हैं। उनका कवि के ग्रंथ निर्माण में सहायक रहना श्रुत भक्ति का परिचायक है।

समय-विचार

कवि ने ग्रन्थ में अपना कोई समय नहीं दिया है। परंतु पद्मचरित के कर्ता रविषेण का स्मरण जरूर

---

१. देखो, रिट्ठणेमिचरिउ ५४-११।

२. पउमिणि जणणि गब्भ संभूएं, मारुयएव—रूव-अणुराएं। —पउमचरिउ प्रशस्ति

३. आइच्चु एवि पडिमोवमाएँ आइच्चम्बियाए।
बीउ अउज्झा-कंडं सयंभू घरिणीय लेहवियं ॥ संधि ४२

४. सव्वे वि सुआ पंजर सुअव्व पढियक्खराइं सिक्खंति।
कइरा अस्त सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ संभूओ ॥

५. अइ तणुएण पईहर गत्तें छिव्वरणासें पविरल दंतें। —पउम० प्रशस्ति

६. हिन्दी काव्य-धारा पृ० २३

किया है। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित को वीर निर्वाण सं० १२०३ वि० सं० ७३३ में वनाकर समाप्त किया है। अतः स्वयंभू वि० सं० ७३३ के बाद किसी समय हुए हैं। श्रद्धेय प्रेमी जी ने लिखा है कि—स्वयंभू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' में हरिवंश पुराण के कर्ता पुन्नाट संघीय जिनसेन का उलेख नहीं, किया हो सकता है कि उक्त उल्लेख किसी कारण से छूट गया हो, या उन्हें लिखना स्वयं याद न रहा हो। रिट्ठणेमिचरिउ का ध्यान से समीक्षण करने पर या अन्य सामग्री से अनुसंधान करने पर यह स्पष्ट जरूर हो जाएगा कि ग्रन्थ कर्ता ने उसकी रचना में उसका उपयोग किया या नहीं। भ० यशः कीर्तिके उद्धार काल से पूर्वकी कोई प्रति १५वीं शताब्दी की लिखी हुई कहीं मिल जाय तो उक्त समस्या का हल शीघ्र हो सकता है।

स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने 'रिट्ठणेमिचरिउ' की १०४वीं संधि में प्राकृत संस्कृत और अपभ्रंश के जो ७० के लगभग पूर्ववर्ती कवियों के नाम गिनाये हैं। उनमें जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्य का भी नामोल्लेख किया है। उनका उल्लेख निम्न प्रकार है—

देविल, पंचाल, गयन्द, ईश्वर, णील, कंठाभरण, मोहाकलस (मोहकलश) लोलुय (लोलुक) वन्धुदत्त, हरिदत्त, दोल्ल, वाण पिंगल, कलमियंक, कुलचन्द्र, मदनोदर, गौड, श्री संघात, महाकवितुंग, चारुदत्त, रुद्दड, (रुद्रट) रंज्ज, कविल अहिमान, गुणानुराग, दुग्गह, ईसान, इंद्रक, वस्त्रादन, णारायण, महट्ट, सीहप्प, कीर्तिरण, पल्लवकित्ति, गुणिद्ध, गणेश, भासड, पिशुन, गोबिन्द, वेयाल, (वेताल) विसयड, णाग, पण्डणत्त, सुग्रीव, पतंजलि, वरसेन, मल्लिषेण, मधुकर, चतुरानन (चउमुख) सँघसेन, वंकुय, वर्द्धमान, सिद्धसेन, जीव या जीवदेव, दयावरिंद, मेधाल, विलालिय पुण्डरीक, वसुदेव, भीउय कुण्डरीक, दृढ़मति, गृहत्थि, भावक्ष, यक्ष, द्रोण पणभद्र, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, दिनकर, णाग, धर्म, गुणभद्र, कुशल, स्वयंभूदेव, शीलभद्र, वीरवंदक, सर्वनन्दि, कलिकाभद्र, णागदेव और भवनंदि।[1]

---

१. पह दइ सन्नभाव कइ देविल पंचालं गइंधया।
ईसर णील कंठाभरण मोहाकलस इंधया॥
लोलुय वंधुयत्त हरियत्त दोल्ल वाणाय पिंगला।
दढहड कलमियंक मयणोउर गयउड विक्क दुज्जला॥
सिरि संघाय तुंग महकइ परसेय चारु दत्तया।
वाडा संगु अक्खवहि बंधण रुद्दडरज्ज इंदया॥
वत्थायण वि यह हरि कुटि गुण सुदुव्वि मड्ढया।
णारायण महट्ट सीहप्प कित्ति रणं दियट्ठया॥
कविल गुणाणुराय दुग्गह दीसाणहिमाण अंचया।
जिणयत्त(त्ता) कलंक करविंस पल्लव कित्तडि गुणिद्धया।
मण मोहावरुद्ध धम्मीयणर गणेश भासडा॥
पिसुण सुयउ मणेह गोविंदकइ वेयालविसयडा।
णवि णागह पंडणत्त सुग्गीव पडंजलिय वरसेणया॥
करि कण्णय कण्णा संदीस मणोहर मल्लिसेणया।
महुयर मूलहट्ट चउराणण महकइसंघसेणया॥
वेकुय वद्धमाण संघायरियाहिय सिद्धसेणया।
जीददयावरिंद मेधाल विलालिय पुंडरीया॥

इन कवियों में जैन जैनेतर प्राकृत-संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के कवि शामिल हैं। जैसे गोविंद, मल्लिपेण, चतुरानन, संघसेनं, वर्द्धमान, सिद्धसेन, श्रीदत्त, धर्मसेन, जिनसेन, जिनदत्त, गुणभद्र, स्वयं-भूदेव, सर्वनन्दि, नागदेव और भवनन्दि आदि जैन कवि प्रतीत होते हैं। संभव है, इनमें और भी चार-पाँच नाम हों। क्योंकि उनका ग्रंथ परिचादि के विना ठीक परिज्ञान नहीं होता। इससे यह भी स्पष्ट है कि उनसे पूर्व अनेक कवि अपभ्रंश के भी हो गए थे।

इनमें उल्लिखित गुणभद्राचार्य राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय के शिक्षक थे। गुणभद्र का समय विक्रम की १०वी शताब्दी का पूर्वार्ध है। हो सकता है कि स्वयंभू गुणभद्र के समय नहीं रहे हों; किन्तु त्रिभुवन स्वयंभू तो मौजूद थे। इसीसे उन्होंने उनका नामोल्लेख किया है। जिनसेन ने अपना हरिवंशपुराण शक सं० ७०५ वि० सं० ८४० में बनाकर समाप्त किया है। स्वयंभू ने अपना ग्रन्थ जब बनाया उस समय गुणभद्र नहीं होंगे। किन्तु हरिवंशपुराण के कर्ता के समय तक वे अवश्य रहे होंगे। अतः रिट्ठणेमिचरिउ के रचयिता स्वयंभूदेव के समय की पूर्वावधि वि० सं० ८०० और उत्तरावधि वि० सं० ९०० मानने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती। इस कारण स्वयंभू विक्रम की ९वीं शताब्दी के विद्वान होने चाहियें। यदि रयडा-धनंजय वाली बात स्वीकृत की जाय, तो राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का राज्यकाल वि० सं० ८३७ से ८५१ तक रहा है। इससे भी स्वयंभूदेव का समय विक्रम की ९वीं० शताब्दी का मध्यकाल सुनिश्चित होता है। इससे वे पुन्नाटसंघीय जिनसेन के प्रायः समकालीन जान पड़ते हैं।

कन्नड़ कवि जयकीर्ति ने 'छन्दो नुशासन' नामक ग्रंथ बनाया है जिसकी हस्तलिखित प्रति सं० ११९२ की जैसलमेर के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। यह ग्रन्थ एच० डी० वेलकर द्वारा सम्पादित हो चुका है। इस ग्रन्थ में कवि ने स्वयंभू छन्द के 'नन्दिनी' छन्द का उल्लेख किया है। कवि जयकीर्ति का समय विक्रम की दशवी शताब्दी का पूर्वार्ध या नौवीं शताब्दी का उपान्त्य समय होना चाहिए। क्योंकि दशवीं शताब्दी के कवि असग ने जयकीर्ति का उल्लेख किया है। इस कथन से भी स्वयंभू का समय ९वीं शताब्दी होना चाहिये।

तीसरी और सत्रहवीं प्रशस्तियां क्रम से 'सुदसणचरिउ' और 'सयल विहिविहाणकव्व' नामक ग्रंथों की हैं जिनके कर्ता कवि नयनन्दी हैं। सुदर्शनचरित अपभ्रंश भाषा का एक खण्ड काव्य है, जो महा-काव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। जहां उसका चरित भाग रोचक और आकर्षक है वहां वह सालंकार-काव्य-कला की दृष्टि से उच्चकोटि का है कवि ने उसे सरस और निर्दोष बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। ग्रंथकार ने स्वयं लिखा है कि रामायण में राम और सीता का वियोग तथा शोकजन्य व्याकुलता के दर्शन होते हैं, और महाभारत में पाण्डव तथा धृतराष्ट्रादि कौरवों के परस्पर कलह एवं मारकाट के दृश्य अंकित

वसुवसुएव सेणाए अरभीउय कुडरीग्या।
दिड़मइ गहत्थि पहुडोवकरुणमावबद्ध जत्तसया ॥
दोणय पणभद्दमि सिरिदत्त धम्म-जिणसेण दक्खया।
दिग्यर णाय-धम्म गुणभद्दहि व मुणि सयल वंदया ॥
कुसल सयंभूदेव जइसीलहह गुरु वीरवंदया।
सुंदर सव्वणंदि माहुव बहुव णिंदया ॥
सिरिव तिकालहह सिह इय णागदेव भवणंदिया।
—हरिवंशपुराण १०४वीं संधि, पृ०,३०१ नारयण प्रति

मिलते हैं। तथा लोकशास्त्र में भी कौलिक, चोर, व्याधे आदि की कहानियां सुनने में आती हैं; किन्तु इस सुदर्शनचरित में ऐसा एक भी दोष नहीं है। जैसा कि उसके निम्न वाक्य से प्रकट है :—

रामो सीय-विओय-सोय-विहुरं संपत्तु रामायणे,
जादं पाण्डव-धायरट्ठ सददं गोत्तं कली-भारहे।
डेडा-कोलिय-चोर-रज्जु-णिरदा आहासिदा सुद्दये,
णो एक्कं पि सुदंसणस्स चरिदे दोसं समुब्भासिदं ।।

कवि ने काव्य के आदर्श को व्यक्त करते हुए लिखा है कि रस और अलंकार से युक्त कवि की कविता में जो रस मिलता है वह न तरुणिजनों के विद्रुम समान रक्त अधरों में, न आम्रफल में, न ईख में, न अमृत में, न हाला (मदिरा) में, न चन्दन में और न चन्द्रमा में ही मिलता है[1]।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सुदर्शन के निष्कलंक चरित की गरिमा ने उसे और भी पावन एवं पठनीय बना दिया है। ग्रन्थ में १२ सन्धियां हैं जिनमें सुदर्शन के जीवन परिचय को अंकित किया गया है। परन्तु इस कहाकाव्य में कवि की कथन शैली, रस और अलंकारों की पुट, सरस कविता, शान्ति और वैराग्य रस तथा प्रसंगवश कला का अभिव्यंजन, नायिका के भेद, ऋतुओं का वर्णन और उनके वेष-भूषा आदि का चित्रण, विविध छन्दों की भरमार, लोकोपयोगी सुभाषित[2] और यथास्थान धर्मोपदेशादि का विवेचन इस काव्य-ग्रन्थ की अपनी विशेषता के निर्देशक हैं और कवि की आन्तरिक भद्रता के द्योतक हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में पंचनमस्कार मंत्र का फल प्राप्त करने वाले सेठ सुदर्शन के चरित्र का चित्रण किया गया है। चरितनायक यद्यपि वणिक श्रेष्ठी हैं, तो भी उसका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा मेरुवत् निश्चल है उसका रूप लावण्य इतना चित्ताकर्षक था कि उसके बाहर निकलते ही युवतिजनों का समूह उसे देखने के लिए उत्कंठित होकर मकानों की छतों, द्वारों तथा झरोखों में इकट्ठा हो जाता था; वह कामदेव का कमनीय रूप जो था। साथ ही वह गुणज्ञ और अपनी प्रतिज्ञा के सम्यक्पालन में अत्यन्त दृढ़ था। धर्माचरण करने में तत्पर था, सबसे मिष्टभाषी और मानव जीवन की महत्ता से परिचित था और था विषय-विकारों से विहीन।

ग्रंथ का कथा भाग बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक है और वह इस प्रकार है—

अंग देश के चम्पापुर नगर में, जहां राजा धाड़ीवाहन राज्य करता था, वहां वैभव सम्पन्न ऋषभदास सेठ का एक गोपालक (ग्वाला) था जो गंगा में गायों को पार करते समय पानी के वेग से डूब कर मर गया था और मरते समय पंच नमस्कार मंत्र की आराधना के फलस्वरूप उसी सेठ के यहां पुत्र हुआ था। उसका नाम सुदर्शन रक्खा गया। सुदर्शन को उसके पिता ने सब प्रकार से सुशिक्षित एवं चतुर

---

१. णो संजादं तरुणिअहरे विद्दुमारत्तसोहे।
णो साहारे भमिय भमरे णेव पुंडिच्छु डंडे ।।
णो पीयूसे हले खिहिणे चन्दणे णेव चन्दे।
सालंकारे सुकइ भणिदे जं रसं होदि कव्वे ।।

२. करे कंकणु कि आरिसे दीसए ? हाथ कंगन को आरसी क्या ?
एक्कें हत्थें ताल कि वज्जइ। ताली क्या एक हाथ से बजती है ?
कि मारवि पंचमु गाइज्जइ। ताड़न से क्या पांचवां स्वर गाया जाता है। —सुदंक्षणचरिउ

बना दिया और उसका विवाह सागरदत्त सेठ की पुत्री मनोरमा से कर दिया। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह अपने कार्य का विधिवत् संचालन करने लगा। सुदर्शन के रूप की चारों ओर चर्चा थी, उसके रूपवान शरीर को देखकर उस नगर के राजा धाड़ीवाहन की रानी अभया उस पर आसक्त हो जाती है और उसे प्राप्त करने की अभिलाषा से अपनी चतुर पंडिता दासी को सेठ सुदर्शन के यहां भेजती है पंडिता दासी रानी की प्रतिज्ञा सुनकर रानी को पातिव्रत धर्म का अच्छा उपदेश करती है और सुदर्शन की चरित्र-निष्ठा की ओर भी संकेत करती है, किन्तु अभया अपने विचारों से निश्चल रहती है और पण्डिता को उक्त कार्य की पूर्ति के लिए खासतौर से प्रेरित करती है। पंडिता सुदर्शन के पास कई बार जाती है और निराश होकर लौट आती है, पर एक बार वह दासी किसी कपट-कला द्वारा सुदर्शन को राजमहल में पहुंचा देती है। सुदर्शन के राजमहल में पहुँच जाने पर भी अभया अपने कार्य में असफल रह जाती है—उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो पाती। इससे उसके चित्त में असह्य वेदना होती है और वह उससे अपने अपमान का बदला लेने पर उतारू हो जाती है, वह अपनी कुटिलता का माया-जाल फैलाकर अपना सुकोमल शरीर अपने ही नखों से रुधिर-प्लावित कर डालती है और चिल्लाने लगती है कि दौड़ो लोगो मुझे बचाओ, सुदर्शन ने मेरे सतीत्व का अपहरण किया है, राजकर्मचारी सुदर्शन को पकड़ लेते हैं और राजा अज्ञानता-वश क्रोधित हो रानी के कहे अनुसार सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने का आदेश दे देता है, पर सुदर्शन अपने शीलव्रत की निष्ठा से विजयी होता है—एक देव प्रकट होकर उसकी रक्षा करता है। राजा धाड़ीवाहन का उस व्यन्तर से युद्ध होता है और राजा पराजित होकर तथा सुदर्शन की शरण में पहुँचता है। राजा घटना के रहस्य का ठीक हाल जानकर अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता है और सुदर्शन को राज्य देकर विरक्त होना चाहता है, परन्तु सुदर्शन संसार-भोगों से स्वयं ही विरक्त है, वह दिगम्बर दीक्षा लेकर तपश्चर्या द्वारा कर्मसमूह का विनाशकर मुक्त हो जाता है। सुदर्शन का तपस्वी जीवन बड़ा ही सुन्दर रहा है उसे कवि व्यक्त करने में सफल हुआ है। अभयारानी और पंडिता दासी भी आत्मघात कर मर जाती हैं और वे अपने कर्मानुसार कुगति में जाती हैं। इस तरह इस ग्रंथ में पंच नमस्कार मंत्र के फल की महत्ता अङ्कित की गई है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना अवन्ति देश स्थित धारा नगरी के जिनवर विहार में राजा भोज के राज्यकाल में सं० ११०० में की है।

ग्रंथकर्ता ने ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए जो परम्परा दी है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की वस्तु है। कुन्दकुन्दाचार्य के वंश में पद्मनंदी, विष्णुनन्दी, विश्व-नन्दी, वृषभनन्दी, रामनन्दी, त्रैलोक्यनन्दी, माणिक्यनन्दी का नामोल्लेख किया है, इन्हीं माणिक्यनन्दी के प्रथम विद्या शिष्य नयनन्दी हैं।

दूसरी कृति 'सयल-विही-विहाण' नाम का महाकाव्य है, जो ५८ संधियों में समाप्त हुआ है। परंतु खेद है कि वह अपूर्ण उपलब्ध हुआ है; क्योंकि उसमें १६ संधियां नहीं हैं, वे ग्रन्थ से कैसे त्रुटित हुई इसके जानने का भी कोई साधन नहीं है। प्रारंभ की दो तीन सन्धियों में ग्रंथ के अवतरण आदि पर प्रकाश डालते हुए १२ वीं से १५ वी संधि तक मिथ्यात्व के काल मिथ्यात्व और लोक-मिथ्यात्व आदि अनेक मिथ्यात्वों का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए क्रियावादि और अक्रियावादि भेदों का विवेचन किया है। परन्तु खेद है कि १५वीं सन्धि के पश्चात् ३२ वीं सन्धि तक १६ सन्धियां आमेर भण्डार प्रति में नहीं हैं। हो सकता है कि वे लिपि-कर्ता को न मिली हों।

कवि ने इस ग्रंथ में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है उनमें से कुछ छन्दों के नाम मय पत्र नम्वर के निम्न प्रकार हैं—

१. विलासनी, (३२) २. भुजंगप्रिया, (२६) ३. मंजरी, (३०) ४. वंशस्थल, (४४) ५. चन्द्रलेखा (५२) ६. सिंधुरगति, (५८) ७. दोधक, (७४) ८. मौक्तिकमाला, (७७) ६. सग्गिणी, (८३) १०. पादाकुला, (६६) ११. मदनलीला, (६८) १२. द्विपदी, (६८) १३. विद्युन्माला, (६६) १४. रासाकुलक, (१०२) १५. कुवलयमालिनी, (१०२) १६. तुरंगगति मदन, (१०३) १७. समानिका, (११८) १८. रथोद्धता, (११६) १६. प्रमाणिका, (१७५) २०. नाग कन्या, (१७६) २१, संगीतगंधर्व, (२००) २२. शृंगार, (२००) २३. वालभुजंग ललित, (२०१) २४. अर्जनिका, (२५०) आदि

इनके अतिरिक्त दोहा, घत्ता, गाहा, दुपदी, पद्धडिया, चौपाई, मदनावतार भुजंगप्रयात आदि अनेक छन्दों का एक से अधिक वार प्रयोग हुआ है। अतएव छन्दशास्त्र की दृष्टि से भी ग्रन्थ अध्ययन, मनन और प्रकाशन के योग्य है। ग्रन्थकी भाषा प्रौढ़ और कविके अपभ्रंश भाषाके साधिकारको सूचित करती है।

कवि ने ग्रन्थ के सन्धि-वाक्य भी पद्य में निवद्ध किये हैं। यथा—

मुणिवर णयणंदी सण्णिवद्धे पसिद्धे, सयल विहिविहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।
समवसरणसंसि सेणिए संपवेसो, भणिउ जण मणुज्जो एस संधी तिइज्जो ॥३॥

ग्रंथ की ३२ वीं सन्धि में मद्य-मांस-मधु के दोष उदंवरादि पंचफलों के त्याग का विधान और फल वतलाया है। ३३ वीं सन्धि में पंच अणुव्रतों की विशेषताओं का उल्लेख है और उनमें प्रसिद्ध पुरुषों के आख्यान भी यथा स्थान दिए गए हैं शेष सन्धियों में भी इसी तरह का कथन किया गया है। ५६ वीं संधि के अन्त में सल्लेखना (समाधिमरण) का स्पष्ट उल्लेख है और विधि में आचार्य समन्त भद्र के कथन-क्रम को अपनाया गया है। इस तरह ग्रन्थ में गृहस्थोपयोगी व्रतों का सुन्दर विधान किया गया है।

ग्रन्थ की दूसरी संधि में अंवाइय और कंचीपुर का उल्लेख किया है। अनन्तर वल्लभराज का भी उल्लेख किया है, जिसने दुर्लभ जिन प्रतिमाओं का निर्माण कराया था और जहां पर रामनन्दी, जयकीर्ति और महाकीर्ति प्रधान थे[1]। आगे कवि ने रामनन्दी को आचार्य प्रकट किया है। और रामनन्दी के शिष्य वालचन्द्र ने नयनन्दी से कहा कि सकलविधिविधान काव्य अविशेषित है। कवि ने उसे कुछ दिनों के वाद वनाना प्रारम्भ किया था; क्योंकि किसी कारण विशेष से कवि का चित्त उद्विग्न था, चित्त की अस्थिरता में ऐसे महाकाव्य का निर्माण कैसे सम्भव हो सकता है ? उद्विग्नता दूर होनेपर ही प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण किया गया है।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान् है, कवि ने ग्रन्थ वनाने में प्रेरक मुनि हरिसिंह का उल्लेख करते हुए अपने से पूर्ववर्ती जैन जैनेत्तर और कुछ सम सामयिक विद्वानों का भी नामोल्लेख किया है—वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, वाण, मयूर जिनसेन वादरायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पादलिप्त पिंगल, वीरसेन, सिहनन्दी, सिंहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक,

१. अंवाइय कंचीपुर विरत्त, जहि भमइ भव्व भत्तिहि पसत्त।
जहिं वल्लभराएं वल्लहेण, कराविउ कित्तण दुल्लहेण।
जिणि पडिमा लंकिउ गच्छमाणु, णं केण वियंभिउ सुरविमाणु।
जहिं रामणंदि गुणमणि-णिहाणु, जयकित्ति महाकित्ति वि पहाणु।
—सयलविहिविहाण काव्य सन्धि २

रुद्र गोविन्द, दण्डी, भामह, माघ, भरत, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र प्रभाचन्द्र, और श्रीकुमार जिन्हें सरस्वतीकुमार भी कहते थे।

इन कवियों में जिनसेन, जयराम, वीरसेन, सिंहनन्दी, सिंहभद्र, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक, गोविंद, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और श्रीकुमार ये १५ कवि जैन हैं। वे जिनसेन से पुष्पदन्त तक सभी कवि ग्रंथ कर्ता से पूर्ववर्ती हैं और शेष सम सामयिक। इनमें जयराम वही प्रतीत होते हैं जो प्राकृत धर्मपरीक्षा के कर्ता थे और जिनका उल्लेख बुधहरिषेण ने सं० १०४४ में रचीजाने वाली धर्म परीक्षा में किया। श्रीचन्द्र प्रभाचंद्र श्रीकुमार और हरिसिंह मुनि सम समयवर्ती हैं।

इस तरह कवि ने ग्रंथ में बहुमूल्य सामग्री संकलित की है, कथनशैली चित्ताकर्षक है। संसार की असारता और मनुष्य की उन्नति अवनति का हृदयग्राही वर्णन किया है और बतलाया है कि जब एक ही दिन में सूर्य जैसे पराक्रमी को भी उदय, उपरिगमन और पतन इन तीन अवस्थाओं का अनुभव करना पड़ता है, तब अन्य का क्या कहना। यौवन, धनादि सब अस्थिर हैं।

यथा—उययं चडणं पडणं तिण्णि वि ठाणाइं इक्क दिणहंमि।
सूरस्स य एसगई अण्णस्स य केत्तियं थामं।

कवि नयनन्दी अपने समय के उच्चकोटि के कवि थे, और अपभ्रंश के छन्दों के मर्मज्ञ के। ग्रंथ की महत्ता का अन्दाज उसके अध्ययन से लगता है।

कवि ने ग्रंथ-प्रशस्ति में लिखा है कि वराड या वराट देश में प्रसिद्ध कीर्ति, लक्ष्मी और सरस्वती से मनोहर वाट ग्राम के महान महल शिखर में जिणिंद विराजमान हैं जिनकी कांति से चन्द्र-सूर्य भी लज्जित हो गए हैं। जहां पर जिनागम का उत्सव सम्पन्न होता था और वहीं पर वीरसेन जिनसेन ने धवला और जयधवला टीकाओं का निर्माण किया था, वहां ही पुंडरीक कवि धनंजय हुए थे[1]।

कवि-परिचय

प्रस्तुत कवि नयनन्दी कुन्दकुन्दान्वय की परम्परा के विद्वान थे। त्रैलोक्यनन्दि के प्रशिष्य और माणिक्यनंदि के प्रथम विद्या शिष्य थे, माणिक्यनंदि दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्हीं से नयनंदि ने अध्ययन किया था। इनके दीक्षा गुरु कौन थे और वह कहां के निवासी थे, इनका जीवन-परिचय क्या है? इसे कवि ने ही नहीं दिया है। परंतु कवि काव्य-शास्त्र में निष्णात थे, साथ ही संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के विशिष्ट विद्वान् थे। छन्द शास्त्र के भी परिज्ञानी थे। कवि ने धारा नगरी में ही अध्ययन किया था और वहीं रहते हुए परमारवंशी राजा भोजसिंह के राज्य में वि० सं० ११०० में सुदर्शन चरित की

१. वर वराडदेसे पसिद्धए, कित्ति-लच्छि सरसइ-मणोहरे।
वाडगामि महि महिल सेहरे, जहिं जिणिंद-हर पह-पराजिया।
चंद-सूर णेह जंत लज्जिया, तहिं जिणागमुच्छव अलेवहि।
वीरसेण-जिणसेण देवहि, णामधवल जयधवल सय।
महाबंध तिण्णि सिद्धंत सिव-पहा, विरइऊण भवियहं सुहाविया।
सिद्ध-रमणि-हाराव दाविया पुंडरीउ जहिं कवि धणंजउ।
—सकल विधि विधान प्रशस्ति

रचना की थी। उसके वाद किसी समय सकलविधिविधान की रचना की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ ५८ संधियों का था किन्तु उसके मध्य की १६ सन्धियाँ अनुपलब्ध हैं। कवि ने अन्य किन ग्रन्थों की रचना की, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। इन्होंने विविध देशों में भ्रमण कर जैनधर्म का भी प्रचार किया था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख सुदंसरण चरिउ में किया है, जिसे उस ग्रंथ का परिचय देते समय दे दिया है।

चौथी प्रशस्ति 'पार्श्व पुराण' की है, जिसके कर्त्ता कवि पद्मकीर्ति हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में १८ संधियाँहैं। संधियों में कडवकों की संख्या निश्चित नहीं है, उदाहरणार्थ चौथी-पांचवीं संधि में वारह-वारह कडवक हैं। तो चउदहवीं संधि में ३० कडवक दिये हैं। जिनमें जैनियों के तेईसवें तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अङ्कित किया गया है। वे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) से ढाई सौ वर्ष पूर्व हुए हैं। और ऐतिहासिक महापुरुष थे। उनकी ऐतिहासिकता को ऐतिहासिक विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। ग्रन्थ में अन्य सव कथन परम्परा के अनुकूल ही किया गया है।

हां, कवित्व की दृष्टि से छठी, दशवीं और ग्यारहवीं संधियां उल्लेखनीय हैं। छठी संधि में ग्रीष्म काल और उसमें होने वाली जलक्रीड़ा, वर्षा काल और हेमन्त आदि का सुन्दर वर्णन दिया हुआ है। दसवीं संधि में सूर्यास्त, रजनी और चन्द्रोदय आदि का कथन दृष्टव्य है। ग्यारहवीं संधि में युद्धादि का वर्णन भी चित्ताकर्षक हुआ है। भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ देखने में आता है और जो स्वाभाविक है। मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त भुजंगप्रयात, स्रग्विणी आदि वर्णिक छन्द भी प्रयुक्त हुये हैं। ११वीं संधि के प्रत्येक कडवक के प्रारम्भ में पहले एक दुवई और फिर उसके वाद दोहय या दोहे का प्रयोग भी किया गया है[1]। एक व्यक्ति विशेष के परिचय की मुख्यता इसे खण्ड-काव्य कहा जाता है। पर उसमें महाकाव्यत्व की क्षमता भी दृष्टिगत होती है।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० सं० ९९९ में कार्तिक की अमावस्या के दिन वनाकर समस्त किया है[2]।

ग्रंथकर्त्ता ने अपनी गुरु परम्परा निम्न रूप से व्यक्त की है। भूमण्डल में प्रसिद्ध माथुरगच्छ के विद्वान चन्द्रसेन नाम के ऋषि हुए। उनके शिष्य, महायती कामजयी माधवसेन हुए। उनके शिष्य जिनसेन हुए, और उनके शिष्य उक्त पद्मकीर्ति या पद्मसेन हैं। जिन्होंने इस ग्रन्थ को 'भमिया पुहमी' जिनालय में बैठकर वनाया था। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। ग्रन्थ की श्लोक संख्या २३२३ वतलाई गई है।

५वीं प्रशस्ति 'धर्म परीक्षा' की है जिसके कर्त्ता कवि हरिषेण हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ११ संधियां और २३८ कडवक हैं। जिसे कवि ने बुध सिद्धसेन के प्रसाद से वनाया था। ग्रन्थ में मनोवेग और पवनवेग का रोचक सम्वाद दिया हुआ है। ग्रंथ का कथानक मनोरंजक है, और वह पौराणिक कथानकों के अविश्वसनीय असम्वद्ध चरित्र चित्रण से भरा हुआ है और उन आख्यानों को असंगत वतलाते हुए जैनधर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है; किन्तु उनमें स्मृत-पुराण-ग्रन्थों के मूल वाक्यों का कोई उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ की

१. चडि वि महारहि भउ सहिउ, वइरिपमाण समंदु।
अहि मुह चल्लिउ परवलहो सण्णज्झे वि णरेंदु॥११-१

२. णवसय णउ वा णुइये कत्तियमासे अमावसी दिवसे।
लिहियं पासपुराणं कइणा इह पउम णामेण॥

भाषा अपभ्रंश हैं। कवि ने संसार की असारता का सुन्दर वर्णन किया है[1] और बतलाया है कि—संसार असार है, कोई कभी दुख नहीं चाहता, सभी सुख चाहते हैं। संसार में धन धान्यादि कोई भी वस्तु इस जीवन के साथ नहीं जाती, कुटुम्बीजन स्मशान भूमि तक अवश्य जाते हैं, किन्तु धर्म अधर्म जीव के साथ परलोक में भी जाते हैं, दुःख सुख भी साथ जाते हैं। ऐसा विचारकर मानसिक संताप को दूर कर, जिससे शुभ गति मिले ऐसा, प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती ३ कवियों—चतुर्मुख, स्वयभू और पुष्पदन्त का नामोल्लेख किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ काष्ठासंघ के आचार्य अमितगति की धर्मपरीक्षा से, जो वि० सं० १०७० में संस्कृत में रची गई है, उससे यह ग्रन्थ २६ वर्ष पूर्व बना है। डा० एन० उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है[2]।

कवि परिचय

कविवर हरिषेण मेवाड़ देश में स्थित चित्रकूट (चित्तौड़) के निवासी थे। इनका वंश धक्कड़ या या धर्कट था, जो उस समय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। इस वंश में अनेक कवि हुए हैं। इनके पिता का नाम गोवर्द्धन और माता का नाम गुणवती था, यह किसी कारणवश चित्रकूट को छोड़कर (अचलपुर) में रहने लगे थे। और वहां उन्होंने अपने से पूर्व बनी हुई जयराम की प्राकृत गाथा बद्ध धर्म परीक्षा को देख कर वि० सं० १०४४ में पद्धडिया छन्द में धर्मपरीक्षा नाम का ग्रन्थ बनाया था[3]।

छठवीं प्रशस्ति 'जंबू स्वामी चरित' की है। जिसके कर्ता कवि वीर हैं। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शृङ्गार वीर महाकाव्य' है[4]। कवि ने इस नाम को ग्रन्थ की प्रत्येक संधि-पुष्पिकाओं में व्यक्त किया है और ग्रंथ को महाकाव्य भी सूचित किया है। ग्रन्थ में ११ संधियां अथवा अध्याय हैं। जिनमें 'जंबूस्वामी के चरित का चित्रण किया है। चरित्र चित्रण करते हुए कवि ने महाकाव्यों में विहित रस और अलंकारों का सरस वर्णन करके ग्रन्थ को अत्यन्त आकर्षक और पठनीय बना दिया है। कथा पात्र भी उत्तम हैं, जिनके जीवन-परिचय से ग्रन्थ की उपयोगिता की अभिवृद्धि हुई है। शृंगार रस, वीर रस और शान्त रस का यत्र-तत्र विवेचन दिया हुआ है। कहीं कहीं शृंगारमूलक वीर रस है। ग्रंथ में अलंकारों का चयन दो प्रकार का पाया जाता है एक चमत्कारिक, दूसरा स्वाभाविक। प्रथम का उदाहरण निम्न प्रकार है।

---

१. भणिउ ताम संसार असारए, कोवि ण कासु वि दुहू—गरु पारए।
सुय मणुर्वं सहु भत्यु ण गच्छइ, समणु मसाणु जार मणु मच्छइ।
धम्माहम्मु णवरु अणुलग्गउं, गच्छइ जीवहु सुह-दुह संगउ।
इय जाणें वि ताय दाणुल्लउ, चिंतिउ नइ सुपत्ते अइ भल्लउ।
इट्ठकेउ णिय-मणि झाइज्जइ। सुह-गइ-गमणु जेण पाविज्जइ।

२. देखो हरिषेण की धम्मपरिक्खा, एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना भा० २३ पृ० ५७२-६०८

३. विक्कम णिय परियत्तिय कालए, गणए वरिस सहस चउतालए।
इउ उप्पण्णु भवियजण सुहयरु डंभरहिय धम्मासय सायरु॥

—धर्मपरीक्षा पूना वाली प्रति।

४. इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइ देवयत्त सुय 'वीर' विरइये सामि उप्पत्ती कुमार-विजय नाम चउत्थो संधी समत्तो।

'भारह-रण-भूमिव स-रहभीस[१], हरिअज्जुण[२] णउलसिहंडिदीस ।
गुरु[३] आसस्थाम कलिंगचार, गयगज्जिर[४] ससर महीससार ।।
लंकाणयरी व स-रावणीय[५], चंदणपहिं[६] चार कलहावणीय ।'
सपलास[७] सकंचण अक्खघट्ट, स विहीसण[८] कइकुल फल रसट्ट ।।

इन पद्यों में विंध्याटवी का वर्णन करते हुए श्लेष प्रयोग से दो अर्थ ध्वनित होते हैं—स रह—रथ सहित और एक भयानक-जीव हरि—कृष्ण और सिंह, अर्जुन और वृक्ष, नहुल और नकुल जीव, शिखंडि और मयूर आदि।

स्वाभाविक विवेचन के लिए पांचवीं संधि से शृंगार मूलक वीर रस का उदाहरण निम्न प्रकार है—केरलनरेश मृगांक की पुत्री विलासवती को रत्नशेखर विद्याधर से संरक्षित करने के लिए जंबू कुमार अकेले ही युद्ध करने जाते हैं। युद्ध वर्णन में कवि ने वीर के स्थायीभाव 'उत्साह' का अच्छा चित्रण किया है। पीछे मगध के शासक श्रेणिक या बिम्बसार की सेना भी सजधज के साथ युद्धस्थल में पहुँच जाती है, किन्तु जम्बू कुमार अपनी निर्भय प्रकृति और असाधारण धैर्य के साथ युद्ध करने को प्रोत्तेजन देने वाली वीरोक्तियां भी कहते हैं तथा अनेक उदात्त भावनाओं के साथ सैनिकों की पत्नियां भी युद्ध में जाने के लिए उन्हें प्रेरित करती हैं। युद्ध का वर्णन कवि के शब्दों में यों पढ़िए।

'अक्क मियंक सक्क कंपावणु, हा मुय सीयहे कारणें रावणु ।
दलियदप्प दप्पिय मइमोहणु, कवणु अणत्थु पत्तु दोज्जोहणु ।
तुज्झु ण दोसु वइव किउ धावइ, अणउ करंतु महावइ पावइ ।
जिह जिह दंड करंविउ जंपइ, तिह तिह खेयरु रोसहिं कंपइ ।
घट्ट कंठ सिरजालु पलित्तउ, चंडगंड पासेय पसित्तउ ।
दट्ठाहरु गुंजज्जलुलोयणु, पुरुदुरंतणासउड भयावणु ।
पेक्खेवि पहु सरोसु सण्णामहि, वुत्तु वओहरू मंतिहिं तामहिं ।
अहो अहा हूयहूय सासस गिर, जंपइ चावि उद्दण्ड गव्भिउ किर ।
अण्णाहो जीहएह कहो वग्गए, खयर वि सरिस णरेस हो अग्गए ।

---

१. रथसमन्विता भीसा भयानका, विंध्याटवीपक्षे सरभैरष्टापदैर्भयानका ।
२. वासुदेवादयः दृश्याः, विंध्याटव्यां हरिः सिंहः, अर्जुनो वृक्षविशेषः वकुलः प्रसिद्धः शिखंडी मयूरः ।
३. भारतरण-भूमौ गुरुः द्रोणाचार्यः तत्पुत्रः अश्वत्थामा, कलिंगा कलिंग देशाधिपतिः राजा एतेषां चारा श्रेष्टाः विंध्याटव्यां गुरुः महान्, अश्वत्थः पिप्पलः आमः आम्रः कलिंगवल्यचारः वृक्ष विशेषाः ।
४. भारतरणभूमौ गजगर्जित ससरबाण समन्विताः महीसाः राजानः तैः साराः भवंति, विंध्याटव्यां तु गज-गर्जितः ससरा सरोवरसमन्विताः महीससारा महिषा सारा यस्यां ।
५. रावण सहिता पक्षे रयणवृक्ष सहिता ।
६. लंकानगरी चन्द्रनखा चारेण चेष्टा विशेषेण कलहकारिणी पक्षे चन्दनवृक्षविशेषैः मनोज्ञलघुहस्तिभिर्युक्ता ।
७. पलासैः राक्षसैः युक्ता सकांचन अक्षयकुमारो रावणपुत्र तेन युक्ता, पक्षे पलासवृक्ष सकांचन मदनवृक्ष अक्ष विभीतिक वृक्षा ते तक्का यत्र ।
८. लंकानगरी विभीषणेन कपीनां वानराणां कुलैः समन्विता, फलानि रसाढ्यानि यत्र-नानाभयानकानां वानराणां संघातैः फलरसढ्या च ।

भणइ कुमारू एहु रइ लुद्धउ, वसण महण्णवि तुम्महि छुद्धउ ।
रोसन्ते रिउहि यच्छु वि ण मुणइ, कज्जाकज्ज वलावलु ण मुणइ ।'

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा बहुत प्रांजल, सुवोध,सरस और गम्भीर अर्थ की प्रतिपादक है और इसमें पुष्पदन्तादि महाकवियों के काव्य-ग्रन्थों की भाषा के समान ही प्रौढ़ता और अर्थगौरव की छटा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है।

जम्बूस्वामी अन्तिम केवली हैं। इसे दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय निर्विवाद रूप से मानते हैं और भगवान महावीर के निर्वाण से जम्बूस्वामी के निर्वाण तक की परम्परा भी उभय सम्प्रदायों में प्राय: एक-सी है, किन्तु उसके बाद दोनों में मतभेद पाया जाता है[1]। जम्बूस्वामी अपने समय के ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं। वे काम के असाधारण विजेता थे। उनके लोकोत्तर जीवन की पावन झांकी ही चरित्र-निष्ठा का एक महान आदर्श रूप जगत को प्रदान करती है। इनके पवित्रतम उपदेश को पाकर ही विद्युच्चर जैसा महान् चोर भी अपने चोरकर्मादि दुष्कर्मों का परित्याग कर अपने पांच सौ योद्धाओं के साथ महान् तपस्वियों में अग्रणीय तपस्वी हो जाता है और व्यंतरादि कृत महान् उपसर्गों को ससंघ साम्यभाव से सहकर सहिष्णुता का एक महान् आदर्श उपस्थित करता है।

उस समय मगध देश का शासक राजा श्रेणिक था, जिसे बिम्बसार भी कहते हैं। उसकी राजधानी 'रायगिह' (राजगृह) कहलाती थी, जिसे वर्तमान में लोग राजगिर के नामसे पुकारते हैं। ग्रन्थकर्ता ने मगधदेश और राजगृह का वर्णन करते हुए, और वहां के राजा श्रेणिक का परिचय देते हुए, उसके प्रतापादि का जो संक्षिप्त वर्णन किया है, उसके तीन पद्य यहां दिये जाते हैं—

'चंड भुजदंड खंडिय पयंडमंडलियमंडली वि सड्ढें ।
धारा खंडण भीयव्व जयसिरी वसइ जस्स खग्गंके ॥१॥
रे रे पलाह कायर मुहई पेक्खइ न संगरे सामी ।
इय जस्स पयावघोसणाए विहडंति वइरिणो दूरे ॥२॥
जस्स रविक्खय गोमंडलस्स पुरुसुत्तमस्स पद्धाए ।
के केसवा न आया समरे गय पहरणा रिउणो ॥३॥

अर्थात् जिनके प्रचंड भुजदंड के द्वारा प्रचंड मांडलिक राजाओं का समूह खंडित हो गया है, (जिसने अपनी भुजाओं के बल से मांडलिक राजाओं को जीत लिया है) और धारा-खंडन के भय से ही मानो जयश्री जिसके खड्गाङ्क में बसती है।

राजा श्रेणिक संग्राम में युद्ध से संत्रस्त कायर पुरुषों का मुख नहीं देखते, रे, रे कायर पुरुषो ! भाग जाओ'—इस प्रकार जिसके प्रताप वर्णन से ही शत्रु दूर भाग जाते हैं। गोमन्डल (गायों का समूह) जिस तरह पुरुषोत्तम विष्णु के द्वारा रक्षित रहता है। उसी तरह यह पृथ्वीमंडल भी पुरुषों में उत्तम राजा श्रेणिक के द्वारा रक्षित रहता है, राजा श्रेणिक के समक्ष युद्ध में ऐसे कौन शत्रु-सुभट हैं, जो मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए, अथवा जिन्होंने केशव (विष्णु) के आगे आयुध रहित होकर आत्म समर्पण नहीं किया।'

१. दिगम्बर जैन परम्परा में जम्बूस्वामी के पश्चात् विष्णु, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच श्रुत केवली माने जाते हैं, किन्तु श्वेताम्बरी परम्परा में प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, आर्यसंभूतिविजय, और भद्रबाहु इन पांच श्रुतकेवलियों का नामोल्लेख पाया जाता है। इनमे भद्रबाहु को छोड़कर चार नाम एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

ग्रन्थ का कथा भाग वहुत ही सुन्दर, सरस और मनोरंजक है और कवि ने उसे काव्योचित सभी गुणों का ध्यान रखते हुए उसे पठनीय वनाने का यत्न किया है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

कथासार

जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में मगध नामका देश है उसमें श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन राजा श्रेणिक अपनी सभा में वैठे हुए थे कि वनमाली ने चलकर विपुलाचल पर्वत पर महावीर स्वामी के समवसरण आने की सूचना दी। श्रेणिक सुनकर हर्षित हुआ और उसने सेना आदि वैभव के साथ भगवान का दर्शन करने के लिए प्रयाण किया। श्रेणिक ने समवसरण में पहुंचने से पूर्व ही अपने समस्त वैभव को छोड़ कर पैदल समवसरण में प्रवेश किया और वर्द्धमान भगवान को प्रणाम कर धर्मोपदेश सुना। इसी समय एक तेजस्वी देव आकाश मार्ग से आता हुआ दिखाई दिया। राजा श्रेणिक द्वारा इस देव के विषय में पूछे जाने पर गौतम स्वामी ने वतलाया कि इसका नाम विद्युन्माली है और यह अपनी चार देवांगनाओं के साथ यहाँ वन्दना करने के लिए आया है। यह आज से ७वें दिन स्वर्ग से चयकर मध्यलोक में उत्पन्न होकर उसी मनुष्य भव से मोक्ष प्राप्त करेगा। राजा श्रेणिक ने इस देव के विषय में विशेष जानने की अभिलाषा व्यक्त की, तव गौतम स्वामी ने कहा कि—'इस देश में वर्द्धमान नाम का एक नगर है। उसमें वेदघोष करने वाले, यज्ञ में पशुवलि देनेवाले, सोमपान करने वाले, परस्पर कटु वचनों का व्यवहार करने वाले, अनेक ब्राह्मण रहते थे। उनमें अत्यन्त गुणज्ञ एक ब्राह्मण-दम्पत्ति श्रुतकण्ठ आर्यवसु रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमशर्मा था। उनसे दो पुत्र हुए थे। भवदत्त और भवदेव। जव दोनों की आयु क्रमशः १८ और १२ वर्ष हुई, तव आर्यवसु पूर्वोपार्जित पापकर्म के फल-स्वरूप कुष्ट रोग से पीड़ित हो गया और जीवन से निराश होकर चिता वनाकर अग्नि में जल मरा। सोम-शर्मा भी अपने प्रिय विरह से दुःखित होकर चिता में प्रवेश कर परलोकवासिनी हो गई। कुछ दिन वीतने के पश्चात् उस नगर में 'सुधर्म' मुनिका आगमन हुआ। मुनि ने धर्म का उपदेश दिया, भवदत्त ने धर्म का स्वरूप शान्त भाव से सुना, भवदत्त का मन संसार में अनुरक्त नहीं होता था, अतः उसने आरम्भ परिग्रह से रहित दिगम्वर मुनि वनने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। और वह दिगम्वर मुनि हो गया। और द्वादश-वर्ष पर्यन्त तपश्चरण करने के पश्चात् भवदत्त एक वार संघ के साथ अपने ग्राम के समीप पहुंचा। और अपने कनिष्ठ भ्राता भवदेव को संघ में दीक्षित करने के लिए उक्त वर्धमानग्राम में आया। उस समय भव-देव का दुर्मर्षण और नागदेवी की पुत्री नागवसु से विवाह हो रहा था। भाई के आगमन का समाचार पाकर भवदेव उससे मिलने आया, और स्नेहपूर्ण मिलन के पश्चात् उसे भोजन के लिये घर में ले जाना चाहता था परन्तु भवदत्त भवदेव को अपने संघ में ले गया और वहां मुनिवर से साधु दीक्षा देने को कहा। भवदेव असमंजस में पड़ गया, क्योंकि उसे विवाह कार्य सम्पन्न करके विषय-सुखों का आकर्षण जो था, किन्तु भाई की उस सदिच्छा का अपमान करने का उसे साहस न हुआ। और उपायान्तर न देख प्रव्रज्या (दीक्षा) लेकर भाई के मनोरथ को पूर्ण किया, और मुनि होने के पश्चात् १२ वर्ष तक संघ के साथ देश-विदेशों में भ्रमण करता रहा। एक दिन अपने ग्राम के पास से निकला। उसे विषय-चाह ने आकर्षित किया और वह अपनी स्त्री का स्मरण करता हुआ एक जिनालय में पहुंचा, वहां उसने एक अर्जिका को देखा, उससे उन्होंने अपनी स्त्री के विषय में कुशल वार्ता पूंछी। अर्जिका ने मुनि के चित्त को चलायमान देखकर उन्हें धर्म में स्थिर किया और कहा कि वह आपकी पत्नी मैं ही हूँ। आपके दीक्षा समाचार मिलने पर मैं

भी दीक्षित हो गई थी। भवदेव पुनः छेदोपस्थापना पूर्वक संयम का अनुष्ठान करने लगा। अन्त में दोनों भाई मरकर सनत्कुमार नामक स्वर्ग में देव हुए और सात सागर की आयु तक वहाँ वास किया।

भवदत्त स्वर्ग से चयकर पुण्डरीकिनी नगरी में वज्रदन्त राजा के घर सागरचन्द नाम का और भवदेव वीतशोका नगरी के राजा महापद्म चक्रवर्ती की वनमाला रानी के शिवकुमार नाम का पुत्र हुआ। शिवकुमार का १०५ कन्याओं से विवाह हुआ, करोड़ों उनके अंगरक्षक थे, जो उन्हें बाहर नहीं जाने देते थे। पुण्डरीकिनी नगरी में चारण मुनियों से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर सागरचन्द्र ने देह-भोगों से विरक्त हो मुनिदीक्षा ले ली। त्रयोदश प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करते हुए वे भाई को सम्बोधित करने वीतशोका नगरी में पधारे। शिवकुमार ने अपने महलों के ऊपर से मुनियों को देखा, उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया, उसके मन में देह-भोगों से विरक्तता का भाव उत्पन्न हुआ, उससे राजप्रासाद में कोलाहल मच गया। और उसने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। पिता ने बहुत समझाया और कहा कि घर में ही तप और व्रतों का अनुष्ठान हो सकता है, दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं, पिता के अनुरोध-वश कुमार ने तरुणीजनों के मध्य में रहते हुए भी विरक्त भाव से नव प्रकार से ब्रह्मचर्यव्रत का अनुष्ठान किया। और दूसरों से भिक्षा लेकर तप का आचरण किया। और आयु के अन्त में वह विन्द्युन्माली नाम का देव हुआ। वहां दस सागर की आयु तक चार देवांगनाओं के साथ सुख भोगता रहा। अब वही विद्यु-न्माली यहां आया था जो सातवें दिन मनुष्य रूप से अवतरित होगा। राजा श्रेणिक ने विद्युन्माली की उन चार देवागनाओं के विषय में पूछा। तब गौतम स्वामी ने बताया कि चंपा नगरी में सूरसेन नामक सेठ की चार स्त्रियां थी जिनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा और यशोमती। वह सेठ पूर्वसंचित पाप के उदय से कुष्ट रोग से पीड़ित होकर मर गया, उसकी चारों स्त्रियाँ अर्जिकाएँ हो गईं और तप के प्रभाव से वे स्वर्ग में विद्युन्माली की चार देवियां हुई।

पश्चात् राजा श्रेणिक ने विद्युच्चर के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब गौतम स्वामी ने कहा कि मगध देश में हस्तिनापुर नामक नगर के राजा विसन्धर और श्रीसेना रानी का पुत्र विद्युच्चर नाम का था। वह सब विद्याओं और कलाओं में पारंगत था एक चोर विद्या ही ऐसी रह गई थी जिसे उसने न सीखा था। राजा ने विद्युच्चर को बहुत समझाया, पर उसने चोरी करना नहीं छोड़ा। वह अपने पिता के घर में ही पहुंच कर चोरी कर लेता था और राजा को सुपुप्त करके उसके कटिहार आदि आभूषण उतार लेता था। और विद्यावल से चोरी किया करता था। अब वह अपने राज्य को छोड़कर राजगृह नगर में आ गया, और वहां कामलता नामक वेश्या के साथ रमण करता हुआ समय व्यतीत करने लगा। गौतम गणधर ने बतलाया कि उक्त विद्युन्माली देव राजगृह नगर में अर्हद्दास नाम श्रेष्ठिका पुत्र होगा जो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा।

यह कथन हो ही रहा था कि इतने में एक यक्ष वहां आकर नृत्य करने लगा। राजा श्रेणिक ने उस यक्ष के नृत्य करने का कारण पूछा। तब गौतम स्वामी ने बतलाया कि यह यक्ष अर्हद्दास सेठ का लघु भ्राता था। यह सप्तव्यसन में रत था। एक दिन जुए में सब द्रव्य हार गया और उस द्रव्य को न दे सकने के कारण दूसरे जुआरियों ने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। सेठ अर्हद्दास ने उसे अन्त समय नम-स्कार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से वह मर कर यक्ष हुआ। यक्ष सुनकर हर्ष से नृत्य कर रहा है कि उसके भाई सेठ अर्हद्दास के अन्तिम केवली का जन्म होगा।

ग्रन्थ-निर्माण में प्रेरक

इस ग्रन्थ की रचना में किनकी प्रेरणा को पाकर कवि प्रवृत्त हुआ है, उसका परिचय ग्रन्थकार ने निम्न रूप से दिया है :—

मालव देश में धक्कड़ या धर्कट[१] वंश के तिलक महासूदन के पुत्र तक्खडु श्रेष्ठी रहते थे। यह ग्रन्थकार के पिता महाकवि देवदत्त के परम मित्र थे। इन्होंने ही वीर कवि से जंबू स्वामीचरित के निर्माण करने की प्रेरणा की थी और तक्खडु श्रेठी के कनिष्ठ भ्राता भरत ने उसे अधिक संक्षिप्त और अधिक रूप से न कहकर सामान्य कथा वस्तु को ही कहने का आग्रह अथवा अनुरोध किया था और तक्खडु श्रेठी ने भरत के कथन का सर्थन किया था और इस तरह ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ बनाने का उद्यम किया।

ग्रन्थकार

इस ग्रन्थ के कर्ता महाकवि वीर हैं, जो विनयशील विद्वान और कवि थे। इनकी चार स्त्रियाँ थीं। जिनवती, पोमावती, लीलावती और जयादेवी तथा नेमचन्द्र नाम का एक पुत्र भी था[२]। महाकवि वीर विद्वान और कवि होने के साथ-साथ गुणग्राही न्याय-प्रिय और समुदार व्यक्ति थे। उनकी गुणग्राहकता का स्पष्ट उल्लेख ग्रन्थ की चतुर्थ सन्धि के प्रारम्भ में पाये जाने वाले निम्न पद्य से मिलता है :—

अगुणा ण मुणंति गुणं गुणिणो न सहंति परगुणे दट्ठुं।
वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कइ वीर-सारिच्छा॥

अर्थात्—"अगुण अथवा निर्गुण पुरुष गुणों को नहीं जानता और गुणीजन दूसरे के गुणों को भी नहीं देखते—उन्हें सहन भी नहीं कर सकते, परन्तु वीर-कवि के सदृश कवि विरले हैं, जो दूसरे गुणों को समादर की दृष्टि से देखते हैं।"

कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए लिखा है कि—"सुकवित्त करणमणवावडेण" १-३। इसमें कवि ने अपने को काव्य बनाने के अयोग्य बतलाया है। फिर भी कवि ने अपनी सामर्थ्यानुसार काव्य को सरस और सालंकार बनाने का यत्न किया है और कवि उसमें सफल हुआ है।

कवि का वंश और माता-पिता

कविवर वीर के पिता गुडखेड देश के निवासी थे और इनका वंश अथवा गोत्र 'लालबागड' था।

---

१. यह वंश १०वीं, ११वीं और १२वीं शताब्दियों में खूब प्रसिद्ध रहा। इस वंश में दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही संप्रदायों की मान्यता वाले लोग थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के कई दिगम्बर विद्वान् ग्रन्थकार इस वंश में हुए हैं जैसे भविष्यदत्त पंचमीकथा के कर्ता कवि धनपाल, और धर्मपरीक्षा के कर्ता हरिषेण ने अपनी धर्मपरीक्षा वि० सं० १०४४ में बनाकर समाप्त की थी। अतः यह धर्कट या धक्कड़ वंश इससे भी प्राचीन जान पड़ता है। देलवाडा के वि० सं० १२८७ के तेजपाल वाले शिलालेख में भी धर्कट या धक्कड़ जाति का उल्लेख है।

२. जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पुणो बीया।
लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी॥८॥
पढमकलत्तं गरुहो संताण कयत्त विडवि पा रोहो।
विणयगुणमणिणिहाणो तणओ तह णेमिचन्दोत्ति॥९॥

—जंबूस्वामीचरित प्रशस्ति

यह वंश काष्ठासंघ की एक शाखा है[1]। इस वंश में अनेक दिगम्बराचार्य और भट्टारक हुए हैं, जैसे जयसेन, गुणाकारसेन, और महासेन[2] तथा सं० ११४५ के दूबकुण्ड वाले शिलालेख में उल्लिखित देवसेन आदि। इससे इस वंश की प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। इनके पिता का नाम देवदत्त था। यह 'महाकवि' विशेषण से भूषित थे और सम्यक्त्वादि गुणों से अलंकृत थे। और उन्हें सरस्वति देवी का वर प्राप्त था। उन्होंने पद्धड़िया छन्द में 'वरांग-चरित' का उद्धार किया था। और कविगुणों को अनुरंजित करने वाली वीर कथा, तथा 'अम्बादेवीचर्चरीरास' नाम की रचना बनाई थी, जो ताल और लय के साथ गाई जाती थी, और जिन चरणों के समीप नृत्य किया जाता था। जैसा कि कवि के निम्न वाक्यों से प्रकट है :—

"सिरिलाडवग्गुतहिविमलजसु, कइदेवयत्तुनिव्वुड्ढयकसु
बहुभावहिं जे वरंगचरिउ, पद्धडिया वंधे उद्धरिउ।
कविगुण-रस-रंजिय विउससह, वित्थारिउ सुद्दयवीरकहा
तच्चरिय वंधि विरइउ सरसु, गाइज्जइ संतिउ तारूजसु
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयहिं किउ रासउ अम्बादेवयहिं।
सम्मत्त महाभरधुरधरहो, तहो सरसइदेवि लद्धवरहो॥"

कविवर देवदत्त की ये सब कृतियां इस समय अनुपलब्ध हैं, यदि किसी शास्त्र भण्डार में इनके अस्तित्व का पता चल जाय, तो उससे कई ऐतिहासिक गुत्थियों के सुलझने की आशा है कविवर देवदत्त की ये सब कृतियाँ सम्भवतः १०५० या इसके आस-पास रची गई होंगीं, क्योंकि उनके पुत्र वीर कवि स० १०७६ के ग्रन्थ में उनका उल्लेख कर रहे हैं। अतः इनकी खोज का प्रयत्न होना चाहिए, सम्भव है प्रयत्न करने पर किसी शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हो जायं। वीर कवि की माता का नाम 'सन्तु' अथवा 'सन्तुव' था, जो शीलगुण से अलंकृत थी। इनके तीन लघु सहोदर और थे जो बड़े ही बुद्धिमान् थे और जिनके नाम 'सीहल्ल' लक्खणंक, और जसई थे, जैसा कि प्रशस्ति के निम्न पद्यों से प्रकट है :—

जस्स कइ-देवयत्तो जणयो सच्चरियलद्धमाहप्पो।
सुहसीलसुद्धवंसो जणणी सिरि संतुआ भणिया॥ ६॥
जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ ससहोयरा तिण्णि।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ णामेत्ति विक्खाया॥ ७॥

चूंकि कविवर वीर का बहुतसा समय राज्यकार्य, धर्म, अर्थ और काम की गोष्ठी में व्यतीत होता था, इसलिए इन्हें इस जम्बूस्वामी चरित नामक ग्रन्थ के निर्माण करने में पूरा एक वर्ष[3] का समय लग गया

१. काष्ठासंघो भुवि ख्यातो जानन्ति नृसुरासुराः।
तत्र गच्छाश्चत्वारो राजन्ते विश्रुता क्षितौ॥
श्रीनन्दितटसंज्ञश्च माथुरावागडाभिधः।
लाड वागड इत्येते विख्याता क्षितिमण्डले॥

—पट्टावली भ० सुरेन्द्रकीर्ति

२. देखो, महासेन प्रद्युम्नचरित प्रशस्ति जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह प्रथम भाग वीरसेवा मन्दिर से प्रकाशित।

३. बहुरायकज्जधम्मत्थकाम गोट्ठी विहत्तसमयस्स।
वीरस्स चरियकरणे इक्को संवच्छरो लग्गो॥ —जंबू० च० प्र०

था। कवि 'वीर' केवल कवि ही नहीं थे, वल्कि भक्तिरस के भी प्रेमी थे इन्होंने मेघवन[1] में पत्थर का एक विशाल जिनमन्दिर वनवाया था और उसी मेघवन पट्ट में वर्द्धमान जिनकी विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी की थी[2]। कवि ने प्रशस्ति में मन्दिर-निर्माण और प्रतिमा-प्रतिष्ठा के संवतादि का कोई उल्लेख नहीं किया। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि जम्वू-स्वामि-चरित ग्रंथ की रचना से पूर्व ही उक्त दोनों कार्य सम्पन्न हो चुके थे।

पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख

ग्रन्थ में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान कवियों का उल्लेख किया है, शान्ति कवि[3] होते हुए भी वादीन्द्र थे और जयकवि[4] जिनका पूरा नाम जयदेव मालूम होता है, जिनकी वाणी अदृष्ट अपूर्व अर्थ में स्फुरित होती है।

यह जयकवि वही मालूम होते हैं, जिनका उल्लेख जयकीर्ति ने अपने छन्दोनुशासन में किया है[5]। इनके सिवाय, स्वयंभूदेव, पुष्पदन्त और देवदत्त का भी उल्लेख किया है[6]।

ग्रन्थ का रचनाकाल

भगवान महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष पश्चात् विक्रम काल की उत्पत्ति होती है और विक्रम-काल के १०७६ वर्ष व्यतीत होने पर माघ शुक्ला दशमी के दिन इस जम्बूस्वामी चरित्र का आचार्य परम्परा से सुने हुए वहुलार्थक प्रशस्त पदों में संकलित कर उद्धार किया गया है जैसा कि ग्रन्थप्रशस्ति के निम्न पद्य से प्रकट है:—

---

१ प्रयत्न करने पर भी 'मेघवन' का कोई विशेष परिचय उपलब्ध नहीं हो सका।

२ सो जयउ कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण।
पाहाणमयं भवणं विइरुद्देसेण मेहवणे ॥१०॥
इत्थेवदिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाण जिणपडिमा।
तेणा वि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥
जम्बूस्वामी-चरित प्र०

३ संति कई वाई विहु वण्णुक्करिसेसु फुरियविण्णाणो।
रस-सिद्धि संचयत्थो विरलो वाई कई एक्को ॥४॥

४ विजयन्तु जए कइणो जाणंवाणं अइट्ठ पुव्वत्थे।
उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्टिव्व णिव्ववडई ॥४॥
जम्बूस्वामी-चरित प्रशस्ति

५ माण्डव्य-पिंगल-जनाश्रय-सेतवाख्य,
श्रीपूज्यपाद-जयदेव वुधादिकानाम्।
छन्दांसि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान्
छन्दोनुशासनमिदं जयकीर्तिनोक्तम् ॥
—जैसलमेर-भण्डार ग्रन्थसूची

६ संते सयंभू एए वे एक्को कइत्ति विन्नि पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयंते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि ॥
—देखो, जंबूस्वामिचरित, संधि ५ का आदिभाग।

वरिसाण सयचउक्के सत्तरिजुते जिणेंदवीरस्स ।
णिव्वाणा उववण्णा विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्कमणिवकालाओ छाहत्तर दससएसु वरिसाणं ।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसमी दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥
सुणियं आयरिय परंपराए वीरेण वीरणिद्दिट्ठं ।
बहुलत्थ पसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥

इस प्रकार यह ग्रन्थ जीवन-परिचय के साथ-साथ अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेखों और उनके सामान्य परिचयों से परिपूर्ण है। इसमें भगवान महावीर और उनके समकालीन व्यक्तियों का परिचय उपलब्ध होता है, जो इतिहासज्ञों और अन्वेषण-कर्ताओं के लिए बड़ा ही उपयोगी होगा।

ग्रन्थ का लिपि समय

यह ग्रन्थ-प्रति भट्टारक महेन्द्र कीर्ति अम्बेर या आमेर (जयपुर) के शास्त्रभंडार की है, जो पहले किसी समय जयपुर राज्य की राजधानी थी। इस प्रति की लेखक-प्रशस्ति के तीन ही पद्य उपलब्ध हैं; क्योंकि ७६वें पत्र से आगे का ७७ वां पत्र उपलब्ध नहीं है; उन पद्यों में से प्रथम व द्वितीय पद्य में प्रतिलिपि स्थान का नाम-निर्देश करते हुए 'झुंझुना' के उत्तुंग जिन-मंदिरों का भी उल्लेख किया है और तृतीय पद्य में उसका लिपि समय विक्रम संवत् १५१६ मगसिर शुक्ला त्रयोदशी बतलाया है, जिससे यह प्रति पांच सौ वर्ष के लगभग पुरानी जान पड़ती है। इस ग्रन्थ प्रति पर एक छोटा सा टिप्पण भी उपलब्ध है जिसमें उसका मध्यभाग कुछ छूटा हुआ है[1]।

सातवीं और आठवीं प्रशस्तियां 'कथाकोष और रयणकरण्डसावयायार (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की हैं, जिनके रचयिता कवि श्रीचन्द्र हैं। इन्होंने अपने को 'मुनि' 'पंडित' और 'कवि' विशेषणों के साथ उल्लेखित किया है। इनकी दोनों कृतियों के नाम ऊपर दिये गये हैं। उनमें प्रथम कृति कथा कोष है, जिसमें विविध व्रतों के अनुष्ठान द्वारा फल प्राप्त करने वालों की कथाओं का रोचक ढंग से संकलन किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में मंगल और प्रतिज्ञा वाक्य के अनंतर ग्रंथकार कहते है कि मैंने इस ग्रंथ में वही कहा है जिसे गणधरने राजा श्रेणिक या बिम्बसार से कहा था, अथवा शिवकोटि मुनीन्द्र ने भगवती आराधना में जिस तरह उदाहरणस्वरूप अनेक कथाओं के संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किए हैं। उसी तरह गुरुक्रम से और सरस्वती के प्रसाद से मैं भी अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं। मूलाराधना में स्वर्ग और अपवर्ग के सुख साधन का—अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयका—गाथाओं में जो अर्थ प्ररूपित किया गया है, उसी अर्थ को मैं कथाओं द्वारा व्यक्त करूंगा; क्योंकि सम्बन्ध विहीन कथन गुणवानों को रस प्रदान नहीं

१ मन्ये वयं पुण्यपुरी बभाति, सा झुंझणेति प्रकटी बभूव।
प्रोत्तुंगतन्मंडन-चैत्यगेहाः सोपानवद्दृश्यति नाकलोके ॥१॥
पुरस्सराराम जलप्रकूपा हर्म्याणि यत्रास्ति रतीव रम्याः।
दृश्यन्ति लोका घनपुण्यभाजो ददातिदानस्य विशालशाला ॥२॥
श्री विक्रमार्कन गते शताब्दे षडेक पंचैक सुमार्गशीर्षे।
त्रयोदशीया तिथिसर्वशुद्धाः श्री जंबूस्वामीति च पुस्तकोऽयं ॥३॥

करता, अतएव गाथाओं का प्रकट अर्थ कहता हूं तुम सुनो[1]। ग्रन्थकार ने देह-भोगों की असारता को व्यक्त करते हुए ऐन्द्रिक सुखों को सुखाभास बतलाया है। साथ ही धन, यौवन और शारीरिक सौंदर्य वगैरह को अनित्य बतलाकर मन को विपय-वासना के आकर्पण से हटने का सुन्दर एवं शिक्षाप्रद उपदेश दिया है और जिन्होंने उनको जीतकर आत्म-साधना की है उनकी कथा वस्तु ही प्रस्तुत ग्रन्थ का विपय है।

अणहिलपुर में प्रसिद्ध प्राग्वाट कुल में समुत्पन्न सज्जनोत्तम सज्जन नाम का एक श्रावक था, जो धर्मात्मा था और मूलराजनृपेन्द्रकी गोष्ठी में बैठता था। अपने समय में वह धर्म का एक आधार था, उसका कृष्ण नाम का एक पुत्र था, जो धर्म कर्म में निरत, जन शिरोमणी और दानादिद्वारा चतुर्विध संघ का संपोषक था। उसकी 'राणू' नामक साध्वी पत्नी से तीन पुत्र और चार पुत्रियां उत्पन्न हुई थीं। इसी कृष्ण श्रावक की प्रेरणा से कवि ने उक्त कथाकोप बनाया था। प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था।

कवि श्रीचन्द्र ने अपना यह कथा ग्रन्थ मूलराज नरेश के राज्य काल में समाप्त किताथा। इतिहास से ज्ञात होता है कि मूलराज सोलंकी ने सं० ९९८ में चावडा वंशीय अपने मामा सामंतसिंह (भूयड़) को मार कर राज्य छीन लिया[2] और स्वयं गुजरात की राजधानी पाटन (अणहिलवाड़े) की गद्दी पर बैठ गया, इसने वि० संवत् १०१७ से १०५२ तक राज्य किया है[3]। मध्य में इसने धरणीवराह पर भी चढाई की थी, तब उसने राष्ट्रकूट राजा धवल की शरण ली, ऐसा धवल के वि० सं० १०५३ के शिलालेख से स्पष्ट है[4]। मूलराज सोलंकी राजा भीमदेव का पुत्र था, उसके तीन पुत्र थे, मूलराज क्षेमराज और कर्ण। इनमें मूलराज का देहान्त अपने पिता भीमदेव के जीवन काल में ही हो गया था और अन्तिम समय में क्षेमराज को राज्य देना चाहा; परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, तब उसने लघु पुत्र कर्ण को राज्य देकर सरस्वती नदी

---

१. गणहरहो पयासिउ जिणवइणा,
सेणियहो आसि जिह गणवइणा॥
सिवकोडि मुणिंदि जेमजए, कह कोसु कहिउ पंचम समए।
तिह गुरु कमेण अहमविकहमि, नियबुद्धि विसेसु नेव रहमि।
महु देवि सरासइ सम्मुहिया, संभवउ समत्थु लोय महिया।
आमण्णहो मूलाराहणहें, सग्गापवग्गासुसाहणहें।
गाहं सरियाउ सुसोहणउ, बहु कहउ अत्थि रंजिय जणउ।
धम्मत्थकाम मोक्खासयउ, गाहासु जासु संठियउ तउ।
ताणत्थं भणिऊणपुरउ, पुणु कहमि कहाउ कयायरउ।
घत्ता—संबंध विहूणु सव्वुवि जाणरसु न देइ गुणवन्त हं।
तेणिय गाहाउ पयडिवि ताउ कहम कहाउ सुणंत हं।

२. यं मूलादुद मूल यद गुरु बलः श्रीमूलराजोनृपो,
दर्पान्धो धरणी वराहन्टपति यद्व द्वि (द् द्विं) पः पादपम्।
आयातं भुवि कांदि शीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ,
दंष्ट्रायामिवरूढ़ महिमा को लो मही मण्डलम्॥ —एपि ग्राफ़िया इंडिका जि० १ पृ० २१

३. देखो, राजपूताने का इतिहास दूसरा संस्करण भा० १, पृ० २४१

४. देखो, राजपूताने का इतिहास 'प्रथम जिल्द दूसरा सं० पृ० १९२

के तट पर स्थित मंडूकेश्वर में तपश्चरण करने लगा। अतः श्रीचन्द्र ने अपना यह कथाकोष वि० सं० ११
१०५२ में या उसके एक दो वर्ष पूर्व ही बनाया होगा। जिससे ग्रंथ का विषय स्पष्ट हो गया है।

आठवीं प्रशस्ति 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार की है' जो स्वामी समन्तभद्र के रत्नकरण्डक नामक उपासकाध्ययन रूप गंभीर कृति का व्याख्यान मात्र है। कवि ने इस आचार ग्रंथ को २१ संधियों में विभाजित किया है। जिसकी आनुमानिक श्लोक संख्या चार हजार चार सौ अट्ठाईस बतलाई गई है। कथन को पुष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण और कथाओं को प्रस्तुत किया गया है।

प्रशस्ति में हरिनन्दि मुनीन्द्र, समन्तभद्र, अकलंक, कुलभूषण पाद पूज्य (पूज्यपाद) विद्यानन्दि, अनन्तवीर्य, वरसेण, महामति वीरसेन, जिनसेन, विहंगसेन, गुणभद्र, सोमराज, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदंत श्रीहर्ष, और कालिदास नाम के पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया गया है।

इस श्रावकाचार को कवि ने संवत् ११२३ में कर्ण नरेन्द्र के राज्यकाल में श्रीवालपुर में पूर्ण किया था[१]। यह कर्ण देव वही कर्णदेव ज्ञात होते हैं जो राजा भीमदेव के लघु पुत्र थे और जिनका राज्य काल 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के कर्त्ता मेरुतुंग के अनुसार सं० ११२० से ११५० तक उन्नीसवर्ष आठ महीना और इक्कीस दिन माना जाता है। इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि की अन्य रचनाएँ अन्वेषणीय हैं।

कवि परिचय

कवि श्रीचन्द्र कुंदकुंदान्वय देशीगण के आचार्य सहस्रकीर्ति के प्रशिष्य थे और सहस्रकीर्ति के (देवचंद, वासवमुनि, उदयकीर्ति, शुभचंद्र और वीरचंद्र इन) पांच शिष्यों में से यह वीरचंद्र अंतिम शिष्य थे। इन पांचों का समय भी प्रायः सहस्रकीर्ति के सम सामयिक होना चाहिए। सहस्रकीर्ति के गुरु का नाम श्रुतिकीर्ति और श्रुतिकीर्ति के शिष्य श्रीकीर्ति थे। इनका समय विक्रम की ११वीं शताब्दी के मध्य भाग से लेकर बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

८वीं प्रशस्ति 'रयणकरण्डसावयायार' (रत्नकरण्डश्रावकाचार) की है जिसका परिचय सातवीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

९वीं प्रशस्ति 'सुकमाल चरिउ' की है, जिसके कर्त्ता कवि विबुध श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में छह संधियां और २२४ कड़वक हैं, जिनमें सुकमाल स्वामी का जीवन-परिचय दिया हुआ है। कवि ने सुकमाल के पूर्वजन्म का वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि वे पहले जन्म में कौशाम्बी के राजा के राजमंत्री पुत्र थे और उनका नाम वायुभूति था, उन्होंने रोष में आकर अपनी भाभी के मुख में लात मारी थी, जिससे कुपित हो उसने निदान किया था कि मैं तेरी इस टांग को खाऊंगी। अनन्तर अनेक पर्यायें धारण कर जैनधर्म के प्रभाव से उज्जैनी में सेठ-पुत्र हुए थे, वे बाल्यावस्था से ही अत्यन्त सुकुमार थे, अतएव उनका नाम सुकमाल रक्खा गया। पिता पुत्र का मुख देखते ही दीक्षित हो गया और आत्म-साधना में लग गया। माता ने बड़े यत्न से पुत्र का लालन-पालन किया और उसे सुन्दर महलों में रख कर सांसारिक भोगोपभोगों में अनुरक्त किया। इसकी ३२ सुन्दर स्त्रियां थीं, जब उसकी आयु अल्प रह गई, तब उसके मामा ने, जो साधु थे, महल के पीछे जिन मंदिर में चातुर्मास किया और अन्त में स्तोत्र पाठ को सुनते ही सुकमाल का मन देह-भोगादि से विरक्त हो गया और वह एक रस्सी के सहारे महल से नीचे उतरा और जिन मंदिर में जाकर मुनिराज को नमस्कार कर प्रार्थना की कि भगवन् आत्म-कल्याण का मार्ग बताइये। उन्होंने कहा कि तेरी आयु तीन दिन की शेष रह गई है। अतः शीघ्र ही आत्म-साधना में तत्पर हो। सुकमाल ने जिनदीक्षा लेकर और प्रायोपगमन संन्यास लेकर कठोर तपश्चरण किया। वे शरीर से जितने सुकोमल थे, उपसर्ग-

परीषहों के जीतने में वे उतने ही कठोर थे। वन में समाधिस्थ थे, एक श्यालनी ने अपने बच्चे सहित आकर उसके दाहिने पैर को खाना शुरू किया और बच्चेने वायें पैर को, उन्होंने उस अमित कष्ट को शांतिसे बारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए सहन किया और सर्वार्थसिद्धि में देव हुए। ग्रंथ का चरित भाग बड़ा ही सुन्दर है।

कवि ने यह ग्रंथ बलडइ (अहमदावाद) गुजरात नगर के राजा गोविन्दचन्द्र के काल में साहूजी के सुपुत्र पुरवाड कुलभूषण कुमार की प्रेरणा से बनाया है। राजा गोविन्दचन्द्र कौन थे और उन्होंने कितने वर्ष राज्य किया है, यह अभी अज्ञात है। हां, कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक सन्धि के शुरू में संस्कृत पद्यों में कुमार की मंगल कामना की है और बतलाया है कि वे जिनेन्द्रभक्त थे, संसार के देह-भोगों से विरक्त थे, उन्हें दान देने का ही एक व्यसन था और विद्वानों में प्रीति थी, इस तरह वह जितेन्द्रियकुमार जयवन्त रहें[1] और प्रस्तुत ग्रन्थ कवि ने उक्त कुमार के ही नामांकित किया है। कवि ने ग्रन्थमें नारी के स्वरूप-चित्रण में परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है। कथन-शैली रोचक और प्रवाह युक्त है।

कवि श्रीधर ने ग्रन्थ प्रशस्ति में अपना कोई परिचय प्रस्तुत नहीं किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा का उल्लेख किया जा सके। किन्तु कवि ने लिखा है कि बलडइ ग्राम के जिनमंदिर में पोमसेण (पद्मसेन) नाम के मुनि अनेक शास्त्रों का व्याख्यान करते थे। श्रीधर ने इस ग्रन्थ को वि० सं० १२०८ (सन् ११५१) में मगशिर कृष्णा तृतीया के दिन समाप्त किया है।

१० वीं प्रशस्ति 'हरिवंस पुराण' की है, जिसके कर्ता कवि धवल हैं। इस ग्रन्थ में जैनियों के २२ वें तीर्थंकर यदुवंशी भगवान नेमिनाथ की जीवन-गाथा अंकित की गई है, साथ ही महाभारत के पात्र कौरव और पाण्डव एवं श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों का भी जीवन चरित्र १२२ संधियों में दिया हुआ है। जिससे महाभारत काल का ऐतिहासिक परिचय सहज ही मिल जाता है। ग्रंथ की रचना प्रधानतः अपभ्रंश भाषा के 'पज्झटिका' और अलिल्लह' छन्द में हुई है। तथापि उसमें पद्धड़िया, सोरठा, घत्ता, जाति, नाशिनी, विलासिनी और सोमराजी आदि छन्दों का भी स्पष्ट प्रयोग हुआ है। काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ के कितने ही वर्णन सजीव हैं। रसों में शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसों के अभिव्यंजक अनेक स्थल दिए हुए हैं। श्रीकृष्ण और कंस के युद्ध का वर्णन भी सजीव हुआ है।

'महा चंड चित्ता भडा छिण्ण गत्ता, धनुवाणहत्था सकुंता समत्था।
पहारंति सूराण भज्जंति धीरा, सरोसा सतोसा सहासा सआसा ॥—संधि ९०, ४

प्रचण्ड चित्तवाले योद्धाओं के गात्र टूक-टूक हो रहे हैं, और धनुषबाण हाथ में लिए हुए भाला चलाने में समर्थ सूर प्रहार कर रहे हैं, परन्तु क्रोध, सन्तोष, हास्य और आशा से युक्त धीर वीर योद्धा विचलित नहीं हो रहे हैं। युद्ध की भीषणता से युद्ध स्थल विषम हो रहा है, सैनिकों की मारो मारो की ध्वनि से आकाश गूंज रहा है—रथ वाला रथवाले की ओर, अश्व वाला अश्व वाले की ओर, और गज-गज की ओर दौड़ रहा, धानुष्क वाला धानुष्क वाले की ओर झपट रहा है, वाद्य जोर से शब्द कर रहे हैं,

१. भक्तिर्यस्य जिनेन्द्रपाद युगले धर्मे मतिः सर्वदा।
वैराग्यं भव-भोगबन्धविषये वांछाजिनेशागमे ॥
सद्दाने व्यसने गुरौ विनयिता प्रीतिर्बुधाः विद्यते,
स श्रीमान्जयताज्जितेन्द्रियरिपुः श्रीमत्कुमाराभिधः ॥ —सुकमालचरिउ ३—१

घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी चिंघाड़ रहे हैं[1]। इस तरह युद्ध का सारा वर्णन ही सजीव है।

संसार की नश्वरता का वर्णन भी दृष्टव्य है।

'सबल राज्य तत्क्षण नष्ट हो जाता है, अत्यधिक धन से क्या किया जाय। राज्य भी धनादि से हीन, और बचे खुचे जनसमूह अत्यधिक दीनतापूर्ण वर्तन करते हुए देखे जाते हैं। सुखी बान्धव पुत्र, कलत्र, मित्र सदा किसके बने रहते हैं, जैसे उत्पन्न होते हैं वैसे ही मेघ वर्षा से जल के बुलबुलों के समान विनष्ट हो जाते हैं और फिर चारों दिशाओं में अपने अपने निवास स्थान को चले जाते हैं। जिस तरह पक्षी रात्रि में एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं और फिर चारों दिशाओं में अपने-अपने निवास स्थान को चले जाते हैं, अथवा जिस प्रकार बहुत से पथिक (नदी पार करते हुए) नौका पर मिल जाते हैं, फिर अपने अभीष्ट स्थान को चले जाते हैं। इसी तरह इष्ट प्रियजनों का समागम थोड़े समय के लिए होता है। कभी धन आता और कभी दारिद्र्य, स्वप्न समान भोग आते और नष्ट हो जाते हैं, फिर भी अज्ञानी जन इनका गर्व करते हैं, जिस यौवन के साथ जरा (बुढ़ापे) का सम्बन्ध है उससे किसको सन्तोष हो सकता है? (—संधि ६१—७)

ग्रन्थकार का जहां लौकिक वर्णन सजीव हैं, वहां वीर रस का शान्त रस में परिणत हो जाना भी चित्ताकर्षक है ग्रंथ पठनीय और प्रकाशन के योग्य है। इसकी प्रतियां कारंजा जयपुर और दिल्ली के पंचायती मंदिर में है, परन्तु दिल्ली की प्रति अपूर्ण है।

ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है[2]।

कवि चक्रवर्ती धीरसेन सम्यक्त्व युक्त प्रमाण ग्रन्थ विशेष के कर्ता, देवनंदी (जैनेन्द्र व्याकरण कर्ता) वज्रसूरि प्रमाण ग्रन्थ के कर्ता, महासेन का सुलोचना ग्रन्थ, रविषेण का पद्मचरित, जिनसेन का हरिवंश पुराण, जटिल मुनि का वरांगचरित, दिनकरसेन का अनंगचरित, पद्मसेन का पार्श्वनाथ चरित अंबसेन की अमृताराधना, धनदत्त का चन्द्रप्रभचरित, अनेक चरित ग्रन्थों के रचयिता विष्णुसेन, सिंहनन्दि की अनुप्रेक्षा, नरदेव का णवकार मंत्र, सिद्धसेन का भविक विनोद, रामनंदि के अनेक कथानक, जिनरक्षित (जिनपालित)—धवलादि ग्रन्थ प्रख्यापक, असग का वीरचरित, गोविन्दकवि(श्वे०) का सनत्कुमारचरित, शालिभद्र का जीवउद्योत, चतुर्मुख, द्रोण, सेढु महाकवि का पउमचरिउ, आदि विद्वानों और उनकी कृतियों का उल्लेख किया है। इनमें पद्मसेन (पद्मकीर्ति) और असग कवि दोनों का उल्लेख ग्रन्थ कर्ता के समय को बताने में किञ्चित् सहकारी होते हैं असग कवि का समय सं० ६१० है और पद्मसेन का समय वि० सं० ६६६ है जिससे स्पष्ट है कि धवल कवि का समय सं० ६६६ से पश्चात् वर्ती है। पद्मकीर्ति की एकमात्र कृति पार्श्वनाथ पुराण उपलब्ध है। इन दोनों की रचनाओं का उल्लेख होने से प्रस्तुत धवल कवि का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी का पूर्वकाल या मध्यकाल हो सकता है। यद्यपि असग कवि का महावीर

---

१. ....हणु हणु मारु मारु पभणंतिहि।
दलिय धरत्ति रेणुणहि धायउ, लहु विस लुद्धउलुद्धउ धायउ॥
× × ×
रहवंउ रहहु गयहु गउ धाविउ, धाणुक्कहु धाणुक्कु परायउ।
तुरउ तुरंग कुखग विहत्थउ, असिवक्खरहु लग्गुमय यत्तउ।
गज्जहि गहिर तूर हयहिंसहि, गुलुगुलंत गयवर बहु दीसहि॥
—संधि ८६—१०

२. देखो, हरिवंश पुराण प्रशस्ति।

चरित मूलरूप में प्रकाशित नहीं हुआ, और न पद्मसेन का पार्श्वपुराण ही प्रकाशित हो सका है। अतः ये दोनों रचनाएं अपने मूलरूप में प्रकाशित होनी चाहिए।

११वीं, १२वीं और १३वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'छक्कम्मोवएस', 'पुरंदर विहाणकहा' और 'णेमिणाहचरिउ' की हैं। जिनके कर्त्ता कवि अमरकीर्ति हैं। प्रस्तुत पट्कर्मोपदेश में १४ संधियां और २१५ कडवक हैं, जो २०५० श्लोक प्रमाण संख्या को लिए हुए हैं। कवि ने इस ग्रंथ में गृहस्थों के षट्कर्मों का—देव पूजा गुरु-सेवा, स्वाध्याय (शास्त्राभ्यास) संयम (इन्द्रियदमन) और पट्-काय (जीव रक्षा) इच्छा निरोध रूप तप, तथा दानरूप पट्-कर्मो का—कथन दिया हुआ है। और उसे विविध कथाओं के सरस विवेचन द्वारा वस्तु तत्त्व को स्पष्ट किया गया है। दूसरी से नौवीं संधि तक देव-पूजा का सुन्दर विवेचन दिया गया है, और उसे नूतन कथा रूप दृष्टांतों के द्वारा सुगम तथा ग्राह्य बना दिया गया है। दशवीं संधि में जिन पूजा पुरंदर विधि कथा दी गई है और उसकी विधि बतलाकर उद्यापन विधि को भी अङ्कित किया है। शेष ११ वीं से से लेकर १४वीं संधि तक शेष कर्मो का विवेचन दिया हुआ है।

ग्रंथ में कवि ने इससे पूर्ववर्ती अपनी निम्न रचनाओं का उल्लेख किया है। णेमिणाहचरिउ, महावीरचरिउ, जसहरचरिउ, धर्मचरित टिप्पण, सुभाषितरत्ननिधि, धर्मोपदेश चूड़ामणि, और झाणपईव (ध्यान प्रदीप)।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना गोध्रा[1] में चालुक्य वंशी राजा वंदिग्गदेव के पुत्र कण्ह या कृष्ण नरेन्द्र के राज्य में संवत् १२४७ के भाद्रपद महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन समाप्त की थी।

दूसरी प्रशस्ति 'पुरंदरविधान कथा' की है, जो पट्कर्मोपदेश का ही एक अंश है। इस कथा को भी कवि ने अम्बाप्रसाद के निमित्त से बनाया है। प्रस्तुत कथा में पुरंदरव्रत का विधान बतलाया गया है। यह व्रत किसी भो महीने के शुक्ल पक्ष में किया जा सकता है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तक प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस व्रत का फल मनोरथ प्राप्ति, दारिद्र्य विनाश, धन प्राप्ति और व्यसनादि का परित्याग है।

तीसरी कृति 'नेमिनाथ-चरित' है ग्रन्थ में २५ सन्धियां हैं जिनकी श्लोक संख्या छह हजार आठ सौ पच्चाणवे है। इसमें जैनियों के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे, जीवन परिचय दिया गया है। इस ग्रंथ को कवि ने संवत् १२४४ में भाद्रपद शुक्लाचतुर्दशी को समाप्त किया था। यह प्रति सं० १५१२ की लिखी हुई है और सोनागिर भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है।

भट्टारक अमरकीर्ति काष्ठासंघान्तर्गत उत्तर माथुर संघ के विद्वान मुनि चन्द्रकीर्ति के शिष्य एवं अनुज थे। इनकी माता का नाम 'चर्चिणी' और पिता का नाम 'गुणपाल' था। इनकी गुरु परम्परा में अमितगति द्वितीय हुए, जिनका रचना काल सं० १०५० से १०७० है, उनके शिष्य शान्तिषेण हुये, शांतिषेण के अमरसेन, अमरसेन के श्रीषेण और श्रीषेण के चन्द्रकीर्ति, जिनका समय सं० १२१६ के लगभग है और अमरकीर्ति का संवत् १२४४ से १२४७।

ग्रंथकर्ता ने अपने ग्रन्थों की प्रशस्तियों में 'महीयडु' देश के गोध्रा नगर में चालुक्य वंशीय कण्ह या कृष्ण का राज्य बतलाया है। उस समय गुजरात में चालुक्य अथवा सोलंकी वंश का राज्य था, जिसकी राजधानी अनहिलवाड़ा थी; परन्तु इतिहास में वंदिगदेव और उनके पुत्र कृष्ण नरेन्द्र का कोई उल्लेख मेरे

---

१. गोध्रा गुजरात का एक छोटा-सा नगर है, जो वड़ौदा से गिरनार जी जाते समय रास्ते में मिलता है। यहाँ पहले दिगम्बर मन्दिर था अब नहीं है।

देखने में नहीं आया। उस समय अनहिलवाड़ा के सिंहासन पर भीम द्वितीय का राज्य शासन था इनके बाद वघेल वंश की शाखा ने अपना राज्य प्रतिष्ठित किया है। इनका राज्य सं० १२३६ से १२३६ तक बतलाया जाता है। संवत् १२२० से १२३६ तक कुमारपाल, अजयपाल और मूलराज द्वितीय वहां के शासक रहे हैं। भीम द्वितीय के शासन समय से पूर्व ही चालुक्य वंश की एक शाखा महीकांठा प्रदेश में प्रतिष्ठित होगी, जिसकी राजधानी गोध्रा थी। इस सम्बन्ध में और भी अन्वेषण करने की आवश्यकता है जिससे यह पता चल सके कि इस वंश की प्रतिष्ठा गोध्रा में कब हुई[1]। ये तीनों ही ग्रन्थ अप्रकाशित हैं, उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयत्न होना चाहिए। और कवि के अन्य ग्रन्थों की खोज करना जरूरी है।

१२वीं प्रशस्ति 'पुरंदरविहाण कहा' की है, जिसका परिचय ११ वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१३वीं और १८वीं प्रशस्तियां 'जिनदत्तचरित' और 'अणुवयरयणपईव' की हैं। जिनके कर्त्ता कवि लाखू या लक्ष्मण हैं। प्रस्तुत जिनदत्तचरित्र में छह संधियां हैं और जो चार हजार श्लोकों में निबद्ध हैं। जिसमें जीवदेव और जीवंयशा श्रेष्ठी के सुपुत्र जिनदत्त का चरित अङ्कित है। कवि की यह रचना एक सुन्दर काव्य है। इसमें आदर्श प्रेम को व्यक्त किया गया है। कवि काव्य-शास्त्र में निष्णात विद्वान् था। ग्रंथ का यमकालंकार युक्त आदि मंगल पद्य कवि के पाण्डित्य का सूचक है।

सप्पय-सर-कलहंस हो, हियकलहंस हो, कलहंस हो सेयंसवहा।
भणमि भुवण कलहंस हो, णविवि जिण हो जिणयत्त कहा॥

अर्थात्—'मोक्ष रूपी सरोवर के मनोज्ञ हंस, कलह के अंश को हरने वाले, करिशावक (हाथी के बच्चे) के समान उन्नत स्कंध और भुवन में मनोज्ञ हंस, आदित्य के समान जिनदेव की वंदना कर जिनदत्त की कथा कहता हूँ।'

ग्रंथ कर्त्ता ने इस ग्रंथ में विविध छन्दों का उपयोग किया है। ग्रंथ की पहली चार संधियों में कवि ने मात्रिक और वर्णवृत्त दोनों प्रकार के निम्न छन्दों का प्रयोग किया है—विलासिणी, मदनावतार, चित्तंगया, मोत्तियदाम, पिंगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जंभेट्टिया, भुजंगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमणी, चच्चर, पंचचामर, णराच, तिभंगिणिया, रमणीलता, समाणिया, चित्तया भमरपय, मोणय, और ललिता आदि। इन छन्दों के अवलोकन से यह स्पष्ट पता चलता है कि अपभ्रंश कवि छन्द विशेषज्ञ होते थे।

प्रस्तुत चरित्र में मगध राज्यान्तर्गत वसन्तपुर नगर के राजा शशिशेखर और उसकी रानी मयना सुन्दरीके कथनके अनन्तर उस नगरके श्रेष्ठी जीवदेव और जीवंयशाके पुत्र जिनदत्त का चरित्र अङ्कित किया गया है। यह क्रमशः बाल्यावस्था से युवावस्था को प्राप्त कर अपने रूप-सौंदर्य से युवति-जनों के मन को मुग्ध करता है—और अङ्ग देश में स्थित चम्पानगर के सेठ की सुन्दर कन्या विमलमती से उसका विवाह हो जाता है। विवाह के पश्चात् दोनों वसन्तपुर आकर सुख से रहते हैं।

जिनदत्त जुआरियों के चंगुल में फंसकर ग्यारह करोड़ रुपया हार गया। इससे उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने अपनी धर्मपत्नी की हीरा-माणिक आदि जवाहरातों से अङ्कित कंचुली को नौ करोड़ रुपये में जुआरियों को बेच दिया। जिनदत्त ने धन कमाने का बहाना बनाकर माता-पिता से चम्पापुर जाने की आज्ञा ले ली। और कुछ दिन बाद धर्मपत्नी को अकेली छोड़ जिनदत्त दशपुर (मन्दसोर) आ गया।

१. History of Gujrat in Bombay Gageteer Vol I

समय विलरामपुर में सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर निवास करते थे। इन्होंने कविवर को मकान आदि की सुविधा प्रदान की। यह कविवर के परम मित्र बन गए। साहू विल्हण का वंश प्राग्वाट या पुरवाड था, और श्रीधर उस वंशरूपी कमलों को विकसित करनेवाले सूर्य थे। और इस तरह कवि वर उनके प्रेम और सहयोग से वहां सुखपूर्वक रहने लगे। वहां कुछ समय बिताने के पश्चात् वे चौहानवंशी राजा अभयपाल की राजधानी 'रायवद्दिय' रपरी या रायभा में आकर रहे और वहां अभयपाल के प्रधान मंत्री कृष्णादित्य की प्रेरणा से सं० १३१३ में 'अणुवय रयणपईव' की रचना की। कवि ने अपने इतने लम्बे जीवन में अन्य कितनी रचनाएं रचीं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। अन्वेषण करने पर कवि की अन्य रचनाओं का भी पता चल सकेगा।

तुग़रिक को नियुक्त किया था। नगर व्यापारियों से रिक्त हो गया था। अतएव जगह-जगह से बड़े-बड़े व्यापारियों को बुलाया गया था। खुरासान से भी लोग बसने को आये थे। प्रस्तुत ग्रंथकर्ता और उनका परिवार भागकर विलरामपुर जिला एटा में आये। वहां के निवासी सेठ विल्हण के पौत्र और जिनधर के पुत्र श्रीधर सेठ ने इन्हें ठहरने के लिए मकान दिया। कवि ने जिनदत्तचरित्र में त्रिभुवनगिरि के विनष्ट होने का उल्लेख सं० १२७५ में किया है किन्तु त्रिभुवनगिरि के विनाश का समय 1196 A. D. (वि० सं० १२५३ है। इससे स्पष्ट है कि कवि सं० १२५३ में वहां से भागे थे।

—देखो, आर्कियालाजिकलसर्वे रिपोर्ट भा० २०

श्वेताम्बरीय खरतरगच्छ की प्रधान गुर्वावली में भी त्रिभुवनगिरि का उल्लेख है और जिनदत्तसूरि द्वारा कुमारपाल राजा को सम्बोधित करने तथा वहां के शान्तिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है। घटना को सं० १२०३ से पूर्व की बतलाया है। साथ ही सं० १२०३ में अजमेर में फाल्गुन सुदी ९ के दिन दीक्षित जिनचन्द्रसूरि सं०१२१४ में त्रिभुवनगिरि पधारे और वहां उनके द्वारा शान्तिनाथ मन्दिर में सुवर्णदण्ड, कलश और ध्वजारोपणादि कार्यों का उल्लेख किया है, गणिनी हेमदेवी को प्रवर्त्तिनी पद प्रदान करने का भी निर्देश है। (ततस्त्रिभुवनगिरौ, प्रतिबोधितस्तत्र कुमारपालो नाम राजा। कृतस्तत्र प्रचुरतर यतिजन विहारः। प्रतिष्ठितो भगवान् शान्तिनाथ देवः। ततः सः (जिनदत्तसूरि सं० १२०३ अजयमेरौ फाल्गुन सुदी ९ जिनचन्द्रसूरि दीक्षा)। —(खतरगच्छ युग प्रधान गुर्वावली पृ० १९-२०) सं० १२१४ श्री जिनचन्द्रसूरिभिस्त्रिभुवनगिरौ श्री शान्तिनाथ शिखरे सज्जनमनोमन्दिर प्रमोदारोपणामिव सौवर्ण्णदण्ड कलश ध्वजारोपणं महता विस्तरेण कृत्वा हेमदेवी गणिन्या प्रवर्तिनी पदं दत्वा......।

—खरतर गच्छयुगप्रधान गुर्वावली पृ० २०

ये सब उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्त्यनीय हैं। क्योंकि गुर्वावली के अनुसार कुमारपाल का वहां राजा होना सं० १२०३ से पूर्ववर्ती है। अतः उसके सम्बोधन की घटना सं० १२०३ से पहले की है।

इसके पश्चात् भी त्रिभुवनगिरि सम्पन्न हो गया जान पड़ता है। सम्भव है वहां पुनः उस वंश का शासन हो गया हो। विक्रम की १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में या १४ वीं के पूर्वार्ध में उसकी समृद्धि पुनः हो गई थी और वहां अनेक जैनमुनि और विद्वान निवास करने लगे थे। माथुरसंघ के विद्वान उदयमुनि के प्रशिष्य और भ० बालचन्द्र मुनि के शिष्य विनयचन्द्र ने कुमारपाल के भतीजे अजयपाल नरेश के विहार में बैठकर चूनड़ी रास बनाया था और उसकी स्वोपज्ञ टीका भी रची थी। उन्होंने उसी नगर की तलहटी में बैठकर 'निर्झर पंचमी कथारास' का भी निर्माण किया था। इससे स्पष्ट है कि मुसलमान शासकों के समय में भी जैन विद्वान अपने साहित्य की श्री वृद्धि करते रहे हैं।

१४ वीं प्रशस्ति 'सुलोयणाचरिउ' की है, जिसके कर्ता गणिदेवसेन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की २८ सन्धियों में भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार की धर्मपत्नी सुलोचना का, जो हस्तिनापुर के राजा अकम्पन और सुप्रभा देवी की सुपुत्री थी, चरित अंकित किया गया है। सुलोचना अनुपम सुन्दरी थी, इसके स्वयंवर में अनेक देशों के बड़े-बड़े राजागण आए थे। सुलोचना को देखकर वे मुग्ध हो गए। उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा और उसकी प्राप्ति की प्रबल इच्छा करने लगे। स्वयंवर में सुलोचना ने जयकुमार को चुना। परिणाम स्वरूप चक्रवर्ती भरत का पुत्र अर्ककीर्ति क्रुद्ध हो उठा, और उसने इसमें अपना अपमान समझा। अपने अपमान का बदला लेने के लिए अर्ककीर्ति और जय में युद्ध होता है और अन्त में जय की विजय होती है।

उस युद्ध का वर्णन कवि के शब्दों में निम्न प्रकार है—

भडो को वि खग्गेण खग्गं खलंतो, रणे सम्मुहे सम्मुहो आहणंतो।
भडो को वि वाणेण वाणो दलंतो, समुद्धाइ उद्धरो णं कयंतो॥
भडो को वि कोंतेण कोंतं सरंतो, करे गाढ चक्को अरी सं पहुंतो।
भडो को वि खंडेहिं खंडी कयंगो, लड़त्तं ण मुक्को सगा जो अहंगो॥
भडो को वि संगाम भूमि घुलंतो, विवण्णोह गिद्धवली णोयअंतो।
भडो को वि घाएण णिव्वट्टि सीसो, असिवावरेई अरीसाण भीसो॥
भडो को वि रत्तप्पवाहे तरंतो, फुरंतप्पएणं तडि सिग्घ पत्तो।
भडो को वि मुक्का उहे वन्न इत्ता, रहे दिण्णयाउ विवण्णोह इत्ता॥
भडो को वि हत्थी विसाणेहि भिण्णो, भडो कोवि कंठोट्ठ छिण्णो णिसण्णो॥
घत्ता—तहिं अवसरि णिय सेण्णु पेच्छिवि सर जज्जरियउ।
धावइ मुयतोलंतु जउ वकु मच्छर भरियउ॥ ६—१२

युद्ध के समय सुलोचना ने जो कुछ विचार किया था, उसे ग्रंथकार ने गूंथने का प्रयत्न किया है। सुलोचना को जिन मन्दिर में बैठे हुए जब यह मालूम हुआ कि महंतादिक पुत्र, बल और तेज सम्पन्न पांच सौ सैनिक शत्रु पक्ष ने मार डाले हैं, जो तेरी रक्षा के लिए नियुक्त किये गये थे। तब वह अपनी आत्म-निंदा करती हुई विचार करती है कि यह संग्राम मेरे कारण ही हुआ है जो बहुत से सैनिकों का विनाशक है। अतः मुझे ऐसे जीवन से कोई प्रयोजन नहीं। यदि युद्ध में मेघेश्वर (जयकुमार) की जय हो और मैं उन्हें जीवित देख लूगी तभी शरीर के निमित्त आहार करूंगी। इससे स्पष्ट है कि उस समय सुलोचना ने अपने पति की जीवन-कामना के लिए आहार का भी परित्याग कर दिया था। इससे उसके पातिव्रत्य का उच्चादर्श सामने आता है। यथा—

इमं जंपिऊणं पउत्तं जयेणं, तुमं एह कण्णा मनोहार वण्णा।
सुरक्खेह णूणं पुरेणेह ऊणं, तउ जोइ लक्खा अणेया असंखा।
सुसत्था वरिण्णा महं दिक्ख दिण्णा, रहा चारु चिघा गया जो मयंधा।
महंताय पुत्ता बला-तेय जुत्ता, सया पंच संखा हया वैरि-पक्खा।
पुरीए णिहाणं वरं तुंग गेहं, फुरंतोह णीलं मणीलं कराल।
पिया तत्थ रम्मो वरे चित्त कम्मे, अरंभीय चिंता सुउ हुल्लवत्ता।
णियं सोययंती इणं चितवंती, अहं पाव-यम्मा अलज्जा अधम्मा।

साथ ही कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को छंद अलङ्कार और व्याकरण शास्त्र से अनभिज्ञ, तर्कशास्त्र को नहीं सुनने वाला और साहित्य का नाम भी जिसके कर्णगोचर नहीं हुआ, इतना तक व्यक्त किया है और लिखा है कि ऐसा कवि सिंह सरस्वती देवी के प्रसाद को प्राप्त कर सत्कवियों में अग्रणी मान्य तथा मनस्वी प्रिय हुआ है[५]।

गुरु परम्परा

कविवर सिंह के गुरु मुनि पुङ्गव भट्टारक अमृतचन्द्र थे, जो तप, तेजरूपी दिवाकर, और व्रत नियम तथा शील के रत्नाकर (समुद्र) थे। तर्क रूपी लहरों से जिन्होंने परमत को झंकोलित कर दिया था—डगमगा दिया था—जो उत्तम व्याकरण रूप पदों के प्रसारक थे, जिनके ब्रह्मचर्य के तेज के आगे काम देव दूर से ही वंकित (खंडित) होने की आशंका से मानो छिप गया था—वह उनके समीप नहीं आ सकता था—इससे उनके पूर्ण ब्रह्मचर्य निष्ठ होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[६]।

प्रस्तुत भट्टारक अमृतचंद्र उन आचार्य अमृतचंद्र से भिन्न हैं, जो आचार्य कुंदकुन्द के समयसारादि प्राभृतत्रय के टीकाकार और पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रंथों के रचयिता थे। वे लोक में 'ठक्कुर' उपनाम से प्रसिद्ध थे। इनकी समस्त रचनाओं का जैन समाज में बड़ा समादर है। यह विक्रम की दशवीं शताब्दी के विद्वान थे। उनकी गुरु परम्परा यद्यपि अज्ञात है। परन्तु पट्टावली में उनका समय सं० ९६२ दिया हुआ है, वह प्रायः ठीक जान पड़ता है[७]।

किन्तु उक्त भट्टारक अमृतचंद्र के गुरु माधवचंद्र थे, जो प्रत्यक्ष धर्म, उपशम, दम, क्षमा के धारक और इन्द्रिय तथा कषायों के विजेता थे और जो उस समय 'मलधारी देव' के नाम से प्रसिद्ध थे, और यम तथा नियम से सम्बद्ध थे। 'मलधारी' एक उपाधि थी जो उस समय के किसी-किसी साधु सम्प्रदाय में प्रचलित थी। इस उपाधि के धारक अनेक विद्वान् आचार्य हो गए हैं। वस्तुतः यह उपाधि उन मुनि पुंगवों को प्राप्त होती थी, जो दुर्धर परिषहों, विविध घोर उपसर्गो और शीत-उष्ण तथा वर्षा की बाधा सहते हुए भी कभी कष्ट का अनुभव नहीं करते थे। और पसीने से तर-बतर शरीर होने पर धूलि के कणों के संसर्ग से मलिन शरीर को साफ न करने तथा पानी से धोने या नहाने जैसी घोर बाधा को भी हंसते हुए सह लेते थे। ऐसे ऋषि पुंगव ही उक्त उपाधि से अलंकृत किए जाते थे।

---

५. 'छन्दोऽलंकृति-लक्षणं न पठितं नाऽश्रावि तर्कागमो,
जातं हंत न कर्ण गोचरचरं साहित्यनामाऽपि च।
सिंहः सत्कविरग्रणीः समभवत् प्राप्य प्रसादं परं,
वाग्देव्याः सुकवित्वजातयशसा मान्यो मनस्विप्रियः॥'

६. तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु, वय-तव-णियम-सील-रयणायरु।
तक्क-लहरि-झंकोलिय-परमउ, वर वायरण पवर पसरिय पउ।
जासु भुवण दूरंतरु वंकिवि, दिढ़ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि।
अभयचंद नामेण भडारउ, सो विहरंतु पत्तु बुह सारउ॥ —पज्जुण्णचरिउ प्रशस्ति

७. देखो, 'अमृतचंद्र का समय' शीर्षक मेरा लेख, अनेकान्त वर्ष ८ किरण ४-५।

रचना समय

यद्यपि ग्रन्थ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, फिर भी अन्य प्रमाणों के आधार पर ग्रन्थ का रचना समय बतलाने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रंथ प्रशस्ति में 'बम्हणवाड' नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय वहां रणधोरी या रणधीर का पुत्र बल्लाल था जो अर्णोराजका क्षय करने के लिए कालस्वरूप था और जिसका मांडलिक भृत्य अथवा सामन्त गुहिलवंशीय क्षत्रीय भुल्लण उस समय बम्हणवाडका शासक था[१]। परन्तु इस उल्लेख पर से उक्त राजाओं का राज्यकाल ज्ञात नहीं होता। अतः उसे अन्य साधनों से जानने का प्रयत्न किया जाता है।

मंत्री तेजपाल के आबू के लूणवसति गत सं० १२८७ के लेख में मालवा के राजा बल्लाल को यशोधवल के द्वारा मारे जाने का उल्लेख है[२]। यह यशोधवल विक्रमसिंह का भतीजा था और उसके कैद हो जाने के बाद गद्दी पर बैठा था। यह कुमारपाल का मांडलिक सामन्त अथवा भृत्य था, मेरे इस कथन की पुष्टि अचलेश्वर मंदिर के शिलालेख गत निम्न पद्य से भी होती है—

"तस्मान्मही······विदितान्यकलत्रपात्र, स्पर्शो यशोधवल इत्यवलम्बते स्म।
यो गुर्जरक्षितिपतिप्रतिपक्षमाजो, बल्लालमालभत मालवमेदिनींद्रम् ॥"

यशोधवल का वि० सं० १२०२ (११४५ A.D.) का एक शिलालेख अजरी गाँव से मिला है जिसमें 'प्रमारवंशोद्भवमहामण्डलेश्वरश्रीयशोधवलराज्ये' वाक्य द्वारा यशोधवल को परमारवंश का मण्डलेश्वर सूचित किया है। यशोधवल रामदेव का पुत्र था, इसकी रानी का नाम सौभाग्यदेवी था। इसके दो पुत्र थे, जिनमें एक का नाम धारावर्ष और दूसरे का नाम प्रह्लाददेव था। इनमें यशोधवल के बाद राज्य का उत्तराधिकारी धारावर्ष था। वह बहुत ही वीर और प्रतापी था, इसकी प्रशंसा वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति के ३६वें पद्य में पाई जाती है[३] ? धारावर्ष का सं० १२२० का एक लेख 'कायद्रा' गांव के बाहर, काशी, विश्वेश्वर के मंदिर से प्राप्त हुआ है[४]। यद्यपि इसकी मृत्यु का कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिला, फिर भी उसकी मृत्यु उक्त सं० १२२० के समय तक या उसके अन्तर्गत जानना चाहिये।

जब कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा, तब मालवा का राजा बल्लाल, चन्द्रावती का परमाल विक्रमसिंह और सपादलक्ष (सांभर) का चौहान अर्णोराज ये तीनों राजा परस्पर में मिल गये और इन्होंने कुमारपाल के विरुद्ध जबरदस्त प्रतिक्रिया की; परन्तु उनका यह सब प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमारपाल ने

---

१. सरि-सर-णंदण-वण-संछण्णउ, मठ-विहार-जिण-भवणरवण्णउ।
बम्हणवाडउ णामें पट्टणु, अरिणरणाह-सेणदलवट्टणु।
जो भुंजइ अरिणखयकालहो, रणधोरियहो सुअहो बल्लालहो।
जासु भिच्चु दुज्जण-मणसल्लणु, खत्तिउ गुहिल उत्तु जहि भुल्लणु ॥ —प्रद्युम्नचरित प्रशस्ति।

२. यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिः प्रत्यर्थितामागतं।
मत्वा सत्वरमेव मालवपति बल्लालमालब्धवान् ॥

३. शत्रु श्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्त्रिंशधारो, धारावर्षः समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः।
क्रोधाक्रान्तप्रधनवसुधा निश्चले यत्र जाता, श्चोतन्नेत्रोत्पलजलकणः कोंकणाधीशपत्न्यः ॥३६॥

४. देखो, भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ पृ० ७६-७७।

विक्रमसिंह का राज्य उसके भतीजे यशोधवल को दे दिया, जिसने वल्लाल को मारा था, और इस तरह मालवा को गुजरात में मिलाने का प्रयत्न किया गया[1]।

वल्लाल की मृत्यु का उल्लेख अनेक प्रशस्तियों में मिलता है। वड़नगर से प्राप्त कुमारपाल प्रशस्ति के १५ श्लोकों में वल्लाल की हार और कुमारपाल की विजय का उल्लेख किया गया है और लिखा है कि कुमारपाल ने वल्लाल का मस्तक महल के द्वार पर लटका दिया था। चूंकि कुमारपाल का राज्यकाल वि० सं० ११९९ से वि० सं० १२२९ तक पाया जाता है और इस वड़नगर प्रशस्ति का काल सन् ११५१ (वि०सं० १२०८) है। अतः वल्लाल की मृत्यु ११५१ A. D. (वि० सं० १२०७) से पूर्व हुई है[2]।

ऊपर के इस कथन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि कुमारपाल, यशोधवल, वल्लाल और अर्णोराज ये सब राजा समकालीन हैं। अतः ग्रंथ-प्रशस्ति गत कथन को दृष्टि में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत प्रद्युम्नचरित की रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी। अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल विक्रम की १३वीं शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिये।

प्रद्युम्नचरित की अधिकांश प्रतियों में अन्तिम प्रशस्ति ही दी हुई नहीं है और जिन प्रतियों में प्राप्त थी उनमें वह त्रुटित एवं खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई थी; किंतु यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि भ० महेन्द्रकीर्ति आमेर के शास्त्रभण्डार की कई प्रतियों में यह प्रशस्ति पूर्णरूप से उपलब्ध है। उक्त भण्डार में इस ग्रंथ की छह प्रतियां पाई जाती हैं। जो विविध समयों में लिखी गई हैं। उनमें से सं० १५७७ की प्रति पर से उक्त ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति इस संग्रह में दी गई है।

१६ वीं प्रशस्ति 'पासनाह चरिउ' की है। जिसके कर्ता कवि देवचन्द्र हैं। इस ग्रन्थ की अभी तक एक ही खंडित प्रति प्राप्त है, जिसमें ७, ७९ और ८१ वां ये तीन पत्र नहीं हैं। ग्रन्थ में ११ संधियाँ हैं जिनमें २०२ कडवकों में कवि ने पार्श्वनाथ के चरित को वड़ी खूवी के साथ चित्रित किया है। साथ में पूर्व भवांतरों का कथन भी अंकित किया है। कवि ने दोधक छन्द में भगवान पार्श्वनाथ की ध्यान-मुद्रा को निम्न वाक्यों में चित्रित किया है. उससे पाठक ग्रन्थ की भाषा शैली से भी परिचित हो सकेंगे।

"तत्थ सिलायले थक्कु जिणिंदो, संतु महंतु तिलोय हो वंदो।
पंच-महव्वय-उद्दय कंधो, निम्ममु चत्त चउव्विह वंधो।
जीव दयावरु संग विमुक्को, णं दहलक्खणु धम्मु गुरुक्को।
जम्म-जरा मरणुज्झिय दप्पो, वारस भेय तवस्स महप्पो।
मोह-तमंध-पयाव-पयंगो, खंति लया रुहणे गिरि तुंगो।
संजम-सील-विहूसिय देहो, कम्म-कसाय हुआसण मेहो।
पुप्फंधणु वर तोमर धंसो, मोक्ख-महासरि-कीलण हंसो।
इन्दिय - सप्पहं विसहर मंतो, अप्पसरूव-समाहि-सरंतो।
केवलनाण - पयासण-कंखू, घाण पुरम्मि निवेसिय चक्खू।
णिज्जिय सासु पलंविय वाहो, णिच्चल देह विसज्जिय-वाहो।
कंचणसेलु जहां थिर चित्तो, दोधक छंद इमो वुह वुत्तो।"

---

१. Epigraphica Indica V. L VIII P. 200.

२. देखो, सन् ११५१ की लिखित वड़नगर प्रशस्ति।

इसमें बतलाया गया है कि भगवान पार्श्वनाथ एक शिला पर ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। वे सन्त महन्त त्रिलोकवर्ती जीवों के द्वारा वन्दनीय हैं, पंच महाव्रतों के धारक हैं, निर्ममत्व हैं, और प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग रूप चार प्रकार के बन्ध से रहित हैं, दयालु और संग (परिग्रह) से मुक्त हैं। दशलक्षणधर्म के धारक हैं। जन्म, जरा और मरण के दर्प से रहित हैं। तप के द्वादश भेदों के अनुष्ठाता हैं। मोहरूपी अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य समान हैं। क्षमा रूपी लता के आरोहणार्थ वे गिरि के समान उन्नत हैं। जिनका शरीर संयम और शील से विभूषित है, जो कर्म रूप कषाय हुताशन के लिए मेघ हैं। कामदेव के उत्कृष्ट बाण को नष्ट करने वाले तथा मोक्ष रूप महासरोवर में क्रीड़ा करने वाले हंस हैं। इन्द्रिय रूपी विषधर सर्पों को रोकने के लिए मंत्र हैं। आत्म-समाधि में चलने वाले हैं। केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले सूर्य हैं, नासाग्र दृष्टि हैं, श्वास को जीतने वाले हैं, जिनके बाहु लम्बायमान हैं और व्याधियों से रहित जिनका निश्चल शरीर है। जो सुमेरु पर्वत के समान स्थिर चित्त है।" यह पार्श्वनाथ की उस ध्यान-समाधि का परिचायक है जो कर्मावरण की नाशक है।

कवि ने अपना यह खण्ड काव्य गुंदिज्ज नगर के पार्श्वनाथ मंदिर में बनाकर समाप्त किया है। गुंदिज्ज नगर दक्षिण में ही कहीं अवस्थित होगा। कवि देवचन्द मूलसंघ देशी गच्छ के विद्वान वासवचन्द के शिष्य थे। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में गुरुपरम्परा का निम्न प्रकार उल्लेख है—श्रीकीर्ति, देवकीर्ति, मौनीदेव, माघवचन्द्र, अभयनन्दी, वासवचन्द्र और देवचन्द्र।

ग्रन्थ में रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, जिससे यह बतलाना कठिन है कि ग्रंथ कब बना है। क्योंकि तद्विषयक सामग्री सामने नहीं है। ग्रंथ की यह प्रति सं० १४६८ के दुर्मति नाम संवत्सर के पूस महीने के कृष्ण पक्ष में अलाउद्दीन के राज्य काल में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के पदाधिकारी भट्टारक प्रतापकीर्ति के समय में देवगिरि महादुर्ग में अग्रवाल श्रावक पण्डित गांगदेव के पुत्र पासराज के द्वारा लिखाई गई है।

अब तक मुझे वासवचन्द्र नाम के दो विद्वानों का पता चला है, जिनमें एक का उल्लेख खजुराहा के सं० १०११ वैशाखसुदी ७ सोमवार के दिन उत्कीर्ण किये गये जिननाथ मंदिर के शिलालेख में दिया हुआ है जो वहां के राजा धंग के राज्यकाल में खोदा गया था[१]।

दूसरे वासवचन्द्र का उल्लेख श्रवण बेल्गोल के शिल्ललेख नं० ५५ में पाया जाता है जो शक सं० १०२२ (वि० सं० ११५७) का है। उस लेख के २५ वें पद्य में वासवचन्द्र मुनीन्द्र स्याद्वादविद्या के विद्वान थे, कर्कश तर्क करने में उनकी बुद्धि चलती थी। उन्होंने चालुक्य राजा की राजधानी में बालसरस्वति की उपाधि प्राप्त की थी[२]। इनमें द्वितीय वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हो सकते हैं। यदि यही वासवचन्द्र देवचन्द्र के गुरु हों तो इनका समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी हो सकता है।

१७वीं प्रशस्ति 'सयलविहिविहाणकव्व' की है, जिसके कर्त्ता कविनयनन्दी है, जिनका परिचय तीसरी प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१८वीं प्रशस्ति 'अणुवय-रयण-पईव' की है जिसका परिचय १३ वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

---

1. See Epigraphica Indica VOLT Page 136.

२. वासवचन्द्र मुनीन्द्रो रुन्द्र स्याद्वादतर्क-कर्कश-धिषणः।
चालुक्य कटकमध्ये बालसरस्वति रिति प्रसिद्धिः प्राप्तः॥ —श्रवण बेल्गोल शिलालेख २५

१९वीं प्रशस्ति 'वाहुवलीचरित' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में अठारह संधियां हैं। कवि कथा सम्वन्ध के वाद सज्जन दुर्जन का स्मरण करता हुआ कहता है कि 'नीम को यदि दूध से सिंचन किया जाय तो भी वह अपनी कटुकता का परित्याग नहीं करती। ईख को यदि शस्त्र से काटा जाय तो भी वह अपनी मधुरता नहीं छोड़ती। उसी तरह सज्जन-दुर्जन भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते। सूर्य तपता है और चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है[1]।' ग्रन्थ में आदि ब्रह्मा ऋषभदेव के पुत्र वाहुवली का, जो सम्राट् भरत के कनिष्ठ भ्राता और प्रथम कामदेव थे, चरित्र दिया हुआ है। वाहुवली का शरीर जहां उन्नत और सुन्दर था वहां वह वल पौरुष से भी सम्पन्न था। वे इन्द्रिय विजयी और उग्र तपस्वी थे। वे स्वाभिमानपूर्वक जीना जानते थे, परंतु पराधीन जीवन को मृत्यु से कम नहीं मानते थे। उन्होंने भरत सम्राट् से जल-मल्ल और दृष्टि युद्ध में विजय प्राप्त की थी, परिणाम स्वरूप भाई का मन अपमान से विक्षुब्ध हो गया और वदला लेने की भावना से उन्होंने अपने भाई पर चक्र चलाया; किन्तु देवोपुनीत अस्त्र 'वंश-घात' नहीं करते। इससे चक्र वाहुवली की प्रदक्षिणा देकर वापिस लौट गया—वह उन्हें कोई नुकसान न पहुंचा सका। वाहुवली ने रणभूमि में भाई को कंधे पर से नीचे उतारा और विजयी होने पर भी उन्हें संसार-दशा का वड़ा विचित्र अनुभव हुआ।

वे सोचने लगे कि भाई को परिग्रह की चाहने अंधा कर दिया है और अहंकार ने उनके विवेक को भी दूर भगा दिया है। पर देखो, दुनिया में किसका अभिमान स्थिर रहा है? अहंकार की चेष्टा का दण्ड ही तो अपमान है। तुम्हें राज्य की इच्छा है तो लो इसे सम्हालो और जो उस गद्दी पर वैठे उसे अपने कदमों में झुकालो, उस राज्य सत्ता को धिक्कार है, जो न्याय अन्याय का विवेक भुला देती है। भाई-भाई के प्रेम को नष्ट कर देती है और इन्सान को हैवान वना देती है। अव मैं इस राज्य का त्याग कर आत्म-साधना का अनुष्ठान करना चाहता हूँ और सवके देखते-देखते ही वे तपोवन को चले गये, जहां दिगम्बर मुद्रा द्वारा एक वर्ष तक कायोत्सर्ग में स्थित रहकर उस कठोर तपश्चर्या द्वारा आत्म-साधना की, पूर्ण ज्ञानी वन स्वात्मोपलव्धि को प्राप्त हुए।

ग्रंथ में अनेक स्थल काव्यमय और अलंकृत मिलते हैं। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक कवियों और उनकी रचनाओं का भी उल्लेख किया है।

कवि ने इस ग्रन्थ का नाम 'कामचरिउ' कामदेवचरित भी प्रकट किया है और उसे गुणों का सागर वतलाया है। ग्रन्थ में यद्यपि छंदों की वहुलता नहीं है। फिर भी ११वीं संधि में दोहों का उल्लेख अवश्य हुआ है। ग्रन्थ रचना उस समय की है जव हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। कवि ने इसे वि० सं० १४५४ में वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को स्वाति नक्षत्र में स्थित सिद्धि योग में सोमवार के दिन, जवकि चंद्रमा तुलारासी पर स्थित था, पूर्ण किया है।

ग्रन्थ निर्माण में प्रेरक

प्रस्तुत ग्रंथ चंद्रवाड नगर के प्रसिद्ध राज श्रेष्ठी और राजमंत्री, जो जायस या जैसवाल वंश के भूषण थे, साहूवासाधर की प्रेरणा से की है और उक्त ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया है। वासाधर के पिता

---

१. णिंवु को वि जइ खीरहिं सिंचइ, तो वि ण सो कुडुवत्तणु मुंचइ।
उच्छु को वि जह सत्थे खंडइ, तो वि ण सो महुरत्तणु छंडइ।
दुज्जण सुअण सहावें तप्परु, सूरुतवइ ससहरु सीयरकरु॥
—वाहुवलिचरिउ

का नाम सोमदेव था, जो संभरी नरेंद्र कर्णदेव के मंत्री थे। कवि ने साहु वासाधर को सम्यक्त्वी, जिन चरणों के भक्त जिनधर्म के पालन में तत्पर, दयालु, बहु-लोकमित्र, मिथ्यात्व रहित और विशुद्ध चित्त वाला बतलाया है। साथ ही आवश्यक दैनिक षट्कर्मों में प्रवीण, राजनीति में चतुर और अष्टमूल गुणों के पालन में तत्पर प्रकट किया है। इनकी पत्नी का नाम उभयश्री था, जो पतिव्रता और शीलव्रत का पालन करने वाली तथा चतुर्विध संघ के लिए कल्पनिधि थी। इनके आठ पुत्र थे, जसपाल, जयपाल, रतपाल, चंद्रपाल, विहराज, पुण्यपाल, वाहड़ और रूपदेव। ये सभी पुत्र अपने पिता के समान ही सुयोग्य चतुर और धर्मात्मा थे। इन आठ पुत्रों के साथ साहु वासाधर अपने धर्म का साधन करते थे।

इस ग्रंथ में कवि ने अपने से पूर्व होने वाले कुछ खास विद्वानों का और उनकी कुछ प्रसिद्ध कृतियों के नामोल्लेख के साथ उल्लेख किया है। जैसे कवि चक्रवर्ती धीरसेन, जैनेन्द्र व्याकरणकर्ता देवनंदी (पूज्यपाद) श्री वज्रसूरि और उनके द्वारा रचित षट्दर्शन प्रमाण ग्रंथ, महासेन सुलोचनाचरित, रविषेण-पद्मचरित, जिनसेन हरिवंशपुराण, मुनिजटिल वरांगचरित, दिनकरसेन कंदर्पचरित, पद्मसेन-पार्श्वनाथचरित, अमृताराधना गणि अम्बसेन, चंद्रप्रभचरित, धनदत्तचरित, कवि विष्णुसेन, मुनिसिंहनंदि-अनुप्रेक्षा, णवकार मंत्र-नरदेव, कवि असग-वीरचरित, सिद्धसेन, कवि गोविंद, जयधवल, शालिभद्र, चतुर्मुख, द्रोण, स्वयंभू, पुष्पदंत, और सेढु कवि का उल्लेख किया गया है।

कवि परिचय

कवि धनपाल गुजरात देश के मध्य में 'पल्हणपुर'[1] या पालनपुर के निवासी थे। वहाँ वीसलदेव राज्य करते थे, जो पृथ्वी के मण्डन और सकल उपमाओं से युक्त थे। उसी नगर में निर्दोष पुरवाड वंश में, जिसमें अगणित पूर्व पुरुष हो चुके हैं, 'भोंवइ' नाम के एक राजश्रेष्ठी थे, जो जिन भक्त और दया गुण

१. पालनपुर (पल्हणपुर) Palanpur आबू राज्य के परमारवंशी धारावर्ष सं० १२२० (११६३ ई०) से १२७६ ई० सन् १२१६ तक आबू का राजा धारावर्ष था, जिसके कई लेख मिल चुके हैं। उसके कनिष्ठ भ्राता यशोधवल के पुत्र प्रल्हादन देव (पालनसी) ने अपने नाम पर बसाया था। यह बड़ा वीर योद्धा था और विद्वान भी था। इसी से इसे कवियों ने पालणपुर या पल्हणपुर लिखा है। यह गुजरात देश की राजधानी थी। यहां अनेक राजाओं ने शासन किया है। आबू के शिलालेखों में परमार वंश की उत्पत्ति और माहात्म्य का वर्णन है और प्रह्लादनदेव की प्रशंसा का भी उल्लेख है। जिस समय कुमारपाल शत्रुंजयादि तीर्थों की यात्रा को गया, तब प्रह्लादन देव भी साथ में था। पुरातन-प्रबंध संग्रह पृ० ४३)

प्रह्लादन देव की प्रशंसा प्रसिद्ध कवि सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी में और तेजपाल मंत्री द्वारा बनवाए हुए लूणवसही की प्रशस्ति में की है। यह प्रशस्ति वि० सं० १२८७ में आबू पर देलवाड़ा गांव के नेमिनाथ मंदिर में लगाई गई थी। मेवाड़ के गुहिल वंशी राजा सामंतसिंह और गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल की लड़ाई में, जिसमें वह घायल हो गया था प्रह्लादन ने बड़ी वीरता से लड़कर गुजरात की रक्षा की थी।

प्रस्तुत पालनपुर में दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के लोग रहते थे। धनपाल के पितामह तो वहां के राज्य श्रेष्ठी थे। श्वेताम्बर समाज का तो यह प्रमुख केन्द्र ही था। यहां उनके अनेक ग्रंथ लिपि किये गए। जिनदत्त सूरि भी वहां रहे हैं।

से युक्त थे। यह कवि धनपाल के पितामह थे, इनके पुत्र 'सुहडप्रभ' श्रेष्ठी थे, जो धनपाल के पिता थे। कवि की माता का नाम 'सुहडा देवी' था इनके दो भाई और भी थे, जिनका नाम संतोष और हरिराज था। इनके गुरु प्रभाचंद्र थे, जो अपने बहुत से शिष्यों के साथ देशाटन करते हुए उसी पल्हणपुर में आये थे, धनपाल ने उन्हें प्रणाम किया, और मुनि ने आशीर्वाद दिया कि तुम मेरे प्रसाद से विचक्षण होगे। मस्तक पर हाथ रखकर बोले कि मैं तुम्हें मंत्र देता हूँ। तुम मेरे मुख से निकले हुए अक्षरों को याद करो। आचार्य प्रभाचंद्र के वचन सुनकर धनपाल का मन आनन्दित हुआ, और उसने विनय से उनके चरणों की वन्दना की, और आलस्य रहित होकर गुरु के आगे शास्त्राभ्यास किया, और सुकवित्व भी पा लिया। पश्चात् प्रभाचंद्र गणी खंभात धारनगर और देवगिरि (दौलताबाद) होते हुए योगिनी पुर आये। देहली निवासियों ने उस समय एक महोत्सव किया और भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। भट्टारक प्रभाचंद्र ने मुहम्मदशाह तुगलक के मन को अनुरंजित किया था और विद्या द्वारा वादियों का मनोरथ भग्न किया था[१]। मुहम्मदशाह ने वि० सं० १३८१ से १४०८ तक राज्य किया है।

भट्टारक प्रभाचंद्र का भट्टारक रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का समर्थन भगवती आराधना की पंजिका टीका की उस लेखक प्रशस्ति से भी होता है जिसे संवत् १४१६ में इन्हीं प्रभाचंद्र के शिष्य ब्रह्म-नाथूराम ने अपने पढ़ने के लिए दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुगलग के शासनकाल में लिखवाया था, उसमें भ० रत्नकीर्ति के पट्ट पर प्रतिष्ठित होने का स्पष्ट उल्लेख है[२]। फीरोजशाह तुगलक ने सं० १४०८ से १४४५ तक राज्य किया है। इससे स्पष्ट है कि भ०प्रभाचंद्र सं० १४१६ से कुछ समय पूर्व भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित हुये थे और सकल उपमाओं से युक्त थे।

कविवर धनपाल गुरु आज्ञा से सौरिपुर तीर्थ के प्रसिद्ध भगवान नेमिनाथ जिनकी वन्दना करने के लिये गए थे। मार्ग में इन्होंने चन्द्रवाड[३] नाम का नगर देखा, जो जन धन से परिपूर्ण और उतुंग जिनालयों से विभूषित था, वहां साहु वासाधर का बनवाया हुआ जिनालय भी देखा और वहां के श्री अरहनाथ जिनकी वन्दना कर अपनी गर्हा तथा निंदा की और अपने जन्म-जरा और मरण का नाश होने की कामना व्यक्त की। इस नगर में कितने ही ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं जिन्होंने जैनधर्म का अनुष्ठान करते हुए वहां के राज्य मंत्री रह कर प्रजा का पालन किया है। कवि का समय पन्द्रहवीं शताब्दी है।

२०वीं प्रशस्ति (चंदप्पहचरिउ) नाम के ग्रन्थ की है, जिनके कर्ता कवि यशःकीर्ति हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्यारह संधियाँ हैं जिनमें जैनियों के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवन परिचय अंकित किया गया है। ग्रन्थ का चरित भाग बड़ा ही सुन्दर और प्रांजल है। इसका अध्ययन करने से जैन तीर्थंकर की आत्म-साधना की रूपरेखा का जहां परिज्ञान होता है वहां आत्म-साधना के सुन्दर उपाय की भी जानकारी हो जाती है।

---

१. तहिं भव्वहिं सुमहोच्छव विहियउ, सिरि रयणकित्ति पट्टे णिहिउ।
महमंदसाहि मणुरंजियउ, विज्जहिं वाइय मणु भंजियउ। —बाहुबलि चरिउ प्रशस्ति

२. संवत् १४१६ वर्षे चैत्र सुदि पञ्चम्यां सोमवासरे सकलराज शिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृत चरण कमल पादपीठस्य श्रीपेरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्री दिल्यां श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री रत्नकीर्ति देव पट्टोदयाद्रितरुणतरणित्वमुर्वीकुर्वाणंरण: (ण:) भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव शिष्याणां ब्रह्मनाथूराम। इत्याराधना पंजिकायां ग्रंथ आत्म पठनार्थं लिखापितम्। —आरा० पंजि० प्रश० ब्यावर भवन प्र०

३. देखो, चन्द्रवाड का इतिहास नाम का मेरा लेख, अनेकान्त वर्ष ८।

कवि ने अपना सभी कथन काव्य-शैली से किया है, किन्तु साध्य-चरित भाग को सरल शब्दों में रखने का प्रयत्न किया गया है। इसमें विविध छन्दों की भरमार नहीं है। कवि ने इस ग्रन्थ को 'हुंबड' कुलभूषण कुमरसिंह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध से बनाया था, वे उन्मत्त ग्राम के निवासी थे। अतएव ग्रन्थ सिद्धपाल के ही नामांकित किया गया है।

समय विचार

ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया; किन्तु आद्य प्रशस्ति में निम्न विद्वानों का उल्लेखमात्र किया है। साथ ही, आचार्य समन्तभद्र के मुनि जीवन के समय घटने वाली और आठवें तीर्थंकर के स्तोत्र की सामर्थ्य से चन्द्रप्रभ की मूर्ति के प्रकट होने की घटना का उल्लेख करते हुए अकलंक, पूज्यपाद, जिनसेन और सिद्धसेन नाम के अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया है। जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि प्रस्तुत ग्रंथ भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति की कृति नहीं है। ग्रन्थका भाषा साहित्य भी पाण्डवपुराण के कर्ता यशःकीर्ति से गम्भीर प्रौढ़ और प्रभावक है। कुछ विद्वान इसे उक्त यशःकीर्ति को और पाण्डवपुराण के कर्ता यशःकीर्ति, दोनों को एक बतलाते हैं, परन्तु वे इसका कोई प्रमाण नहीं देते हैं।

साथ ही, दोनों ग्रन्थों की सन्धि-पुष्पिकाओं में भी भारी अन्तर है। भट्टारक यशःकीर्ति अपने प्रत्येक ग्रन्थ की सन्धि-पुष्पिका में 'सिरि गुणकीर्ति सिस्स मुणि जसकित्ति विरइए' वाक्य के साथ उल्लेखित करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि उक्त कृति भ० गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति की रची हुई है। किंतु चन्द्रप्रभ चरित्र के कर्ता ने अपने ग्रन्थ की किसी भी संधि में गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति का कोई उल्लेख नहीं किया है। जिससे प्रस्तुत यशःकीर्ति पाण्डवपुराणादि के कर्ता भ० यशःकीर्ति से भिन्न हो जाते हैं। जैसा कि ग्रन्थ के निम्न संधि वाक्य से प्रकट है :—"इय सिरि चंदप्पहचरिए महाकव्वे महाकइ जसकित्ति विरइए महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे चंदप्पहसामिणिव्वाण गमण वण्णणोणाम एयारहमो-संधी परिच्छेउ समत्तो।"

गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति ने कहीं भी अपने को महाकवि सूचित नहीं किया है; किन्तु चन्द्रप्रभ चरित के कर्त्ता ने अपने को 'महाकवि' भी प्रकट किया है।

अतः ऊपर के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता इनसे भिन्न और पूर्ववर्ती हैं। इनका समय सम्भवतः ११वीं-१२वीं शताब्दी ज्ञात होता है। ग्रंथ अभी अप्रकाशित है और उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

२१वीं, २२वीं, २३वीं और २४वीं प्रशस्तियाँ क्रम से 'पाण्डवपुराण' हरिवंश पुराण, जिनरात्रिकहा, और रविवउकथा की हैं। जिनके कर्ता भ० यशः कीर्ति हैं।

पाण्डवपुराण में ३४ संधियां हैं जिनमें भगवान् नेमिनाथ की जीवन-गाथा के साथ युधिष्टिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव, और कौरवों के परिचय से युक्त कौरवों से होने वाले युद्ध में विजय, नेमिनाथ, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की तपश्चर्या तथा निर्वाण प्राप्ति, नकुल, सहदेव का सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करना और बलदेव का ५वें स्वर्ग में जाने का उल्लेख किया है। कवि यशः कीर्ति विहार करते हुए नवगांव नाम के नगर में आए, जो दिल्ली के निकट था, वहां उन्होंने इसकी रचना वि० सं० १४९७ में समाप्त की है। ग्रंथ में नारी का वर्णन परम्परागत उपमानो से अलंकृत है, किन्तु शारीरिक सौंदर्य का अच्छा वर्णन किया गया है—'जाहे णियंतिहे रइवि उक्खिज्जइ'—जिसे देखकर रति भी खीज उठती है। इतना ही नहीं किन्तु उसके सौंदर्य से इन्द्राणी भी खिन्न हो जाती है—'लायण्णें वासवपिय जूरइ' कवि ने जहां शरीर के

वाह्य सौंदर्य का कथन किया है वहां उसके अन्तर प्रभाव की भी सूचना की है। छन्दों में पद्धडिया के अतिरिक्त आरणाल, दुवई, खंडय, हेला, जंभोट्टिया, रचिता, मलयविलासिया, आवली, चतुष्पदी, सुन्दरी, वंशस्थ, गाहा, दोहा और वस्तु छन्द का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है[1]। कवि ने यह ग्रन्थ शाह हेमराज के अनुरोध से बनाया है जो दिल्ली के बादशाह मुबारिक शाह के मंत्री थे। इन्होंने दिल्ली में एक चैत्यालय भी बनवाया था[2], जिसकी प्रतिष्ठा सं० १४९७ से पूर्व हो चुकी थी; क्योंकि सं० १४९७ में निर्मित ग्रंथ में उसका उल्लेख किया है। ग्रंथ की संधियों के संस्कृत पद्यों में ग्रन्थ निर्माण में प्रेरक हेमराज की मंगल कामना की गई है और यह ग्रन्थ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में हेमराज के परिवार का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

२२वीं प्रशस्ति 'हरिवंशपुराण' की है जिसमें १३ संधियां और २६७ कडवक हैं जो चार हजार श्लोकों के प्रमाण को लिए हुए हैं। इनमें कवि ने भगवान् नेमिनाथ और उनके समय में होने वाले कौरव पाण्डव युद्ध और विजय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है अर्थात् महाभारत कालीन जैन मान्यता सम्मत पौराणिक आख्यान दिया हुआ है। ग्रन्थ में काव्यमय अनेक स्थल अलंकृत शैली से वर्णित हैं। उसमें नारी के बाह्य रूप का ही चित्रण नहीं किया गया, किन्तु उसके हृदय-स्पर्शी प्रभाव को भी अङ्कित किया है। कवि ने ग्रंथ को यद्यपि पद्धडिया छन्द में रचने की घोषणा की है, किन्तु आरणाल, दुवई, खंडय, जंभोट्टिया, वस्तुबंध और हेला आदि छन्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया गया है। ऐतिहासिक कथनों की प्रधानता है, परंतु सभी वर्णन सामान्य कोटि के हैं उनमें तीव्रता की अभिव्यक्ति नहीं है। यह ग्रन्थ हिसार निवासी अग्रवाल वंशी गर्गगोत्री साहु दिवढ्ढा के अनुरोध से बनाया गया था, साहु दिवढ्ढा परमेष्ठी आराधक, इन्द्रिय-विषयविरक्त, सप्तव्यसनरहित, अष्टमूलगुणधारक तत्त्वार्थश्रद्धानी, अष्ट अंग परिपालक, ग्यारह प्रतिमा आराधक, और बारहव्रतों का अनुष्ठापक था, उसके दान-मान की कवि यशःकीर्ति ने खूब प्रशंसा की[3] है। उसी के अनुरोधवश यह ग्रन्थ वि० सं० १५०० में भाद्रपद शुक्ला एकादशी के दिन 'इंदउरि' इन्द्रपुर या इन्द्रपुरी (दिल्ली) में जलालखाँ के राज्य में समाप्त हुआ है।

२३वीं प्रशस्ति 'जिनरात्रिकथा' की है, जिसमें शिवरात्रि कथा की तरह भगवान महावीर ने जिस रात्रि में अवशिष्ट अघाति कर्म का विनाश कर पावापुर से मुक्ति पद प्राप्त किया था उसी का वर्णन प्रस्तुत कथा में किया गया है। उस दिन और रात्रि में व्रत करना, तथा तदनुसार आचार का पालन करते हुए आत्म-साधना द्वारा आत्म-शोधन करना कवि की रचना का प्रमुख उद्देश्य है।

२४वीं प्रशस्ति रविव्रत कथा की है, जिसमें रविवार के व्रत से लाभ और हानि का वर्णन करते हुए, रविव्रत के अनुष्ठापक और उसकी निन्दा करने वाले दोनों व्यक्तियों की अच्छी बुरी परिणतियों से निष्पन्न फल का निर्देश करते हुए व्रत की सार्थकता, और उसकी विधि आदि का सुन्दर विवेचन किया गया है।

---

१. झं झणण झणण झल्लरि वि सद्द, टं टं करंत करि वीर घंट !
कंसाल ताल सद्दइ करंति, मिहुणई इव विहडिवि पुणु मिलंति।
डम डम डम डमरू सद्दियाइं, वहु ढोल निसाणइं वज्जियाइं।

२. जेण करावउ जिण-चेयालउ, पुण्णहेउ चिर-रय-पक्खालिउ।
धय-तोरण-कलसेहिं अलंकिउ, जसु गुरुत्ति हरिजणु वि संकिउ।

३. दाणेण जासु कित्ती पर उवयारसु संपया जस्स।
णिय पुत्त कलत्त सहिउ णंदउ दिवढाख्य इह भुवणे॥ —हरिवंश पुराण प्रथम संधि

कवि परिचय

भट्टारक यशः कीर्ति काष्ठासङ्घ माथुरगच्छ और पुष्करगण के भट्टारक गुणकीर्ति (तपश्चरण से जिनका शरीर क्षीण हो गया था) के लघु भ्राता और पट्टधर थे[1]। यह उस समय के सुयोग्य विद्वान् और कवि थे, तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने सं० १४८६ में विबुध श्रीधर के संस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रंश भाषा का 'सुकमालचरित' ये दोनों ग्रन्थ लिखवाये थे[2]। इन्होंने अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी कराई थी। ग्वालिर के भ० मंदिर में इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां विराजमान हैं। यह ग्वालियर के शासक तोमर वंशीय राजा डूंगरसिंह के समय में हुए हैं जिसने सं० १४८१ से सं० १५१० तक राज्य किया है। यह जैनधर्म का श्रद्धालु था। इसने उस समय सैकड़ों मूर्तियां ग्वालियर के किले में उत्कीर्ण कराई थी, जिनकी खुदाई का कार्य ३३ वर्ष पर्यन्त चला था। इनके महाकवि रइधू जैसे शिष्य थे। रइधू ने अपने 'सम्मइ जिनचरिउ' नामक ग्रन्थ-प्रशस्ति में यशःकीर्ति का निम्न शब्दों में गुण-गान किया है—

"ताहि कमागयतव तवियंगो, णिच्चुब्भासिय-पवयण-संगो।
भव्व-कमल-संवोह-पयंगो, वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो।
तस्स पसाएँ कव्वु पयासमि, चिरभवि विहिउ असुर णिण्णासमि॥"

भट्टारक यशः कीर्ति को महाकवि स्वयम्भू देव का 'हरिवंश पुराण' (रिट्ठणेमिचरिउ) जीर्ण-शीर्ण दशा में प्राप्त हुआ था और जो खंडित भी हो गया था, जिसका उन्होंने ग्वालियर के कुमार नगर के जैन मंदिर में व्याख्यान करने लिए उद्धार किया था[3] और इसमें अपना नाम भी अङ्कित कर दिया था यह कवि रइधू के तो गुरु थे ही, इनकी और इनके शिष्यों की प्रेरणा से कवि रइधू ने अनेक ग्रंथो की रचना की है। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी है।

१. तहो सीसु सिद्ध गुण कित्तिणामु, तव तावें जासु सरीस खामु।
तहो बंधवु जस मुणि सीसु जाउ, आयरिउ पणासिय दोसु-राउ। —हरिवंशपुराण प्रश०

२. "सं० १४८६ वर्षे अश्वणिवदि १३ सोमदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरेन्द्रसिंह देव विजयराज्य प्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्रीभावसेनदेवास्तत्पट्टे श्रीसहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे श्री गुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्येण श्रीयशः कीर्तिदेवेन निजज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थं इदं सुकमालचरितं लिखापितं कायस्थ थाजन पुत्र थलू लेखनीयं।"
"सं० १४८६ वर्षे आषाढ़ वदि ७ गुरुदिने गोपाचलदुर्गे राजा डूंगरसी (सिं) ह राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्य श्री सहस्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे आचार्य गुणकीर्ति देवास्तिच्छिष्य श्रीयशः कीर्तिदेवास्तेन निज ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थं इदंभविष्यदत्त पंचमीकथालिखापितम्।"

३. तं जसकित्ति-मुणिहि उद्धरियउ, णिए वि सत्तु हरिवंसच्चरिउ।
णिय-गुरु-सिरि-गुण-कित्ति-पसाएँ, किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएँ।
सरह सणेदं (?) सेठि आएसें, कुमरि-णयरि आविउ सविसेसें।
गोवग्गिरिहे समीवे विसालए, पणियारहे जिणवर-चेयालए।
सावयजणहो पुरउ वक्खाणिउ, दिट्ठमिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ।
—हरिवंश पुराण प्रशस्ति नरायणा प्रति

२५वीं प्रशस्ति 'पासणाहचरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि श्रीधर हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ एक खण्ड काव्य है। ग्रन्थ में १२ सन्धियाँ हैं जिनकी श्लोक संख्या ढाई हजार से ऊपर है। ग्रन्थ में जैनियों के तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। कथानक वही है जो अन्य प्राकृत-संस्कृत के ग्रंथों में उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने दिल्ली नगर का अच्छा परिचय दिया है। उस समय दिल्ली जोयणिपुर, योगिनीपुर के नाम से विख्यात थी, जन-धन से सम्पन्न, उत्तुंग साल (कोट) गोपुर, विशालपरिखा, रणमंडपों, सुन्दर मन्दिरों, समद गज-घटाओं, गतिशील तुरंगों, ध्वजाओं से अलंकृत थी, तथा स्त्रियों की नूपुर ध्वनि को सुन्दर नाचते हुए मयूरों और विशालहट्ट मार्गों से विभूषित थी। और वह हरियाना देश में थी।

कवि ने ग्रंथ की समाप्ति-सूचक सन्धि-पुष्पिका गद्य में न देकर स्वयंभू और नयनन्दी कवि के समान पद्य में दी है[1]।

श्रीधर ने इस ग्रन्थ की रचना दिल्ली में उस समय की, जब वहां तोमरवंशी क्षत्रिय अनंगपाल तृतीय का राज्य शासन चल रहा था। यह अनंगपाल अपने दो पूर्वजों से भिन्न था। बड़ा प्रतापी एवं वीर था। इसने हम्मीर वीर की सहायता की थी। ये हम्मीर वीर अन्य कोई नहीं, ग्वालियर के परिहार वंश की द्वितीय शाखा के हम्मीरदेव जान पड़ते हैं, जिन्होंने सं० १२१२ से १२२४ तक ग्वालियर में राज्य किया है। पर अनंगपाल से इनका क्या सम्बन्ध था, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। उस समय दिल्ली वैभव सम्पन्न थी, उसमें विविध जाति और धर्म वाले लोग बसते थे।

ग्रंथ रचना में प्रेरक

साहु नट्टल के पिता का नाम 'आल्हण' था। इनका वंश अग्रवाल था, और वह सदा धर्म-कर्म में सावधान रहते थे। इनकी माता का नाम 'मेमडिय' था, जो शीलरूपी सत् आभूषणों से अलंकृत थी, और बांधवजनों को सुख प्रदान करती थी। साहू नट्टल के दो ज्येष्ठ भाई और भी थे, राघव और सोढल। इनमें राघव बड़ा ही सुन्दर एवं रूपवान् था। उसे देखकर कामिनियों का चित्त द्रवित हो जाता था। और सोढल विद्वानों को आनन्ददायक, गुरु भक्त तथा अरहंतदेव की स्तुति करने वाला था, जिसका शरीर विनय रूपी आभूषणों से अलंकृत था, तथा बड़ा बुद्धिमान और धीर-वीर था। नट्टलसाहु इन सबमें लघु पुण्यात्मा सुन्दर और जनवल्लभ था। कुलरूपी कमलों का आकार और पापरूपी पांशु (रज) का नाशक, तीर्थंकर का प्रतिष्ठापक, बन्दीजनों को दान देने वाला, परदोषों के प्रकाशन से विरक्त, रत्नत्रय से विभूषित, और चतुर्विध संघ को दान देने में सदा तत्पर रहता था। उस समय दिल्ली के जैनियों में वह प्रमुख था, व्यसनादि-रहित हो श्रावक के व्रतों का अनुष्ठान करता था। साहु नट्टल केवल धर्मात्मा ही नहीं थे, किन्तु उच्चकोटि के कुशल व्यापारी भी थे। उस समय उनका व्यापार अंग-बंग, कलिङ्ग, कर्नाटक, नेपाल, भोट, पांचाल, चेदि, गौड़, ठक्क, (पंजाब), केरल, मरहट्ट, भादानक, मगध, गुर्जर, सोरठ और हरियाना आदि देशों और नगरों में चल रहा था। यह व्यापारी ही नहीं थे; किन्तु राजनीति के चतुर पंडित भी थे। कुटुम्बीजन तो नगर सेठ थे, और आप स्वयं तोमरवंशी अनंगपाल (तृतीय) के आमात्य थे। आपने

१. इस सिरि पासचरित्तं, रइयं बुहसिरिहरेण गुण भरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं, णट्टल नामेण भव्वेण ॥१॥
विजयंत विमाणाओ वामादेवीइ णंदणो जाओ।
कणयप्पहु चविऊणं पढमो संघी परिसमत्तो ॥२॥

कवि श्रीधर से, जो हरियाना देश से यमुना नदी को पार कर उस समय दिल्ली में आये थे, ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा की थी, तब कवि ने इस सरस खण्ड-काव्य की रचना वि० सं० ११८९ अगहन वदी अष्टमी रविवार के दिन समाप्त की थी।

नट्टलसाहु ने उस समय दिल्ली में आदिनाथ का[1] एक प्रसिद्ध जिन मन्दिर भी बनवाया था, जो अत्यन्त सुन्दर था। जैसा कि ग्रंथ के निम्न वाक्यों से प्रकट है :—

"कारावेवि णाहेयहो णिकेउ, पविइण्णु पंचवण्णं सुकेउ।
पइं पुणु पइट्ठ पविरइयजेम, पासहो चरित्तु जइ पुणवि तेम॥"

आदिनाथ के इस मन्दिर की उन्होंने प्रतिष्ठा विधि भी की थी, उस प्रतिष्ठोत्सव का उल्लेख उक्त ग्रंथ की पांचवीं सन्धि के बाद दिये हुए निम्न पद्य से प्रकट है :—

येनाराध्य विशुध्य धीरमतिना देवाधिदेवं जिनं,
सत्पुण्यं समुपार्जितं निजगुणैः संतोषिता बांधवाः।
जैनं चैत्यमकारि सुन्दर तरं जैनी प्रतिष्ठां तथा,
स श्रीमान्विदितः सदैव जयतात्पृथ्वीतले नट्टलः॥

इस तरह कवि ने साहु नट्टल की मंगल कामना की है।

कवि परिचय

प्रस्तुत कवि श्रीधर हरियाना देश के निवासी थे, और अग्रवाल कुल में उत्पन्न हुए थे। आपके पिता का नाम 'गोल्ह' था और माता का नाम 'वील्हादेवी' था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा और जीवनादि घटना का कोई उल्लेख नहीं किया। ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में अपनी एक अन्य रचना 'चंदप्पहचरिउ' (चन्द्रप्रभचरित) का उल्लेख किया है, परन्तु वह अभी तक अनुपलब्ध है। कवि की अन्य क्या-क्या कृतियां हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। परंतु कवि की तीसरी रचना 'वर्धमानचरित' है। जो संवत् ११९० में रचा गया था, जिसकी अपूर्ण प्रशस्ति परिशिष्ट नं० ३ में दी गई है। देखिये परिचय परिशिष्ट नं० ३। कवि का समय विक्रम की १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। कवि की उक्त कृति अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न होना चाहिये।

२६वीं और १०४वीं प्रशस्ति 'सेणियचरिउ' या 'वड्ढमाणकव्व' और 'मल्लिणाह कव्व' नामक ग्रन्थों की है, जिनके कर्ता कविहल्ल या हरिइंद अथवा हरिचन्द हैं।

प्रथम ग्रन्थ में ११ संधियां हैं, जिनमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान भगवान का जीवन-परिचय अङ्कित किया गया है। साथ ही, उनके समय में होने वाले मगध के शिशुनाग वंशी सम्राट् बिम्बसार या श्रेणिक की जीवन गाथा भी दी हुई है। यह राजा बड़ा प्रतापी था और राजनीति में कुशल था। इसके सेनापति श्रेष्ठि पुत्र जंबूकुमार ने केरल के राजा मृगांक पर विजय कर उसकी पुत्री विलासवती से श्रेणिक का विवाह सम्बन्ध कराया था। इसकी पट्टमहिषी चेलना वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष राजा चेटक की सुपुत्री थी। जो जिनधर्म पालिका और पतिव्रता थी। उक्त राजा श्रेणिक पहले बुद्ध धर्म का अनुयायी था किन्तु वह चेलना के सहयोग से दिगम्बर जैनधर्म का भक्त और महावीर का प्रमुख श्रोता हो गया था। ग्रन्थ की भाषा

१. पहले मेरे लेख में इसे पार्श्वनाथ का मन्दिर लिखा गया था, पर वह पार्श्वनाथ का मन्दिर नहीं था किन्तु आदिनाथ का मन्दिर था, जिसे ऋषभदेव का मन्दिर भी कहते थे। उस समय वहां जैनियों के और मन्दिर भी बने हुए थे।

शिवनंदि भट्टारक की आम्नायके थे। जिनधर्मरत, श्रावकधर्म प्रतिपालक, दयावंत और चतुर्विधि संघकें संपोषक थे। मुनि पद्मनंदि ने शिवनंदी को दीक्षा दी थी। दीक्षा से पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था, जो संसार से विरक्त और निरंतर बारह भावनाओं का चिन्तन करते थे। उन्होंने दीक्षित होने के वाद कठोर तपश्चरण किया, मासोपवास किये, और निरन्तर धर्मध्यान में लीन रहते थे। प्रशस्ति में साहु सुरजन के परिवार का भी परिचय दिया हुआ है। कवि तेजपाल ने इस ग्रन्थ को वि० सं० १५१५ में कार्तिक कृष्णापंचमी के दिन समाप्त किया था।

कवि-परिचय

कवि मूलसंध के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकोर्ति की आम्नाय का था। वासवपुर नामक गांव में वरसावडह वंश में जाल्हउ नाम के एक साहु थे। उनके पुत्र का नाम सूजउ साहू था, वे दयावंत और जिनधर्म में अनुरक्त रहते थे। उनके चार पुत्र थे, रणमल, बल्लाल, ईसरू और पोल्हणु ये चारों ही भाई खंडेलवाल कुल के भूषण थे। प्रस्तुत रणमल साहु के पुत्र ताल्हुय साहु हुए। उनका पुत्र कवि तेजपाल था, जिसने उक्त तीनों खण्ड काव्य-ग्रन्थों की रचनाएं की हैं। ये तीन ही ग्रंथ अप्रकाशित हैं, उन्हें प्रकाश में लाना चाहिए।

३०वीं प्रशस्ति 'सुकमाल चरिउ' की है। जिसके कर्ता मुनि पूर्णभद्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में छह परिच्छेद या सन्धियाँ हैं जिनमें अवन्ती नगरी के सुकमाल श्रेष्ठी का जीवन-परिचय अंकित है। जिससे मालूम होता है कि उनका शरीर कितना सुकोमल था; परन्तु वे परिषहों और निस्पृह थे। उनकी उपसर्ग जन्य पीड़ा का ध्यान आते ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु परीषह जयी उस साधु की सहिष्णुता पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, जब गीदड़ी और उसके बच्चों द्वारा शरीर के खाये जाने पर भी उन्होंने पीड़ा का अनुभव नहीं किया, प्रत्युत सम परिणामों द्वारा नश्वर काया का परित्याग किया। ऐसे परीषह जयी योगी के चरणों में मस्तक अनायास झुक ही जाता है। कवि ने इस ग्रंथ की रचना कब की यह ग्रंथ-प्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नहीं होता।

कवि-परिचय

कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार बतलाई है। वे गुजरात देश के नागर मण्डल नामक नगर के निवासी थे। वहाँ वीरसूरि नाम के एक महामुनि थे। उनके शिष्य मुनिभद्र, मुनिभद्र के शिष्य कुसुमभद्र कुसुमभद्र के शिष्य गुणभद्र, और गुणभद्र के शिष्य पूर्णभद्र। परन्तु प्रशस्ति में कर्ता ने अपने संध गण गच्छादिक का कहीं कोई उल्लेख ही नहीं किया, जिससे उनकी गुरु परम्परा और समय पर प्रकाश डाला जाता। आमेर शास्त्र भंडार की प्रति में लिपि प्रशस्ति नहीं है। किन्तु दिल्ली के पंचायती मंदिर की यह प्रति सं० १६३२ की लिखी हुई है। जिसकी पत्र संख्या ४३ है। इससे ग्रंथ रचना बहुत पहले हुई है। कितने पूर्व हुई यह अभी विचारणीय है।

नेमिणाह चरिउ के कर्ता कवि दामोदर ने अपने गुरु का नाम पूर्णभद्र लिखा है, वह ग्रन्थ सं० १२८७ में रचा गया है। यदि ये पूर्णभद्र गुणभद्र के ही शिष्य हों; तो ऐसी स्थिति में प्रस्तुत ग्रंथ का रचना काल विक्रम की १३वीं शताब्दी का मध्यभाग हो सकता है। और यदि वे पूर्णभद्र, गुणभद्र के शिष्य नहीं हैं तब, उनका समय अन्वेषणीय है।

३१वीं प्रशस्ति 'णेमिणाह चरिउ' की है, जिसका परिचय ग्यारहवीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

३२ वीं प्रशस्ति 'रोमिणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण हैं। ग्रन्थ में ४ संधियां या परिच्छेद और ८३ कडवक हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या १३५० के लगभग है। ग्रन्थ में चरित और धार्मिक उपदेश की प्रधानता होते हुए वह अनेक सुन्दर स्थलों से अलंकृत हैं। ग्रन्थ की प्रथम सन्धि में जिन और सरस्वती के स्तवन के साथ मानव जन्म की दुर्लभता का निर्देश करते हुए सज्जन-दुर्जन का स्मरण किया है और फिर कवि ने अपनी अल्पज्ञता को प्रदर्शित किया है। मगध देश और राजगृह नगर के कथन के पश्चात् राजा श्रेणिक अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए गणधर से नेमिनाथ का चरित वर्णन करने के लिए कहता है। वराडक देश में स्थित वारावती या द्वारावती नगरी में जनार्दन नाम का राजा राज्य करता था, वहीं शौरीपुर नरेश समुद्रविजय अपनी शिवदेवी के साथ रहते थे। जरासन्ध के भय से यादव गण शौरीपुर छोड़कर द्वारिका में रहने लगे। वहीं उनके तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ था। यह कृष्ण के चचेरे भाई थे। बालक का जन्मादि संस्कार इन्द्रादि देवों ने किया था। दूसरी संधि में नेमिनाथ की युवावस्था, वसंत वर्णन और जलक्रीड़ा आदि के प्रसंगों का कथन दिया हुआ है। कृष्ण को नेमिनाथ के पराक्रम से ईर्षा होने लगती है और वह उन्हें विरक्त करना चाहते हैं। जूनागढ़ के राजा की पुत्री राजमती से नेमिनाथ का विवाह निश्चित होता है। बारात सज-धज कर जूनागढ़ के सन्निकट पहुंचती है, नेमिनाथ बहुत से राजपुत्रों के साथ रथ में बैठे हुए आस-पास की प्राकृतिक सुषमा का निरीक्षण करते हुए जा रहे थे। उस समय उनकी दृष्टि एक ओर गई तो उन्होंने देखा बहुत से पशु एक बाड़े में बन्द हैं वे वहां से निकलना चाहते हैं किन्तु वहां से निकलने का कोई मार्ग नहीं है। नेमिनाथ ने सारथी से रथ रोकने को कहा और पूछा कि ये पशु यहां क्यों रोके गए है। नेमिनाथ को सारथि से यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि बरात में आने वाले राजाओं के आतिथ्य के लिए इन पशुओं का वध किया जायगा, इससे उनके दयालु हृदय को बड़ी ठेस लगी, वे बोले—यदि मेरे विवाह के निमित्त इतने पशुओं का जीवन संकट में है, तो धिक्कार है मेरे उस विवाह को, अब मैं विवाह नहीं करूंगा। पशुओं को छुड़वाकर तुरन्त ही रथ से उतर कर मुकट और कंकण को फेंक वन की ओर चल दिए। इस समाचार से बरात में कोहराम मच गया। उधर जूनागढ़ के अन्तःपुर में जब राजकुमारी को यह ज्ञात हुआ, तो वह मूर्छा खाकर गिर पड़ी। बहुत से लोगों ने नेमिनाथ को लौटाने का प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। वे पास में स्थित ऊर्जयन्त गिरि पर चढ़ गए और सहसाम्रवन में वस्त्रालंकार आदि परिधान का परित्याग कर दिगम्बर मुद्राधर आत्मध्यान में लीन हो गए। तीसरी संधिमें वियोग का वर्णन है। राजमती ने भी तपश्चरण द्वारा आत्म-साधना की। अन्तिम संधि में नेमिनाथ का पूर्ण ज्ञानी हो धर्मोपदेश और निर्वाण प्राप्ति का कथन दिया हुआ है। इस तरह ग्रंथ का चरित विभाग बड़ा ही सुन्दर तथा संक्षिप्त है और कवि ने उक्त घटना को सजीव रूप में चित्रित करने का उपक्रम किया है।

कवि ने संसार की विवशता का सुन्दर अंकन करते हुए कहा है—जिस मनुष्य के घर में अन्न भरा हुआ है उसे भोजन के प्रति अरुचि है। जिसमें भोजन करने की शक्ति है, उसके पास शस्य (धान्य) नहीं। जिसमें दान का उत्साह है उसके पास धन नहीं, जिसके पास धन है, उसे अति लोभ है। जिसमें काम का प्रभुत्व है उसके भार्या नहीं, जिसके पास स्त्री है उसका काम शान्त है। जैसा कि ग्रन्थ की निम्न पंक्तियों से प्रकट है—

जसु गेहि अण्णु तसु अरुइ होइ, जसु भोजसत्ति तसु ससु ण होइ।
जसु दाण छाहु तसु दविणु णत्थि, जसु दविणु तासु उइ लोहु अत्थि।
जसु मयणु राउ तसि णत्थि भाम, जसु भाम तासु उच्छवण काम। —णेमिणाह चरिउ ३-२

ग्रंथकर्ता ने स्थान-स्थान पर अनेक सुन्दर सुभाषितों और सूक्तियों को उद्धृत किया है वे निम्न प्रकार हैं—

किं जीयइं धम्म विवज्जिएण—'धर्म रहित जीने से क्या प्रयोजन है।
किं सुडइं संगरि कायरेण—युद्ध में कायर सुभटों से क्या ?
किं वयण असच्चा भासणेण, झूठ वचन बोलने से क्या प्रयोजन है ?
किं पुत्तइं गोत्त विणासणेण, कुल का नाश करने वाले पुत्र से क्या ?
किं फुल्लइं गंध विवज्जिएण, गन्ध रहित फूल से क्या ?

ग्रन्थ में कड़वकों के प्रारम्भ में हेला, दुवई, वस्तु बंध आदि छंदों का प्रयोग किया है। किन्तु ग्रंथ में छन्दों की बहुलता नहीं हैं।

कवि ने इस ग्रंथ को १० महीने में समाप्त किया है। ग्रंथ की सबसे पुरानी प्रति सं० १५१० की लिखी हुई प्राप्त हुई है। इससे इसका रचना काल सं० १५१० के बाद का नहीं हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है यह अन्वेषणीय है। सम्भवतः यह कृति १२ वीं या १३ वीं शताब्दी की होनी चाहिए।

कवि परिचय

लक्ष्मणदेव का वंश पुरवाड़ था और पिता का नाम था रयणदेव या रत्नदेव। इनकी जन्मभूमि मालव देशान्तर्गत गोनन्द नामक नगर में थी। यह नगर उस समय जैनधर्म और विद्या का केन्द्र था वहां अनेक उत्तुंग जिन मन्दिर तथा मेरु जिनालय भी था। कवि अत्यन्त धार्मिक, धन सम्पन्न और रूपवान था वहां पहले कवि ने किसी व्याकरण ग्रंथ की रचना की थी, जो विद्वानों के कण्ठ का आभरण रूप था। परन्तु कौन सा व्याकरण ग्रन्थ था, और उसका क्या नाम था, यह प्रयत्न करने पर भी ज्ञात नहीं हो सका। हो सकता है कि वह अपभ्रंश का व्याकरण हो या संस्कृतका हो। गोनन्द नगरके अस्तित्वका भी मुझे पता नहीं चला। पर इतना जरूर मालूम होता है कि यह नगरी मालव देश में थी, और उज्जैन तथा भेलसा के मध्यवर्ती किसी स्थान पर होनी चाहिए। संभव है वर्तमान में उसके नाम पर कोई अन्य नगर बस गया हो। कवि वहां रहकर जिन-वाणी के रस का पान किया करते थे। इनके भाई का नाम 'अम्बदेव' था, जो कवि थे, उन्होंने भी किसी ग्रन्थ की रचना की थी, पर वह भी अनुपलब्ध है। मालव प्रांत के किसी शास्त्र-भंडार में इसकी तलाश होनी चाहिए।

३३ वीं ३४ वीं प्रशस्तियां क्रमशः अमरसेनचरित और नागकुमार चरित की हैं, जिनके कर्ता कवि माणिक्यराज हैं।

प्रथम ग्रन्थ अमरसेनचरित में ७ परिच्छेद या सन्धियां हैं जिनमें अमरसेन की जीवन गाथा दी हुई है राजा अमरसेन ने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया था। वह धर्मनिष्ठ और संयमी था, वह देह भोगों से उदास हो आत्म-साधना के लिए उद्यत हुआ, उसने वस्त्राभूषण का परित्याग कर दिगम्बर दीक्षा ले ली, और शरीर से भी निष्पृह हो अत्यन्त भीषण तपश्चरण किया। आत्म-शोधन की दृष्टि से अनेक यातनाओं को साम्यभाव से सहा। उनकी कठोर साधना का स्मरण आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह १६वी शताब्दी का अच्छा खण्ड-काव्य है। आमेर शास्त्र भंडार की इस प्रति का प्रथम पत्र त्रुटित है। इसकी अपभ्रंश भाषा होते हुए भी हिन्दी भाषा के विकास के अत्यधिक नजदीक है।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना रोहतक नगर[1] में की है, जहाँ के पार्श्वनाथ मंदिर में दो विद्वान निवास करते थे। उनका नाम गरवउ और जसमलु था, जो गुणों के निधान थे। उनका लघुबान्धव शांतिदास था, जो ग्रन्थ के अर्थ का जानकार था। इस चरित ग्रन्थ का निर्माण कराने वाले चौधरी देवराज थे। जिनका कुल अग्रवाल और गोत्र था सिंघल या सिंगल। और वे चौधरी पद से अलंकृत थे। उनके पिता का नाम साहु महणा था। यह ग्रन्थ देवराज चौधरी की प्रेरणा से बनाया गया है, अतएव उन्हीं के नामांकित किया गया है। प्रशस्ति में देवराज के कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् १५७६ की चैत्र शुक्ला पंचमी शनिवार के दिन कृतिका नक्षत्र के शुभयोग में की है। और आमेर भंडार की यह प्रति सं० १५७७ कार्तिक वदी चतुर्थी की लिपि की हुई है, जो मुनपत में लिखी गई थी।

३४ वीं ग्रन्थ प्रशस्ति—नागकुमारचरित की है, जिसमें दो सन्धियां हैं, जिनकी श्लोक संख्या ३३०० के लगभग है जिनमें नागकुमार का पावन चरित अंकित किया गया है। चरित वही है जिसे पुष्पदन्तादि कवियों ने लिखा है, उसमें कोई खास वैशिष्ट्य नहीं पाया जाता। ग्रन्थ की भाषा सरल और हिन्दी के विकास को लिये हुए है। इस खण्ड काव्य के भी प्रारंभ के दो पत्र नहीं हैं, जिससे प्रति खंडित हो गई है और उससे आद्य प्रशस्ति का कुछ ऐतिहासिक भाग भी त्रुटित हो गया है। कवि ने यह ग्रंथ साहू जयसी के पुत्र साहू टोडरमल की प्रेरणा से बनाया है। साहू टोडरमल का वंश इक्ष्वाकु था और कुल जायसवाल[2]। वह दान-पूजा आदि धार्मिक कार्यों में संलग्न रहता था[3] और प्रकृतितः दयालु था। अतएव वह

१. रोहतक पंजाब का एक नगर है। वर्तमान में भी उसका वही नाम है। यहां आज भी जैनियों की अच्छी संख्या है।

२. जायस या यादव वंश का इतिवृत्त अति प्राचीन है। परन्तु उसके सम्बन्ध में कोई अन्वेषण नहीं हुआ। इस जाति का निकास जैसा से कहा जाता है। भले ही लोग जैसा से जैसवालों की कल्पना करें, किन्तु ग्रंथ प्रशस्तियों में इन्हें यादव वंशी लिखा मिलता है। जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये लोग यदुवंशियों की सन्तान थे। उसी यदु या यादव शब्द का अपभ्रंश रूप जादव या जायस बन गया जान पड़ता है। यदु वंश एक क्षत्रिय वंश है, यदु वंशियों का विशाल राज्य रहा है। शौरीपुर से लेकर मथुरा और उसके आस-पास के प्रदेश उनके द्वारा शासित रहे हैं। यादव वंशी जरासंध के भय से शौरीपुर को छोड़ कर द्वारावती (द्वारावती या द्वारिका) में बस गए थे। जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई श्रीकृष्ण का जन्म उसी यादव कुल में हुआ था। जायस वंश मे अनेक प्रतिष्ठित और राज्य मान्य व्यक्ति हो गये हैं, जो तोमर और चौहान वंशी राजाओं के राजमंत्री रहे हैं। ग्वालियर के तोमर वंशी राजा वीरमिंह के प्रधान मंत्री जायस वंशी सेठ कुशराज थे। जो राजनीति के साथ धर्मनिष्ठ और राज्य के संवर्द्धन संरक्षण की कला में कुशल थे। इन्होंने पद्मनाभ नामक कायस्थ विद्वान् से, जो जैनधर्म का श्रद्धालु था, 'यशोधरचरित्र' ग्रन्थ का निर्माण कराया था। चन्द्रवाड और रपरी के चौहानवंशी राजाओं के राज्य मंत्री भी जायसवाल श्रावक रहे हैं। वर्तमान में यद्यपि उनका प्रभाव क्षीण हो गया है। फिर भी मंदिर, मूर्तियों और जैनग्रन्थों के निर्माण में उनका बहुत कुछ योग रहा है। दूबकुण्ड (ग्वालियर) के भग्न मन्दिर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् ११४५ मे कच्छप वंशी महाराज विक्रमसिंह के राज्यकाल में मुनि विजयकीर्ति के उपदेश से जैसवाल वंशी पाहड़. कूकेक, सूर्पट, देवधर और महीचन्द्र आदि चतुर श्रावकों ने ७५० फीट लम्बे और ४०० वर्गफीट चौड़े आकार क्षेत्र में इस विशाल

उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की कुछ संधियों में कतिपय संस्कृत पद्य भी पाये जाते हैं, जिनमें साहू टोडर का खुला यशोगान किया गया हैं। उसे कर्ण के समान दानी, विद्वज्जनों का संपोषक, रूपलावण्य से युक्त और विवेकी वतलाया है।

कवि ने इस ग्रंथ की चौथी संधि के आदि में साहू टोडरमल का जयघोष करते हुए लिखा है कि वह राज्य सभा में मान्य था, अखण्य प्रतापी स्वजनों का विकासी और भ्रात-पुत्रों से अलंकृत था, जैसा कि निम्न पद्य से प्रकट है—

"नृपति सदसिमान्यो योह्यखण्डप्रतापः, स्वजनजनविकासी सप्ततत्त्वावभासी।
विमलगुण-निकेतो भ्रातृ पुत्रो समेतः, स जयति शिवकामः साधुटोडरुत्ति नामा ॥"

कवि ने इस ग्रन्थ को पूरा कर जब साहू टोडरमल के हाथ में दिया, तब उसने उसे अपने शीश पर रखकर कवि माणिक्यराज का खूब आदर सत्कार किया, उसने कवि को सुन्दर वस्त्रों के अतिरिक्त कंकण, कुंडल और मुद्रिका आदि आभूषणों से भी अलंकृत किया था। उस समय गुणी जनों का आदर होता था। किन्तु आज गुणीजनों का निरादर करने वाले तो बहुत हैं किंतु गुण-ग्राहक बहुत ही कम हैं। क्योंकि स्वार्थतत्परता और अहंकार ने उसका स्थान ले लिया है। अपने स्वार्थ अथवा कार्य की पूर्ति न होने पर उनके प्रति अनादर की भावना जागृत हो जाती है। 'गुण न हिरानो किन्तु गुण-गाहक हिरानो की नीति के अनुसार खेद है कि आज टोडरमल जैसे गुण ग्राहक धर्मात्मा श्रावकों की संख्या विरल है—वे थोड़े हैं। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् १५७६ फाल्गुन शुक्ला ६वीं के दिन पूर्ण की है।

कवि-परिचय

कवि माणिक्य राज जैसवाल कुलरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए 'तरणि' (सूर्य) थे। इनके पिता का नाम बुधसूरा था और माता का नाम 'दीवा' था। कवि ने अमरसेन चरित में अपनी गुरु परम्परा निम्न प्रकार दी है—क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दी। ये सब भट्टारक मूल-संघ के अनुयायी थे। कवि के गुरु पद्मनंदी थे। वे बड़े तपस्वी शील की खानि, निर्ग्रन्थ, दयालु और अमृत-वाणी थे। इस ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति में पद्मनन्दि के एक शिष्य का और उल्लेख किया गया है। जिनका नाम देवनन्दी था, और जो श्रावक की एकादश प्रतिमाओं के संपालक, राग-द्वेश के विनाशक, शुभध्यान में अनुरक्त और उपशम भावी था। कवि ने अपने गुरु का अभिवंदन किया है।

३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति तक १५ प्रशस्तियाँ, और ६६वीं और १०६वीं प्रशस्तियां क्रमशः निम्न ग्रन्थों की हैं, जिनके कर्ता कवि रइधू हैं। सम्मइजिनचरिउ, सुकोशलचरिउ पासणाहचरिउ,

---

मन्दिर का निर्माण कराया था। और उसके पूजन, संरक्षण एवं जीर्णोद्धार आदि के लिए उक्त कच्छप वंशी विक्रमसिंह ने भूमिदान दिया था। (See Epigraphica India Vol 11 p. 237-240) किन्तु बाद में मराठा सरदादर अमरसिंह ने धर्मान्ध होकर इस जैन संस्कृति के स्तम्भरूप मन्दिर को भग्न कर दिया था। वि० सं० ११६० में जैसवाल वंशी साहू नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर अग्रवाल से 'वर्धमान चरित' नाम का ग्रन्थ बनवाया था। कवि लक्ष्मण जैसवाल ने जिनदत्त चरित्र की रचना सं० १२७५ में और अणुवइ रयण पईव की रचना सं० १३१३ में की थी। आज भी इस जाति में सम्पन्न और विद्वान् व्यक्ति पाये जाते हैं। इहीं सब कार्यों से इस जाति की महत्ता का भान होता है।

२. "जइसवाल कुल सम्पन्नः दान-पूय-परायणः।
जगसी नन्दनः श्रीमान् टोउरमल्ल चिरं जियः॥"

पउमचरिउ,मेहेसरचरिउ, सम्मत्तगुणनिहाण, रिट्ठणेमिचरिउ, धणकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, अणथमी कहा, अप्पसम्बोहकव्व, सिद्धंतत्थसार, वित्तसार, पुण्णासवकहा, जीवंधरचरिउ, सिरिपालचरिउ और सम्यत्तकउमदी।

इनमें पहला ग्रन्थ 'सम्मइ जिनचरिउ' है। जिसमें जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन-परिचय दिया हुआ है। यद्यपि उसमें कवि असग के महावीर चरित से कोई वैशिष्ट्य नहीं दिखाई देता; किन्तु फिर भी अपभ्रंश भाषा का यह चरित ग्रन्थ पद्धडिया आदि छन्दों में रचा गया है। ग्रन्थ १० संधियों और २४६ कडवकों में पूरा हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतंश[1] गोयल गोत्रीय साहु सहजपाल के पुत्र और संघाधिप साहु सहदेव के लघु भ्राता साहु तोसउ की प्रेरणा से बनाया

१. 'अग्रवाल' यह शब्द एक क्षत्रिय जाति का सूचक है। जिसका विकास अग्रोहा या अग्रोदक जनपद से हुआ है। यह स्थान हिसार जिले में है। अग्रोहा एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। यहां एक टीला ६० फुट ऊंचा था, जिसकी खुदाई सन् १९३९ या ४० में हुई थी। उससे प्राचीन नगर के अवशेष, और प्राचीन सिक्कों आदि का ढेर प्राप्त हुआ था। २६ फुट से नीचे प्राचीन आहृत मुद्रा का नमूना, चार यूनानी सिक्के और ५१ चौखूटे तांबे के सिक्के भी मिले हैं। तांबे के सिक्को मे सामने की ओर वृषभ' और पीछे की ओर सिंह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति है। सिक्कों के पीछे ब्राह्मी अक्षरों में—'अगोद के अगच जनपदस' शिलालेख भी अंकित है, जिसका अर्थ 'अग्रोदक मे अगच जनपद का सिक्का' होता है। अग्रोहे का नाम अग्रोदक भी रहा है। उक्त सिक्कों पर अंकित वृषभ, सिंह या चैत्य वृक्ष की मूर्ति जैन मान्यता की ओर संकेत करती हैं। (देखो, एपिग्राफिका इंडिका जि० २ पृ० २४४। इंडियन एण्टीक्वेरी भाग १५ के पृ० ३४३ पर अग्रोतक वैश्यों का वर्णन दिया है।

कहा जाता है कि अग्रोहा में अग्रसेन नाम के एक क्षत्रिय राजा थे। उन्हीं की सन्तान परम्परा अग्रवाल कहलाते हैं। अग्रवाल शब्द के अनेक अर्थ हैं। किन्तु यहां उन अर्थों की विवक्षा नहीं है, यहां अग्रदेश के रहने वाले अर्थ ही विवक्षित है। अग्रवालों के १८ गोत्र बतलाये जाते हैं। जिनमें गर्ग, गोयल, मित्तल जिन्दल, सिंहल आदि नाम हैं। अग्रवालों में दो धर्मों के मनाने वाले पाये जाते हैं। जैन अग्रवाल और वैष्णव अग्रवाल। श्री लोहाचार्य के उपदेश से उस समय जो जैनधर्म में दीक्षित हो गए थे, वे जैन अग्रवाल कहलाये और शेष वैष्णव; परन्तु दोनो में रोटी-बेटी व्यवहार होता है, रीति-रिवाजों में कुछ समानता होते हुये भी उनमें अपने-अपने धर्मपरक प्रवृत्ति पाई जाती है, हां सभी अहिंसा धर्म के मानने वाले हैं। उपजातियों का इतिवृत्त १०वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं मिलता, हो सकता है कि कुछ उप-जातियां पूर्ववर्ती रही हों। अग्रवालों की जैन परम्परा के उल्लेख १२वीं शताब्दी तक के मेरे देखने में आए हैं। यह जाति खूब सम्पन्न रही है। ये लोग धर्मज्ञ, आचारनिष्ठ, दयालु और जन-धन से सम्पन्न तथा राज्यमान्य रहे हैं। तोमर वंशी राजा अनंगपाल तृतीय के राजश्रेष्ठी और आमात्य अग्रवाल कुला-वतंश साहू नट्टल ने दिल्ली में आदिनाथ का एक विशाल सुन्दरतम मंदिर बनवाया था, जिसका उल्लेख कवि श्रीधर अग्रवाल द्वारा रचे गये 'पार्श्वपुराण मे, जो संवत् ११८९ में दिल्ली में उक्त नट्टल साहू के द्वारा बनवाया गया था और जिसकी सं० १५७७ की लिखित प्रति आमेर भंडार मे सुरक्षित है। और अनेक मन्दिरों का निर्माण. तथा ग्रन्थो का निर्माण, और उनकी प्रतिलिपि करवाकर साधुओ, भट्टारकों आदि को प्रदान करने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इससे इस जाति की सम्पन्नता, धर्मनिष्ठा और परोपकारवृत्ति का परिचय मिलता है। हां, इनमें शासक वृत्ति अधिक पाई जाती है।

गया था। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्ति में साहू तोसउके वंश का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। जिसमें उनके परिवार द्वारा सम्पन्न होने वाले धार्मिक-कार्यों का परिचय दिया गया है। प्रशस्ति में तात्कालिक-ऐतिहासिक उल्लेख भी अंकित किए गए हैं।

कवि ने साहु तोसउ का उल्लेख करते हुए, उन्हें जिनेन्द्र-चरणों का भक्त पंचेन्द्रियों के भोगों से विरक्त, दान देने में तत्पर, पाप से शंकित—भयभीत और सदा तत्त्वचिंतन में निरत वतलाया है। और लिखा है कि उसकी लक्ष्मी दुखी जनों के भरण-पोपण में काम आती थी। वाणी श्रुत का अवधारण करती थी। मस्तक जिनेन्द्र को नमस्कार करने में प्रवृत्त होता था। वह शुभमती था, तथा सम्भाषण में उसके कोई दोष न होता था। चित्त तत्त्वों के विचार में रहता था और दोनों हाथ जिन-पूजा-विधि से संतुष्ट रहते थे। ऐसा वह तोसउ साहु लोक में आनंद को प्राप्त हो, जैसा कि दूसरी और तीसरी संधि के प्रारम्भ के निम्न पद्यों से स्पष्ट है—

जो णिच्चं जिण-पाय-कंज भसलो जो णिच्च दाणे रदो।
जो पंचेंदिय-भोय-भाव-विरदो जो चिंतए संहिदो।
जो संसार-महोहि-पातन-भिदो जो पावदो संकिदो।
एसो णंदउ तोसडो गुणजुदो सतत्थ वेई चिरं ॥२॥
लच्छी जस्स दुही जणाण भरणे वाणी सुयं धारणे।
सीसं सन्नई कारणे सुभमई दोसं ण संभासणे।
चित्तं तत्व-वियारणे करजुयं पूया-विहि सं ददं।
सोऽयं तोसउ साहु एत्थ धवलो सं णंदओ भूयले ॥३॥

प्रशस्ति में हिसार निवासी अग्रवाल कुलावतंश खेल्हा नामक ब्रह्मचारी द्वारा निर्मित चन्द्रप्रभ भगवान की विशाल मूर्ति का उल्लेख किया गया है, जिसे उन्होंने उक्त दुर्ग में निर्माण कराया था। ब्रह्मचारी खेल्हा श्री सम्पन्न थे, वस्तुस्वरूप को समझते थे और देह-भोगों से विरक्त थे।

सम्मइ जिन चरिउ के निर्माण में ब्रह्मचारी खेल्हा का खास सहयोग रहा है, यह साहू तोसउ के पुत्र थे। इन्होंने कवि से उक्त ग्रन्थ रचने की स्वयं प्रेरणा नहीं की, किन्तु भट्टारक यशःकीर्ति से अनुरोध करवाया था, सम्भवतः उन्हें यह सन्देह था कि कवि मेरे निवेदन पर ग्रन्थ न वनावें, इसी से उन्होंने कवि को यशःकीर्ति से प्रेरित करवाया था। कवि भट्टारक यशःकीर्ति के आदेश को कभी नहीं टाल सकते थे। अस्तु ब्रह्मचारी खेल्हा की भावना सफल हुई और कवि ने ग्रंथ निर्माण करना स्वीकृत कर लिया। इससे ब्रह्मचारी खेल्हा को हर्ष होना स्वाभाविक है। खेल्हा ने उस समय अपनी त्यागवृत्ति का क्षेत्र बढ़ा लिया था और ग्यारह प्रतिमा धारी उत्कृष्ट श्रावक के रूप में आत्म-साधना करने लगे थे।

हिसार के अग्रवाल वंशी साहु नरपति के पुत्र साहु वील्हा, जो जैनधर्मी और पाप रहित तथा दिल्ली के बादशाह फीरोजशाह तुग़लक द्वारा सम्मानित थे।

संघाधिप सहजपाल ने, जो सहदेव का पुत्र था, जिनेन्द्र मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी। साहू सहज पाल के पुत्र ने गिरनार की यात्रा का संघ भी चलाया था, और उसका सब व्यय भार स्वयं वहन किया था। ये सब ऐतिहासिक उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। और अग्रवालों के लिए गौरवपूर्ण हैं।

कवि ने ग्रन्थ में काष्ठासंघ की भट्टारक परम्परा का उल्लेख किया है देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन,

भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति (सं० १४६८ से १४८६), यशःकीर्ति १४८६—१५१०, मलयकीर्ति (१५१० से १५२५,) भ० गुणभद्र (१५२५ से १५४०)।

कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न साहित्यकारों का भी उल्लेख किया है, चउमुह, स्वयंभू, पुष्पदन्त और वीर कवि। इनमें समय की दृष्टि वीर कवि सब से बाद के (सं० १०७६ के) हैं।

साथ ही, इस ग्रन्थ में इससे पूर्व रची जाने वाली अपनी निम्न रचनाओं का उल्लेख किया है। पासणाहचरिउ, मेहेसरचरिउ, सिद्धचक्कमाहप्प, बलहद्दचरिउ, सुदंसणचरिउ, धणकुमारचरिउ। परन्तु प्रशस्ति में ग्रंथ का रचना काल नहीं दिया है।

३६वीं प्रशस्ति 'सुकौशल चरिउ' की है। जिसमें ४ संधियां और ७४ कडवक हैं। पहली दो संधियों में कथन क्रमादि की व्यवस्था व्यक्त करते हुए तीसरी संधि में चरित्र का चित्रण किया है, और चौथी संधि में चरित्र का वर्णन करते हुए काव्यमय वर्णन उच्चकोटि का किया है। किन्तु शैली विषय वर्णनात्मक ही है। कवि ने इस खण्ड-काव्य में सुकौशल की जीवन-गाथा को अङ्कित किया है। कथानक इस प्रकार है—

इक्ष्वाकुवंश में कीर्तिधर नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। उन्हें उल्कापात के देखने से वैराग्य हो गया था, अतएव वे साधु जीवन व्यतीत करना चाहते थे; परन्तु मन्त्रियों के अनुरोध से पुत्रोत्पत्ति के समय तक गृही जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। कई वर्षो तक उनके कोई सन्तान न हुई। उनकी रानी सहदेवी एक दिन जिन मन्दिर गई, वहां जिन दर्शनादि क्रिया सम्पन्न कर उसने एक मुनि से पूछा कि मेरे पुत्र कब होगा? तब साधु ने कहा कि तुम्हारे एक पुत्र अवश्य होगा, परन्तु उसे देखकर राजा दीक्षा ले लेगा और पुत्र भी दिगम्बर साधु को देखकर साधु बन जायगा। कुछ समय पश्चात् रानी के पुत्र हुआ। रानी ने पुत्रोत्पत्ति को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न किया; किन्तु राजा को उसका पता चल गया और राजाने तत्काल ही राज्य का भार पुत्र को सौंप कर जिन दीक्षा ले ली। राजा ने पुत्र के शुभ लक्षणों को देखकर उसका नाम सुकौशल रक्खा। रानी को पति-वियोग का दुःख असह्य था, साथही पुत्रके भी साधु हो जाने का भय उसे आतंकित किए हुए था। युवावस्था में कुमार का विवाह ३२ राज कन्याओं से कर दिया गया और वह भोग-विलासमय जीवन बिताने लगा, उसे महल से बाहर जाने का कोई अधिकार न था। माता इस बात का सदा ध्यान रखती थी कि पुत्र कहीं किसी मुनि को न देख ले। अतएव उसने नगर में मुनियों का आना निषिद्ध कर दिया था।

एक दिन कुमार के पिता मुनि कीर्तिधवल नगर में आये, किन्तु उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया गया। जब राजकुमार को यह बात ज्ञात हुई, तो उसने राज्य का परित्याग कर उनके समीप ही साधु दीक्षा लेकर तप का अनुष्ठान करने लगा। माता सहदेवी पुत्र वियोग से अत्यंत दुखी हुई और आर्त परिणामों से मरकर व्याघ्री हुई।

एक दिन उसने अत्यंत भूखी होने के कारण पर्वत पर ध्यानस्थ मुनि सुकौशल को ही खा लिया। सुकौशल ने समताभाव से कर्म-कालिमा नष्ट कर स्वात्म लाभ किया। इधर मुनि कीर्तिधवल ने उस व्याघ्री को उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसे जातिस्मरण हो गया, और अन्त में उसने संन्यास पूर्वक शरीर छोड़ा और स्वर्ग प्राप्त किया, कीर्ति धवल भी अक्षयपद को प्राप्त हुए।

कवि ने इस ग्रन्थ को वि० सं० १४९६ में माघ कृष्णा १०मीं के दिन ग्वालियर में राजा डूंगरसिंह के राज्य में समाप्त किया है।

सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू का छठा आश्वास रहा जान पड़ता है। ग्रंथ का रचनाकाल वि० संवत् १४९२ है।

४१ वीं प्रशस्ति 'रिट्ठणेमिचरिउ' या 'हरिवंश पुराण' की है। प्रस्तुत ग्रन्थ में १४ सन्धियाँ और ३०२ कडवक हैं तथा १९०० के लगभग पद्य होंगे, जिनमें ऋषभ चरित, हरिवंशोत्पत्ति, वसुदेव और उनका पूर्वभव कथानक, बन्धु-बान्धवों से मिलाप, कंस बलभद्र और नारायण के भवों का वर्णन, नारायण जन्म, कंसवध, पाण्डवों का जुए में हारना द्रोपदी का चीर हरन, पाण्डवों का अज्ञातवास, प्रद्युम्न को विद्या प्राप्ति और श्रीकृष्ण से मिलाप, जरासंध वध, कृष्ण का राज्यादि सुखभोग, नेमिनाथ का जन्म, बाल्यक्रीड़ा यौवन, विवाहमें वैराग्य, दीक्षा तथा तपश्चरण केवलज्ञान और निर्वाण प्राप्ति आदिका कथन दिया है। ग्रंथ में जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की जीवन-घटनाओं का परिचय दिया हुआ है। नेमिनाथ यदुवंशी क्षत्री थे। और थे कृष्ण के चचेरे भाई। उन्होंने पशुओं के बंधन खुलवाए। और संसार की असा-रता को देख, वैरागी हो तपश्चरण द्वारा आत्म-शोधन किया, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने, और जगत को आत्महित करने का सुन्दरतम मार्ग बतलाया। उनका निर्वाण स्थान ऊर्जयन्त गिरि या रैवतगिरि है जो आज भी नेमिनाथ के अतीत जीवन की झाँकी को प्रस्तुत करता है। तीर्थंकर नेमिकुमार की तपश्चर्या और चरण रज से वह केवल पावन ही नहीं हुआ, किन्तु उसकी महत्ता लोक में आज भी मौजूद है।

इस ग्रंथ की रचना योगिनीपुर (दिल्ली) से उत्तर की ओर बसे हुए किसी निकटवर्ती नगर का नाम था, जो पाठ की अशुद्धि के कारण ज्ञात नहीं हो सका। ग्रंथ की रचना उस नगर के निवासी गोयल गोत्रीय अग्रवाल वंशी महाभव्य साहु लाहा के पुत्र संघाधिप साहु लोणा की प्रेरणा से हुई है। ग्रंथ की आद्यन्त प्रशस्तियों में साहु लोणा के परिवार का संक्षिप्त परिचय कराया गया है।

कवि ने ग्रन्थ में अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों और उनके कुछ ग्रंथों का उल्लेख किया है, देवनन्दि (पूज्यपाद) जैनेन्द्र व्याकरण, जिनसेन (महापुराण) रविषेण (जैन रामायण-पद्मचरित) कमलकीर्ति और उनके पट्टधर शुभचन्द्र का नामोल्लेख है। जिनका पट्टाभिषेक कनकगिरि वर्तमान सोनागिरि में हुआ था। साथ ही कवि ने अपने रिट्ठणेमिचरिउ से पहले बनाई हुई अपनी निम्न रचनाओं के भी नाम दिए हुए हैं। महापुराण, भरत-सेनापति चरित (मेघेश्वर चरित) जसहरचरिउ (यशोधरचरित) वित्तसार, जीवंधर चरिउ और पासचरिउ का नामोल्लेख किया है। ग्रंथ में रचनाकाल नहीं दिया, इसलिए यह निश्चित बतलाना तो कठिन है कि यह ग्रंथ कब बना? फिर भी अन्य सूत्रों से यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम की १५ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण या १६ वीं के प्रथम चरण में रचा गया है।

४२ वीं प्रशस्ति 'धणकुमार चरिउ' की है जिसमें चार सन्धियां और ७४ कडवक हैं। जिनकी श्लोक संख्या ८०० श्लोकों के लगभग है। जिनमें धनकुमार की जीवन-गाथा अंकित की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ की रचना आरौन जिला ग्वालियर निवासी जैसवाल वंशी साहु पुण्यपाल के पुत्र साहु भुल्लण की प्रेरणा एवं अनुरोध से हुई है। अतएव उक्त ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रंथ की आद्य प्रशस्ति में साहु भुल्लण के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है।

इस ग्रंथ की रचना कब हुई? यह ग्रंथप्रशस्ति पर से कुछ ज्ञात नहीं होता; क्योंकि उसमें रचना काल दिया हुआ नहीं है। किन्तु प्रशस्ति में इस ग्रंथ के पूर्ववर्ती रचे हुए ग्रंथों के नामों में 'णेमिजिणिंद चरिउ' (हरिवंश पुराण) का भी उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उसके बाद बनाया गया है।

४३ वीं प्रशस्ति 'जसहर चरिउ' की है जिसके कर्ता भी उक्त कवि रइधू हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ४ सन्धियाँ और १०४ कड़वक हैं। जिनकी श्लोक संख्या६०० के लगभग है। ग्रंथ में योधेय देशके राजा यशोधर और चन्द्रमती का जीवन परिचय दिया हुआ है। ग्रंथ का कथानक सुन्दर और हृदय-ग्राही है और वह जीव दया की पोषक वार्ताओं से ओत-प्रोत है। यद्यपि राजा यशोधर के सम्बंध में संस्कृतभाषा में अनेक चरित ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनमें आचार्य सोमदेव का 'यशस्तिलक चम्पू' सबसे उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ है। परंतु अपभ्रंश भाषा की यह दूसरी रचना है। प्रथम ग्रन्थ महाकवि पुष्पदन्त का है। यद्यपि भ० अमरकीर्ति ने भी 'जसहर चरिउ' नाम का ग्रंथ लिखा था; परंतु वह अभी तक अनुपलब्ध है।

इस ग्रन्थ की रचना भट्टारक कमलकीर्ति के अनुरोध से तथा योगिनीपुर (दिल्ली) निवासी अग्रवाल वंशी साहु कमलसिंह के पुत्र साहु हेमराज की प्रेरणा से हुई है। अतएव ग्रंथ उन्हीं के नाम किया गया है। उक्त साहु परिवार ने गिरनार जी की तीर्थयात्रा का संघ चलाया था। ग्रंथ की आद्यन्त प्रशस्ति में साहु कमलसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय कराया गया है। कवि ने यह ग्रथ लाहड़पुर के जोधा साहु के विहार में बैठकर बनाया है, और उसे स्वयं 'दयारसभर गुणपवित्तं'—पवित्र दयारूपी रस से भरा हुआ बतलाया है।

४४ वीं प्रशस्ति 'अणथमी कहा' की है। इस कथा में रात्रिभोजन के दोषों और उससे होने वाली व्याधियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि दो घड़ी दिन के रहने पर श्रावक लोग भोजन करें; क्योंकि सूर्य के तेज का मंद उदय रहनेपर हृदय-कमल संकुचित हो जाता है, अतः रात्रि भोजनके त्याग का विधान धार्मिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से किया गया है जैसा कि उसके निम्न दो पद्यों से प्रकट है:—

"जि रोय-दलद्दिय दीण अणाह, जि कुट्ठ-गलिय कर करण सवाह।
दुहग्गु जि परियणु वग्गु अणेहु, सु-रयणिहि भोयणु फलु जि मुणेहु।
घड़ी दुइ वासरु थक्कइ जाम, सुभोयण सावय भुंजहिं ताम।
दिवायरु तेज जि मंदउ होइ, सकुच्चइ चित्तहु कमलु जिव सोइ।"

कथा रचने का उद्देश्य भोजन सम्बन्धी असंयम से रक्षा करना है, जिससे आत्मा धार्मिक मर्यादाओं का पालन करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाये रखे।

४५ वीं प्रशस्ति 'अप्प-संबोह-कव्व' की है। यह एक छोटा सा काव्य-ग्रंथ है जिसे कवि ने आत्म-सम्बोधनार्थ बनाया है। आत्म-हित की दृष्टि में लक्ष्य रखते हुए हिंसादि पंच पापों और सप्त व्यसनादि से आत्म-रक्षा करने का उपाय बतलाया गया है—हिंसादि पापों का त्याग कर आत्म-कर्तव्य की ओर दृष्टि रखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे मानव इस लोक तथा परलोक में सुख-शान्ति प्राप्त कर सके। ग्रंथ बहुत सुन्दर है, पर अभी तक अप्रकाशित है।

४६ वीं प्रशस्ति 'सिद्धांतार्थसार' की है, इस ग्रंथ का विषय भी सैद्धांतिक है और अपभ्रंश के गाथा छंद में रचा गया है। इसमें सम्यग्दर्शन, जीव स्वरुप, गुणस्थान, व्रत, समिति, इन्द्रिय-निरोध आदि आवश्यक क्रियाओं का स्वरुप, अट्ठाईस मूलगुण, अष्टकर्म, द्वादशांगश्रुत, लब्धिस्वरुप, द्वादशानुप्रेक्षा दशलक्षणधर्म, और ध्यानों के स्वरूप का कथन दिया गया है। इस ग्रंथ की रचना वणिकवर श्रेष्ठी खेमसी साहु या साहु खेमचंद्र के निमित्त की गई है। परंतु खेद है कि उपलब्ध ग्रंथ का अंतिम भाग खंडित है। लेखक ने कुछ जगह छोड़कर लिपि पुष्पिका की प्रतिलिपि कर दी है। ग्रंथ के शुरू में कवि ने लिखा है

कि यदि मैं उक्त सभी विषयों के कथन में स्खलित हो जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना चाहिए। यह ग्रंथ भी तोमर वंशी राजा कीर्तिसिंह के राज्य में रचा गया है।

४७ वीं प्रशस्ति 'वृत्तसार' नामक ग्रंथ की है। जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में छह सर्ग या अंक (अध्याय) हैं। ग्रंथ का अन्तिम पत्र त्रुटित है जिसमें ग्रंथकार की प्रशस्ति उल्लिखित होगी। यह ग्रंथ अपभ्रंश के गाथा छंद में रचा गया है, जिनकी संख्या ७५० है। बीच बीच में संस्कृत के गद्य-पद्यमय वाक्य भी ग्रन्थांतरों से प्रमाण स्वरूपमें उद्धृत किये गये हैं। प्रथम अधिकार में सम्यग्दर्शन का सुन्दर विवेचन है, और दूसरे अधिकार में मिथ्यात्वादि छह गुणस्थानों का स्वरूप निर्दिष्ट किया है। तीसरे अधिकार में शेष गुण-स्थानों का और कर्मस्वरूप का वर्णन है। चौथे अधिकार में बारह भावनाओं का कथन दिया हुआ है। पाँचवें अंक में दशलक्षण धर्म का निर्देश है और छठवें अध्याय में ध्यान की विधि और स्वरूपादि का सुन्दर विवेचन दिया हुआ है। इस तरह इस ग्रन्थ में जैनधर्म के तात्त्विक स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है। ग्रन्थ सम्पादित होकर हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाश में आने वाला है।

४८ वीं प्रशस्ति 'पुण्णासव कहा कोश' की है। जिसमें १३ संधियां दी हुई हैं जिनमें पुण्य का आस्रव करने वाली सुन्दर कथाओं का संकलन किया गया है। प्रथम सन्धि में सम्यक्त्व के दोषों का वर्णन है, जिन्हें सम्यक्त्वी को टालने की प्रेरणा की गई है। दूसरी संधि में सम्यक्त्व के निश्शंकितादि अष्ट गुणों का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए उनमें प्रसिद्ध होने वाले अंजन चोर का चित्ताकर्षक कथानक दिया हुआ है तीसरी संधि में निकांक्षित और निर्विचिकित्सा इन दो अंगों में प्रसिद्ध होने वाले अनन्तमती और उदितोदय राजा की कथा दी गई है। चौथी संधि में अमूढ़दृष्टि और स्थितिकरण अंग में रेवती रानी और श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण का कथानक दिया हुआ है। पांचवीं सन्धि में उपगूहन अंग का कथन करते हुए उसमें प्रसिद्ध जिनभक्त सेठ की कथा दी हुई है। सातवीं सन्धि में प्रभावना अंग का कथन दिया हुआ है। आठवीं संधि में पूजा का फल, नवमी संधि में पंचनमस्कार मंत्र का फल, दशवीं संधि में आगमभक्ति का फल और ग्यारहवीं संधि में सती सीता के शील का कथन दिया हुआ है। बारहवीं सन्धि में उपवास का फल और १३ वीं संधि में पात्रदान के फल का वर्णन किया है। इस तरह ग्रन्थ की ये सब कथायें बड़ी ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं।

इस ग्रन्थ का निर्माण अग्रवाल कुलावतंस साहु नेमिदास की प्रेरणा एवं अनुरोध से हुआ है और यह ग्रंथ उन्हीं के नामांकित किया गया है। ग्रन्थ की आद्यन्त प्रशस्तियों में नेमिदास और उनके कुटुम्ब का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। और बतलाया है कि साहु नेमिदास जोइणिपुर (दिल्ली) के निवासी थे और साहु तोसउ के चार पुत्रों में से प्रथम थे। नेमिदास श्रावक व्रतों के प्रतिपालक, शास्त्रस्वाध्याय, पात्रदान, दया और परोपकार आदि सत्कार्यों में प्रवृत्ति करते थे। उनका चित्त समुदार था और लोक में उनकी धार्मिकता और सुजनता का सहज ही आभास हो जाता है, और उनके द्वारा अगणित मूर्तियों के निर्माण कराये जाने, मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठादि महोत्सव सम्पन्न करने का भी उल्लेख किया गया है। साहु नेमिदास चन्द्रवाड के राजा प्रतापरुद्र से सम्मानित थे[1]। वे सम्भवतः उस समय दिल्ली से चन्द्रवाड चले गए थे, और वहां ही निवास करने लगे थे, और उनके अन्य कुटुम्बी जन उस समय दिल्ली में ही रह रहे थे, राजा प्रतापरुद्र चौहान वंशी राजा रामचंद्र के पुत्र थे, जिनका राज्य विक्रम सं० १४६८ में वहां विद्यमान

१. णिय पयावरुद्द सम्माणिउ —पुण्यास्रव प्रशस्ति।

था[1]। ग्रन्थ में उसका रचनाकाल दिया हुआ नहीं है, परन्तु उसकी रचना पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिमचरण में हुई जान पड़ती है। क्योंकि उसके बाद मुस्लिम शासकों के हमलों से चन्द्रवाड़ की श्री सम्पन्नता को भारी क्षति पहुंची थी।

कवि ने ग्रंथ की प्रत्येक संधि के प्रारम्भ में ग्रंथ रचना में प्रेरक साहु नेमिदास का जयघोष करते हुये मंगल कामना की है। जैसा कि उसके निम्नपद्यों से प्रकट है—

प्रतापरुद्रनृपराजविश्रुतस्त्रिकालदेवार्चनवंचिता शुभा।
जैनोक्तशास्त्रामृतपानशुद्धधीः चिरं क्षितौ नन्दतु नेमिदासः॥ ३
सत्कवि गुणानुरागी श्रेयांन्निव पात्रदानविधिदक्षः।
तोसउ कुलनभचन्द्रो नन्दतु नित्येव नेमिदासाख्यः॥४॥

ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है, उसे प्रकाश में लाना आवश्यक है।

४६ वीं प्रशस्ति 'जीवंधर चरिउ' की है। जिसमें तेरह संधियां दी हुई हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में दर्शन-विशुद्धयादि षोडशकारण भावनाओं का फल वर्णन किया गया है। और उनका फल प्राप्त करने वाले जीवंधर तीर्थंकर की रोचक कथा दी गई है। प्रस्तुत जीवंधर स्वामी पूर्व विदेह क्षेत्र के अमरावती देश में स्थित गंधर्वराउ (राज) नगर के राजा सीमंधर और उनकी पट्ट महिषी महादेवी के पुत्र थे। इन्होंने दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारण भावनाओं का भक्तिभाव से चिंतन किया था, जिसके फलस्वरूप वे धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर हुए। ग्रंथका कथा भाग बड़ा ही सुंदर है। परंतु ग्रंथ प्रति अत्यंत अशुद्धरूप में प्रतिलिपि की गई है, जान पड़ता है प्रतिलिपिकार पुरानी लिपि का अभ्यासी नहीं था, प्रतिलिपि करवा कर पुनः जांच भी नहीं की गई।

इस ग्रंथ का निर्माण कराने वाले साहु कुन्थ दास हैं, जो सम्भवतः ग्वालियर के निवासी थे। कवि ने इस ग्रन्थको उक्त साहु को 'श्रवण भूषण' प्रकट किया है। साथही उन्हें आचार्य चरण सेवी, सप्त व्यसन रहित, त्यागी धवलकीर्ति वाला, शास्त्रों के अर्थ को निरंतर अवधारण करनेवाला और शुभ मती बतलाते हुए उन्हें साहु हेमराज और मोल्हा देवी का पुत्र बतलाया गया है और कवि ने उनके चिरंजीव होने की कामना भी की है। जैसा कि द्वितीय संधि के प्रथम पद्य से ज्ञात होता है।

---

१. चन्द्रवाड के सम्बन्ध में लेखक का स्वतन्त्र लेख देखिए। सं० १४६८ में राजा रामचन्द्र के राज्य में चन्द्रवाड में अमरकीर्ति के षट्कर्मोपदेश की प्रतिलिपि की गई थी, जो अब नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। यथा—

अथ संवत्सरे १४६८ वर्षे ज्येष्ठ कृष्ण पंचदश्यां शुक्रवासरे श्रीमच्चन्द्रपाट नगरे महाराजाधिराज श्रीराम चन्द देवराज्ये। तत्र श्री कुदकुदाचार्यान्वये श्री मूलसघे गूजरगोष्ठि तिहुयनगिरिया साहु श्री जगसीहा भार्या: सोमा तयोः पुत्राः (चत्वाराः) प्रथम उदेसीह (द्वितीय) अजैसहि तृतीय पहराज चतुर्थ खाह्लदेव। ज्येष्ठ पुत्र उदेसीह भार्या रतो, तस्य त्रयोः पुत्राः, ज्येष्ठ पुत्र देल्हा द्वितीय राम तृतीय भीखम ज्येष्ठ पुत्र देल्हा भार्या हिरो (तयोः) पुत्रा. द्वयो. ज्येष्ठ पुत्र हालू द्वितीय पुत्र अर्जुन ज्ञानावरणी कर्म क्षयार्थ इदं षट्कर्मोपदेश लिखापितं।

भग्नपृष्ठि कटिग्रीवा सच्च दृष्टि रधो मुखं।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत्॥ —नागौर भंडार

'जो भत्तो सूरिपाए विसरणसगसया जि विरत्ता स एयो।
जो चाई पुत्त दाणे ससिपह धवली कित्ति वल्लिकु तेजो।
जो नित्यो सत्थ-अत्थे विसय सुहमई हेमरायस्स ताओ।
सो मोल्ही अंग जाओ 'भवदु इह धुवं कुथुयासो चिराओ।'

९९वीं प्रशस्ति 'सिरिपालचरिउ' या सिद्धचक्र विधि' की है। जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। इस ग्रन्थ में दश संधियां दी हुई हैं, और जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या दो हजार दो सौ बतलाई है। जिसमें चम्पापुर के राजा श्रीपाल और उनके सभी साथियों का सिद्धचक्रव्रत (अष्टाह्निका व्रत) के प्रभाव से कुष्ठ रोग दूर हो जाने आदि की कथा का चित्रण किया गया है और सिद्धचक्रव्रत का माहात्म्य ख्यापित करते हुए उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है। ग्रन्थ का कथाभाग बड़ा ही सुन्दर और चित्ता-कर्षक है। भाषा सरल तथा सुबोध है। यद्यपि श्रीपाल के जीवन परिचय और सिद्धचक्रव्रत के महत्व को चित्रित करने वाले संस्कृत, हिंदी गुजराती भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। परंतु अपभ्रंश भाषा का यह दूसरा ग्रंथ है। प्रथम ग्रंथ पंडित नरसेन का है।

प्रस्तुत ग्रंथ ग्वालियर निवासी अग्रवाल वंशी साहु वाटू के चतुर्थ पुत्र हरिसी साहु के अनुरोध से बनाया है और उन्हीं के नामांकित किया है। प्रशस्ति में उनके कुटुम्ब का संक्षिप्त परिचय भी अंकित है। कवि ने ग्रन्थ की प्रत्येक संधियों के प्रारम्भ में संस्कृत पद्यों में ग्रंथ निर्माण में प्रेरक उक्त साहु का यशोगान करते हुए उनकी मंगल कामना की है। जैसा कि ७ वीं संधि के निम्न पद्य से प्रकट है।

यः सत्यं वदति व्रतानि कुरुते शास्त्रं पठंत्यादरात्
मोहं मुञ्चति गच्छति स्व समयं धत्ते निरीहं पदं।
पापं लुम्पति पाति जीवनिवहं ध्यानं समालम्बते।
सोऽयं नंदतु साधुरेव हरषी पुष्णाति धर्म सदा।

—सिद्धचक्र विधि (श्रीपालचरित संधि ७)

१०६वीं प्रशस्ति 'सम्यक्त्व कौमुदी' की हैं। इसमें सम्यक्त्व की उत्पादक कथाओं का बड़ा ही रोचक वर्णन दिया हुआ है, इसे कवि ने ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह के पुत्र राजा कीर्तिसिंह के राज्य काल में रचा है, इसकी आदि अन्त प्रशस्ति से मालूम होता है कि यह ग्रंथ गोपाचल वासी गोला लारीय जाति के भूषण सेउसाहु की प्रेरणा से बनाया है। इसकी ७१ पत्रात्मक एक प्रति नागौर के भट्टारकीय ज्ञानभण्डार में मौजूद है उक्त अपूर्ण प्रशस्ति उसी प्रति पर से दी गई है। उस ग्रन्थ की पूरी प्रशस्ति वहां के पंचों तथा भट्टारक जी ने सन् ४४ में नोट नहीं करने दी थी, इसीलिए वह अपूर्ण प्रशस्ति ही यहां दी गई है।

कवि की अन्य कृतियाँ

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कवि की 'दश लक्षण जयमाला और 'षोडशकारण जयमाला' ये दोनों पूजा ग्रंथ भी मुद्रित हो चुके हैं। इनके सिवाय महापुराण, सुदसंणचरिउ, करकण्डुचरिउ ये तीनों ग्रंथ अभी अनुपलब्ध हैं। इनका अन्वेषणकार्य चालू हैं। 'सोऽहं थुदि' नाम की एक छोटी-सी रचना भी अनेकांत में प्रकाशित हो चुकी है।

कवि रइधू ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों का अपनी रचनाओं में ससम्मान उल्लेख किया है[१]। जिन

१. विशेष परिचय के लिए देखिए, अनेकान्त वर्ष ९ किरण ९ में प्रकाशित महाकवि रइधू नाम का लेख।

के नाम इस प्रकार हैं—१. देवनंदी (पूज्यपाद) २. रविषेण ३. चउमुह ४. द्रोण ५. स्वयंभूदेव ६. कविवर ७. वज्रसेन ८. जिनसेन ९. देवसेन १०. महाकवि पुष्पदन्त।

कवि वंश-परिचय

कविवर रइधू संघाधिप देवराय के पौत्र और हरिसिंघ के पुत्र थे, जो विद्वानों को आनन्ददायक थे। और माता का नाम 'विजयसिरि' (विजयश्री) था, जो रूपलावण्यादि गुणों से अलंकृत होते हुए भी शील संयमादि सद्‌गुणों से विभूषित थी। कविवर की जाति पद्मावती पुरवाल थी और कविवर उक्त पद्मावती कुलरूपी कमलों को विकसित करने वाले दिवाकर (सूर्य) थे जैसाकि 'सम्मइजिन चरिउ' ग्रंथ की प्रशस्ति के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

पोमावइ कुल कमल-दिवायरु, हरिसिंघ बुहयरा कुल, आणंदणु।
जस्स घरिज रइधू बुह जायउ, देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ ॥

कविवर ने अपने कुल का परिचय 'पोमावइकुल' और पोमावइ 'पुरवाडवंस' जैसे वाक्यों द्वारा कराया है। जिससे वे पद्मावती पुरवाल नाम के कुल में समुत्पन्न हुए थे। जैनसमाज में चौरासी उपजातियों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है उनमें कितनी ही जातियों का अस्तित्व आज नहीं मिलता; किंतु इन चौरासी जातियों में ऐसी कितनी ही उपजातियां अथवा वंश है जो पहले कभी बहुत कुछ समृद्ध और सम्पन्न रहे हैं; किंतु आज वे उतने समृद्ध एवं वैभवशाली नहीं दीखते, और कितने ही वंश एवं जातियां प्राचीन समय में गौरवशाली रहे हैं किंतु आज उक्त संख्या में उनका उल्लेख भी शामिल नही है। जैसे धर्कट १ आदि।

इन चौरासी जातियों में पद्मावती पुरवाल भी एक उपजाति है, जो आगरा, मैनपुरी, एटा, ग्वालियर आदि स्थानों में आबाद है, इनकी जन-संख्या भी कई हजार पाई जाती है। वर्तमान में यह जाति बहुत कुछ पिछड़ी हुई है तो भी इसमें कई प्रतिष्ठित विद्वान हैं। वे आज भी समाज सेवा के कार्य में लगे हुए हैं। यद्यपि इस जाति के विद्वान् अपना उदय ब्राह्मणों से बतलाते हैं और अपने को देवनन्दी (पूज्यपाद) का सन्तानीय भी प्रकट करते हैं, परन्तु इतिहास से उनकी यह कल्पना केवल कल्पित ही जान पड़ती है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि उपजातियों का इतिवृत्त अभी अंधकार में है जो कुछ प्रकाश में आ पाया है उसके आधार से उसका अस्तित्व विक्रम की दशमी शताब्दी से पूर्व का ज्ञात नहीं होता, हो सकता है कि वे उससे भी पूर्ववर्ती रहीं हों, परन्तु बिना किसी प्रामाणिक अनुसंधान के इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

पट्टावली वाला दूसरा कारण भी प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पट्टावली में आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दी) को पद्मावती-पुरवाल लिखा है, परन्तु प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों से उनका पद्मावती-पुरवाल होना प्रमाणित नहीं होता, कारण कि देवनन्दी ब्राह्मण कुल में समुत्पन्न हुए थे।

१. यह जाति जैन समाज में गौरव-शालिनी रही है। इसमें अनेक प्रतिष्ठित श्रीसम्पन्न श्रावक और विद्वान् हुए हैं जिनकी कृतियां आज भी अपने अस्तित्व से भूतल को समलंकृत कर रही हैं। भविष्यदत्त कथा के कर्ता बुध धनपाल और धर्मपरीक्षा के कर्ता बुध हरिषेण ने भी अपने जन्म से 'धर्कट वंश को पावन किया है। हरिषेण ने अपनी धर्मपरीक्षा वि० सं० १०४४ में बनाकर समाप्त की है। धर्कट वंश के अनुयायी दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रहे हैं।

पड़ता है कि वे गृहस्थ-पंडित थे और उस समय वे प्रतिष्ठित विद्वान् गिने जाते थे। ग्रन्थ-प्रणयन में जो भेंटस्वरूप धन या वस्त्राभूषण प्राप्त होते थे, वही उनकी आजीविका का प्रधान आधार था।

बलभद्रचरित्र (पद्मपुराण) की अन्तिम प्रशस्ति के १७वें कडवक के निम्न वाक्यों से मालूम होता है कि उक्त कविवर के दो भाई और भी थे, जिनका नाम बाहोल और माहणसिंह था। जैसा कि उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

सिरिपोमावइपुरवालवंसु, णंदउ हरिसिंघु संघवी जासुसंसु
घत्ता—बाहोल माहणसिंह चिरु णंदउ, इह रइधूकवि तीयउ वि धरा।
मोलिक्य समाणउ कलगुण जाणउ णंदउ महियलि सो वि परा॥

यहां पर मैं इतना और भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मेघेश्वर चरित (आदिपुराण) की संवत् १८५१ की लिखी हुई एक प्रति नजीबाबाद जिला बिजनौर के शास्त्र-भण्डार में है जो बहुत ही अशुद्ध रूप से लिखी गई है जिसके कर्ता ने अपने को आचार्य सिंहसेन लिखा है और उन्होंने अपने को संघवीय हरिसिंह का पुत्र भी बतलाया है। सिंहसेन के आदिपुराण के उस उल्लेख पर से ही पं० नाथूरामजी प्रेमी ने दशलक्षण जयमाला की प्रस्तावना में कवि रइधू का परिचय कराते हुए फुटनोट में श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार की रइधू को सिंहसेन का बड़ा भाई मानने की कल्पना को असंगत ठहराते हुए रइधू और सिंहसेन को एक ही व्यक्ति होने की कल्पना की है। परन्तु प्रेमीजी की भी यह कल्पना संगत नहीं है और न रइधू सिंहसेन का बड़ा भाई ही है किन्तु रइधू और सिंहसेन दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, सिंहसेन ने अपने को 'आइरिय' प्रकट किया है जबकि रइधू ने अपने को पण्डित और कवि ही सूचित किया है। उस आदिपुराण की प्रति को देखने और दूसरी प्रतियों के साथ मिलान करने से यह सुनिश्चित जान पड़ता है कि उसके कर्ता कवि रइधू ही हैं, सारे ग्रन्थ के केवल आदि अन्त प्रशस्ति में ही कुछ परिवर्तन है।

शेष ग्रन्थ का कथा भाग ज्यों का त्यों है उसमें कोई अन्तर नहीं, ऐसी स्थिति में उक्त आदिपुराण के कर्ता रइधू कवि ही प्रतीत होते हैं, सिंहसेन नहीं। हाँ, यह हो सकता है कि सिंहसेनाचार्य का कोई दूसरा ही ग्रन्थ रहा हो, पर उक्त ग्रन्थ 'सिंहसेनायरिय' का नहीं किन्तु रइधू कविकृत ही है। सम्मइजिनचरिउ की प्रशस्ति में रइधू ने सिंहसेन नाम के एक मुनि का और भी उल्लेख किया है और उन्हें गुरु भी बतलाया और उन्हीं के वचन से सम्मइजिनचरिउ की रचना की गई है। घत्ता—

"तं णिसुणि वि गुरुणा गच्छहु गुरुणाइं सिंहसेण मुणे।
पुरसंठिउ पंडिउ सील अखंडिउ भणिउ तेण तं तम्मि खणे॥५॥

गुरु परम्परा

कविवर ने अपने ग्रंथों में अपने गुरु का कोई परिचय नहीं दिया है और न उनका स्मरण ही किया है। हां, उनके ग्रन्थों में तात्कालिक कुछ भट्टारकों के नाम अवश्य पाये जाते हैं जिनका उन्होंने आदर के साथ उल्लेख किया है। पद्मपुराण की आद्य प्रशस्ति के चतुर्थ कडवक की निम्न पंक्तियों में, उक्त ग्रन्थ के निर्माण में प्रेरक साहु हरसी द्वारा जो वाक्य कवि रइधू के प्रति कहे गए हैं उनमें रइधू को 'श्रीपाल ब्रह्म आचार्य के शिष्य रूप से सम्बोधित किया गया है। साथ ही साहू सोढल के निमित्त 'नेमिपुराण' के रचे जाने और अपने लिए रामचरित के कहने की प्रेरणा भी की गई है जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि रइधू के गुरु ब्रह्म श्रीपाल थे वे वाक्य इस प्रकार हैं :—

भो रइधू पंडिउ गुण णिहाणु, पोमावइ वर वंसहं पहाणु।
सिरिपाल ब्रह्म आयरिय सीस, महु वयणु सुणहि भो बुह गिरीस॥
सोढल णिमित्त णेमिहु पुराणु, विरयउ जहं कइजण विहिय-माणु।
तं रामचरित्तु वि महु भणेहि, लक्खण समेउ इय मणि मुणेहि॥

प्रस्तुत ब्रह्म श्रीपाल कवि रइधू के गुरु जान पड़ते हैं, जो भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे। 'सम्मइ-जिनचरिउ' की अन्तिम प्रशस्ति में[1] मुनि यशःकीर्ति के तीन शिष्यों का उल्लेख किया गया है, खेमचन्द, हरिषेण और ब्रह्म पाल्ह (ब्रह्म श्रीपाल)। उनमें उल्लिखित मुनि ब्रह्मपाल ही ब्रह्म श्रीपाल जान पड़ते हैं। अब तक सभी विद्वानों की यह मान्यता थी कि कविवर रइधू भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे किन्तु इस समुल्लेख पर से वे यशःकीर्ति के शिष्य न होकर प्रशिष्य जान पड़ते हैं।

कविवर ने अपने ग्रन्थों में भट्टारक यशःकीर्ति का खुला यशोगान किया है और मेघेश्वर चरित की प्रशस्ति में तो उन्होंने भट्टारक यशःकीर्ति के प्रसाद से विचक्षण होने का भी उल्लेख किया है। सम्मत्त गुण-णिहाण ग्रन्थ में मुनि यशःकीर्ति को, तपस्वी, भव्यरूपी कमलों को संबोधन करने वाला सूर्य, और प्रवचन का व्याख्याता भी बतलाया है और उन्ही के प्रसाद से अपने को काव्य करने वाला और पापमल का नाशक बतलाया है। जैसा कि उसके निम्न पद्यों से स्पष्ट है :—

तह पुणु सुतव तावतवियंगो, भव्व-कमल-संबोह-पयंगो।
णिच्चोब्भासिय पवयण संगो, वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो।

तासु पसाए कव्वु पयासमि, आसि विहिउ कलि-मलु णिण्णासमि।

इसके सिवाय यशोधर चरित्र में भट्टारक कमलकीर्ति का भी गुरु नाम से स्मरण किया है।

निवास स्थान और समकालीन राजा

कविवर रइधू कहां के निवासी थे और वह स्थान कहां है। और उन्होंने ग्रंथ-रचना का यह महत्वपूर्ण कार्य किन राजाओं के राज्यकाल में किया है यह बात अवश्य विचारणीय है। यद्यपि कवि ने अपनी जन्मभूमि आदि का कोई परिचय नहीं दिया, जिससे उस सम्बन्ध में विचार किया जाता, फिर भी उनके निवास स्थान आदि के सम्बन्ध मे जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है उसे पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिया जाता है :—

उक्त कवि के ग्रन्थों से पता चलता है कि वे ग्वालियर में नेमिनाथ और वर्द्धमान जिनालय में रहते थे और कवित्वरूपी रसायन निधि से रसाल थे। ग्वालियर १५वीं शताब्दी में खूब समृद्ध था, उस समय वहां पर देहली के तोमर वंश का शासन चल रहा था। तोमर वंश बड़ा ही प्रतिष्ठित क्षत्रिय वंश रहा है और उसके शासनकाल में जैनधर्म को पनपने का बहुत कुछ आश्रय मिला है। जैन साहित्य में ग्वालियर का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उस समय तो वह एक विद्या का केन्द्र ही बना हुआ था, वहां की मूर्तिकला और पुरातत्व की कलात्मक सामग्री आज भी दर्शकों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। उसके अवलोकन से ग्वालियर की महत्ता का सहज ही भान हो जाता है। कविवर ने स्वयं सम्यक्त्व-गुण-निधान

---

१. मुणि जसकित्ति हु सिस्स गुणायरु, खेमचंदु हरिसेणु तवायरु।
मुणि तं पाल्ह बंभुए गंदहु, तिण्णि वि पावहु भार णिकंदहु। —सम्मइ जिनचरिउ प्रशस्ति

नामक ग्रन्थ की आद्य प्रशस्ति में ग्वालियर का वर्णन करते हुए वहां के तत्कालीन श्रावकों की चर्या का जो उल्लेख दिया है उसे बतौर उदाहरण के नीचे दिया जाता है :—

तहु रज्जि महायण वहुधणट्ठ, गुरु-देव-सत्थ विणयं वियट्ठ ।
जहिं वियक्खण मणुव सव्व, धम्माणुरत्त-वर गलिय-गव्व ।।
जहिं सत्त-वसण-चुय सावयाइं, णिवसहिं पालिय दो-दह-वयाइं ।
सम्मद्दंसण-मणि-भूसियंग, णिच्चोव्भासिय पवयण सुयंग ।।
दारापेखण-विहि णिच्चलीण, जिण महिम महुच्छव णिरु पवीण ।
चेयणगुण अप्पारुह पवित्त, जिण सुत्त रसायण सवण तित्त ।।
पंचम दुस्समु अइ-विसमु-कालु, णिद्दलि वि तुरिउ पविहिउ रसालु ।
धम्मज्झाणे जे कालु लिंति, णवयारमंतु अह-णिसु गुणंति ।।
संसार-महण्णव-वडण-भीय, णिस्संक पमुह गुण वण्णणीय ।
जहिं णारीयण दिढ सीलजुत्त, दाणें पोसिय णिरु तिविह पत्त ।।
तिय मिसेण लच्छि अवयरिय एत्थु, गयरूव ण दीसइ का वि तेत्थ ।
वर अंवर कणयाहरण एहि, मंडिय तणु सोहहिं मणि जडेहिं ।।
जिण-ण्हवण-पूय-उच्छाह चित्त, भव-तणु-भोयहिं णिच्च जि विरत्त ।
गुरु-देव पाप-पंकयाहिं लीण, सम्मद्दंसणपालण पवीण ।।
पर पुरिस स-बंधव सरिस जांहि, अह-णिसु पडिवण्णिय णिय मणाहिं ।
किं वण्णमि तहि हउं पुरिस णारि, जहिं डिंभ वि सग वसणावहारि ।।
पव्वहिं पव्वहिं पोसहु कुणंति, घरि घरि चच्चरि जिण गुण थुणंति ।
साहम्मि य वत्थु णिरु वहंति, पर अवगुण झंपहि गुण कहंति ।।
एरिसु सावयहिं विहियमाणु, णेमीसुरजिण-हरि वड्ढमाणु ।
णिवसइ जा रइधू कवि गुणालु, सुक्ति-रसायण-णिहिं रसालु ।।५।।

इन पद्यों पर दृष्टि डालने से उस समय के ग्वालियर की स्थिति का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उस समय लोग कितने धार्मिक सच्चरित्र और अपने कर्त्तव्य का यथेष्ट पालन करते थे यह जानने तथा अनुकरण करने की वस्तु है।

ग्वालियर में उस समय तोमर वंशी राजा डूंगरसिंह का राज्य था। डूंगरसिंह एक प्रतापी और जैनधर्म में आस्था रखने वाला शासक था। उसने अपने जीवन काल में अनेक जैन मूर्तियों का निर्माण कराया, वह इस पुनीत कार्य को अपनी जीवित अवस्था में पूर्ण नहीं करा सका था, जिसे उसके प्रिय पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह ने पूरा किया था। राजा डूंगरसिंह के पिता का नाम गणेश या गणपतिसिंह था। जो वीरमदेव का पुत्र था। डूंगरसिंह राजनीति में दक्ष, शत्रुओं के मान मर्दन करने में समर्थ, और क्षत्रियोचित क्षात्र तेज से अलंकृत था। गुण समूह से विभूषित, अन्याय रूपी नागों के विनाश करने में प्रवीण, पंचाँग मंत्रशास्त्र में कुशल, तथा असि रूप अग्नि से मिथ्यात्व-रूपी वंश का दाहक था, जिसका यश सब दिशाओं में व्याप्त था, राज्य-पट्ट से अलंकृत विपुल, भाल और वल से सम्पन्न था। डूंगरसिंह की पट्टरानी का नाम चँदादे था जो अतिशय रूपवती और पतिव्रता थी। इनके पुत्रका नाम कीर्तिपाल या कीर्तिपाल था, जो अपने पिता के समान ही गुणज्ञ, वलवान और राजनीति में चतुर था। डूंगरसिंह ने नरवर के किले पर

घेरा डाल कर अपना अधिकार कर लिया था। शत्रु लोग इसके प्रताप एवं पराक्रम से भयभीत रहते थे। जैनधर्म पर केवल उसका अनुराग ही न था किन्तु उस पर वह अपनी पूरी आस्था भी रखता था, फलस्वरूप उसने जैन मूर्तियों की खुदवाई में सहस्रों रुपये व्यय किए थे। इससे ही उसकी आस्था का अनुमान किया जा सकता है।

डूंगरसिंह सन् १४२४ (वि० सं० १४८१) में ग्वालियर की गद्दी पर बैठा था। राज्य समय के दो मूर्ति लेख सम्वत् १४६७ और १५१० के प्राप्त हैं। सम्वत् १४८६ की दो लेखक प्रशस्तियां-पं० विबुध श्रीधर के संस्कृत भविष्यदत्त चरित्र और अपभ्रंश-भाषा के सुकमालचरित्र की प्राप्त हुई हैं। इनके सिवाय' भविष्य दत्त पंचमी कथा' की एक अपूर्ण लेखक प्रशस्ति कारंजा के ज्ञान भण्डार की प्रति से प्राप्त हुई है। डूंगरसिंह ने वि० सं० १४८१ से सं० १५१० या इसके कुछ बाद तक शासन किया है। उसके बाद राज्य सत्ता उसके पुत्र कीर्तिसिंह के हाथ में आई थी।

कविवर रइधू ने राजा डूंगरसिंह के राज्य काल में तो अनेक ग्रन्थ रचे ही हैं किन्तु उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्य काल में भी सम्यक्त्व कौमुदी की रचना की है। ग्रंथकर्ता ने उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति में कीर्तिसिंह का परिचय कराते हुए लिखा है कि वह तोमर कुल रूपी कमलों को विकसित करने वाला सूर्य था और दुर्वार शत्रुओं के संग्राम से अतृप्त था और अपने पिता डूंगरसिंह के समान ही राज्यभार को धारण करने में समर्थ और वंदी-जनों ने जिसे भारी अर्थ समर्पित किया था और जिसकी निर्मल यश रूपी लता लोक में व्याप्त हो रही थी, उस समय यह कलिचक्रवर्ती था जैसा कि उक्त ग्रंथ प्रशस्ति के निम्न वाक्यों से प्रकट है—

तोमरकुलकमलवियास मित्त, दुव्वारवैरिसंगर अतित्तु।
डूंगरणिवरज्जधरा समत्थु, वंदीयण समप्पिय भूरि-अत्थु॥
चउराय विज्जपालण अतंदु, णिम्मल जसवल्ली भुवणकंदु।
कलिचक्कवट्टि पायडणिहाणु, सिरिकित्तिसिंधु महिवइपहाणु॥

—सम्यक्त्व कौमुदी पत्र २ नागौर भण्डार

कीर्तिसिंह वीर और पराक्रमी था उसने अपना राज्य अपने पिता से भी अधिक विस्तृत किया था। वह दयालु एवं सहृदय था जैनधर्म के ऊपर उसकी विशेष आस्था थी। वह अपने पिता का आज्ञाकारी था उसने अपने पिता के जैनमूर्तियों के खुदाई के अवशिष्ट कार्य को पूरा किया था। इसका पृथ्वीपाल नाम का एक भाई और भी था जो लड़ाई में मारा गया था। कीर्तिसिंह ने अपने राज्य को यहां तक पल्लवित कर लिया था कि उस समय उसका राज्य मालवे के सम-कक्षका हो गया था। और दिल्ली का बादशाह भी कीर्तिसिंह की कृपा का अभिलाषी बना रहना चाहता था। सन् १४६५

१. सन् १४५२ (वि० सं० १५०६) में जौनपुर के सुलतान महमूदशाह शर्की और देहली के बादशाह बहलोल लोदी के बीच होने वाले संग्राम में कीर्तिसिंह का दूसरा भाई पृथ्वीराज महमूदशाह के सेनापति फतहखां हार्वी के हाथ से मारा गया था। परन्तु कविवर रइधू के ग्रंथों में कीर्तिसिंह के दूसरे भाई पृथ्वीराज का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।
—देखो टाड राजस्थान पृ० २५० स्वर्गीय महामना गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा कृत ग्वालियर के तंवर वाली टिप्पणी।

इन व्रतकथाओं में, व्रतका स्वरूप, उनके आचरण की विधि, और फलका प्रतिपादन करते हुए व्रतकी महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। आत्म-शोधन के लिए व्रतों की नितांत आवश्यकता है; क्योंकि आत्म-शुद्धि के बिना हित-साधन सम्भव नहीं है। इन कथाओं में से पक्खवइ कथा और अनन्तव्रत कथा ये दो कथायें तो ग्वालियर निवासी संघपति साहू उद्धरण के जिनमन्दिर में निवास करते हुए साहु सारंगदेव के पुत्र देवदास की प्रेरणा से रची गई हैं और अणंतवयकहा, पुप्फंजलिवयकहा और दहलक्खण-वयकहा ये तीनों कथाएँ ग्वालियर निवासी जैसवालवंशी चौधरी लक्ष्मणसिंह के पुत्र पण्डित भीमसेन के अनुरोध से बनाई गई हैं। सातवीं णिद्दुहसप्तमीकथा गोपाचलवासी साहू वीधा के पुत्र सहजपाल के अनुरोध से लिखी गई है। शेष ९ कथाएँ किनकी प्रेरणा से रची गई हैं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। सम्भव है वे धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हों।

भट्टारक गुणभद्र काष्ठासंघ माथुरान्वय के भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य और भट्टारक यशःकीर्ति के प्रशिष्य थे और मलयकीर्ति के बाद उनके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। उनकी ये १५ कथाएँ पंचायती मंदिर खजूर मस्जिद दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक में संगृहीत हैं। इनकी अन्य क्या रचनाएँ हैं यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका। यह भी प्रतिष्ठाचार्य थे और अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा इनके द्वारा सम्पन्न हुई है।

गुणभद्र नाम के अनेक विद्वान् हो गए हैं। उनसे प्रस्तुत भट्टारक गुणभद्र भिन्न हैं। इन्होंने अपने विहार द्वारा जिनधर्म का उपदेश देकर जनताको धर्म में स्थिर किया है और जैनधर्म के प्रचार या प्रसार में सहयोग दिया है। इनके उपदेश से अनेक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। यद्यपि इन्होंने अपनी रचनाओं में किसी राजा का उल्लेख नहीं किया। किन्तु अन्य सूत्रों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि इनकी यह रचनाएँ ग्वालियर के तोमर वंशी राजा डूंगरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह के राज्यकाल में बनाई गई हैं। इनका समय विक्रम की १५वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और १६वीं शताब्दी के मध्य काल तक जान पड़ता है।

कारंजा के सेनगढ़ भंडार की समयसार की लिपि प्रशस्ति वि० संवत् १५१० वैशाख शुक्ला तीज की लिखी हुई है, जो गोपाचल में डूंगरसिंह के राज्यकाल में भट्टारक गुणभद्र की आम्नाय के अग्रवाल वंशी गर्ग गोत्रीय साहु जिनदास ने लिखवाई थी[1]। इससे भी गुणभद्र का समय १६वीं शताब्दी ज्ञान पड़ता है।

५१वीं, ५२वीं, ५३वीं, ५४वीं, ५५वीं, ५६वीं, ५७वीं, ५८वीं, ५९वीं, ६०वीं, ६१वीं, ६२वीं, ६३वीं, और ६४वीं प्रशस्तियों का परिचय ५०वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

६५वीं प्रशस्ति 'अनंतव्रतकथा' की है, जिसमें कर्ता का नाम अभी अज्ञात है। प्रस्तुत रचना पंचायती मन्दिर दिल्ली के शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से दी गई हैं। रचनाकाल भी अज्ञात है। फिर भी यह रचना १५वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

६६वीं प्रशस्ति 'आराहणासार' की है जिसके कर्ता कवि वीर हैं। प्रस्तुत रचना में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपरूप चार आराधनाओं का स्वरूप संक्षेप में दिया गया है। वीर कवि कब हुए और उनका समय तथा गुरु परम्परा क्या है ? यह रचना पर से कुछ ज्ञात नहीं होता। यह रचना आमेर शास्त्र भण्डार के एक गुच्छक पर से संगृहीत की गई है। वीर नाम के एक कवि वि० सं० १०७६ में हुए हैं जिन्होंने उक्त संवत् में जंबू स्वामिचरित्र की रचना की थी। ये दोनों एक ही हैं या भिन्न हैं। यह अभी विचारणीय है।

१. देखो अनेकान्त वर्ष १४ किरण १० पृ० २९६

६७वीं प्रशस्ति 'हरिसेणचरिउ' की है, जिसके कर्ता अज्ञात हैं। प्रस्तुत ग्रन्थमें हरिषेण चक्रवर्ती का जीवन परिचय दिया हुआ है। चरित सुन्दर और शिक्षाप्रद है। यह चक्रवर्ती बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के समय में हुए हैं। यह बड़े वीर धर्मात्मा और अपनी माता के आज्ञाकारी पुत्र थे। चक्रवर्ती की माता जैनधर्म की श्रद्धालु और धर्मात्मा थी, उसकी भावना जैन रथोत्सव निकलवाने की थी, परन्तु कारणवश वह अपनी भावना को पूरा करनेमें समर्थ नहीं हो रही थी। हरिषेण चक्रवर्ती ने अनेक जिनमन्दिर बनवाए, प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न कीं और महोत्सवपूर्वक रथोत्सव निकलवाकर अपनी माता की चिरसाधना को सम्पन्न किया। इनके एक पुत्र ने कैलाश पर्वत पर तप धारण किया और कर्म-सन्तति का उच्छेदकर अविनाशीपद प्राप्त किया था। उससे चक्रवर्ती को भारी सन्ताप हुआ, किन्तु ज्ञान और विवेक से उसका शमन किया और अन्त में स्वयं चक्रवर्ती ने राज्य-वैभव को असार जान दीक्षा लेकर आत्म-साधना की और अविनाशी स्वात्म-लब्धि को प्राप्त किया। ग्रन्थ की रचना कब और कहाँ हुई? यह कुछ ज्ञात नहीं होता, सम्भव है रचना १५वीं शताब्दी या उससे पूर्ववर्ती हो।

६८ वीं प्रशस्ति 'मयण पराजय' की है जिसके कर्ता कवि हरदेव हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के दो परिच्छेदों में से प्रथम में ३७ और दूसरे में ८१ कुल ११८ कडवक हैं। जिनमें मदन को जीतने का सुन्दर सरस वर्णन किया गया है। यह एक छोटा-सा रूपक खण्ड काव्य है। इसमें पद्धडिया, गाथा और दुवई छन्द के सिवाय वस्तु (रड्ढा) छन्द का भी प्रयोग किया गया है। किन्तु इन छन्दों में कवि को वस्तु या रड्ढा छन्द ही प्रिय रहा है[1] छन्द के साथ ग्रन्थ में यथा स्थान अलंकारों का भी संक्षिप्त वर्णन पाया जाना इस काव्य ग्रंथ की अपनी विशेषता है। ग्रंथ में अनेक सूक्तियां दी हुई हैं जिनसे ग्रंथ सरस हो गया है। उदाहरणार्थ यहाँ तीन सूक्तियों को उद्धृत किया जाता है—

१. असिधारा पहेण को गच्छइ—तलवार की धार पर कौन चलना चाहता है
२. को भुयदंडहिं सायरु लंघहि—भुजदंड से सागर कौन तरना चाहेगा
३. को पंचाणणु सुत्तउ खवलइ—सोते हुए सिंह को कौन जगाएगा।

ग्रन्थ का कथानक परम्परागत ही है, कवि ने उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है, रचना का ध्यान से समीक्षण करने पर शुभचन्दाचार्य के ज्ञानार्णव का उस पर प्रभाव परिलक्षित हुआ जान पड़ता है। जो तुलना करने से स्पष्ट हो सकता है।

इस रूपक-काव्य में कामदेव राजा, मोहमंत्री, अहंकार और अज्ञान आदि सेनापतियों के साथ भावनगर में राज्य करता है। चारित्रपुर के राजा जिनराज उसके शत्रु हैं; क्योंकि वे मुक्तिरूपी लक्ष्मी से अपना विवाह करना चाहते हैं। कामदेव ने राग-द्वेष नाम के दूत द्वारा जिनराज के पास यह संदेश भेजा कि आप या तो मुक्ति-कन्या से विवाह करने का अपना विचार छोड़ दें, और अपने ज्ञान, दर्शन-चरित्ररूप सुभटों को मुझे सौंप दें, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ। जिनराज ने कामदेव से युद्ध करना स्वीकार किया और अंत में कामदेव को पराजित कर अपना विचार पूर्ण किया।

---

१. प्राकृत-पिंगल में रड्ढा छन्द का लक्षण इस तरह दिया है। जिसमें प्रथम चरण में १५ मात्राएँ, द्वतीय चरण में १२ तृतीय चरण में १५, चतुर्थ चरण में ११, और पांचवें चरण में १५ मात्रा हो, इस तरह १५×१२×१५×११×१५, कुल ६८ मात्राओं के पश्चात् अन्त में एक दोहा होना चाहिए, तब प्रसिद्ध रड्ढा छन्द होता है। जिसे वस्तु छन्द भी कहा जाता है। (देखो, प्रा० पिं० १—१३३)

कवि-परिचय

यद्यपि कवि ने अपना कोई विशेष परिचय ग्रन्थ में नहीं दिया, फिर भी प्रथम संधि के दूसरे-तीसरे कडवक से ज्ञात होता है कि कवि का नाम हरि या हरिदेव था। इनके पिता का नाम चङ्गदेव और माता का नाम चित्रा (देवी) था। इनके दो ज्येष्ठ और दो कनिष्ठ भाई भी थे। उनमें जेठे भाइयों का नाम किंकर और कृष्ण था। इनमें किंकर गुणवान और कृष्ण स्वभावतः निपुण था, कनिष्ठ भाइयों के नाम क्रमशः द्विजवर और राघव थे, ये दोनों ही धर्मात्मा थे।

संस्कृत 'मदन पराजय' इसी रूपक-ग्रन्थ का संवर्द्धित अनुवादित रूप है। और जिसके कर्ता कवि नागदेव उन्हीं के वंशज तथा ५वीं पीढ़ी में हुए थे। उन्होंने ग्रंथ प्रशस्ति में जो परिचय दिया है उससे कवि के वंश का परिचय निम्न प्रकार मिलता है—पृथ्वी पर शुद्ध सोमकुलरूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य तथा याचकों के लिए कल्पवृक्ष रूप चङ्गदेव हुए। उनके पुत्र हरि या हरदेव, जो असत्कवि रूपी हस्तियों के लिए सिंह थे। उनके पुत्र वैद्यराज नागदेव, नागदेव के 'हेम' और 'राम' नाम के दो पुत्र थे। जो दोनों ही वैद्य-विद्या में निपुण थे। राम के पुत्र 'प्रियंकर' हुए, जो दानी थे। प्रियंकर के पुत्र 'मल्लुगि' थे, जो चिकित्सा महोदधि के परिगामी विद्वान् और जिनेन्द्र के चरण कमलों के मत्त भ्रमर थे। उनका पुत्र मैं अल्पज्ञानी नागदेव हूँ। जो काव्य, अलंकार, और शब्द कोष के ज्ञान से विहीन हूँ। हरिदेव ने जिस कथा को प्राकृत बन्ध में रचा था उसे मैं धर्मवृद्धि के लिए संस्कृत में रचता हूँ[2]। कवि ने ग्रन्थ में कोई रचना काल नहीं दिया। ग्रन्थ की यह प्रति सं० १५७६ की लिखी हुई आमेर भंडार में सुरक्षित है। उससे यह ग्रन्थ पूर्व बना है।

इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति सं० १५५१ मगशिर सुदि अष्टमी गुरुवार की लिखी हुई जयपुर के तेरापंथी बड़े मंदिर के शास्त्र भंडार में मौजूद है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उक्त ग्रन्थ सं० १५५१ से पूर्ववर्ती है। ग्रन्थ के भाषा साहित्यादि पर से वह १४वीं शताब्दी के उपान्त समय की और १५वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की कृति जान पड़ती है।

६६वीं और १०५वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः 'सिद्धचक्ककहा' और 'जिणरत्तिविहाण कहा' की हैं, जिन के कर्ता कवि नरसेन हैं।

सिद्धचक्र कथा में चंपा नगरी के राजा श्रीपाल और उनकी धर्मपत्नी मैनासुन्दरी का चरित्र-चित्रण किया गया है। अशुभोदय वस राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियों को भयंकर कुष्ठ रोग हो जाता है। रोग की वृद्धि हो जाने पर उनका नगर में रहना असह्य हो गया, उनके शरीर की दुर्गन्ध से जनता का वहाँ रहना भी दूभर हो गया, तब जनता के अनुरोध से उन्होंने अपना राज्य अपने चाचा अरिदमन को

---

२. यः शुद्धसोमकुलपद्मविकासनार्को, जातोर्थिनां सुरतरुर्भुवि चङ्गदेवः।
तन्नन्दनो हरिरसत्कविनागसिंहः, तस्मात् भिषग्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥२॥
तन्नावुभौ सुभिषजाविह हेम-रामौ, रामात्प्रियङ्करइति प्रियदोऽर्थिनां यः।
तज्जश्चिकित्सितमहाम्बुधि पारमाप्तः श्रीमल्लुगि जिनपदाम्बुज मत्तभृङ्गः ॥३॥
तज्जोऽहं नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः।
छन्दोऽलङ्कारकाव्यानि नाभिधानानि वेदम्यहम ॥४॥
कथा प्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता।
वक्ष्ये संस्कृत बंधेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥५॥ —मदन पराजय

दे दिया और कहा कि जब मेरा रोग ठीक हो जाएगा, मैं अपना राज्य वापिस ले लूंगा। श्रीपाल अपने साथियों के साथ नगर छोड़कर चले गए, और अनेक कष्ट भोगते हुए उज्जैन नगर के बाहर जंगल में ठहर गए। वहां का राजा अपने को ही सब कुछ मानता था, कर्मों के फल पर उसका विश्वास नहीं था। उसकी पुत्री मैना सुन्दरी ने जैन साधुओं के पास विद्याध्ययन किया था, और कर्म-सिद्धान्त का उसे अच्छा परिज्ञान हो गया था, उसकी जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी, साथ ही साध्वी और शीलवती थी। राजा ने उससे अपना पति चुनने के लिए कहा, परन्तु उसने कहा कि यह कार्य शीलवती पुत्रियों के योग्य नहीं है। इस सम्बन्ध में आप ही स्वयं निर्णय करें। राजा ने उसके उत्तर से असंतुष्ट हो उसका विवाह कुष्ठ रोगी श्रीपाल के साथ कर दिया। मंत्रियों ने बहुत समझाया, परन्तु उस पर राजा ने कोई ध्यान न दिया। निदान कुछ ही समय में मैनासुन्दरी ने सिद्धचक्र का पाठ भक्ति भाव से सम्पन्न किया, और जिनेन्द्र के अभिषेक जल से उन सबका कुष्ठ रोग दूर हो गया। और वे सुखपूर्वक रहने लगे। पश्चात् श्रीपाल बारह वर्ष के लिए विदेश चला गया, वहां भी उसने अनेक कर्म के शुभाशुभ परिणाम देखे, और बाह्य विभूति के साथ बारह वर्ष बाद मैना सुन्दरी से मिला, उसे पटरानी बनाया, और चंपापुर जाकर चाचा से राज्य लेकर शासन किया। और अन्त में तप द्वारा आत्म लाभ किया। इस कथानक से सिद्धचक्रव्रत की महत्ता का आभास मिलता है। रचना सुन्दर और संक्षिप्त है।

दूसरी कृति 'जिनरात्रि कथा' है, जिसे वर्द्धमान कथा भी कहा जाता है। जिस रात्रि में भगवान महावीर ने अविनाशी पद प्राप्त किया, उसी व्रत की कथा शिवरात्रि के ढंग पर रची गई है। उस रात्रि में जनता को इच्छाओं पर नियंत्रण रखते हुये आत्म-शोधन का प्रयत्न करना चाहिए। रचना सरस है, कवि ने रचना में अपना कोई परिचय, गुरु परम्परा तथा समयादि का कोई उल्लेख नहीं किया। इससे कवि के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। 'सिद्धचक्क कथा' की प्रति सं० १५१२ की लिखी हुई मिली है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त ग्रंथ उससे पूर्व बन चुका था। कितने पूर्व यह अभी विचारणीय है। फिर भी यह रचना १४वीं शताब्दी या उसके आस-पास की जान पड़ती है।

७० वीं प्रशस्ति 'अणत्थमिय कहा' की है, जिसके कर्ता कवि हरिचन्द हैं। प्रस्तुत कथा में १६ कडवक दिये हुए हैं जिनमें रात्रिभोजन से होने वाली हानियों को दिखलाते हुए उसका त्याग करने की प्रेरणा की गई है और बतलाया गया है कि जिस तरह अन्धा मनुष्य ग्रास की शुद्धि अशुद्धि सुन्दरता आदि का अवलोकन नहीं कर सकता। उसी प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि में भोजन करने वाले लोगों से कीड़ी, पतंग, झींगुर, चिउंटी, डांस, मच्छर आदि सूक्ष्म और स्थूल जीवों की रक्षा नहीं हो सकती। बिजली का प्रकाश भी उन्हें रोकने में समर्थ नहीं हो सकता। रात्रि में भोजन करने से भोजन में उन विषैले जीवों के पेट में चले जाने से अनेक तरह के रोग हो जाते हैं, उनसे शारीरिक स्वास्थ्य को बड़ी हानि उठानी पड़ती है। अतः धार्मिकदृष्टि और स्वास्थ्य की दृष्टि से रात्रि में भोजन का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है जैसा कि कवि के निम्न पद्य से स्पष्ट है—

जिहि दिट्ठि ण य सरइ अंधुजेम, तहि गास-सुद्धि भणु होय केम।
किमि-कीड-पयंगइ भिंगुराइं, पिप्पीलइं डंसइं मच्छिराइं।
खज्जूरइ कण्णसलाइयाइं, अवरइं जीवइं जे बहुसमाइं।
अन्नाणी णिसि भुंजंतएण, पसुसरि सुधरिउ अप्पाणु तेण।

घत्ता—जं वालि विदीणउ करि उज्जोवउ अहिउ जीउ संभवइ परा।
भमराइ पयंगइं वहुविह भंगइं मंडिय दीसइ जित्थु धरा ॥ ५ ॥

कवि का वंश अग्रवाल है, उनके पिता का नाम जंडू और माता का नाम वील्हा देवी था। कवि ने ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया, परन्तु रचना पर से वह १५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है; क्योंकि रचना जिस गुच्छक पर से संगृहीत की गई है, वह ३०० वर्ष से पूर्व का लिखा हुआ है।

७१ वीं प्रशस्ति से लेकर ७३ वीं प्रशस्ति तक तीनों प्रशस्तियां क्रमशः चूनडीरास, निज्झरपंचमी कहारास और कल्याणक रास की हैं जिनके कर्ता कवि विनयचन्द्र हैं।

प्रस्तुत चूनडी रास में ३२ पद्य हैं। जिनमें चूनडी नामक उत्तरीय वस्त्र को रूपक बनाकर एक गीति काव्य के रूप में रचना की गई है। कोई मुग्धा युवती हंसती हुई अपने पति से कहती है कि हे सुभग! जिनमन्दिर जाइये और मेरे ऊपर दया करते हुए एक अनुपम चूनड़ी शीघ्र छपवा दीजिये, जिससे में जिन-शासन में विचक्षण हो जाऊँ। वह यह भी कहती है कि यदि आप वैसी चूनड़ी छपवा कर नहीं देंगे, तो वह छीपा मुझे तानाकशी करेगा। पति-पत्नी की बात सुनकर कहता है कि हे मुग्धे! वह छीपा मुझे जैन-सिद्धान्त के रहस्य से परिपूर्ण एक सुन्दर चूनड़ी छापकर देने को कहता है।

चूनड़ी उत्तरीय वस्त्र है, जिसे राजस्थान की महिलाएँ विशेष रूप से ओढ़ती थीं। कवि ने भी इसे रूपक बतलाते हुए चूनड़ी रास का निर्माण किया है, जो वस्तु तत्व के विविध वाग-भूषणों से भूषित है; और जिसके अध्ययन से जैनसिद्धांत के मार्मिक रहस्यों का उद्घाटन होता है। वैसे ही वह शरीर को अलंकृत करती हुई शरीर की अद्वितीय शोभा को बनाती है। उससे शरीर को अलंकृत करती हुई वालाएँ लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त होंगी और और अपने कण्ठ को भूषित करने के साथ-साथ भेद-विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगी। रचना सरस और चित्ताकर्षक है इस पर कवि की एक स्वोपज्ञ टीका भी उपलब्ध है जिसमें चूनड़ी रास में दिये हुए शब्दों के रहस्य को उद्घाटित किया गया है। ऐसी सुन्दर रचना को स्वोपज्ञ संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित करना चाहिए।

कवि ने इस रचना को 'त्रिभुवनगढ़' में 'अजयनरेन्द्र' के विहार में बैठकर बनाया है। उस समय त्रिभुवनगढ़[1] या तहनगढ़ जन-धन से समृद्ध था, इसीसे कवि ने उसे 'सग्ग खंड णं धरियल आयउ' वाक्य द्वारा उसे स्वर्गखण्ड के तुल्य बतलाया है। प्रस्तुत 'अजयनरेन्द्र' तहनगढ़ के राजा कुमारपाल का भतीजा था और उसके बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था। संवत् १२५३ में वहां कुमारपाल का राज्य था, उस समय मुहम्मद गौरी ने सन् ११४६ में उस पर अधिकार कर लिया था। तब समस्त व्यापारी जन नगर छोड़कर इधर-उधर भाग गये थे, नगर जन-धन से शून्य हो गया था। वहां अनेक मन्दिर और शिवालय थे। मूर्ति-पूजा का वहां बहुत प्रचार था; किन्तु मुसलमानों का अधिकार होते ही अनेक मन्दिर-मूर्तियां धराशायी करा दी गई थीं, जिससे नगर श्रीहीन और वीरान-सा हो गया था। मुहम्मद गौरी ने वहां का शासक वहरुद्दीन तुग़रिक को नियुक्त किया था, उसने दूर-दूर से बसने के लिये व्यापारियों को बुलाया था,

१. त्रिभुवनगढ़ या तहनगढ़ राजस्थान के ऐतिहासिक स्थान है। जो 'बहनपाल' के द्वारा बसाया गया था बयाना 'तहनगढ़' और करौली ये तीनों स्थान इस वंश के द्वारा शासित रहे हैं। प्रस्तुत अजयनरेन्द्र करौली के राजवंश-सूची से कुमारपाल का भतीजा ज्ञात होता है। तहनगढ़ के सम्बन्ध में अन्यत्र पाद टिप्पण में विचार किया गया है, पाठक वहां देखें।

खुरासान से भी लोग बसने को आए थे। सम्भव है कुछ दिनों के बाद उसकी समृद्धि पुनः हो गई हो। मुनि विनयचन्द ने अपनी चूनड़ी अजयराजा के विहार में बैठकर बनाई थी।

७२ वी प्रशस्ति 'निर्झरपंचमीकहारास' की है। जिसमें निर्झर पंचमी के व्रत का फल बतलाया गया है। जो व्यक्ति पंचमी व्रत का निर्दोष रूप से पालन करता है, वह अविकल सिद्ध पद को पाता है। इस व्रत की विधि बतलाते हुए लिखा है कि 'आषाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन जागरण करे और उपवास करे तथा कार्तिक के महीने में उसका उद्यापन करे अथवा श्रावण में आरम्भ करके अगहन के महीने में उद्यापन करे और उद्यापन में छत्र-चमरादि पांच-पांच वस्तुएँ मन्दिर जी मे प्रदान करे[१]। यदि उद्यापन की शक्ति न हो, तो व्रत दूने समय तक करे।' इस रास को कवि ने त्रिभुवनगिरि की तलहटी में बनाया था। रचना सुन्दर और सरस है।

७३ वीं प्रशस्ति 'कल्याणक रास' की है, जिसमें जैन तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियों का निर्देश किया गया है।

कवि परिचय

प्रस्तुत कवि विनयचन्द माथुरसंघ के भट्टारक उदयचन्द के प्रशिष्य और बालचन्द मुनि के शिष्य थे। इन्होंने अपनी दोनों रचनाएँ त्रिभुवनगिरि में बनाई थी। किन्तु तीसरी रचना में उसके स्थान का कोई निर्देश नहीं किया, जिससे यह कहना कठिन है कि वह कहां पर बनी है। रचना समय तीनों में ही नहीं दिया है। संवत् १४५५ के गुच्छक में[२] लिखी हुई कल्याणकरास की एक प्रति श्री पं० दीपचंद पांड्या केकड़ी के पास है, उससे इतना तो सुनिश्चित हो जाता है कि उक्त ग्रंथ उससे पूर्व ही रचा गया है। चूनड़ी-रास त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल के भतीजे अजयराज के विहार में बैठकर बनाने का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। जिसका नाम करोली के शासकों की सूची में दर्ज है। संवत् १२५३ में त्रिभुवनगिरि का विनाश हुआ था, उसके बाद ही किसी समय 'चूनड़ीरास' रचा गया है। अजयराज के राज्य काल में नहीं इससे जान पड़ता है कि कवि का रचनाकाल वि० की १३वीं शताब्दी का मध्यकाल या १४वीं शताब्दी का प्रथम चरण है।

यहां यह लिखना अप्रासंगिक न होगा कि डा० प्रेमसागर जी ने हाल ही में 'जैन-भक्ति काव्य' नामका निबन्ध, जो भिक्षु अभिनन्दन ग्रंथ के खण्ड दो, पृष्ठ १२३ पर छपा है। उसमें भट्टारक विनयचन्द्र का समय वि० सं १५७६ बतलाया है। उनके वे वाक्य इस प्रकार हैं—

"विनयचन्द्र मुनि इसी शती के सामर्थ्यवान् कवि थे। वे माथुर संघीय भट्टारक बालचन्द्रके शिष्य थे। विनयचन्द्र सूरि से स्पष्टतया पृथक् हैं। विनयचन्द्र सूरि चौदहवीं शती के रत्नसिंह सूरि के शिष्य थे। मुनि विनयचन्द्र गिरिपुर के राजा अजय नरेश के राज्यकाल में हुये हैं। उनका समय वि० सं० १५७६ माना जाता है।"

---

१. धवल पक्खि आसाढ़हि पंचमि– जागरणु,
सुह उपवासइ किज्जइ कातिग उज्जवणु।
अह सावण आरंभिय पुज्जइ आगहणे,
इह मइ णिज्झर पंचमि अक्खिय भय-हरणे॥

२. संवत् १४५५ साके १३२० तारणनाम संवत्सर "समये पोषवदि २ भौमवासरे" टंडास्थाने शाखासपुरा-स्थाने भट्टारक श्रीललितकीर्तिदेवा मर्थ्यलिखापितं, कांतीपुरे बाइ विमलसिरि प्रेषित द्रव्यं (व्येन) कर्मक्षय निमित्तं लेखावतमिति। सुबुद्धि सुपुत्र पद्मसीह लिखितं। शुभमस्तु। —गुच्छक पृ० १०४

डा० साहब का समय-सम्बन्धी निष्कर्ष ठीक नहीं है। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से तो वे पृथक् हैं ही। वि० सं० १५७६ विनयचन्द्र का समय नहीं है किन्तु उस गुच्छक के लिपि होने का समय है जो सुनपत (वर्तमान सोनीपत) में उक्त संवत् में लिखा गया था। श्वेताम्बरीय विनयचन्द्र सूरि से भट्टारक विनयचन्द्र पूर्ववर्ती हैं। कवि ने कुमारपाल के भतीजे अजयनरेश के विहार में बैठकर तहनगढ़ में चूनड़ी रास बनाया है। सं० १४५५ की तो कल्याणक रास की लिखित प्रति उपलब्ध है। विनयचन्द्र मुनि का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का मध्य भाग या चौदहवीं का प्रारम्भिक भाग हो सकता है। उससे बाद का नहीं।

७४वीं प्रशस्ति 'सोखवइविहाणकहा' की है कि जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति हैं।

प्रस्तुत कथा में व्रत की विधि और उसके फल का विधान किया गया है। कवि ने अपनी कोई गुरु परम्परा और रचना काल नहीं दिया। पर-सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि प्रस्तुत कवि माथुर गच्छ बागडसंघ के मुनि रामकीर्ति के शिष्य थे। जिनका समय विक्रम की १३वीं शताब्दी का है[1]।

राजस्थान शास्त्र भन्डार की ग्रन्थ सूची नं० ४ के पृष्ठ ६३२ पर 'सुगन्धदशमी कथा' का उल्लेख है, जिसकी अन्तिम प्रशस्ति में विमलकीर्ति को रामकीर्ति का शिष्य बतलाया गया है[2]। इससे यह रचना उन्हीं की जान पड़ती है। उनकी अन्य क्या रचनायें हैं। यह अभी ज्ञात नहीं हो सका। प्रस्तुत बागडसंघ के रामकीर्ति कब हुए, यहां यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के दो विद्वानों का नाम मेरे ऐतिहासिक रजिस्टर में उल्लिखित है[3]। उनमें से प्रथम रामकीर्ति ही विमलकीर्ति के गुरु हो सकते हैं। ये रामकीर्ति वही जान पड़ते हैं, जो जयकीर्ति के शिष्य थे, और जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड़ में सं० १२०७ में उत्कीर्ण की गई उपलब्ध है[4]। इससे रामकीर्ति का समय विक्रम की १३वीं शताब्दी है। क्योंकि जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यश कीर्ति ने जो विमलकीर्ति के शिष्य थे। अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्वेताम्बरीय विद्वान् धनेश्वरसूरि का उल्लेख किया है जो अभयदेवसूरि के शिष्य थे[5] और जिनका समय सं० ११७१ है। इससे भी प्रस्तुत राम-

---

१. आसि पुरा वित्थिण्णे वायडसंघे ससंघ-संकासो।
मुणिराम इत्तिधीरो गिरिव्व णइसुव्व गंभीरो ॥१८॥
संजाउ तस्स सीसो विवुहो सिरि 'विमल इत्ति' विक्खाओ।
विमलयइकित्ति खडिया धवलिय धरणियल गयणयलो ॥१९॥
—जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

२. रामकित्ति गुरु विणउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरण करेविणु सइ अणुकमेण सो मोक्ख लहेसइ॥ —सुगन्ध दशमी कथा प्रशस्ति

३. प्रथम रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, देखो एपि ग्राफिका इंडिका जि० २, पृ० ४२१ दूसरे रामकीर्ति जो मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने सं० १४१३ में वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य में लंबकंचुकान्वयी श्रावक ने एक जिन मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जो भूगर्भ से प्राप्त होकर भोगांव के मंदिर में खंडितावस्था में मौजूद है। (देखो, जैन सि० भा० भा० २२ अंक २।

४. एपिग्राफिका इंडिका जि० २ पृ० ४२१

५. सुवणाणं मज्झण्णो ताण पसाएण इट्ठसंपत्तं।
णमिऊण तस्स चलणे भावेण धणेसर गुरुस्स ॥४॥ —जगतसुंदरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

कीर्ति १२वीं के अन्तिम चरण और १३वीं के प्रारम्भिक विद्वान ज्ञात होते हैं और विमलकीर्ति का समय भी १३वीं शताब्दी सुनिश्चित हो जाता है। यहां यह विचार अप्रासंगिक न होगा कि विद्याधर जोहरापुरकर ने 'भट्टारक सम्प्रदाय' के पृष्ठ २६२ में जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला के कर्ता यशःकीर्ति का समय 'अनुमानतः १५ वीं सदी है' ऐसा लिखा है जो किसी भूल का परिणाम है। ऊपर जो विचार किया गया है उससे स्पष्ट है कि ये यशःकीर्ति विक्रम की १३ वीं शताब्दी के विद्वान थे। उनकी दृष्टि धनेश्वर गुरु के उल्लेख पर नहीं गई जान पड़ती, इसीसे ऐसा लिखा है।

७५वीं प्रशस्ति 'चन्दण छट्ठी कहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मण या लाखू है। इस कथा में 'चन्दन छठ' के व्रत का परिणाम बतलाया गया है, और व्रत विधि के साथ उसके अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है।

कथाकार ने अपना कोई परिचय नहीं दिया और न अपनी गुरु परम्परा ही दी, जिससे यह कहना अत्यन्त कठिन है कि पं० लक्ष्मण को या लाखू की गुरु परम्परा क्या है और वे किस वंश के थे ? अपभ्रंश भाषा के दो कवि लक्ष्मण नाम के हैं। उनमें प्रथम लक्ष्मण कवि वे हैं, जो जैसवाल वंश में उत्पन्न हुए थे, इन के पिता का नाम 'साहुल' था, यह 'त्रिभुवनगिरि' या तहनगढ़ के निवासी थे, उसके विनष्ट होने पर बिल्रामपुर आये थे, वहां पुरवाड वंशीय सेठ श्रीधर की प्रेरणा से लक्ष्मण ने जिनदत्तचरित्र की रचना सं० १२७५ में पौष कृष्णा षष्ठी रविवार के दिन की थी[1]। इनका परिचय अन्यत्र दिया हुआ है।

दूसरे कवि लक्ष्मण वे हैं, जो रतनदेव वणिक के पुत्र थे और जो मालव देश के 'गोणंदनगर' के निवासी थे। इन्होंने ८२ कडवकों और चार संधियों में 'णेमिणाह चरिउ' की रचना की थी। इन दोनों लक्ष्मणों में से यह कथा किस की बनाई हुई है या लक्ष्मण नाम के कोई तीसरे ही कवि इस कथाके कर्ता हैं। यह सब अनुसन्धान करने की जरूरत है।

७६वीं और ७७वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'निदुःख सप्तमी कथा' और 'दुद्धारस कथा' की हैं, जिनके कर्ता मुनि बालचन्द्र हैं।

प्रस्तुत कथाओं में व्रतों के फल का विधान किया गया है और व्रतों के अनुष्ठान की विधि बतलाते हुए उनके आचरण की प्रेरणा की गई है।

मुनि बालचन्द्र माथुरसंघ के विद्वान उदयचन्द मुनि के शिष्य और विनयचन्द मुनि के गुरु थे। विनयचन्द्र का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और १४ वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। अतएव इनके गुरु मुनि बालचन्द का समय विक्रम की १३ वीं शताब्दी का मध्य चरण हो सकता है पर निश्चित समय के लिए अभी और भी अन्वेषण की जरूरत है।

७८वीं प्रशस्ति भी 'रविवय कहा' की है, जिसके कर्ता उक्त माथुर संघी मुनि नेमचन्द्र हैं।

प्रस्तुत कथा में रविवार के व्रत की विधि और उसके फल प्राप्त करने वाले की कथा दी गई है। ग्रन्थ प्रशस्ति में रचना काल दिया हुआ नहीं है। अतएव यह भी कहना कठिन है कि इनका निश्चित समय क्या है ? कथा के भाषा साहित्यादि पर से यह रचना १५ वीं शताब्दी की जान पड़ती है। हो सकता है कि यह इससे भी पूर्व रची गई हो। अन्य साधन सामग्री का अन्वेषण कर कवि का यथार्थ समय निश्चित करना आवश्यक है।

---

१. बारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं विक्कमकाल वियत्तउ।
पढमपक्खि रविवारइ छट्ठि सहारइ पूसमास सम्मत्तउ॥ —जिनदत्त चरित्र प्रशस्ति

७६वीं प्रशस्ति 'सुगन्धदशमी कथा' की है जिसके कर्ता कवि नयनानन्द हैं।

प्रस्तुत कृति में दो सन्धियां और २१ कडवक हैं। जिसमें मुनि निन्दा रूप पाप के फल से होने वाली शारीरिक दुर्गन्धता और कुयोनियों में भ्रमण आदि के दुखों तथा सुगन्धदशमी व्रत के अनुष्ठान के परिणाम स्वरूप होने वाली शारीरिक सुन्दरता और उच्च कुल आदि की प्राप्ति का फल दिखलाया गया है। यह कथा कब रची गई इसका कवि ने कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। प्रस्तुत ग्रंथ की प्रशस्ति पंचायती मंदिर खजूर मस्जिद दिल्ली की अशुद्धि प्रति पर से दी गई है। हाल में इसकी दूसरी प्रति जयपुर के बड़े तेरापंथी मन्दिर के शास्त्र भंडार से देखने को मिली, जो प्रायः शुद्ध है और विक्रम संवत् १५२४ की लिखी हुई है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रंथ सं० १५२४ के बाद का लिखा हुआ नहीं है किन्तु पूर्ववर्ती है। और सम्भवतः विक्रम की १५ वीं शताब्दी या उससे भी कुछ पूर्व रची गई हो। कवि खुशालचन्द ने इसका हिंदी पद्यानुवाद भी कर दिया है जो भद्रपद शुक्ला दशमी के दिन शास्त्र सभा में पढ़ा जाता है। कथा रोचक और सरस है।

८०वीं प्रशस्ति 'मुक्तावलि कथा' की है, जिसके कर्ता कोई अज्ञात कवि हैं। ग्रंथ में मुक्तावलि व्रत के विधान और उसके फल की कथा दी गई है। कथा में रचनाकाल भी नहीं दिया है। जिससे उसके संबंध में निश्चयतः कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है अन्वेषण करने पर किसी प्रति में कर्ता का नाम भी उपलब्ध हो जाय।

जयपुर के पाटोदीमंदिर के शास्त्रभंडार में 'मुक्तावलि विधान कथा' की एक अपूर्ण प्रति उपलब्ध है[1]। जो संवत् १५४१ फाल्गुण सुदी ५ की लिखी हुई है। यदि यह कथा वही हो, जिसकी संभावना की गई है, तो इसका रचनाकाल भी विक्रम की १५ वीं शताब्दी होना चाहिए। अधिकांशतः अपभ्रंश की कथाएं १५वीं १६वीं शताब्दी में ही अधिक लिखी गई हैं।

८१वीं प्रशस्ति 'अनुपेहारास' की है जिसके कर्ता कवि जल्हिग हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने, अनित्य अशरण, संसार, एकत्व अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ और धर्म, इन बारह भावनाओं के स्वरूप को दिखलाते हुए उनके बार-बार चिन्तन करने की प्रेरणा की है। वास्तव में ये भावनाएं देह-भोगों के प्रति अरुचि उत्पन्न कराती हुई आत्म-स्वरूप की ओर आकृष्ट करती हैं। इसीलिए इन्हें माता के समान हितकारी बतलाया है। कवि जल्हिग कब हुए, यह रचना पर से ज्ञात नहीं होता। संभवतः इनका समय विक्रम की १४वीं या १५ वीं शताब्दी हो।

८२वीं प्रशस्ति 'बारस अणुवेक्खारास' की है। जिसके कर्ता पं० योगदेव हैं।

इस ग्रन्थ में भी अनित्यादि बारह भावनाओं का स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। कवि ने इस ग्रंथ को कुम्भनगर के मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में बैठकर बनाया है। इनका समय और गुरुपरम्परा अभी अज्ञात है। प्रस्तुत कुम्भनगर कनारा जिले में बसा हुआ है। इनकी एक कृति तत्त्वार्थ-सूत्र की टीका 'सुखबोध-वृत्ति है। जिसका परिचय जैनग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के प्रथम भाग में दिया गया है[2]। उससे ज्ञात होता है कि कवि राज्य मान्य थे। और राजा भुजबली भीमदेव की राज्य सभा में उन्हें उचित सम्मान मिला हुआ था, उक्त राजा भुजबली भीमदेव कनारा जिले में किस प्रदेश के शासक थे और कब तक उन्होंने वहाँ राज्य

१. देखो, राजस्थान के जैन ग्रन्थभंडारों की सूची चतुर्थभाग पृ० २३६

२. देखो, जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह भा० १ प्रस्तावना पृ० ४७।

किया है। इसके ज्ञात होने पर या कवि की गुरु परम्परा मिलने पर ग्रन्थ कर्ता के समय का यथार्थ निश्चय हो सकता है।

८३वीं प्रशस्ति 'अणुवेक्खा दोहा' की है जिसके कर्ता कवि लक्ष्मीचन्द है। प्रस्तुत ग्रंथ में अनित्यादि बारह भावनाओं का ४७ दोहों में परिचय कराया गया है। और अन्त में उनका फल बतलाते हुए लिखा है कि—'जो मानव व्रत-तप-शील का अनुष्ठान करते हुए निर्मल आत्मा को जानता है, वह कर्मक्षय करता हुआ शीघ्र ही निर्वाण का पात्र होता है।

कवि की एक दूसरी कृति 'सावयधम्म दोहा' है जिसमें २२४ दोहा दिये हुए हैं, जिनमें श्रावकाचार का सरस वर्णन ग्रन्थ श्रावकाचारों के अनुसार ही किया गया है। किन्तु इसमें अध्यात्म की पुट है। इस कारण रचना में वैशिष्ट्य आ गया है। रचना सुन्दर और सरस है। कोई कोई दोहा चुभता हुआ-सा है। यह ग्रंथ कब बना, इसके जानने का कोई साधन नही है, फिर भी यह रचना पुरानी है। ग्रन्थ कर्ता लक्ष्मीचन्द किस परम्परा के थे, उनकी गुरु परम्परा क्या है ? यह कुछ ज्ञात नही होता। इस नाम के अनेक कवि हुए हैं।

इस 'श्रावकाचार दोहा' की एक प्रति सं १५५५ में कार्तिक सुदी १५ सोमवार के दिन सरस्वती गच्छ बलात्कारगण के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य लक्ष्मण के पठनार्थ लिखी गई है[१] जिससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि उक्त ग्रन्थ उससे बाद का नहीं हो सकता, किन्तु पूर्ववर्ती है। कितने पूर्ववर्ती है, यह विचारणीय है, संभवतः यह १५वीं शताब्दी की रचना हो, विक्रम की १६वीं शताब्दी के विद्वान ब्रह्म श्रुतसागर ने अपने टीकाग्रन्थों में इस ग्रंथ के दोहा लक्ष्मीचंद के नाम से ही उद्धृत किये हैं। इससे यह भी सुनिश्चित है कि कवि श्रुतसागर से पूर्ववर्ती हैं। कवि का समय १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १६वीं का प्रारम्भ भी हो सकता है, किन्तु अभी इस सम्बंध में और भी प्रमाणों के खोजने की जरूरत है।

८४वीं प्रशस्ति 'अणुवेक्खा' की है जिसके कर्ता कवि अल्हू हैं।

इस ग्रन्थ में आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए संसार और उसके स्वरुप को बतलाकर संसार की असारता का दिग्दर्शन कराते हुए जीव का पर द्रव्य से होने वाले राग को हेय बतलाया है। साथ ही, यह भी प्रकट किया है कि शरीर की अशुचिता उससे राग करने योग्य नही है। वह मल पूरित और दुर्गन्ध से युक्त है। इस जीव का कोई सगा साथी भी नही है, सभी स्वार्थ के साथी हैं, अतएव उनसे राग कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह जीवात्मा अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही सुख-दुःखरूप कर्मों के फलों का उपभोग करता है। मन वचन काय की चंचल प्रवृत्ति से कर्म आते हैं। उनके बंधन से आत्मा परतन्त्रता का अनुभव करता है अतएव आस्रव और बंध के कारणों का परित्याग करना ही श्रेयकर है। साथ ही अपनी इच्छाओं का संवरण करते हुए फल की अनिच्छा पूर्वक तपश्चरण द्वारा कर्म की निर्जरा करना चाहिए, और दुर्लभ रत्नत्रय रूप बोधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस तरह अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए आत्मा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना आवश्यक है। कवि ने रचना में अपना कोई परिचय नहीं दिया, और न गुरु परम्परा ही दी है, जिससे समय निर्णय किया जा सके। फिर भी यह रचना भाषा साहित्यादि पर से १५वीं-१६वीं शताब्दी की जान पड़ती है।

---

१. 'स्वस्ति संवत् १५५५ वर्षे कार्तिक सुदी १५ सोमे श्री मूलसंघे सारस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री विद्यानन्दि तत्पट्टे भट्टारक मल्लिभूषण तच्छिष्य पंडित लक्ष्मण पठनार्थं दूहा श्रावकाचार शास्त्रं समाप्तं।
—राजस्थान ग्रंथ-सूची भा० ४ पृ० ५२।

८५वीं-८६वीं और १०७वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः हरिवंशपुराण, परमेष्ठी प्रकाशसार और योगसार की हैं, जिनके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं।

पहली कृति 'हरिवंश पुराण' है जिसमें ४७ सन्धियों द्वारा जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के जीवन-परिचय को अंकित किया गया है। प्रसंगवश उसमें श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियों का संक्षिप्त जीवन चरित्र भी दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई हैं। एक प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा में है, और दूसरी आमेर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति के शास्त्र भंडार में उपलब्ध है, जो संवत् १६०७ की लिखी हुई है। और जिसका रचनकाल संवत् १५५२ है। इसकी लिपि-प्रशस्ति भी परिशिष्ट में दे दी गई है। आरा की वह प्रति सं० १५५३ की लिखी हुई[१] और जिसमें ग्रन्थ के पूरा होने का निर्देश है जो मंडपाचल (मांडू) दुर्ग के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य काल में दमोवादेश के जेरहट नगर के महाखान और भोजखान के समय लिखी गई है। ये महाखान, भोजखान जेरहट नगर के सूबेदार जान पड़ते हैं। वर्तमान में जेरहट नाम का एक नगर दमोह के अन्तर्गत है यह दमोह पहले जिला रह चुका है। बहुत सम्भव है कि यह दमोह उस समय मालवराज्य में शामिल हो। और यह भी हो सकता है कि मांडवगढ़ के समीप ही कोई जेरहट नाम का नगर रहा हो, पर उसकी संभावना कम ही जान पड़ती है। क्योंकि प्रशस्ति में दमोवा देश का उल्लेख स्पष्ट है।

८६वीं प्रशस्ति 'परमेष्ठीप्रकाश सार' की है, इसकी एकमात्र प्रति आमेर ज्ञान भंडार में ही उपलब्ध हुई है। जिसमें आदि के दो पत्र और अन्तिम पत्र नहीं है। पत्र संख्या २८८,हैं ग्रंथ में ७ परिच्छेद या अध्याय हैं, जो तीन हजार श्लोक प्रमाण को लिये हुए हैं। ग्रन्थ का प्रमुख विषय धर्मोपदेश है। इसमें सृष्टि और जीवादि तत्त्वों का सुन्दर विवेचन कडवक और घत्ता शैली में किया गया है। कवि ने इस ग्रन्थ को भी उक्त मांडवगढ़ के जेरहट नगर के प्रसिद्ध नेमीश्वर जिनालय में की है। उस समय वहाँ ग्यासुद्दीन का राज्य था और उसका पुत्र नसीरशाह राज्य कार्य में अनुराग रखता था। पुंजराज नाम के एक वणिक उसके मन्त्री थे। ईश्वरदास नाम के सज्जन उस समय प्रसिद्ध थे। जिनके पास विदेशों से वस्त्राभूषण आते थे। जयसिंह, संघवी शंकर, तथा संघपति नेमिदास उक्त ग्रर्थ के ज्ञायक थे। अन्य साधर्मी भाइयों ने भी इसकी अनुमोदना की थी और हरिवंशपुराणादि ग्रन्थों की प्रतिलिपियां कराई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ विक्रम सं० १५५३ की श्रावण महीने की पंचमी गुरुवार के दिन समाप्त हुआ था।

एकसौ सात (१०७) वीं प्रशस्ति 'जोगसार' की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दो परिच्छेदों या संधियों में विभक्त है, जिनमें गृहस्थोपयोगी आचार-सम्बन्धी सैद्धान्तिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ में कुछ मुनिचर्या आदि के विषय में भी लिखा गया है।

ग्रन्थ के अन्तिम भाग में भगवान महावीर के बाद के कुछ आचार्यों की गुरु परम्परा के उल्लेख के साथ कुछ ग्रंथकारों की रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है, और उससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि

१. संवत् १५५३वर्षे क्वारवादि द्वज सुदि (द्वितीया) गुरौ दिने अद्येह श्री मण्डपाचल गढ़दुर्गे सुलतान गया सुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री दमोवादेशे महाखान भोजखान वर्तमाने जेरहट स्थाने सोनी श्री ईसुर प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मंडलाचार्य देविन्दकीर्तिदेव तच्छिष्य मंडलाचार्य श्री त्रिभुवनकीर्ति देवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्ति हरिवंश पुराणे परिपूर्ण कृतम्........। आराप्रति

भट्टारक श्रुतकीर्ति इतिहास से प्राय: अनभिज्ञ थे और उसे जानने का उन्हें कोई साधन भी उपलब्ध न था, जितना कि आज उपलब्ध है। दिगम्बर-श्वेताम्बर संघ भेद के साथ आपुलीय (यापनीय) संघ भिल्ल और नि:पिच्छक संघ का नामोल्लेख किया गया है। और उज्जैनी में भद्रबाहु से सम्राट् चन्द्रगुप्त की दीक्षा लेने का भी उल्लेख है। ग्रंथकार संकीर्ण मनोवृत्ति को लिये हुए था, वह जैनधर्म की उस उदार परिणति से भी अनभिज्ञ था। इसीसे उन्होंने लिखा है कि 'जो आचार्य शूद्र पुत्र और नौकर वगैरह को व्रत देता है वह निगोद में जाता है और वह अनन्तकाल तक दुःख भोगता है[1]।' प्रस्तुत ग्रन्थ सं० १५५२ में मार्गशिर महीने के शुक्ल पक्ष में रचा गया है।

कवि की इन तीन कृतियों के अतिरिक्त 'धम्मपरिक्खा' नाम की एक चौथी कृति भी है जो अपूर्ण रूप में डा० हीरालाल जी एम० ए० डी० लिट् को प्राप्त हुई है। जिसका परिचय उन्होंने अनेकान्त वर्ष ११ किरण २ में दिया है। जिससे स्पष्ट है कि उक्त धर्मपरीक्षा में १७६ कडवक हैं और जिसे कवि ने सं० १५५२ में बनाकर समाप्त किया था[2]। इन चारों रचनाओं के अतिरिक्त आपकी अन्य क्या रचनाएँ हैं वे अन्वेषणीय हैं।

कवि परिचय

भट्टारक श्रुतकीर्ति नन्दीसंघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। यह भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। ग्रंथकर्ता ने भ० देवेन्द्रकीर्ति को मृदुभाषी और अपने गुरु त्रिभुवनकीर्ति को अमृतवाणी रूप सद्‌गुणों के धारक बतलाया है। श्रुतकीर्ति ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को अल्प बुद्धि बतलाया है। कवि की उक्त सभी रचनाएँ वि० सं० १५५२ और १५५३ में रची गई हैं। और वे सब रचनाएँ मांडवगढ़ (वर्तमान मांडू) के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य में दमोवा देश के जेरहट नगर के नेमिनाथ मंदिर में रची गई हैं।

इतिहास से प्रकट है कि सन् १४०६ में मालवा के सूबेदार दिलावर खां को उसके पुत्र अलफ खां ने विष देकर मार डाला था, और मालवा को स्वतन्त्र उद्‌घोषित कर स्वयं राजा बन बैठा था। उसकी उपाधि हुशंगशाह थी। इसने मांडवगढ़ को खूब मजबूत बनाकर उसे ही अपनी राजधानी बनाई थी। उसी के वंश में ग्यासुद्दीन हुआ, जिसने मांडवगढ़ से मालवा का राज्य सं० १५२६ से १५५७ अर्थात् सन् १४६९ से १५०० ईस्वी तक किया है[2]। इसके पुत्र का नाम नसीरशाह था, और इसके मंत्री का नाम पुंजराज था, जो जैनधर्म का प्रति पालक था।

८७वीं प्रशस्ति 'संतिणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि महिन्दु या महाचन्द्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ परिच्छेद हैं जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या पाँच हजार के लगभग है, जिनमें जैनियों के १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ चक्रवर्ती का चरित्र दिया हुआ है। जो चक्रवर्ती, कामदेव और धर्मचक्री थे। जिन्होंने चक्रवर्ती के अनेक उत्तमोत्तम भोग भोगे। और अन्त में इन्द्रिय-विषयों को दुखद जान देह-भोगों से विरक्त हो दिगम्बर दीक्षा धारण कर तपश्चरण किया, और समाधिरूप चक्र से कर्म-शत्रुओं को विनष्ट कर धर्मचक्री बनें। विविध देशों में विहार कर जगत को कल्याण का मार्ग बतलाया। पश्चात् अवशिष्ट अघाति कर्म का

१. जह जो सूरि देइ वउ जिच्चहं, णीच-सूद-सुय-दासी-भिच्चहं।
जाम णिगोयमसुह अणु हुज्जइं, अमियकाल तहं घोर-दुह भुंजइ॥ —योगसार पत्र ६५

२. See Combridge shorter History of India. P. ३०९-

विनाश कर आत्मानन्द में निमग्न हो गए। जो सदाकाल निजानन्दरस में छके रहेंगे। कवि ने ग्रन्थ में चौपाई, पद्धड़िया और सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना जोयणिपुर[1] (दिल्ली) निवासी अग्रवाल कुलभूषण गर्ग गोत्रीय साहु भोजराज के ५ पुत्रों में (खीमचंद (खेमचन्द) णाणचंद (ज्ञानचन्द) श्रीचंद गजमल्ल और रणमल) इनमें से द्वितीय पुत्र ज्ञानचन्द के पुत्र विद्वान साधारण श्रावक की प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसीसे कवि ने ग्रंथ साधारण के नामांकित किया है और ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में साधारण के वंश का परिचय कराया गया है। उसने हस्तिनागपुर की यात्रार्थ संघ चलाया था और जिनमन्दिर का निर्माण भी कराकर उसकी प्रतिष्ठा भी करवाई थी तथा पुण्योपार्जन किया था। भोजराज के पुत्र ज्ञानचंद्र की पत्नी का नाम 'सउराजही' था, जो अनेक गुणों से विभूषित थी, उससे तीन पुत्र हुए थे। पहला पुत्र सारंग साहु था, जिसने सम्मेदशिखर की यात्रा की थी। उसकी पत्नी का नाम 'तिलोकाही' था। दूसरा पुत्र साधारण था, जो बड़ा विद्वान् और गुणी था, उसका वैभव वहुत बढ़ा चढ़ा था। उसने 'शत्रुंजय' की यात्रा की थी। उसकी स्त्री का नाम 'सीवाही था, उससे चार पुत्र हुए थे। अभयचंद्र, मल्लिदास जितमल्ल और 'सोहिल्ल। इनकी चारों पत्नियों के नाम क्रमशः—चंदणही, भदासही समदो और भीखणही थे, ये चारों ही पतिव्रता और धर्मनिष्ठा थीं। इस तरह साधारण साहु ने समस्त परिवार के साथ शांतिनाथ चरित वनवाया था।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना विक्रम सं० १५८७ की कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन मुगल बादशाह बाबर[2] के राज्य काल में बनाकर समाप्त किया था[3]। कवि ने अपने से पूर्ववर्ती निम्न विद्वान कवियों का स्मरण किया है। अकलंक, पूज्यपाद (देवनंदी) नेमिचंद्र सैद्धांतिक, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदंत, यशःकीर्ति रइधू, गुणभद्रसूरि, और सहणपाल। इनमें से सहनपाल का कोई ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आया।

ग्रंथकर्ता ने अपना और अपने पिता के नामोल्लेख के सिवाय अन्य कोई परिचय नहीं दिया है। किंतु काष्ठासंघ माथुरगच्छ की भट्टारकीय परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—काष्ठा संघ[4] माथुरगच्छ पुष्करगण में भट्टारक यशःकीर्तिः मलयकीर्ति और उनके शिष्य गुणभद्रसूरि थे। इससे यह

१. जोयणिपुर दिल्ली का नाम है। यहां ६४ योगिनियों का निवास था, और उनका मन्दिर भी बना हुआ था इस कारण इसका नाम योगिनीपुर पड़ा है। जोयणिपुर अपभ्रंश का रूप है। विशेष परिचय के लिए देखिए अनेकान्त वर्ष १३ किरण १ में 'दिल्ली के पांच नाम 'शीर्षक मेरा लेख।

२. बाबर ने सन् १५२६ ईस्वी में पानीपत की लड़ाई में दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी को पराजित और दिवंगत कर दिल्ली का राज्य शासन प्राप्त किया था, उसके बाद उसने आगरा पर भी अधिकार कर लिया था, और सन् १५३० (वि० सं० १५८७) में आगरा में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। इसने केवल ५ वर्ष ही राज्य किया है।

३. विक्कमरायहुववगयकालइ रिसिवसु-सर-भुवि-अंकालइ।
कत्तिय—पढम-पक्खि पंचमि दिणि, हुउ परिपुण्ण वि उग्गंतइ इणि। शांतिनाथ चरित प्र०

४. जोयणिपुर (दिल्ली) के उत्तर में जमुना नदी के किनारे बसी हुई काष्ठापुरी' में टांकवंश के राजा मदनपाल के आश्रय में पेदिभट्ट के पुत्र विश्वेश्वर ने 'मदन परिजात' नाम का निबंध १४वीं शताब्दी के अन्त समय में लिखा था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् म० म० ओझा जी के अनुसार काष्ठा नामक नगर में नागवंशियों की टाँक शाखा के राजाओं का छोटा सा राज्य था। इससे काष्ठासंघ की उत्पत्ति का स्थान दिल्ली की काष्ठापुरी ही जान पड़ती है। दूसरे काष्ठासंघ का सम्बन्ध अग्रवालों के साथ है।

स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत कवि इन्हीं की आम्नाय का था। पर इनमें से किसका शिष्य था यह कुछ ज्ञात नहीं होता।

८८वीं, १०८वीं, और १०९वीं ये तीनों प्रशस्तियां क्रमशः 'मियंकलेहाचरिउ' सुयंधदसमी और मउडसत्तमी कहा रास की हैं, जिनके कर्ता पंडित भगवतीदास हैं।

मृगांक लेखाचरित में चार सन्धियां हैं, जिनमें कवि ने चन्द्रलेखा और सागरचन्द्र के चरित का वर्णन करते हुए चन्द्रलेखा के शीलव्रत का माहात्म्य स्थापित किया है। चन्द्रलेखा विपदा के समय साहस और धैर्य का परिचय देती हुई अपने शीलव्रत से जरा भी विचलित नहीं होती, प्रत्युत उसमें स्थिर रहकर उसने सती सीता के समान अपने सतीत्व का जो अनुपम आदर्श उपस्थित किया है, वह अनुकरणीय है।

ग्रंथ की भाषा यद्यपि अपभ्रंश है, फिर भी उसका वह रूप हिन्दी भाषा के अधिक नजदीक ही नहीं है किन्तु उसके विकास का स्पष्ट बोधक है। जैसा कि उसके निम्न दोहों से स्पष्ट है।

"ससिलेहा णियकंत सम, धारउ संजमु सारु।
जम्मणु मरण जलंजली, दाण सुयणुभव-तारु॥
करितणुतउसिउपुरगयउ, सो वणि सायरचंदु।
ससिलेहा सुरवरुभई तजि तिय-तणु अइणिंदु।
लहि णरभवु णिरवाण पर पावसि सुंदरि सोइ।
कवि सुभगौतीदासु कहि पुणभय-भमण ण होइ॥
सीलु वड़ा संसार महि सील साहि सव काज।
इहि भवि पर भविसुह लहइ आसि भणइ मुनिराज॥"

कवि भगवतीदास ने इस ग्रन्थ को हिसारकोट नगर के भगवान वर्धमान (महावीर) के मन्दिर में विक्रम संवत् १७०० अगहन शुक्ला पंचमी सोमवार के दिन पूर्ण किया है। उस समय वहां मन्दिर में ब्रह्मचारी जोगीदास और पं० गंगाराम उपस्थित थे[१]।

१०८वीं प्रशस्ति 'मउडसत्तमीकहा की है' जिसमें मुकुट सप्तमी के व्रत की अनुष्ठान विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है।

१०९वीं प्रशस्ति 'सुयंधदसमी कहाव्रतरास' की है, जिसमें भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत का विधान और उसके फल का कथन किया गया है।

कवि-परिचय—

पंडित भगवतीदास काष्ठासंघ माथुरगच्छ पुष्करगण के विद्वान् भट्टारक गुणचन्द्र के पट्टधर भ० सकलचन्द्र के प्रशिष्य और भट्टारक महेन्द्रसेन के शिष्य थे। महेन्द्रसेन दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टधर थे। इनकी अभी तक कोई रचना मेरे देखने में नहीं आई और न कोई प्रतिष्ठित मूर्ति ही प्राप्त हुई है। इससे इनके सम्बन्ध में विशेष विचार करना सम्भव नहीं है। भ० महेन्द्रसेन प्रस्तुत भगवतीदास के गुरु थे, इसी से

१. रइयो कोट हिसारे जिणहरि वर वीर वड्ढमाणस्स।
तत्थठिओ वयधारी जोईदासो वि बंभयारीओ॥
भागवइ महुरीया वत्तिगवर विति गाहण विण्णि।
मइ विबुह सुगंगारामो तत्थ ठिओ जिणहरेसु महवंतो॥ —मृगांकलेखाचरित

उन्होंने अपनी रचनाओं में उनका आदर के साथ स्मरण किया है। यह बूढ़िया[1] जिला अम्बाला के निवासी थे। इनके पिता का नाम किसनदास था और जाति अग्रवाल और गोत्र वंसल था। इन्होंने चतुर्थवय में मुनिव्रत धारण कर लिया था[2]। यह संस्कृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषा के अच्छे विद्वान थे। इनकी पचास से अधिक हिन्दी की पद्यवद्ध रचनाएँ उपलब्ध हैं। उन रचनाओं में अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जो भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जैसे अनेकार्थनाममाला (कोष) सीतासतु, टंडाणारास, आदित्यव्रतरास, खिचड़ीरास, साधुसमाधिरास, मनकरहारास और रोहिणीव्रतरास आदि[3]। इनकी इस समय उपलब्ध रचनाएँ संवत् १६५१ से १७०० तक की उपलब्ध हैं। जो चकत्ता वादशाह अकवर, जहांगीर शाहजहां के राज्य में रची गई हैं। एक ज्योतिष और वैद्यक की रचना भी इन्होने संस्कृत में रची थी, जो कारंजा के शास्त्र भंडार में सुरक्षित हैं। इनके रचे हुए अनेक पद और गीत आदि हैं, इनकी सव रचनाएँ विभिन्न स्थानों पर रची गई हैं। उनमें से कुछ रचनाओं में रचना के कुछ नाम भी निर्दिष्ट किये हैं। उनके नाम बूढ़िया (जि० अम्वाला) दिल्ली, आगरा, हिसार, कपिस्थल[4] सिहरदि[5] और संकशा आदि हैं। कवि की प्रायः सभी रचनाएं मैनपुरी, दिल्ली और अजमेर के शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि को देशाटन करने का उत्साह था। अर्गलपुर में कवि को अधिक समय तक ठहने का अवसर मिला है और वहां के तत्कालीन शासक अकवर, जहांगीर और शाहजहां तीनों को अत्यन्त निकटता से देखने का अवसर मिला है। इसीसे उन्होंने उनकी प्रशंसा की है। उस समय आगरा उच्चकोटि के शहरों में गिना जाता था और व्यापार का केन्द्र वना हुआ था, वहां अनेक जैन राज्यकीय उच्चपदों पर स्थित थे, सैनिक आफिसर, कोषाध्यक्ष और उमराहों के मंत्री एवं सलाहकार रहे हैं। वे सव वहां की अध्यात्म-गोष्ठी में सरीक होते थे। कवि की कुछ रचनाओं में रचना समय मिलता है। संवत् १६५१ में अर्गलपुर जिनवन्दना[6], १६८० में

---

१. बूढ़िया पहले एक छोटी सी रियासत थी, जो मुगलकाल में धन-धान्यादि से खूब समृद्ध नगरी थी। जगाधरी के वस जाने से बूढ़िया की अधिकांश आवादी वहां से चली गई। आजकल वहाँ परखंडहर अधिक हो गए हैं, जो उसके गत वैभव की स्मृति के सूचक हैं।

२. गुरु मुनि माहिंदसेन भगौती, तिस पद-पंकज रैन भगौती।
किसनदास वणिउ तनुज भगौती, तुरिये गहिउ व्रत मुनि जु भगौती॥
नगर बूढ़िये वसै भगौती, जन्मभूमि है आसि भगौती।
अग्रवाल कुल वंसल गोती, पण्डित पद जन निरख भगौती॥८३॥
—वृहत्सीतासतु, सलावा प्रति

३. देखो अनेकांत वर्ष ११ किरण ४-५ में कविवर भगवतीदास और उनकी रचनाएं शीर्षक मेरा लेख

४. कपिस्थल को कांपिल्य और संकाश्य भी कहा जाता है। यह पांचाल देश की राजधानी थी। पाणिनीय की काशिकावृत्ति में (४—२,१२१ में) कांपिल्य की विशालता का वर्णन है। यह जैनियों के १३वें तीर्थंकर विमलनाथ की जन्मभूमि है।

५. यह नगर इलाहावाद और जोनपुर के मध्य में वसा हुआ था, यहाँ अग्रवाल जैनियों का निवास था। उनमें कवि दरगहमल और उनके पुत्र विनोदीलाल भी थे। सिहरदि शब्दका अर्थ पहले शहादरा समझ लिया गया था, पर वह गलत था।

६. देखो, जैन सन्देश शोधांक ५, पृ० १८२, २२ अक्टूबर सन् १९५९।

चूनड़ीरास, १६८७ में अनेकार्थनाममाला और सीतासतु, १६६४वें में ज्योतिषसार[1] शाहजहां के राज्य में बनाया और सं० १७०० में हिसार में मृगांकलेखाचरित्र और सं० १७१२ में वैद्यविनोद[2] बनाकर समाप्त किया है। इससे कवि दीर्घायु वाले थे। उनका समय १७ वीं १८ वीं शताब्दी है। इनका विशेष परिचय अनेकान्त वर्ष ११ किरण ४-५ में पृ० २०५ से २०८ तक देखिये।

८६वीं प्रशस्ति 'अजित पुराण' की है। जिसके कर्ता कवि विजयसिंह हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में १० संधियां हैं। जिनमें जैनियों के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ के चरित्र का चित्रण किया गया है। रचना साधारण है और भाषा अपभ्रंश होते हुए भी देशी शब्दों की बहुलता को लिये हुए है।

कवि ने इस ग्रंथ की रचना महाभव्य कामराय के पुत्र पंडित देवपाल की प्रेरणा से की है। इसी कारण कवि ने ग्रन्थ की आद्यंत प्रशस्ति में कामराय के परिवार का संक्षिप्त परिचय भी कराया है। वणिपुर या वणिकपुर नाम के नगर में खण्डेलवाल[3] वंश में कउडि (कोड़ी) नाम के पण्डित थे, उनके पुत्र

१. वर्षे षोडशशतचतुर्नवतिमिते श्रीविक्रमादित्यके।
पञ्चम्यां दिवसे विशुद्धतरके मास्याश्विने निर्मले॥
पक्षे स्वाति नक्षत्रयोगसहिते वारे बुधे संस्थिते।
राजत्साहिमहावदीन भुवने साहिजहा कथ्यते॥
—देखो, सी० पी० एण्ड बरार कैटेलोग डा० रा० ब० हीरालाल।

२. सत्रहसइं रुचिहोत्तरइं सुकलचतुर्दसि चैतु।
गुरु दिन भन्यौ पूरनु करिउ मुलितांपुरि सहजयतु।
लिखिउ मकबरावाद णिउ साहिजहां के राज।
साहनि मइं संपइ सरिसु देश-कोष-गज-बाज॥ —देखो वही, सी० पी० एण्ड बरार कैटेलोग।

३ 'खंडेलवाल' शब्द एक उपजाति का सूचक है, जो चौरासी उपजातियों में से एक है। इस जाति का विकास राजस्थान के खण्डेला नामक स्थान से हुआ है। इस जाति के ८४ गोत्रों का उल्लेख मिलता है जिनमें छावड़ा, कासलीवाल, बाकलीवाल, लुहाड्या, पहाड्या, पाड्या, सोनी, गोधा, भौंसा और काला आदि प्रमुख हैं। इन सब गोत्रों आदि की कल्पना ग्राम नगरादि के नामों पर से हुई है। इस जाति में अनेक सम्पन्न धनी, विद्वान और दीवान जैसे राजकीय उच्च पदों पर काम करने वाले अनेक धर्मनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। जिन्होंने राज्य के संरक्षण में पूरा योगदान दिया है, और प्रजा का पालन पुत्रवत् किया है। क्योंकि यह जाति भी क्षत्रिय ही थी, किन्तु वाणिज्यादि के कारण आज वह अपने उस क्षत्रियत्व को खो चुकी है। इस जाति की धार्मिकता प्रसिद्ध है। शाह दीपचन्द और टोडरमलजैसे प्रतिभा सम्पन्न विद्वान भी इसी में हुए हैं। जो जैन समाज के लिये गौरव की वस्तु हैं। रामचन्द्र छावड़ा जैसा वीर पाराक्रमी और हौसले वाला राज्य संरक्षक दीवान, अमरचन्द्र जैसा प्रतिष्ठित विद्वान, गुणज्ञ, राजनीतिज्ञ, धर्मनिष्ठ दयालु दीवान, जिसने अपने देश और धर्म की रक्षार्थ प्राणोंका उत्सर्ग किया था। इस जाति के द्वारा निर्मापित अनेक गगनचुम्बी विशाल जिन मन्दिर हैं। जिनमें ११वीं-१२वीं शताब्दी तक की प्रतिष्ठित प्रशान्त मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। अनेक ग्रंथ, ग्रंथ-भंडारों में रचना कराकर और उन्हें प्रतिलिपि कराकर मुनियों, भट्टारकों, अर्जिकाओं और श्रावक-श्राविकाओं तथा मन्दिर जी में भेंट किये हुए मिलते हैं। संवत् १२८७ में एक खंडेल परिवार की प्रेरणासे 'णेमिणाहचरिउ' नाम का ग्रंथ मालवा के परमारवंशी राजा देवपाल के राज्यकालमें कवि दामोदर द्वारा रचा गया था। अनेक विद्वानों ने टीका ग्रंथ लिखे। ये सब कार्य उसकी धर्मनिष्ठा के प्रतीक हैं।

छीतु थे, जो वड़े धर्मनिष्ठ और श्रावक की ११ प्रतिमाओं का पालन करते थे। वहीं पर लोकमित्र पण्डित खेता थे, उनके प्रसिद्ध पुत्र कामराय थे। कामराय की पत्नी का नाम कमलश्री था, उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिनका नाम जिनदास रयणु और दिउपाल (देवपाल) था। उसने वहां वर्धमान का एक चैत्यालय भी बनवाया था, जो उत्तुंग ध्वजाओं से अलंकृत था और जिसमें वर्धमान तीर्थंकर की प्रशांत मूर्ति विराजमान थी और उसी देवपाल ने उक्त चरित्र ग्रंथ लिखवाया था।

कवि ने ग्रन्थ की प्रथम सन्धि के ६वें कडवक में जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, गृद्धपिच्छ, पोट्टिल्ल (प्रोष्ठिल्ल), लक्ष्मण, श्रीधर और चउमुह (चतुर्मुख) नाम के विद्वानों का उल्लेख किया है।

कवि-परिचय

कवि ने अपना परिचय निम्नप्रकार व्यक्त किया है—मेरुपुर में मेरुकीर्ति, करमसिंह राजा के घर में हुए, जो पद्मवती पुरवाड वंश में उत्पन्न हुए थे। कवि के पिता का नाम सेठ दिल्हण था और माता का नाम राजमती था। यद्यपि कवि ने अपनी गुरुपरम्परा का कोई उल्लेख नहीं किया। किन्तु ग्रंथकर्ता ने अपना यह ग्रन्थ वि० सं० १५०५ में कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बनाकर समाप्त किया था। उसी संवत् की लिखी हुई एक प्रति भोगांव के शास्त्रभण्डार से बाबू कामताप्रसाद जी अलीगंज को प्राप्त हुई है[1], जो उनके पास सुरक्षित है। अन्य प्रतियां जयपुर के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हैं। एक अपूर्ण प्रति मेरे पास भी है।

६०वीं प्रशस्ति से लेकर ६८वीं प्रशस्ति तक ६ प्रशस्तियां क्रमशः निम्न ग्रन्थों की हैं जिनके नाम 'कोइलपंचमी कहा' मउडसत्तमी कहा, रविवयकहा, तियालचउवीसीकहा, कुसुमंजलि कहा, निद्दुसिसत्तमी वयकहा, णिज्झरपंचमी कहा, और अणुपेहा हैं। जिनके कर्ता ब्रह्म साधारण हैं। इन कथाओं में जैन सिद्धान्त के अनुसार व्रतों का विधान और उनके फल का विवेचन किया गया है। साथ ही व्रतों के आचरण का क्रम और तिथि आदि के उल्लेखों के साथ उद्यापन की विधि को भी संक्षिप्त में दिया हुआ है। अंतिम ग्रंथ अनुप्रेक्षा में अनित्यादि द्वादश भावनाओं के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए संसार और देह-भोगों की असारता का उल्लेख करते हुए आत्मा को वैराग्य की ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

ब्रह्म साधारण ने अपनी गुरु परम्परा का तो उल्लेख किया है, किन्तु अपना कोई परिचय नहीं दिया, और न रचना-काल का समय ही दिया है। कुन्दकुन्दगणी की परम्परा में रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनंदि, हरिभूषण, नरेन्द्रकीर्ति, विद्यानंदि और ब्रह्म साधारण। ब्रह्म साधारण भ० नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य

१. संवत् १५०५ वर्षे कार्तिक सुदी पूर्णमासी दिने श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे भट्टारक श्री पद्मनंदिदेव तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेव तस्य पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेव तस्याम्नाये श्री खंडेलवालान्वये सकल ग्रन्थार्थ प्रवीण: पंडित कउडि: तस्य पुत्र: स[क]ल कलाकुशल: पण्डित छीत (र) तत्पुत्र: निरवद्य श्रावकाचारधर: पंडित जिनदास, पंडित खेता तत्पुत्र पंचाणुव्रत पालक: पण्डित कामराज तद्भार्या कमलश्री तत्पुत्रात्रय: पण्डित जिनदास, पण्डित रतम, पण्डित देवपाल एतेषां मध्ये पंडित देवपालेन इदं अजितनाथदेव चरित्रं लिखापितं निजज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थं, शुभमस्तु लेखक पाठकयो:।

—जैन सि० भा० भा० २२ कि० २।

थे। प्रस्तुत कथा ग्रंथ की यह प्रति वि० सं० १५०८ की लिखी हुई है। अतएव उनका रचना समय सं० १५०८ से पूर्ववर्ती है। अर्थात् वे विक्रम की १५वीं शताब्दी के अंतिम चरण के विद्वान जान पड़ते हैं।

६६वीं प्रशस्ति 'सिरिपाल चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। इसका परिचय ३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१००वीं प्रशस्ति 'पासणहचरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि तेजपाल हैं। जिसका परिचय २८वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०१वीं प्रशस्ति 'सिरिपाल चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में सिद्धचक्र के महात्म्य का उल्लेख करते हुए उसका फल प्राप्त करने वाले चम्पापुर के राजा श्रीपाल और मैनासुन्दरी का जीवन-परिचय अंकित किया गया है। मैनासुन्दरी ने अपने कुष्ठी पति राजा श्रीपाल और उनके सात सौ साथियों का कुष्ट रोग सिद्धचक्र व्रत के अनुष्ठान और जिनभक्ति की दृढ़ता से दूर किया था।

कवि ने इस ग्रन्थ को इक्ष्वाकुवंशी दिवराज साहु के पुत्र नक्षत्र साहु के लिए बनाया था। ग्रन्थ प्रशस्ति में कवि ने अपनी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार व्यक्त की है। मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र, और कवि दामोदर। प्रस्तुत कवि दिल्ली पट्ट के भट्टारक जिनचंद्र के शिष्य थे। जिनचंद्र उस समय के प्रभावशाली भट्टारक थे, और संस्कृत प्राकृत के विद्वान् तथा प्रतिष्ठाचार्य थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित अनेक तीर्थंकर मूर्तियां भारतीय जैनमंदिरों में पाई जाती हैं। ऐसा कोई भी प्रांत नहीं, जहां उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां न हों। यह सं० १५०७ में भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित हुए थे और पट्टावली के अनुसार उस पर ६२ वर्ष तक अवस्थित रहे। इनके अनेक विद्वान् शिष्य थे, उनमें पंडित मेधावी और कवि दामोदर आदि हैं। इनकी इस समय दो कृतियां प्राप्त हैं सिद्धांतसार प्राकृत और चतुर्विंशति जिनस्तुति। इसमें दश पद्य हैं जो यमकालंकार को लिए हुए हैं। अने० वर्ष ११ कि० ३

कवि दामोदर ने अपना कोई परिचय नहीं दिया, केवल अपने गुरु का नामोल्लेख किया है। इनकी दूसरी कृति 'चंदप्पहचरिउ' है जिसकी प्रति नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। उनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी है। बहुत संभव है कि इनकी अन्य कृतियां भी अन्वेषण करने पर भंडारों में मिल जांय।

१०२वीं प्रशस्ति 'पासणाह चरिउ' की है, जिसके कर्ता कवि असवाल हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में १३ सन्धियां हैं, जिनमें भगवान पार्श्वनाथ की जीवन-गाथा दी हुई है। ग्रंथ की भाषा १५वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की है, जब हिन्दी अपना विकास और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रही थी। ग्रंथ में पद्धड़िया छन्द की बहुलता है, भाषा मुहावरेदार है। रचना सामान्य है।

यह ग्रन्थ कुशार्त देश में[1] स्थित 'करहल[2]' नगर निवासी साहु सोणिग के अनुरोध से बनाया गया था, जो यदुवंश में उत्पन्न हुए थे। उस समय करहल में चौहानवंशी राजाओं का राज्य था। इस

१. कुशार्तदेश सूरसेन देश के उत्तर में बसा हुआ था और उसकी राजधानी सौरीपुर थी, जिसे यादवों ने बसाया था। जरासंध के विरोध के कारण यादवों को इस प्रदेश को छोड़कर द्वारिका को अपनी राजधानी बनानी पड़ी थी। वर्तमान में वह ग्राम इसी नाम से प्रसिद्ध है।

२. करहल इटावा से १३ मील की दूरी पर जमुना नदी के तट पर बसा हुआ है, यहां पर चौहान वंशी राजाओं का राज्य रहा है। यहां चार जैन शिखर बन्द मंदिर हैं और अच्छा शास्त्र भण्डार है।

ग्रंथ की रचना वि० स० १४७९ में भाद्रपद कृष्णा एकादशी को वनाकर समाप्त की गई थी[3]। ग्रंथ निर्माण में कवि को एक वर्ष का समय लग गया था। ग्रंथ निर्माण के समय करहल में चौहानवंशी राजा भोजराज के पुत्र संसारचन्द (पृथ्वीसिंह) का राज्य था। उनकी माता का नाम नाइक्कदेवी था, यदुवंशी अमरसिंह भोजराज के मन्त्री थे, जो जैनधर्म के संपालक थे। इनके चार भाई और भी थे जिनके नाम करमसिंह, समरसिंह, नक्षत्रसिंह, लक्ष्मणसिंह थे। अमरसिंह की पत्नी का नाम कमलश्री था। उससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। नन्दन, सोणिग और लोणा साहु। इनमें लोणा साहू जिन यात्रा प्रतिष्ठा आदि प्रशस्त कार्यों में द्रव्य का विनिमय करते थे और अनेक विधान—'उद्यापनादि कार्य कराते थे। उन्होंने 'मल्लिनाथ चरित के कर्ता कवि 'हल्ल' की प्रशंसा की थी। इन्हीं लोणा साहू के अनुरोध से कवि असवाल ने पार्श्वनाथ चरित की रचना उनके ज्येष्ट भ्राता सोणिग के लिये की थी। प्रशस्ति में सं० १४७१ में भोजराज के राज्य में सम्पन्न होने वाले प्रतिष्ठोत्सव का भी उल्लेख किया है, जिसमें रत्नमयी जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न हुई थी।

ग्रंथ कर्ता कवि असवाल का वंश 'गोलाराड' (लार) था। यह पण्डित लक्ष्मण के सुपुत्र थे। कवि ने मूलसंघ बलात्कार गण के आचार्य प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द और धर्मचन्द्र का उल्लेख किया है। जिससे कवि उन्हीं की आम्नाय का था। कवि कहां का निवासी था, और उसने अन्य क्या रचनाएं रचीं, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। अतः ज्ञान भण्डारों में कवि की अन्य कृतियों का अन्वेषण होना आवश्यक है।

१०८वीं प्रशस्ति 'संतिणाह चरिउ' की है जिसके कर्ता कवि शाहठाकुर हैं। ग्रन्थ पांच संधियों में विभक्त है जिसमें जैनियों के १६वें तीर्थंकर, शान्तिनाथ का, जो कामदेव और चक्रवर्ती भी थे, जीवन-परिचय अंकित किया गया है। चरित संक्षिप्त और साधारण रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

कवि ने यह ग्रंथ विक्रम संवत् १६५२ में भाद्र शुक्ला पंचमी के दिन चकत्तावंश के जलालुद्दीन अकवर वादशाह के शासन काल में, ढूंढाहड़ देश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य में समाप्त किया है। मानसिंह की राजधानी उस समय अम्बावती या आमेर थी।

ग्रंथ कर्ता ने प्रशस्ति में अपनी जो गुरु परम्परा दी है उससे वे भट्टारक पद्मनन्दिकी आम्नाय में होने वाले भ० विशालकीर्ति के शिष्य थे। जो मूलसंघ नंद्याम्नाय सरस्वती गच्छ बलात्कार गण के विद्वान थे, उनके भट्टारक पद्मनन्दि, शुभचन्द्रदेव, जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, विशालकीर्ति, लक्ष्मीचन्द्र, सहस्रकीर्ति, नेमिचन्द्र, अर्जिका अनंतश्री और दाभाडालीवाई का नामोल्लेख किया गया है। इनमें भट्टारक विशालकीर्ति विद्वान कवि के समकालीन जान पड़ते हैं। और उनमें दो परम्परा के विद्वान शामिल हैं। एक अजमेर पट्ट के और दूसरे आमेर या उसके समीपस्थ पट्ट के। भट्टारक विशालकीर्ति अजमेर-शाखा के विद्वान थे। और जो भट्टारक चन्द्रकीर्ति के पट्टधर थे। जिनका पट्टाभिषेक सम्मेद शिखर पर हुआ था[1]। विशालकीर्ति नाम के अनेक विद्वान हुए हैं, परन्तु यह उनसे भिन्न हैं।

---

३. इगवीर हो णिव्वुइंकुच्छराइं, सत्तरि सहुँचउसय वत्थराइं।
पच्छइं सिरि णिव विक्कम गयाइं, एउणसीदीसहुँ चउदह सयाइं।
भादवतम एयारसि मुणेइ, वरिसिक्के पूरिउ गंथु एहु॥

कवि के पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेता था, जाति खंडेलवाल और गोत्र लुहाड्या था। यह लुवाइणिपुर के निवासी थे, वह नगर जन-धन से सम्पन्न और भगवान चन्द्रप्रभ के विशाल जिनमंदिर से अलंकृत था। कवि की धर्मपत्नी गुरुभक्ता और गुण ग्राहिणी थी। आपके दो पुत्र थे, धर्मदास और गोविन्ददास। इनमें धर्मदास बहुत ही सुयोग्य और गृह भार वहन करने वाला था, उसकी बुद्धि जैनधर्म में विशेष रस लेती थी। कवि देव-शास्त्र-गुरु के भक्त और विद्याविनोदी थे, उनका विद्वानों से विशेष प्रेम था, वे संगीत शास्त्र, छन्द, अलंकार आदि में निपुण थे, और कविता करने में उन्हें विशेष आनन्द आता था।

कवि की दूसरी कृति 'महापुराण कलिका' है[१]। जिसमें २७ संधियां हैं, जिनमें त्रेसठ शलाका महापुरुषों की गौरव-गाथा का चित्रण किया गया है। ग्रंथ के अन्त में एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति दी है, जिससे कवि के वंश आदि का परिचय मिल जाता है। कवि ने इस ग्रंथ को हिन्दी भाषा में लिखा है और जिसका रचनाकाल वि० संवत् १६५० है। इससे कवि १७वीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान जान पड़ते हैं[२]।

१०४वीं प्रशस्ति 'मल्लिणाहकव्व' की है जिसके कर्ता कवि जयमित्रहल हैं। इसका परिचय २६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०५वीं प्रशस्ति 'जिणरत्ति विहाणकहा' की है, जिसके कर्ता कवि नरसेन हैं। जिसका परिचय ६६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०६वीं प्रशस्ति सम्यक्त्व कौमुदी की है जिसके कर्ता कवि रइधू हैं। इसका परिचय ३५वीं प्रशस्ति से लेकर ४६वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

१०७वीं प्रशस्ति 'जोगसार' की है। जिसके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति हैं। इसका परिचय ८५-८६ प्रशस्तियों के साथ दिया गया है।

१०८वीं और १०९वीं प्रशस्तियां क्रमशः सुगंध दसमी कथा और मउडसत्तमी कहारास की हैं, जिनके कर्ता कवि भगवतीदास हैं। और जिनका परिचय ८८वीं प्रशस्ति के साथ दिया गया है।

---

१. श्रीमत्प्रभाचन्द्र गणीन्द्र पट्टे भट्टारक श्रीमुनिचन्द्रकीर्तिः ।
गंस्थापितो योऽवनिनाथवृन्दैः सम्मेदनाम्नीह गिरीन्द्रमूर्ध्नि ॥—मूलसंघ पट्टावली जैन सि० भा० १ कि० ३-४

२. कल्याणं कीर्तिल्लोके जगु भवति जगे मंडलाचार्य पट्टे,
नंद्याम्नाये सुगच्छे सुभगश्रुतमते भारती कारभूतें।
मान्यो श्री मूलसंघे प्रभवतु भुवने सार सौख्याधिकारी,
सोऽयं में वंद्यवंद्यो ठकुर गुरुयते कीर्तिनामा विशालो। —महापुराण कलिका संधि २३

१. कवि ने अपने को स्वयं त्रेसठ शलाका पुरुषों की पुराण कथा को कहने वाला लिखा है और जिसका परिचय अनेकान्त वर्ष १३ किरण ७-८ में दिया गया है। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है।

या जन्मामयछेदनिर्णयकरी, या ब्रह्मब्रह्मेश्वरी।
या संसार विभावभावनपरा या धर्मकामापुरी॥
अज्ञानादय ध्वंसिनी शुभकरी, ज्ञेया सदा पावनी,
या त्रेसठ्ठिपुरान उत्तम कथा भव्या सदा पातु नः॥— महापुराण कलिका

२. विशेष परिचय के लिये देखिये अनेकान्त वर्ष १३ कि० ७-८

परिशिष्ट नं० १

कुछ मुद्रित ग्रन्थ-प्रशस्तियों का परिचय

अपभ्रंश भाषा में अनेक छन्द ग्रन्थ लिखे गए होंगे, क्योंकि अपभ्रंश के ग्रंथों में अनेक छन्दों का प्रयोग इस बात का सूचक है कि अपभ्रंश भाषा में अनेक छन्द ग्रन्थ थे और उनमें उनका परिचय दिया हुआ था, अन्यथा ग्रंथकार उनका अपने ग्रंथों में उल्लेख कैसे कर सकते थे। खेद है कि वे इस समय उपलब्ध नहीं है। महाकवि स्वयंभूदेव का छन्द ग्रन्थ है, जिसमें आदि के ३ अध्यायों में प्राकृत छन्दों का और अन्त के पांच अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का परिचय सोदाहरण दिया हुआ है। छन्द की यह प्रति बड़ौदा के ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट की है। जिसे संवत् १७२७ आश्विन सुदि ५, गुरुवार के दिन रामनगर में कृष्णदेव ने लिखा था। यह प्रति अपूर्ण है, उसके शुरू के २२ पत्र नहीं हैं, यह प्रो० एच०डी० वेलंकर को प्राप्त हुई थी। जिसे उन्होंने सम्पादित कर प्रकाशित करा दिया था[१]।

११०वीं प्रशस्ति छन्द ग्रंथ की है। जिसके अपभ्रंश भाग की आदि-अन्त प्रशस्ति दी गई है। जिसमें उदाहरण सहित अपभ्रंश के छन्दों का विवेचन है। ग्रंथ के अन्तिम अध्याय में गाहा अडिल्ला, पद्धड़िया आदि छन्दों को स्वोपज्ञ उदाहरणों के साथ दिया हुआ है। इनका परिचय 'छन्दग्रंथ' शीर्षक में दिया गया है। इस छन्द ग्रंथ का अपना वैशिष्ट्य है जो ग्रंथ का पारायण किये विना अनुभव में नहीं आ सकता।

कवि स्वयंभू के इस छन्द ग्रंथ का सबसे पुरातन उल्लेख जयकीर्ति ने अपने 'छन्दोनुशासन' के नन्दिनी छन्द में किया है[२]। इससे स्पष्ट है कि स्वयंभू के इस छन्द ग्रन्थ का १०वीं शताब्दी में प्रचार हो गया था। ग्रंथ भंडारों में इसकी अन्य प्रतियों की तलाश होनी चाहिये। जयकीर्ति का समय विक्रम की १० वीं शताब्दी है। जयकीर्ति कन्नड़ प्रान्त के निवासी दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। उनका छन्द ग्रंथ एच. डी. वेलंकर द्वारा सम्पादित होकर जयदामन ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है। पाठक वहां से देखें।

१११ वीं प्रशस्ति 'भविसयत्तकहा' की है, जिसके कर्ता कवि धनपाल हैं। प्रस्तुत कथा ग्रंथ में ३४४ कडवक हैं, जिनमें श्रुतपंचमी के व्रत का महात्म्य बतलाते हुए उसके अनुष्ठान करने का निर्देश किया गया है साथ ही भविष्यदत्त और कमलश्री के चरित्र-चित्रण द्वारा उसे और भी स्पष्ट किया है। ग्रंथ का कथाभाग तीन भागों में बटा हुआ है। घटना वाहुल्य होते हुए भी कथानक सुन्दर बन पड़े हैं। उनमें साधु और असाधु जीवन वाले व्यक्तियों का परिचय स्वाभाविक बन पड़ा है। कथानक में अलौकिक घटनाओं का समीकरण हुआ है। परन्तु वस्तु वर्णन में कवि के हृदय ने साथ दिया है। अतएव नगर देशादिक के वर्णन सरस हो सके हैं। ग्रंथ में जहाँ शृंगार वीर और शान्त रस का वर्णन है, वहाँ उपमा, उपेक्षा, स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग भी दिखाई देता है। भाषा में लोकोक्तियों और वाग्धाराओं का भी प्रयोग मिलता है। यथा—

---

१. स्वयंभू-छन्द के प्रथम तीन अध्याय रायल एशियाटिक सोसाइटी वाम्बे के जर्नल सन् १९३५ पृ० १८-५८ में दिए हैं और अपभ्रंश के शेष पांच अध्याय वाम्बे यूनिवर्सिटी जर्नल (जिल्द ५ नं० ३ नवम्बर सन् १९३६) में प्रकाशित हैं। पाठक वहाँ से देखें

२. तौ ज्यौ तथा पद्म पद्म निधिर्जतौ जरौ।

३. देखो मि० गोविन्द पै का लेख Jaikirti in the Karnnatak quarterly प्रबुद्ध कर्नाटक V. L. 28 N. 3 gan. 1947 महाराजा कालेज मैसूर। तथा बम्बई यूनिवर्सिटी जनरल सितम्बर १९४७

'किं घिउ होइ विरोलिए पाणिए'—क्या पानी बिलोने से घी मिल सकता है ? 'दइवायत्तु जइ वि विलहिज्जइ, तो पुरिसि ववसाउ करिज्जइ ।' यद्यपि सब कर्म दैवाधीन है, तो भी मनुष्य को अपना कर्तव्य करना ही चाहिये ।

कवि परिचय

कवि के पिता का नाम माएसर (मातेश्वर) और माता का नाम धनश्री था कवि का वंश धक्कड़ था । यह एक प्रसिद्ध वंश था जिसमें अनेक महापुरुष हुए हैं । इस धर्कट वंश की प्रतिष्ठा दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में रही है । दोनों ही सम्प्रदायों में इस वंश द्वारा लिखाये गये ग्रन्थों की प्रशस्तियां मिलती हैं जिनसे उनकी धार्मिक परिणति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । कवि अपने समय के प्रतिभा संपन्न विद्वान थे । उनका सम्प्रदाय दिगम्बर था, क्योंकि ग्रंथों में—'भंजि वि जेण दियंवरि लायउ' (संधि ५-२०) जैसा वाक्य दिया हुआ है[1] । साथ ही सोलहवें स्वर्ग के रूप में अच्युत स्वर्ग का नामोल्लेख है और आचार्य कुन्दकुन्द की मान्यतानुसार सल्लेखना को चतुर्थ शिक्षाव्रत स्वीकार किया है ।

'चउथउ पुणु सल्लेहण भावइ' (संधि १७-१२) यह मान्यता भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नहीं पाई जाती । इस कारण वे दिगम्बर विद्वान थे, यह सुनिश्चित है । इनका समय विक्रम की १०वीं शताब्दी होना चाहिये । सम्पादक ने भी ग्रन्थ की प्रस्तावना में डा० हर्मन जैकोबी के निर्णय को स्वीकृत तथा पुष्ट करते हुए कवि को दिगम्बर लिखा है । यह ग्रंथ गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज बड़ोदा से प्रकाशित हो चुका है ।

११२ वीं ११३ वीं और ११४ वीं प्रशस्तियां क्रमशः 'महापुराण' 'नागकुमार चरिउ' और 'जसहर चरिउ' की हैं, जिनके कर्ता महाकवि पुष्पदन्त हैं ।

प्रस्तुत महापुराण दो खंडों में विभाजित है, आदि पुराण और उत्तर पुराण । आदि पुराण में ३७ सन्धियां हैं जिनमें आदि ब्रह्मा ऋषभदेव का चरित वर्णित है, और उत्तर पुराण को ६५ सन्धियों में अवशिष्ट २४ तीर्थकरों, १२ चक्रवर्तियों, नवनारायण, नव प्रति नारायण आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों का कथानक दिया हुआ है । जिसमें रामायण और महाभारत की कथायें भी संक्षिप्त में आ जाती हैं । दोनों भागों की कुल सन्धियां एक सौ दो हैं, जिनकी आनुमानिक श्लोक संख्या बीस हजार से कम नहीं है । महापुरुषों का कथानक अत्यन्त विशाल है और अनेक पूर्व जन्मों की अवान्तर कथाओं के कारण और भी विस्तृत हो गया है । इससे कथा सूत्र को समझने एवं ग्रहण करने में कठिनता का अनुभव होता है । कथानक विशाल और विशृंखल होने पर भी बीच,बीच में दिये हुए काव्य मय सरस एवं सुन्दर आख्यानों से वह हृदय ग्राह्य हो गया है । जनपदों नगरों और ग्रामों का वर्णन सुन्दर हुआ है । कवि ने मानव जीवन के साथ सम्बद्ध उपमाओं का प्रयोग कर वर्णनों को अत्यन्त सजीव बना दिया है । रस और अलंकार योजना के साथ पद व्यंजना भी सुन्दर बन पड़ी है । साथ ही अनेक सुभाषितों[2] और वाग्धाराओं से ग्रन्थ रोचक तथा सरस बन गया है । ग्रन्थ में देशी भाषा के ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनका प्रयोग वर्तमान हिन्दी में

१. देखो, अनेकान्त वर्ष ७ किरण ७-८ में धनपाल नाम के चार विद्वान ।

२. उट्ठाविउ सुत्तउ सीहकेण—सोते हुए सिंह को किसने जगाया ।
माणु भंगुवर मरणु ण जीविउ—अपमानित होकर जीने से मृत्यु भली है ।
को तं पुसइ णिडालइ लिहियउ—मस्तक पर लिखे को कौन मेट सकता है ।

भी प्रचलित हैं[२]। कवि ने यह ग्रन्थ क्रोधन संवत्सर की आषाढ़ शुक्ला दशमी के दिन शक संवत् ८८७ वि० सं० १०२२) में समाप्त किया है और राष्ट्र कूट वंश के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के अनुरोध से बना है। ग्रन्थ की सन्धि पुष्पकाओं में स्वतन्त्र संस्कृत पद्यों में भरत की प्रशंसा और मंगलकामना की गई है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० पी० एल० वैद्य ने किया है, जो मणिकचन्द ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

११३वीं प्रशस्ति 'नागकुमारचरित' की है। यह एक छोटा-सा खंड-काव्य है। जिसमें पंचमीव्रत के फल को व्यक्त करने वाला एक सुन्दर कथानक दिया हुआ है, ग्रन्थ में ७ संधियों द्वारा नागकुमार के चरित्र का अच्छा चित्रण किया गया है। रचना बड़ी सुन्दर, सरस और चित्ताकर्षक है ग्रन्थ में तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति का भी वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना भरत मंत्री के पुत्र नन्नकी प्रेरणा से हुई है और और इसीलिए यह ग्रन्थ उन्हीं के नामांकित किया गया है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० हीरालाल जी एम. ए. अमरावती ने किया है और वह कारंजा सीरीज से प्रकाशित हो चुका है।

११४वीं प्रशस्ति 'जसहरचरिउ' की है। यह भी एक खंड काव्य है, जिसकी चार सन्धियों में राजा यशोधर और उनकी माता चन्द्रमती का कथानक दिया हुआ है। जो बड़ा ही सुन्दर और हृदयद्रावक है और उसे कवि ने चित्रित कर कण्ठ का भूषण बना दिया है। राजा यशोधर का यह चरित इतना लोकप्रिय रहा है कि उस पर अनेक विद्वानों ने संस्कृत और अपभ्रंश में अनेक ग्रंथ लिखे हैं। सोमदेव, वादिराज, वासवसेन, सकलकीर्ति, श्रुतसागर, पद्मनाभ, माणिक्यदेव, पूर्णदेव कविरइधु, सोमकीर्ति, विश्वभूषण और क्षमा कल्याण आदि अनेक दिगम्बर, श्वेताम्बर विद्वानों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इस ग्रन्थ में सं० १३६५ में कुछ कथन, राउल और कौल का प्रसंग, विवाह और भवांतर पानीपत के बीसलसाहु के अनुरोध से कन्हड के पुत्र गन्धर्व ने बनाकर शामिल किया था। वह प्रतियों में अब भी पाया जाता है।

कवि परिचय

महाकवि पुष्पदन्त अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान कवि थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट और माता का नाम मुग्धादेवी था। यह कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका शरीर अत्यन्त कृश (दुबला-पतला) और वर्ण सांवला था। यह पहले शैव मतानुयायी थे। परन्तु बाद में किसी दिगम्बर विद्वान् के सांनिध्य से जैनधर्म का पालन करने लगे थे। वे जैनधर्म के बड़े श्रद्धालु और अपनी काव्य-कला से भव्यों के चित्त को अनुरंजित एवं मुग्ध करने वाले थे, तथा प्राकृत, संस्कृत, और अपभ्रंश भाषा के महा पंडित थे। इनका अपभ्रंश भाषा पर असाधारण अधिकार था, उनकी कृतियां उनके विशिष्ट विद्वान् होने की स्पष्ट सूचना करती हैं। कविवर बड़े ही स्वाभिमानी और उग्र प्रकृति के धारक थे, इस कारण वे 'अभिमानमेरु' कहलाते थे। अभिमानमेरु, अभिमानचिह्न, काव्य रत्नाकर, कविकुल-तिलक और सरस्वती निलय आदि उनकी उपाधियाँ थीं, जिनका उपयोग उन्होंने अपने ग्रन्थों में स्वयं किया है। इससे उनके व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वे सरस्वती के विलासी और स्वाभाविक काव्य-कला के प्रेमी थे। इनकी काव्य-शक्ति अपूर्व और आश्चर्यजनक थी। प्रेम उनके जीवन का खास अंग था। वे

खसें = अवश्य, हट्ट = हाट (बाजार) तोंद = थोंद (उदर)। लीह = रेखा (लीक), ... = शाखा, पाहुण = पाहुना, लुक्क = लुकना (छिपना) आदि अनेक ... से हिन्दी के विकास का पता चलता है।

धनादि वैभव से अत्यन्त निस्पृह और जैनधर्म के अटल श्रद्धानी थे। उन्हें दर्शन-शास्त्रों और जैनधर्म के सिद्धांतों का अच्छा परिज्ञान था, वे राष्ट्रकूट राजाओं के अन्तिम सम्राट् कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के द्वारा सम्मानित थे। इतना ही नहीं किन्तु भरत के समुदार प्रेममय पुनीत व्यवहार से वे उनके महलों में निवास करते रहे, यह सब उस धर्मवत्सलता का ही प्रभाव है। जो भरत मंत्री उक्त कविवर से महापुराण जैसे महान् ग्रंथ का निर्माण कराने में समर्थ हो सके। उत्तर-पुराण की अंतिम प्रशस्ति में कवि ने अपना जो कुछ भी संक्षिप्त परिचय अंकित किया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कविवर बड़े ही निस्पृह और अलिप्त थे और देह-भोगों से सदा उदासीन रहते थे। उत्तरपुराण के उस संक्षिप्त परिचय पर से कवि के उन्नतम जीवन-कणों से उनकी निर्मल भद्र प्रकृति, निस्संगता और अलिप्तता का वह चित्रपट पाठक के हृदय-पटल पर अंकित हुए विना नहीं रहता। उनकी अकिंचन वृत्ति का इससे और भी अधिक प्रभाव ज्ञात होता है, जब वे राष्ट्रकूट राजाओं के बहुत बड़े साम्राज्य के सेना नायक और महामात्य द्वारा सम्मानित एवं संसेवित होने पर भी अभिमान से सर्वथा अछूते, निरीह एवं निस्पृह रहे हैं। देह-भोगों से उनकी अलिप्ता होना ही उनके जीवन की महत्ता का सबसे बड़ा सबूत है। यद्यपि वे साधु नहीं थे; परन्तु उनकी वह निरीह भावना इस बात की संद्योतक है कि उनका जीवन एक साधु से कम भी नहीं था। वे स्पष्टवादी थे और अहंकार की उस भीषणता से सदा दूर रहते थे; परन्तु स्वाभिमान का परित्याग करना उन्हें किसी तरह भी इष्ट नहीं था, इतना ही नहीं किन्तु वे अपमान से मृत्यु को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। कवि का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का अंतिम भाग और ११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

११५वीं प्रशस्ति 'करकंडुचरिउ' की है जिसके कर्ता मुनि कनकामर हैं। यह ग्रन्थ दश सन्धियों में विभक्त है। जिनमें राजा करकंडु का जीवन परिचय अंकित किया गया है। चरित नायक की कथा के अतिरिक्त नौ आवान्तर कथाओं का भी उपक्रम किया गया है, जिनमें मंत्र शक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच संगति का बुरा परिणाम और सत्संगति का अच्छा परिणाम दिखाया गया है, पांचवीं कथा एक विद्याधर ने मदनावलि के विरह से व्याकुल करकंडु के वियोग को संयोग में बदल जाने के लिए सुनाई। छठी कथा पांचवीं कथा के अन्तर्गत अन्य कथा है, सातवीं कथा शुभ शकुन-परिणाम सूचिका है, आठवीं कथा पद्मावती ने विद्याधरी द्वारा करकंडु के हरण किये जाने पर शोकाकुल रतिवेगा को सुनाई। नोमी कथा भवांतर में नारी को नारीत्व का परित्याग करने की सूचिका है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि उस काल में ये कथाएँ तात्कालिक समाज में प्रचलित होंगी। उन्हीं को कवि ने अपनी कल्पना का विषय बनाया है। कवि ने कथावस्तु को रोचक बनाने का अच्छा प्रयत्न किया है। ग्रन्थ की भाषा में देशी शब्दों का प्रचुर व्यवहार है। जो हिन्दी के अधिक नजदीक है। रस, अलंकार, श्लेष और प्राकृतिक दृश्यों से ग्रंथ सरस बन पड़ा है, किन्तु उनमें चमत्कारिता नहीं है और न पुष्पदन्तादि कवियों जैसी स्फूर्ति, ओज-तेज एवं प्रभाव भी अङ्कित हो सका है। हां, ग्रन्थ में तेराउर या तेरापुर की ऐतिहासिक गुफाओं का परिचय भी चित्रित किया गया है। यह स्थान आज भी धाराशिव जिले में तेरपुर के नाम से प्रसिद्ध है, प्राचीन ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान है। यह ग्रन्थ डा० हीरालाल जी एम. ए. द्वारा सम्पादित होकर कारंजासीरीज में मुद्रित हो चुका है। इसी से इसकी प्रशस्ति परिशिष्ट नं० १ में दी गई है।

कवि परिचय

मुनि कनकामर चन्द्र ऋषि गोत्र में उत्पन्न हुए थे। उनका कुल ब्राह्मण था; किन्तु देह-भोगों से वैराग्य होने के कारण वे दिगम्बर मुनि हो गये थे। कवि के गुरु बुध मंगलदेव थे। कवि भ्रमण करते हुए

'ग्रासाइ'[1] (ग्रासापुरी) नगरी में पहुंचे थे। और वहां उन्होंने 'करकंडुचरित' की रचना की थी। यह ग्रंथ जिनके अनुरागवश बनाया गया था, ग्रन्थकारने उनका नाम कहीं भी उल्लिखित नहीं किया। कवि ने उन्हें धर्मनिष्ठ और व्यवहार कुशल बतलाया है, वे विजयपाल नरेश के स्नेहपात्र थे, उन्होंने भूपाल नरेश के मन को मोहित कर लिया था। वे राजा कर्ण के चित्त का मनोरंजन किया करते थे। उनके तीन पुत्र थे, आहुल रल्हो और राहुल। ये तीनों ही मुनि कनकामर के चरणों के अनुरागी थे। उक्त राजागण कब और कहाँ हुए, इसी पर यहां विचार किया जाता है—

एक लेख में लिखा है कि विजयपाल नरेश विश्वामित्र गोत्र के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र भुवनपाल थे, उन्होंने कलचूरी, गुर्जर और दक्षिण को विजित किया था, यह लेख दमोह जिले की हटा तहसील में मिला था, जो आजकल नागपुर के अजायब घर में सुरक्षित है।

दूसरा लेख बांदा जिले के अंतर्गत चन्देलों की पुरानी राजधानी कांजिर में मिला है। उसमें विजयपाल के पुत्र भूमिपाल का दक्षिण दिशा और राजा कर्ण को जीतने का उल्लेख है।

तीसरा लेख जबलपुर जिले के अंतर्गत 'तीवर' में मिला है, उसमें भूमिपात्र के प्रसन्न होने का स्पष्ट उल्लेख है, तथा किसी सम्बन्ध में त्रिपुरी और सिंहपुरी का उल्लेख है। इन लेखों में अंतिम दो लेख टूटे होने के कारण उनका सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सका।

सं० १०९७ के लगभग कालिंजर में विजयपाल नाम का राजा हुआ। यह प्रतापी कलचुरी नरेश कर्णदेव के समकालीन था। इसके दो पुत्र थे देववर्मा और कीर्तिवर्मा। कीर्तिवर्मा ने कर्णदेव को पराजित किया था, ऐसा प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से जान पड़ता है। अतएव मुनि कनकामर का रचना काल सन् १०६५ (वि० सं० ११२२) या विक्रम संवत् १२०० के लगभग जान पड़ता है। विशेष के लिए डा० हीरालाल जी द्वारा लिखित करकंडु चरित की प्रस्तावना देखना चाहिए।

परिशिष्ट नं० २

(लिपि प्रशस्ति-परिचय)

११६ वीं प्रशस्ति महाकविपुष्पदन्त के आदिपुराण की लिपि प्रशस्ति है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व की है। इस प्रशस्ति में आदिपुराण को लिखाने वाले ग्वालियर के सदगृहस्थ पद्मसिंह के परिवार का विस्तृत परिचय कराते हुए उनके धार्मिक-कार्यों का समुल्लेख किया गया है। प्रस्तुत प्रशस्ति को ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह के सुपुत्र श्री कीर्ति सिंह के राज्य काल में सं० १५२१ में काष्ठा संघ के भट्टारक

१. इस नाम के अनेक गांव और नगर हैं। एक आसापुरी वह स्थान है, जो औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत है और जहाँ सन् १८०३ में मराठों और अंग्रेजों का युद्ध हुआ था, अब एक छोटा-सा गांव है।
दूसरा आसीरगढ़ खान देश में है, जो आशा देवी के नाम पर बसाया गया है। तीसरा आसी नाम का स्थान राजपूताने के बूंदी राज्य में है। चौथा आसापुरी नाम का स्थान, पंजाब के कांगड़ा जिले के अन्तर्गत और ग्राम से १२ मील की दूरी पर पहाड़ की चोटी पर आसा देवी प्रतिष्ठित है और जिसके कारण उसका नाम आसापुरी कहलाता है।
पांचवीं आसापुरी नाम का एक गांव भोपाल (भोजपुरी) से उत्तर की ओर ४ मील पर बसा हुआ है। यह १२वीं शती में संभवतः एक विशालनगर रहा होगा। ग्रंथकार द्वारा अभिमत आसापुरी इनमें से कौन है यह विचारणीय है। और वह संभवतः कालिंजर और भोपाल इसके आस-पास कहीं होना चाहिए।

गुणकीर्ति, यशः कीर्ति मलयकीर्ति और गुणभद्र के समय में जयसवान कुलभूषण उल्हा साहू की द्वितीय पत्नी भावश्री के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह ने लिखवाया था, उसकी पत्नी का नाम वीरा था, उसके चार पुत्र थे, बालू, डालू, दीवड़ और मयणपाल। उनकी चार पत्नियां थी, जिनके नाम मंगा या माणिणि, लखणसिरि, मयणा और मणसिरि थी। मंगा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। रामचन्द, कमलनंद और वीरचन्द। इनमें प्रथम के दोनों पुत्रों की नंदा और पूना दो धर्म-पत्नियां थीं। इस परिवार सयुक्त पद्मसिंह ने जो धन-धान्य से समृद्ध था, अपनी लक्ष्मी का निम्न कामों में सदुपयोग किया था। २४ जिनालयों का निर्माण कराया था और एक लाख ग्रन्थ लिखवा कर भेंट किये थे। इससे उसके धार्मिक कार्यों का परिचय सहज ही मिल जाता है। परंतु आज ऐसे जिन वाणी भक्त सज्जन विरले ही मिलते हैं, जिनके द्रव्य का सदुपयोग जिनधर्म और जिनवाणी के प्रचार में होता हो।

११७ वीं प्रशस्ति 'भविसदत्त चरित' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर थे। प्रस्तुत प्रशस्ति में उल्लिखित माथुर कुलावतंस साहु साधारण और नारायण नाम के दो भाई थे, साधारण की रुप्पणि नाम की पत्नी थी, उससे पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे, सुप्पट्ट, वासुदेव, जसदेव, लोहडु और लखनु। इनमें सुप्पट की माता रुप्पणि ने इस ग्रन्थ को संवत् १५३० में लिखवाया था।

११८ वी लिपि प्रशस्ति भ० श्रुतकीर्ति के हरिवंश पुराण की है। जिसे चंदवार दुर्ग के समीप स्थित संघाधिप की चौपाल में संवत् १६०७ में राम पुत्र पंगारव ने लिखा था। इस ग्रन्थ के लिखाने वाले के परिवार का प्रशस्ति में विस्तृत परिचय कराया गया है, जो एक पद्मावती पुरवाल वंश था। पाठक उसका परिचय मूल प्रशस्ति से देखें।

परिशिष्ट नं० ३

(हस्तलिखित ग्रन्थ प्रशस्ति-परिचय)

११६ वीं प्रशस्ति 'रोहिणिविधान कहा' की है, जिसके कर्ता कवि देवनंदी है। इस कथा में रोहिणी व्रत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए उसके फल प्राप्त करने वाले का कथानक दिया हुआ है, और उसके अनुष्ठान करने की प्रेरणा की गई है। इसके रचयिता देवनन्दी ने अपना कोई परिचय प्रस्तुत नहीं किया, और न यही बतलाया कि उनका समय क्या है? इस नाम के अनेक विद्वान हुए हैं। पर ये उन देवनन्दी (पूज्य पाद) से भिन्न और पश्चात् वर्ती हैं। यह किसी भट्टारक के शिष्य होना चाहिये। इनका समय संभवतः १४ वीं या १५ वी शताब्दी होना चाहिये।

१२० वीं प्रशस्ति 'वड्ढमाणचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि श्रीधर हैं। इस ग्रन्थ में जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा दी हुई है। जिसमें १० सन्धियां और २३१ क[illegible] दिये हुए हैं जिनकी श्लोक संख्या कवि ने ढाई हजार जितनी बतलाई है। ग्रंथ में जैनियों [illegible] तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवन-गाथा अंकित की है। यद्यपि उसमें पूर्व [illegible] वर्णन दिया है, किन्तु कवि ने उसे विविधवर्णनों के साथ सुन्दर बनाने [illegible]

प्रस्तुत ग्रन्थ साहु नेमिचन्द्र के अनुरोध से बनाया [illegible] निवासी थे और जो जायस या जैसवाल कुल [illegible] और माता का नाम सोमा देवी था, जो जैनधर्म [illegible] पत्नी का नाम 'वीवा' देवी था। इनके [illegible]

एक दिन साहु नेमचन्द्र ने कवि श्रीधर से निवेदन किया कि जिस तरह चन्द्रप्रभ चरित्र और शान्तिनाथ चरित्र वनाये हैं, उसी तरह मेरे लिये अन्तिम तीर्थंकर का चरित्र वनाइये। तव कवि ने उक्त चरित्र का निर्माण किया है। इसी से कवि ने प्रत्येक सन्धि पुष्पिका में उसे नेमिचन्दानुमत लिखा है। इतना ही नहीं किन्तु कवि ने प्रत्येक सन्धि के प्रारंभ में जो संस्कृत पद्य दिये हैं उनमें नेमिचन्द को सम्यग्दृष्टि, वीर, बुद्धिमान, लक्ष्मीपति, न्यायवान् और भव-भोगों से विरक्त वतलाते हुए उनके कल्याण की कामना की गई है। जैसा कि उसके ८ वीं सन्धि के प्रारंभ के निम्न श्लोक से प्रकट है—

य: सद्दृष्टिरुदारधीरधिषणो लक्ष्मी मता संमतो।
न्यायान्वेषणतत्पर: परमत प्रोक्तागमा संगत:॥
जैनेकाभव-भोग-भंगुर वपु: वैराग्य भावान्वितो।
नन्दत्वात्स हि नित्यमेव भुवने श्री नेमिचन्द्रश्चिरं॥

कवि ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् ११६० में ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी शनिवार के दिन वनाकर समाप्त किया है। इससे एक वर्ष पहले अर्थात् सं० ११८९ में पार्श्वनाथ का चरित दिल्ली में नट्टल साहु की प्रेरणा से वनाया था। चन्दप्रभ चरित सं० ११८७ से भी पहले वनाया था, क्योंकि उसमें उसका उल्लेख है। पर वह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। और न शांतिनाथ चरित्र ही प्राप्त है। इन दोनों कृतियों का ग्रन्थ भण्डारों में अन्वेषण होना चाहिये।

कवि परिचय

कवि का वंश अग्रवाल था। इनके पिता का नाम बुध गोल्ह और माता का नाम वील्हा देवी था। संभवत: इनके पिता भी विद्वान थे। कवि कहाँ के निवासी थे। यह ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं है। संभवत: वे हरियाना प्रदेश के रहने वाले थे। अन्य दो ग्रन्थ मिलने पर कवि के सम्वन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त हो सकती है। कवि का समय १२ वीं शताब्दी है,

१२१ वीं प्रशस्ति 'संतिणाहचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि शुभकीर्ति हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में १९ सन्धियाँ हैं। जिनमें जैनियों के १६ वें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का चरित्र चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ की एकमात्र प्रति नागौर के भट्टारकीय भंडार में सुरक्षित है। जो संवत् १५५१ की लिखी हुई है। ग्रन्थ सामने न होने से उसकी प्रशस्ति का ऐतिहासिक भाग नहीं दिया जा सका। और न कवि शुभकीर्ति का ही कोई परिचय या गुरु परम्परा दी जा सकी है। पर यह सुनिश्चित है कि ग्रन्थ सं० १५५१ से पूर्व का वना हुआ है। इस नाम के अनेक विद्वान हो गए हैं, अतएव जव तक ग्रन्थ प्रशस्ति पर से उनकी गुरु परम्परा ज्ञात न हो, तव तक उनका निश्चित समय वतलाना कठिन है। यदि भट्टारक जी की कृपा से उक्त चरित ग्रन्थ प्राप्त हो सका, तो फिर किसी समय उसका परिचय पाठकों को कराया जा सकेगा।

१२२वीं प्रशस्ति 'णेमिणाहचरिउ' की है जिसके कर्ता कवि दामोदर हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ५ सन्धियाँ हैं, जिनमें जैनियों के २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का चरित्र अंकित किया गया है, जो श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। चरित्र आडम्वरहीन और संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है, और कवि उसे वनाने में सफल भी हुआ है। इस चरित रूप खण्ड काव्य की रचना में प्रेरक एक सज्जन थे, जो धर्मनिष्ठ तथा दयालु थे। वे गुजरात से मालव देश के 'सलखणपुर' में आये थे। और भगवान महावीर के उपासक थे। वे खंडेलवाल वंश के भूषण थे, विषय विरक्त और सांसारिक जीवन को सफल वनाने

वाले थे, जैनधर्म के प्रतिपालक थे। उनका नाम इंदुक या इन्द्र था और उनके पिता का नाम केशव था, वे जिन पूजादि गृहस्थ के षट्कर्मों का प्रतिपालन करते थे और अन्तर्बाह्य कालिमा को दूर करने का प्रयत्न करते थे। तथा 'मल्ह' का पुत्र नागदेव पुण्यात्मा प्रसन्नचित्त और भव्यजनों का मित्र था, वहीं रामचन्द्र संयमी गुणनिधान भी रहते थे। कवि ने इन्हीं पंडित रामचन्द्र के आदेश से और नागदेव के अनुरोध से उक्त ग्रन्थ की रचना की थी। उसी सलखणपुर में संघाधिप कमलभद्र नाम के श्रेष्ठी थे, जो अष्टमदों से रहित, बाईस परीषहों के सहन करने में धीर, कर्म-शत्रुओं के विनाश करने में सावधान, त्रिशल्य, त्रिवेद और कषायों के हनन करने वाले और जिनधर्म की देशना में निरत रहते थे।

कवि ने इस ग्रन्थ को परमार वंशी राजा देवपाल के राज्य में विक्रम संवत् १२८७ में बनाया था। प्रस्तुत देवपाल मालवे का परमार वंश का राजा था, और महाकुमार हरिश्चन्द्र वर्मा का, जो छोटी शाखा के वंशधर थे, द्वितीय पुत्र था, क्योंकि अर्जुनवर्मा के कोई सन्तान नहीं थी। अतः उस राजगद्दी का अधिकार इन्हें ही प्राप्त हुआ था। इनका अपरनाम 'साहसमल्ल' था। इनके समय के ३ शिलालेख और एक दान पत्र मिला है। एक विक्रम संवत् १२७५ सन् १२१८ का हरसोड़ा गाँव से और दो लेख ग्वालियर राज्य से मिले हैं। जिनमें एक विक्रम संवत् १२८६ और दूसरा वि० सं० १२८९ का है[२]। मांधाता से वि० सं० १२९२ भाद्रपद शुक्ला १५ (सन् १२३५, अगस्त २९ का) दान पत्र भी मिला है[३]।

दिल्ली के सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश ने मालवा पर सन् १२३१-३२ में चढ़ाई की थी। और एक वर्ष की लड़ाई के बाद ग्वालियर को विजित किया था। और बाद में भेलसा (विदिशा) और उज्जैन को जीता था और वहाँ के महाकाल मंदिर को भी तोड़ा था। इतना होने पर भी वहाँ सुलतान का अधिकार न हो सका। सुलतान जब लूट-पाट कर चला गया, तब भी वहाँ का राजा देवपाल ही रहा[४]। इसी के राज्यकाल में पं० आशाधर जी ने विक्रम सं० १२८५ में नलकच्छपुर[५] (नालछे) में 'जिनयज्ञ कल्प' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, उस समय देवपाल मौजूद थे। इतना ही नहीं किन्तु जब दामोदर कवि ने संवत् १२८७ में सलखणपुर[६] में 'णेमिणाह चरिउ' रचा, उस समय भी देवपाल जीवित थे। किन्तु जब संवत्

१. इंडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ३११

२. इंडियन एण्टी क्वेरी जि० २० पृ० ८३

३. एपि ग्राफिका इंडिका जि० ९ पृ० १०८-१३

४. ब्रिग फिरिश्ता जि० १ पृ० २१०-११

५. नलकच्छपुर को नालछा कहते हैं यह धारा से १६ मील की दूरी पर स्थित है, वहां का नेमिनाथ का मन्दिर प्रसिद्ध था, उसी में बैठकर पं० आशाधरजी ने ग्रंथ रचना की। यह स्थान उस समय जैन संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था। जिनयज्ञकल्प सं० १२८५ में यहीं बना। जैसा कि उसके निम्न पद्य से प्रकट है—
विक्रम वर्ष स पंचाशीति द्वादश शतेस्वतीतेषु,
आश्विन सितान्त्य दिवसे साहसमल्ला पराख्यस्य।
श्री देवपालनृपतेः प्रमारकुमार शेखरस्य सौराज्ये,
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रन्थोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ जिनयज्ञकल्पप्रशस्ति।

६. प्रस्तुत सलखणपुर या सलक्षणपुर धारा में नालछे के आस-पास ही कहीं पर स्थित था। नागदेव इसी स्थान का निवासी और नागवंश का मणि तथा जैन चूडामणि था। उनके पिता का नाम माल्हा था, और यह देवपाल के राज्य में शुल्क, चुंगी या टैक्स विभाग में काम करता था। नागदेव ने एक दिन

१२९२ (सन् १२३५) में 'त्रिषष्ठि स्मृति शास्त्र' आशाधर जी ने बनाया उस समय उनके पुत्र 'जैतुगिदेव' का राज्य था। इससे स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु सं० १२९२ से पूर्व हो चुकी थी। इसीसे संवत् १२९६ में सागार धर्मामृत की टीका देवपाल राजा के पुत्र जैतुगिदेव के राज्य में, जब वह अवन्ती में था, तब नलकच्छपुर के चैत्यालय में पं० आशाधर जी ने 'भव्य कुमुचन्द्रिका' बनाई[७]। और वि० सं० १३०० में जब अनगार धर्मामृत की टीका बनी, उस समय भी जैतुगिदेव का राज्य था[८]।

कवि-परिचय

कवि दामोदर का वंश 'मेडेत्तम' था। इनके पिता का नाम कवि माल्हण था, जिन्होंने 'दल्ह' का चरित बनाया था, यह भी सलखणपुर के निवासी थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि गुणभद्र के पट्टधर सूरिसेन हुए और उनके शिष्य कमलभद्र हुए और उनके शिष्य प्रस्तुत कवि दामोदर थे। कवि ने लिखा है कि पृथ्वीधर के पुत्र ज्ञानचन्द्र और पंडित रामचन्द्र ने उपदेश दिया, तथा जसदेव के पुत्र जसनिधान ने वात्सल्य भाव प्रदर्शित किया था। कवि पं० आशाधर के समकालीन थे। और वे उस सलक्षणपुर में रहे भी थे। ग्रंथकर्ता ने अपना यह ग्रंथ वि० सं० १२८७ में बनाकर समाप्त किया था।

मालव प्रांत के शास्त्र भंडारों का अन्वेषण करने पर संभव है अन्य रचनाएं भी प्राप्त हो जाय, और उससे इतिहास की गुत्थियों के सुलझाने में सहायता मिले।

परिशिष्ट नं० १२ का परिचय

प्रस्तुत प्रशस्ति 'मेघमाला वयकहा' की है, जिसके कर्ता कवि ठक्कुर हैं। इसमें मेघमाला व्रत की कथा अंकित की गई है। कथा संक्षिप्त और सरल है और हिन्दी भाषा के विकास को प्रस्तुत करती है। यह कथा ११५ कड़वक और लगभग २११ श्लोकों में पूर्ण हुई है, जिनमें उक्त व्रत के अनुष्ठान की विधि और उसके फल का वर्णन किया गया है। इस व्रत का अनुष्ठान भाद्रपद मास की प्रतिपदा से किया

गृहस्थाचार्य पं० आशाधर जी से निवेदन किया कि मैं प्रायः राज्यकार्य से अवरुद्ध रहता हूँ। अतः मेरे कल्याणार्थ व्रतों का उपदेश दीजिये। तब उक्त पंडित जी ने आर्य केशवसेन के वचन से नागदेव की धर्मपत्नी के लिए सं० १२८२ में 'रत्नत्रय विधि' नाम की कथा संस्कृत गद्य में बनाई थी।

देखो राजस्थान जैन ग्रन्थ भंडार सूची भा० ४ पृ० २४२

७. नलकच्छपुरेश्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
टीकेयं भव्यकुमुदचन्द्रिकेत्युदिता बुधैः ॥१२०
षण्णवद्व्येक संख्यान विक्रमाङ्क समात्यये।
सप्तम्यामसिते पौषे सिद्धेयं नन्दताच्चिरम् ॥१२१
—सागारधर्मामृत टीका प्रशस्ति

८. प्रमारवंशावार्धीन्दु देवपालनृपात्मजे।
श्रीमज्जैतुगिदेवेऽसि स्थेम्नाऽवन्तीमवत्यलम् ।।११९
नकलच्छपुरे श्रीमन्नेमिचैत्यालयेऽसिधत्।
विक्रमाव्द शतेष्वेषा त्रयोदशसु कीर्त्तिके ॥
—अनगारधर्मामृतटीका प्रशस्ति

जाता है। व्रत के दिन उपवासपूर्वक जिन पूजन अभिषेक, स्वाध्याय सामायिक आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये। इस व्रत को पाँच प्रतिपदा, और पांच वर्ष तक सम्पन्न करे। पश्चात् उसका उद्यापन करे। यदि उद्यापन करने की सामर्थ्य न हो तो दुगने समय तक व्रत करना चाहिये। इस व्रत का अनुष्ठान चाटसू (चम्पावती) नगरी के श्रावक श्राविकाओं ने सम्पन्न किया था। उस समय राजा रामचन्द्र का राज्य था, वहाँ पार्श्वनाथ का सुन्दर जिनालय था और तत्कालीन भट्टारक प्रभाचन्द्र भी वहां मौजूद थे। और जो गण-धर के समान भव्यजनों को धर्मामृत का पान करा रहे थे। वहाँ खंडेलवाल जाति के अनेक श्रावक रहते थे। उनमें पण्डित माल्हा पुत्र कवि मल्लिदास ने कवि ठकुरसी को मेघमाला व्रत की कथा के कहने की प्रेरणा की। वहां के श्रावक सदा धर्म का अनुष्ठान करते थे। हाथुवसाह नाम के एक महाजन और भट्टारक प्रभाचन्द्र के उपदेश से कवि ने मेघमाला व्रत कब कैसे करना चाहिये इसका संक्षिप्त वर्णन किया। वहाँ तोपक, माल्हा, और मल्लिदास आदि विद्वान भी रहते थे। श्रावक जनों में प्रमुख जीणा, ताल्हु, पारस, नेमिदास, नाथू सि और भुल्लण, घउली आदि ने व्रत का अनुष्ठान किया। कवि ने इस ग्रंथ को सं० १५८० में प्रथम श्रावण शुक्ला छट के दिन पूर्ण किया था।

कवि ने इसके अतिरिक्त सं० १५७८ में 'पारस श्रवण सत्ताइसी' एक कविता बनाई थी, जो एक ऐतिहासिक घटना को प्रकट करती है, और कवि के जीवन काल में घटी थी, उसका आँखों देखा वर्णन कवि ने लिखा है। इनके अतिरिक्त जिनचउवीसी, कृपणचरित्र (सं० १५८० पूस मास) पंचेन्द्रियवेल (सं० १५८५ का० सु० १३) और नेमीश्वर की वेल आदि रचनायें रची थीं, जो स्व-पर-सम्बोधक है ?

कवि-परिचय

कवि चाटसू (वर्तमान चम्पावती) नगरी के निवासी थे। इनकी जाति खंडेलवाल, और गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम 'घेल्ह' था, जो कवि थे, इनकी कविता अभी मेरे देखने में नहीं आई। किन्तु कवि ने पंचेन्द्रियवेल के अन्तिम पद के 'कवि-घेल्ह सुतनु गुण गाऊँ' वाक्य में उन्हें स्वयं कवि ने सूचित किया है। कवि के पुत्र का नाम नेमिदास था, जिसने मेघमाला व्रत की भावना की थी। कवि की उल्लिखित रचनाओं का काल सं० १५७८ से सं० १५८५ तक का उपलब्ध ही है। इनके अतिरिक्त अन्य किन कृतियों का निर्माण किया, यह विचारणीय है। संभव है ग्रन्थ भंडारों में इनकी अन्य कृतियाँ भी अन्वेषण करने पर मिल जावें।

यह प्रशस्ति सुगन्धदसमीकथा की है जिसके कर्ता कवि विमलकीर्ति हैं। इस कथा में भाद्रपद शुक्ला दशमी के व्रत की कथा का वर्णन करते हुए उसके फल का विधान किया गया है। कथा संक्षिप्त और संभवतः ८ कडवकों को लिये हुए है। कवि ने दशवीं व्रत के अनुष्ठान करने की प्रेरणा की है। कवि ने कथा कब बनाई, इसका रचना में कोई उल्लेख नहीं है।

कवि-परिचय

ग्रंथकर्ता विमलकीर्ति ने रामकीर्ति गुरु को विनय कर इस कथा को बनाया है प्रस्तुत रामकीर्ति गुरु कौन थे और उनका समय क्या है? यह विचारणीय है। रामकीर्ति नाम के चार विद्वानों का उल्लेख

१. इनके परिचय के लिये देखो, अनेकान्त वर्ष १४ किरण १ में प्रकाशित 'कविवर ठकुरसी और उनकी कृतियाँ' नामक मेरा लेख पृ० १०

मिलता है। उनमें प्रथम रामकीर्ति के शिष्य विमलकीर्ति हैं। दूसरे विमलकीर्ति मूलसंघ वलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे[२]। इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने सं० १४१३ में वैशाख सुदि १३ बुधवार के दिन अमरावती के चौहान राजा अजयराज के राज्य में लंबकंचुकान्वयी श्रावक ने एक जिनमूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी। जो खंडित दशा में भौगाँव के मन्दिर की छत पर रखी हुई है।

तीसरे रामकीर्ति भट्टारक वादिभूषण के पट्टधर थे, जिनका विम्व प्रतिष्ठित करने का समय संवत् १६७० है। यह रामकीर्ति १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के विद्वान हैं। चौथे रामकीर्ति का नाम भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के पट्टधर के रूप में मिलता है। इनमें प्रथम रामकीर्ति का सम्बन्ध ही विमलकीर्ति के साथ ठीक वैठता है। इनमें प्रथम रामकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति ने 'जगत सुन्दरी प्रयोगमाला' नाम के वैद्यक ग्रन्थ की रचना की है। जिनका समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी है। रामकीर्ति जयकीर्ति के शिष्य थे, जिनकी लिखी हुई प्रशस्ति चित्तौड़ में संवत् १२०७ की उत्कीर्ण की हुई उपलब्ध है[३]। यशःकीर्ति ने जगत् सुन्दरी प्रयोगमाला में अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरिका (सं० ११७१) का उल्लेख किया है[४]। इससे विमलकीर्ति का समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी हो सकता है।

यह प्रशस्ति 'पुष्पांजलि कथा' की है। इसके कर्ता का परिचय अभी अज्ञात हैं। और संभवतः वे अनन्तकीर्ति गुरु मालूत होते हैं। इसमें पुष्पांजलि व्रत की कथा दी गई है। ग्रन्थ सामने न होने से विशेप परिचय देना संभव नहीं है। इस कथा के कर्ता वलात्कारगण के विद्वान रत्नकीर्ति शिष्य भावकीर्ति युक्त अनंतकीर्तिगुरु बतलाये गये हैं। इनका समय अभी विचारणीय है।

परमानन्द जैन

२. संवत् १४१३ वैशाख सुदि १३ वुघे श्रीमदमवरावती नगराधीश्वर चाहुवाण कुल श्री अजयराय देवराज्य प्रवर्तमाने मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्रीरामकीर्तिदेवास्तस्य शिष्य भ० प्रभाचन्द्र लंवकंचुकान्वये साधु··· भार्या सोहल तयोः पुत्रः सा० जीवदेव भार्या सुरकी तयोः पुत्रः केशो प्रणमंति। —देखो जैन सि० भा०,भा० २२ अंक २

३. एपिग्राफिका इंडिका जि० २ पृ० ४२१

४. देखो जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला प्रशस्ति

प्रशस्ति संग्रह की प्रस्तावना में उपयुक्त ग्रन्थ-संकेत-सूची

अनेकान्त वर्ष—८, १०, ११, १२, १३, १४, सम्पादक पं० जुगलकिशोर मुख्तार आदि वीर सेवा मंदिर, २१ दरियागंज दिल्ली
अपभ्रंश भाषा साहित्य—हरिवंश कोछड़
इण्डियन एण्टीक्वेरी जि० २०, पृ० ८३, ३११
इन्डो आर्यन एण्ड हिन्दी
एनाल्स आफ दी भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना
एपि ग्राफिका इण्डिका भा० २ जिल्द ३१
एपि ग्राफिका इण्डिका जि० २ पृ० ४२१
एपि ग्राफिका इण्डिका जि० ७ पृ० १०८-१३
करकंडु चरिउ कनकामर सं० डा० हीरालाल जैन, कारंजा सीरीज
कुवलय माला, सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, भारतीय विद्याभवन बम्बई
ग्वालियर गजेटियर—ग्वालियर पुरातत्व विभाग
टाडराजस्थान टिप्पण, रा० ब० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
जनरल एशियाटिक सोसाइटी आफ बिहार
जसहर चरिउ पुष्पदन्त, सम्पादक डा० पी० एल० वैद्य, कारंजा सीरीज
जैनग्रंथप्रशस्तिसंग्रह प्रथम भाग, वीर सेवामंदिर २१ दरियागंज
जैनग्रंथप्रशस्तिसंग्रह, जैन सिद्धान्त भवन आरा (बिहार)
जैन मूर्तिलेख संग्रह—बाबू कामता प्रसाद
जैन शिलालेख संग्रह भाग १, २, ३, माणिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई,
जैन संदेश शोधांक, सम्पादक डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भा० दि० जैन संघ चौरासी मथुरा
जैन साहित्य और इतिहास—पं० नाथूराम जी प्रेमी, हिन्दी ग्रं० रत्ना० बम्बई
जैन सिद्धांत भास्कर, जैन सिद्धान्त भवन आरा
जैसलमेर भण्डार-सूची
नागकुमार चरिउ—पुष्पदन्त सं० डा० हीरालाल जैन, कारंजा सीरीज
पाइय सद्द महण्णवो—पं० हरिगोविन्द
बाम्बे यूनिवर्सिटी जनरल जि० ५ नवम्बर सन् १९३८
भरत नाट्य शास्त्र
भारत के प्राचीन राजवंश भा० १ विश्वेश्वरनाथरेउ, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई
महापुराण पुष्पदन्त संपादक डा० पी० एल० वैद्य, माणिकचन्द ग्रन्थमाला, बम्बई
राजपूताने का इतिहास प्रथम जिल्द, द्वितीय एडीसन गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
राजस्थान जैन ग्रंथ सूची भाग २, ३, ४ महावीर तीर्थ क्षेत्र कमेटी जयपुर
रायल एशियाटिक जनरल बाम्बे सन् १९३५
लिंगविस्टिक सर्वे आफ इण्डिया सन् १९२७ पृ० १२१
समवायांगसूत्र आगमोदय समिति

हरिषेणक कथाकोश, सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, सिंघीसीरीज, भा० वि० भवन, बम्बई
हिन्दी काव्य-धारा, महापंडित राहुल सांकृत्यायन
हिस्टोरीकल ग्रामर अपभ्रंश सन् १९४८ पूना
हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३०९
हिस्ट्री आफ गुजरात इन वाम्बे गजेटियर

अपभ्रंश भाषा की अनुपलब्ध रचनाएँ

ग्रंथ नाम	कर्त्ता	कहाँ उल्लेख है
अणंगचरिउ (अनंगचरित)	दिनकरसेन	हरिवंशपुराण धवल कवि, और वाहुवली चरित कवि धनपाल
अणुपेहा (अनुप्रेक्षा)	सीहनंदि	वाहुवली चरित कवि धनपाल
अम्बादेवीचर्चरीरास	कविदेवदत्त	जंवूस्वारिचरित कविवीर
अमयाराहणा (अमृताराधना)	गणि अम्वसेन	हरिवंश पु० कवि धवल, और वाहु-वली चरित में
करकंडु चरिउ (करकंडुचरित्र)	कवि रइधू	अपने ही ग्रंथों में
चंदप्पहचरिउ (चंद्रप्रभचरित)	कवि श्रीधर	अपने पासणाह व वड्ढमाणचरिउ में
,, ,,	मुनिविष्णुसेन	वाहुवली चरित में
जसहर चरिउ (यशोधर चरित)	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश में
झाणपईव (ध्यान प्रदीप)	,,	,,
णवयारमंत्र (नवकारमंत्र)	नरदेव	वाहुवली चरित में
धनदत्त चरिउ (धनदत्त चरित)	अज्ञात	,,
धर्मोपदेशचूडामणि	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश में
पउमचरिउ (पद्मचरित)	चउमुह	स्वयंभू के छन्दग्रंथ, और पउमचरिउ के चौथे पद में
पउमचरिउ (,,)	सेढुकवि	हरिवंश पुराण धवल कवि, और वाहुवलि चरित में
पंचमीकहा (पंचमीकथा)	चउमुह	स्वयंभू के पउमचरिउ में
पंचमीकहा (,,)	स्वयंभू (त्रिभुवनस्वयंभू)	पउमचरिउ प्रशस्ति में
महापुराण	रइधू	सन्मति जिनचरित प्रशस्ति में
महावीरचरिउ (महावीरचरित)	अमरकीर्ति	अपने षट्कर्मोपदेश में
रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण)	चउमुह	कवि धवल के हरिवंश में (हरिपंडु-वाण कहा के रूप में
वरंगचरिउ (वरांगचरित)	कविदेवदत्त	वीरकवि के जम्बूस्वामि चरित में
संतिणाहचरिउ (शांतिनाथचरित)	कविश्रीधर,	वड्ढमाणचरिउ में
संतिणाह चरिउ (,,)	कवि देवदत्त	वीरकवि के जम्बूस्वामीचरित में
सम्यक्त्व कौमुदी	सहणपाल	
सुदंसणचरिउ (सुदर्शन चरित)	कवि रइधू	सन्मति जिन चरित प्रशस्ति में

प्रस्तावना की नामानुक्रम-सूची

विषय-सूची

जैनग्रन्थ-प्रशस्तिसंग्रह

(आद्यन्तादिभागसंचयात्मक)

१—पउमचरिय [पद्मचरित्र] महाकवि स्वयंभु

आदिभागः—

णमह णव-कमल कोमल मणहर-वर-बहल कंति-सोहिल्लं ।
उसहस्स पायमकमलं स-सुरासुरवंदियं सिरसा ॥१॥
दीहर-समास णालं सद्ददलं अत्थकेसरुग्घवियं ।
बुह महुयर-पीय-रसं सयंभु-कव्वुप्पलं जयउ ॥२॥

... ...

घत्ता—जे काय-वाय-मणे णिच्छिरिय,जे काम-कोह-दुण्णय तिरिय
ते एक्क-मणेण सयंभुएण, वंदिय गुरु परमायरिय ॥

... ...

वड्ढमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय,
रामकहा-णइ एह कमागय ।
अक्खर-वास-जलोह-मणोहर,
सु-अलंकार-छन्द मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहावंकिय,
सक्कय-पायय-पुलिणालंकिय ।
देसीभासा-उभय-तडुज्जल,
क वि दुक्कर-घण सद्द-सिलायल ॥
अत्थ बहल कल्लोलाणिट्ठिय,
आसासय-सम-तूह परिट्ठिय ।
एह राम कह-सरि सोहंती,
गणहर-देवहिं दिट्ठ वहंती ॥
पच्छइं इंदभूइ आयरिएं,
पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं ।
पुणु एवहिं संसाराराएं,
कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं,
बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ।
पउमिणि-जणणि गब्भ-संभूएं,
मारुयएव-रूव-अणुराएं ॥
अइतणुएण पईहरगत्तें,
छिव्वर-णासें पविरल दंतें ।

घत्ता—णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह कित्तणु आढप्पइ ।
जेण समाणिज्जंतएण थिरकित्ति विढप्पइ ॥२॥

बुहयण सयंभु पइं विण्णवइ,
मइं सरिसउ अण्णु णत्थि कुकइ ।
वायरणु कयावि ण जाणियउ,
णउ वित्तिसुत्तु वक्खाणियउं ॥
णउ पच्चाहारहो तत्ति किय,
णउ संधिहे उप्परि बुद्धि थिय ।
णउ णिसुणिउ सत्त विहत्तियाउ,
छव्विहउ समास-पउत्तियाउ ॥
छक्कारय दस लयार ण सुय,
वीसोवसग्ग पच्चय बहुय ।
ण बलाबल-धाउ-णिवायगणु,
णउ लिंगु उणाइ वक्कु वयणु ॥
णउ णिसुणिउ पंच महाय कव्वु,
णउ भरहु ण लक्खणु छन्दु सव्वु ।
णउ बुज्झिउ पिंगल पत्थारु,
णउ भम्मह दंडियलंकारु ।
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि,
वरि रयडावुत्तु कव्वु करमि ॥

... ...

इय एत्थ पउमचरिए धणंजासिय-सयंभुएवकए ।
जिण-जम्मुप्पत्ति इमं पढमं चिय साहियं पव्वं ॥

अन्तिमभाग—

तिहुयण-सयंभु-णवरं एक्को कइराय-चक्कि-उप्पण्णो ।
पउमचरियस्स चूडामणि व्व सेसं कयं जेण ॥१॥
कइरायस्स विजय-सेसियस्स वित्थारिओ जसो भुवणे ।
तिहुयण-सयंभुणा पउमचरिय सेसेण णिस्सेसो ॥२॥
तिहुयण-सयंभु-धवलस्स को गुणो वण्णिउ जए तरइ ।
बालेण वि जेण सयंभु-कव्वभारो समुव्वूढो ॥३॥
वायरण-दढक्खंधो आगम-अंगोपमाण-वियडपओ ।
तिहुयण-सयंभु-धवलो जिण-तित्थे वहउ कव्वभरं ॥४॥
चउमुह-सयंभुएवाण वण्णियत्थं अचक्खमाणेण ।
तिहुयण-सयंभु - रइयं पंचमि-चरियं महच्छरियं ॥ ५
सव्वे वि सुया पंजर सुयव्व पढिअक्खराइं सिक्खंति ।
कइरायस्स सुओ सुयव्व सुइगब्भ-संभूओ ॥६॥

तिहुयण-सयंभु जइ ण हुंतु णंदणो सिरि सयंभुदेवस्स ।
कव्वं कुलं कवित्तं तो पच्छा को समुद्धरइ ॥७॥
जइ ण हुउ छंदचूडामणिस्स तिहुयणसयंभु लहु तणउ ।
तो पद्धडिया कव्वं सिरिपंचमि को समारेउ ॥८॥
सव्वो वि जणो गेण्हइ णियताय-विढत्त दव्व-संताणं ।
तिहुयण-सयंभुणा पुण गहियं णं सुकइत्त-संताणं ॥९॥
तिहुयण-सयंभुमेक्कं मोत्तूण सयंभुकव्व-मयरहरो ।
को तरइ गतुमंतं मज्झे णिस्सेस-सीसाणं ॥१०॥
इय चारु पोमचरियं सयंभुएवेण रइय सम्मत्तं ।
तिहुयण-सयंभुणा तं समाणियं परिसमत्तमिणं ॥११॥
मारुय-सुय-सिरिकइराय तणय-कय-पोमचरिय अवसेसं ।
संपुण्णं संपुण्णं वंदइओ लहउ संपुण्णं ॥१२॥
गोइंद-मयण सुयणंत विरइयं (?) वंदइय-पढमतणयस्स ।
वच्छलदाए तिहुयण सयंभुणा रइयं महप्पयं ॥
वंदइय-णाग-सिरिपाल-पहुइ-भव्वयण-समूहस्स ।
आरोगत्त समिद्धी संति सुहं होउ सव्वस्स ॥
सत्त महा संसग्गी तिरयणभूसा सु रामकह-कण्णा ।
तिहुयण-सयंभु-जणिया परिणउ वंदइय मणतणउ ॥

इय रामायण पुराण समत्तं

सिरि-विज्जाहर-कंडे संधीओ हुंति वीस परिमाणं ।
उज्झाकंडंमि तहा बावीस मुणेह गणणाए ॥
चउदह सुंदरकंडे एक्काहिय वीसजुज्झकंडेण ।
उत्तरकंडे तेरह सन्धीओ णवइ सव्वाउ ॥छ॥

लिपिकार-प्रशस्ति

संवत् १५१४ वर्षे वैशाख सुदि १५ सोमवार ग्रन्थ-संख्या १२००० ।

२–रिट्ठणेमिचरिउ [हरिवंश पुराण]—महाकविस्वयंभू,

आदिभागः—

सिरि परमागम-णालु सयल-कला-कोमल-दलु ।
करहु विहूसणु कण्णे जयव-कुरुव-कुलुप्पलु ॥

× × ×

चिंतवइ सयम्भु काइं करमि,
हरिवंस-महण्णउ के तरम्मि ।
गुरु - वयण - तरंडउ लद्धु णवि,
जम्महो वि ण जोइउ कोवि कवि ॥
णउ णाइउ बाहत्तरि कलाउ,
एक्कु वि ण गंथु परिमोक्कलाउ ।
तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ,
करि कव्वु दिण्णु मइ विमलमइ ।
इंदेण समप्पिउ वायरणु,
रसु भरहें वासे वित्थरणु ।
पिंगलेण छन्द-पय-पत्थारु,
भम्मह-दंडिणिहिं अलंकारु ।
वाणेण समप्पिउ घण घणउ,
तं अक्खर-डंबरु अप्पणउ ।
सिरिहरिसे णिय णिउणत्तणउ,
अवेरहि मि कइहिं कइत्तणउ ।
छड्डणिय-दुवइ-धुवएहिं जडिय,
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय ।
जण णयणाणंद जणेरियए,
आसीसए सव्वहु केरियए ।
पारंभिय पुणु हरिवंस-कहा,
स-समय-पर-समय-वियार-सहा ।

घत्ता—पुच्छइ मागहणाहु, भव-जर-मरण-वियारा ।
थिउ जिण सासणु केम,कहि हरिवंस भडारा ॥२॥

× × ×

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभुएवकए
पढमो समुद्दविजयाहिसेयणामो इमो सग्गो ॥१॥

अन्तिमभागः—

इह भारह-पुराणु सुपसिद्धउ,
णेमिचरिय-हरिवंसाइद्धउ ।
वीर-जिणेसे भवियहो अक्खिउ,
पच्छइ गोयमसामिण रक्खिउ ।
सोहम्में पुणु जंबूसामें,
विण्हुकुमारें दिग्गयगामें ।
णंदिमित्त अवरज्जिय णाहें,
गोवद्धणेण सुभद्दहबाहें ।
एम परंपराइ अणुलग्गउ,
आयरियह मुहाउ आवग्गउ ।
सुणु संखेव सुत्तु अवहारिउ,
विउसें सयंभें गहि वित्थारउ,
पद्धडिया छन्दें सुमणोहरु ।
भवियण-जण-मण-सवण-सुहंकरु,
जस परिसेसि कव्वहिं जं सुण्णउ ।
तं तिहुयण-सयंभु किउ पुण्णउ,
तासु पुत्तें पिउ-भर-णिव्वाहिउ ।

पिय-जसु णिय-जसु भुवणे पसाहिउ,
गय तिहुयण-सयम्भु सुरठाणहो ।
जं उव्वरिउ किंपि सुणियाणहो ।
तं जसकित्ति मुणिहि उद्धरियउ,
णिए वि सुत्तु हरिवंसच्छुरियउ ।
णिय गुरु-सिरि-गुणकित्ति-पसाएं,
किउ परिपुण्णु मणहो अणुराएं ।
सरह सेणेंद्र (सहमसेण) सेठि-आएसें,
कुमर-णयरि आविउ-सविसेसें ।
गोवगिरिहे समीवे विसालए,
पणियारहे जिणवर-चेयालए ।
सावयजणहो परउ वक्खाणउ,
दिट्ठु मिच्छत्तु मोहु अवमाणिउ ।
जं असुणंतें इह मइं साहिउ,
तं सुयदेवि खमउ अवराहउ ।
णंदउ णरवइ पय-पालन्तहो,
णंदउ भवियण-कय उच्छाहहो ।
णंदउ णरवइ पय-पालंतहो,
णंदउ दय-धम्मु वि अरहंतहो ।
कालं वि य णिच्च परिसक्कउ,
कासुवि धणु कणु दिंतु ण थक्कउ ।
भद्दवमासि विणासिय-भवकलि,
हुउ परिपुण्ण चउद्दसि णिम्मलि

घत्ता—इय चउविह संघहं, विहुणिय-विग्घहं,
णिण्णासिय-भव-जर-मरणु ।
जसकित्ति-पयासणु, अखलिय-सासणु
पयडउ संतिसयंभु जिणु ॥१७॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभुएव-उव्वरिए ।
तिहुवण-सयंभु रइए समाणियं कण्हकित्ति हरिवंस ॥१॥
गुरु-पव्व-वासभयं सुयणाणणुक्कमं जहां जायं ।
सयमिक्क-दुदहे-अहियं सन्धीओ परिसमत्ताओ ॥२॥
इति हरिवंशपुराणं समाप्तं । सन्धि ११२

३-सुदंसणचरिउ(सुदर्शनचरित)नयनंदी रचनासं०११००

आदिभागः—

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥१॥
इह पंच णमोयारइं लहेवि गोवहु हुउ सुदंसणु ।
गउमोक्खहो अक्खमि तहो चरिउ वच्छउ वण्णपयासणु ॥

× × × ×

इय सुदंसण-चरिए पंचणमोकार फल-पयासरे माणिक्कणंदि-तइविज्ज-सीसु-णयणंदिणा रइए असेस सुर संथुयं णवेवि वड्ढमाणं जिणं तउवि पट्टणं णरय-परिक्कओ पत्थयं समोसरण संगय महापुराण-आउत्थयं इमाण कय पटमो संधि सम्मत्तओ । संधि १

अन्तिमभागः—

जिणंदस्स वीरस्स तित्थे महंते ।
महा कुंदकुंदण्णए एत संते ।
ससिक्खाहिहाणो तहा पोमणंदी ।
पुणो विण्हुणंदी तवो णंदणंदी
जिणुद्दिट्ठ-धम्मं धुराणं विसुद्धो ।
कयाणेय गंथो जयंते पसिद्धो ।
भवांवोहि पोओ महाविस्सणंदी
खमाजुत्त सिद्धंतउ विसहणंदी ॥१॥
जिणिंदागमाहासणो एय-चित्तो ।
तवायारणिट्ठाय लद्धीय जुत्तो ।
णरिंदामरिंदेहि सो णंदणंदी ।
हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी ॥२॥
असेसाण गंथम्मि पारम्मि पत्तो,
तवे अंग वीसव्व राईव मित्तो ।
गुणावास-भूओ सु-तेलोक्कणंदी ।
महापंडिऊ तस्स माणिक्कणंदी ।
(तइविज्ज सीसो कई णयणंदी,)
भुयगप्पहाऊ इमो णाम छंदो ॥३॥

घत्ता—

पढम सीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणि णयणंदी अणिंदउ
चरिउ सुदंसण णाह हो तेण अवाहहो विरइउ बुह अहिणंदिउ

आराम गाम-पुरवर-णिवेस ।
सुपसिद्ध अवंतीणाम देस ॥४॥
सुरवइ-पुरिव्व विवुहयण इट्ठ ।
तहिं अत्थि धारणयरी गरिट्ठ ।
रण दुद्धरु अरिवर सेलवज्ज ।
रिद्धिए देवा सुर-जणिय-चोज्ज ॥५॥
तिहुवण णारायण सिरिणिकेउ ।
तहिं णरवर पुंगमु भोयदेउ ।
मणि-गण-पह-दूसिय-रवि-गभत्थि ।
तहिं जिणहरु बद्ध-विहार अत्थि ॥६॥
णिव विक्कम कालहो ववगएसु ।

एयारह संवच्छर-सएसु।
तहिं केवलि चरिउ अमयच्छरेण।
णयणंदी-विरयउ वित्थरेण।
जो पढइ सुणइ भावइ लिहेइ।
सो सासय-सुहु अइरे. लहेइ।

घत्ता-णयणंदियहो मुणिंदहो कुवलयचंदहो णर-देवा-सुर-वंदहो।
देउ दिणमइ णिम्मलु भवियह मंगलु वाया जिणवर इंदहो॥

एत्थ सुदंसणचरिए पंचणमोक्कार-फल पयासयरे माणिक्कणंदि-तइविज्जसीसु-णयणंदिणा रइए गइंद, परि वित्थरो सुरवरिंद थोत्त तहा मुणिंद सहमंडवंत-सुविमोक्ख वासे ठामे गमणमो पयफलं पुणो सयल साहूणामावली इमाण कय वण्णणो संधि दो दहमो सम्मत्तो॥छ॥ संधि १२

४—पासपुराण (पार्श्वनाथपुराणं) पद्मकीर्ति
रचनाकाल स० ६६६

आदि भागः—

चउवीस वि जिणवर सामिय,
सिव-सुह गामिय पणविवि अणुदिणु भावें।
पुणकहं भुवण पयास हो,
पयडमि पास हो जणहो मज्झ सहावें॥ ॐ॥

अन्तिम भागः—

अट्ठारह संधिउ इय पुराणु, तेसट्ठिपुराणे महापुराणु।
सय तिण्णि दहोत्तर कडवयाइं, णाणाविह छंद सुहावयाइं॥
तेवीससयइं तेवीसयाइं, अक्खरइं कहमि सविसेसयाइं।
इउ एत्थु सत्थु गंथह पमाणु फुडु पयडु असेसु वि कय पमाणु॥
सुपसिद्ध महापहु णियमधरू॥
माथुरहं गच्छिउ पुहमिभरू।
तहो चन्दसेणु णामेण रिसी,
वय-संजम णियमइ जाउ किसी॥
तहो सीसु महामइ णियमधारि,
णयवन्तु महामइबम्भचारि।
रिसि माहउसेणु महाणुभाउ,
जिणसेण सीसु पुणु तासु जाउ॥
तहो पुव्व सणेहें पउमकित्ति, उप्पण्णु सीसु जिणु जासु चित्ति।
ते जिणवर-सासण-भाविएण, कइ-विरइय जिणसेणहो मएण॥
गारवमय-दोस-विवज्जएण, अक्खर-पय-जोडिय लज्जिएण।
कुकइत्तु वि जयो सुकइत्तु होइ, जइं सुवण्णइं भावइ एत्थ लोइ॥
अम्हइं कुकइहिं किंपि वुत्तु, खमिएव्वउ सुयणहो तं णिरुत्तु॥

घत्ता—रिसि गुरुदेव पसाए कहिउ असेसुवि चरित्तु मइं।
पउमकित्ति मुणि-पुंगवहो देउ जिणेसरु विमलमइं॥
जइवि विरुद्धं एयं णियाणबंधं जिणेंद-उवसमए।
तहं वि तहय चलण कित्तणं जयउ पउमकित्तिस्स॥
रइयं पासपुराणं भमियापुहमी जिणालया दिट्ठा।
एहिय जीविय-मरणे हरिस-विसाओ ण पउमस्स॥
सावय-कुलम्मि जम्मो जिणचरणाराहणा कइत्तं च।
एयाइ तिण्णि जिणवर भवि भवि (महु) होउ पउमस्स॥
णव-सय-णउवाणुइए कत्तियमासे अमावसी दिवसे।
लिहियं पासपुराणं कइणा णामं पउमस्स ॐ॥
सधिः अष्टादश॥१८॥ इति पार्श्वनाथचरित्रं समाप्तं

५—धम्मपरिक्खा (धर्मपरीक्षा) वुध हरिषेण
रचनाकाल सम्वत् १०४४

आदि भागः—

सिद्धि-पुरंधिहि कंतु सुद्धें तणु मण-वयणें।
भत्तिए जिणु पणवेवि चिंतउ बुह-हरिसेणें॥
मणुय-जम्मि बुद्धी किं किज्जइ,
मणहरु जाइ कव्वु ण रइज्जइ।
तं करंत अवियाणिय आरिस,
हासु लहहिं भड रणि गय-पोरिस॥
चउमुह कव्व-विरयणि सयंभुवि,
पुप्फयंतु अण्णाणु णिसुंभिवि।
तिण्णि वि जोग्ग जेण तं सीसइ,
चउमुह-मुहेथिय ताव सरासइ॥
जो सयंभू सो देउ पहाणउ,
अह कयलोयालोय-वियाणउ।
पुप्फयंतु णवि माणुसु वुच्चइ,
जो सरसइए कयावि ण मुच्चइ॥
ते एवंविह हउं जडु माणउ,
तह छन्दालंकार विहूणउ।

ॐ पार्श्वपुराणकी अन्तिम प्रशस्तिके ये चार पद्य कारंजा भण्डारकी सं० १४७३ की लिखितमें नहीं पाये जाते, अतः रचनादि सम्वत्को लिए हुए होनेके कारण इस प्रशस्तिको यहां स्थान दिया गया है।

१—लेखकने भूलसे आमेर भण्डारकी प्रतिमें सन्धि-वाक्योंको उक्त चार गाथाओंके ऊपर दे दिया है जो किसी गल्तीका परिणाम जान पड़ता है।

कव्वु करंतु केम णवि लज्जमि,
तह विसेस पिय जणु किह रंजमि ॥
तो वि जिणिंद-धम्म-अणुराएँ,
बुहसिरि· सिद्धसेण-सुपसाएँ ।
करमि सयं जि णलिणि-दल थिउ जलु,
अणुहरेइ णिरुवमु मुत्ताहलु ॥
घत्ता—जा जयरामें आसि विरइय गाह-पबन्धि ।
साहमि धम्मपरिक्ख सा पद्धडिया-बन्धि ॥१॥

× × ×

इय धम्मपरिक्खाए चउवग्गाहिट्ठियाए चित्ताए बुहहरिसेण कए पढमो सन्धी परिसमत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भागः—

इह मेवाड-देसि-जण-संकुलि,
सिरिउजहर-णिग्गय-धक्कड-कुलि ।
पाव-करिंद-कुम्भ-दारण-हरि,
जाउ कलाहिं कुसलु णामें हरि ॥
तासु पुत्त पर-णारि-सहोयरु,
गुणगण-णिहि कुल-गयण-दिवायरु ।
गोवड्ढणु णामें उप्पण्णउ ।
जो सम्मत्त-रयण-संपुण्णउ ॥
तहो गोवड्ढणासु पिय गुणवइ,
जो जिणवर-पय णिच्च वि पणवइ ।
ताए जणिउ हरिसेणे णाम सुउ,
जो संजाउ विबुह-कइ-विस्सुउ ।
सिरि-चित्तउडु चइवि अचलउरहो,
गयउ-णिय-कज्जें जिणहर-पउरहो ।
तहिं छंदालंकार-पसाहिय,
धम्मपरिक्ख एह तें साहिय ॥
जे मज्झत्थ-मणुय आयण्णहिं,
ते मिच्छत्त भाउ अवगण्णहिं ।
ते सम्मत्त जेण मलु खिज्जइ,
केवलणाणु ताण उप्पज्जइ ॥
घत्ता-तहो पुणु केवलणाणहो णेय-पमाणहो जीव पएसहिं सुहडिउ,
बाहारहिउ अणंतउ अइसयवंतउ मोक्ख-सुक्खु-फलुपयडिउ ॥
विक्कम-णिव-परिवत्तिय कालए,
गयए वरिस सहस चउतालए ।
इउ उप्पण्णु भविय जण सुहयरु,
डंभ-रहिय धम्मासव-सायरु ॥
ते धण्णहिं जे लिहइ लिहावइ,
ते धण्णहिं जे भत्तिइ भावहिं ।
जे पुणु के विहु पढहि पढावहिं,
ते णिय-पर-दुहु दूरे लुंटावहि ॥
एयहो अत्थु के वि जे पयडहिं,
ताण णिरंतर सोक्खहि सुहडहिं ।
जे णिसुणंति परिक्खए भत्तिए,
ते मुच्चहि णिम्मल मइ सत्तिए ॥
सयल पाणिवग्गहो दुहु हिज्जइ,
सोम ससिट्ठिए महि सोहिज्जइ ।
परहिय करणि बिहंडिय-गंहहो,
होउ जिणत्तणु चउविह संघहो ॥
पयडिय बहु पयाव अरियारें,
णंदउ भूवइ सहु परिवारें ।
धम्म पवत्तणेण दुह-हारें,
णंदउ पय बहुविह-ववहारें ।

घत्ता—सलए बुमइसु साहिउ सदरिसा हिउ इउकह रयणु अणग्घहं॥
जो हरिसेण धराधर उयहि गयणधर ताम जयउसु-भव्वहं ॥

इय धम्म परिक्खाए चउवग्गाहिट्ठियाए बुह-हरिसेण कयाए एयारसमो संधि समत्तो ॥ सन्धि ११ ॥

६—जंबूसामिचरिउ [जंबूस्वामीचरित] कविवर वीर
रचनाकाल संवत् १०७६

आदिभागः—

जिनपंतु वीर-चरणग्गि-चंपए मंदिरंमि धरहरए ।
कलसु छलंतं मोए सुतरणि-जगंत-विंदु-झंकारा ॥१॥
सो जयउ जस्स जम्माहिसेय-पय-पूर-पडुरिज्जंतो ।
जणियहि मंमि हरिमंको कणयगिरि राइओ वइया ॥२
जयउ जिणो जस्सारण-णाइ-मणि-पडिलग्ग-चरसु मह मज्जो ।
अणिइन्दिय सव्वाणइुयवत्थ-परिकलिय-लोयणो जाओ ॥३॥
ममिरसु अवेय भामिय जोइसगण-जणिय-रयणि-दिणि-संकं ।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं पाए सुरवइणा ॥४॥
सो जयउ महावीरो मयणाणल-हुणिय-रइ सुहो जस्स ।
णाणंमि फुरइ भुवणं एक्कं णक्खत्तमिव गयणे ॥५॥
जयउ जिणो पासट्ठिय णमि-विणमि-कियाण-फुरियपडिबिंबो ।
गहियाणं रूव-भुवलोय ति-जय-मणु सामियो रिसहो ॥६॥
जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संग सीलसामिरुणो ।
फणिणो हडि छिड्डिय णव-घणोव्व मणि-रस्सिमणी फणकप्पो

इह अत्थि परम-जिण-पय-सरणु,
गुडखेड विणिग्गउ सुहचरणु ॥१॥
सिरिलाडवग्गु तहि विमल जसु,
कइदेवयत्तु निव्वुड्ढ कसु ।
बहु भावहिं जे वरंगचरिउ,
पद्धडिया बंधें उद्धरिउ ।
कवि-गुण-रस-रंजिय-विउस सहं,
वित्थारिय सुद्दय वीरकहं ।
भव्वरिय-बंधि विरइउ सरसु,
गाज्जइ संतिउ तारु जसु ।
नच्चिज्जइ जिण-पय सेवयहिं,
किउ रासउ अंबादेवि यहिं ।
सम्मत्त-महा-भर-धुर-धरहो,
तहो सरसइ-देवि लद्ध-वरहो ।
नामेण वीरु हुउ विणयजुओ,
संतुव गब्भब्भ पढमसुओ ।
घत्ता—अक्खलिय-सर-सक्कय, कइकलिवि आणुसिउ सुउ पियरें ।
पायय पब ु वल्लहु जणहो, विरइज्जउ किं इयरें ॥४॥
अह मालवम्मि धण-कण दरसी,
नयरी नामेण सिंधु-वरिसी ।
तहिं धक्कड़-वग्गें वंस-तिलउ,
मह सूयण णंदणु गुणणिलउ ॥
णामेण सेट्ठि तक्खडु वसई,
जस पडहु जासु तिहुयणि रसई ।
मह कइ देवदत्तहो परम सुही,
तें भणिउ वीरु-वय सुवण-दिही ॥
चिरु कइहिं बहुलगंथुद्धरिउ,
संकिल्लहिं जंबुसामिचरिउ ।
पडिहाइ न वित्थरु अज्जु जणे,
पडि भणइ वीरु संकियउ मणे ॥
भो भव्वबंधु किय तुच्छ कहा,
रंजेसइ कमवि सिट्ठ सहा ।
एत्थंतरि पि सुणसीह सरहो,
तवस्खडु कणिट्ठु बोल्लइ भरहो ॥
विसय संतेवहु दिव्व भुणी,
गुरु पारउ अंतर वीरु सुणी ।
घत्ता—सहि-सर-नियाणु-छिउ बहु विजलु, सर सुन तिह मणिणज्जइ
सोवइ करयलु विमलु जणेण, अहिलासें जिह पिज्जइ ॥२॥

अवियः—
सेट्ठि सिरि तक्खडेणं भणियं च तओ समत्थमाणेण ।
वड्ढइ वीरस्स मणे कइत्त-करणुज्जमो जेण ॥१॥
मा होंतु ते कइंदा गरुय पबंधे वि जाण निव्वूढा ।
रसभाव मुग्गिरंती विथरई न भारई भुवणे ॥२॥
संतिकई वाईविहु वण्णुक्करि सेसु फुरिय-विण्णाणो
रस-सिद्धि-संठियत्थो विरलो वाई कई एक्को ॥३॥
विजयंतु जए कइणो जाण वाणी अइट्ठ पुव्वत्थे ।
उज्जोइय धरणियलो साहइ वट्टिव्व णिव्वडई ॥४॥
जाणं समग्ग सद्दो हज्झे हुउ रमइ मइ फडक्कम्मि ।
ताणं पिहु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरई ॥५॥

इय जंबुस्वामिचरिए सिंगार वीर-महाकव्वे महाकइ देवयत्त-सुअ-वीर-विरइए सेणिय-समवसरणागमो णाम पढमो संधि ॥१॥

अन्तिम प्रशस्तिः—
वरिसाण सय-चउक्के सत्तरि-जुत्ते जिणिंद-वीरस्स ।
णिव्वाणा उववण्णे विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्कम णिव कालाओ छाहत्तरि दस-सएसु वरिसाणं ।
माहम्मि सुद्ध-पक्खे दसमी-दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥
सुणियं आयरिय-परंपराए वीरेण वीर णिद्दट्ठं ।
बहुलत्थ-पसत्थ-पयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥
इच्छे (इट्टे?) य दिणे मेहवण-पट्टणे वड्ढमाण जिण-पडिमा
तेणा वि महा कइणा वीरेण पयट्ठि-या पवरा ॥४॥
बहुराय-कज्ज-धम्मत्थ-काम-गोट्ठी-विहत्त समयस्स ।
वीरस्स चरिय-करणे इक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥
जस्स कय-देवयत्तो जणणो सच्चरिय-लद्धमाहप्पो ।
सुह-सील सुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥
जस्स य पसण्ण वयणा लहुणो सुमइ स सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ-णामेत्ति विक्खाया ॥७॥
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया ।
लीलावइत्ति तइया पच्छिम भज्जा जयादेवी ॥८॥
पढम कलत्तं गरुहो संताण कइत्त विडवि आरोहो ।
विणय-गुण-मणि-णिहाणो तणउ तह णेमिचंदो त्ति ।
सो जयउ कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।
पाहाणमयं भवणं पियरुद्देसेण मेहवणे ॥९॥
अह जयउ जस्स णिव्वामो जसणाउ पंडिउत्ति विक्खाओ ।
वीर जिणालय सरिसं चरियमिणं कारियं जेण ॥१०॥
इति जंबूसामिचरियं समत्तं ।

७—कहा कोसु (कथाकोष) श्रीचन्द

आदि भाग—

ओंनम पणवेवि चित्त धवेवि खट्टट्ठादस दोसु ।
लोयत्तय चंदु देउ जिणिंदु आहासमि कहकोसु ॥

पणवेपिणु जिणु सुविसुद्धमई,
चिंतइ मणि मुणि सिरिचंदुकई ।
संसारु असारु सव्वु अथिरु,
पिय-पुत्त-मित्त माया तिमिरु ॥
संपय पुणु संपहे अणुहरइ,
खणि दीसइ खणि पुणु ऊसरइ ।
सुविणय समु पेम्मु विलासविही,
देहु वि खणिभंगुर दुक्खनिही ॥
जोव्वणु गिरि वाहिणि वेयगउ,
लायण्णु वण्णु कर सलिल सउ ।
जीविउ जल-वुब्बय-फेण णिहु,
हरिजालु वरज्जु अवज्ज गिहु ॥
अवरवि जं किंपिवि अत्थि जये,
तं तं वाहिज्ज पलाइ खये ।
इंदिय सुहु सोक्खाभासु फुडु,
जइ णं तो सेवइ किण्ण वडु ॥

घत्ता— इय जाणि वि णिच्चु सव्वु अणिच्चु,
मणु विसएसु ण लिंचिउ ।
जें दाणु ण दिण्णु णउ तउ चिण्णु,
तेणप्पा णउ वंचिउ ॥
बहु दुक्खेयाणिउ धलि विज्जणु,
मुयं मणुय हो पडवि ण जाइ धणु ।
बंधव-यणु लज्जइ णो सरइ,
सुहुं मयभूउनामणुसरइ ॥
मइ भूउ माया जो पोसियउ,
सो देहुवि दुज्जण विलसियउ ।
णउ जाइ समउ ता कंम वरू,
वसु-पुत्त-कलत्त बंधु-पियरू ॥
अणुगमइ सुहासुहु केवलउ,
परलोउ पाहुणयहो संबलउ ।
वाराउ करइ मण्णाण कए,
अणुहवइ दुक्खु पर एक्कु जए ॥
पच्छा माइज्जइ भाइयहिं,
धणु पुत्त-कलित्तहिं दाइयहिं ।
राणियंति खियंत अयाणमणा,
पर पुरिसु पजोयइ मत्तणियणा ॥

घत्ता— इय बुज्झि वि पत्ते पुण्ण पवित्ते,
दिज्जइ सइं विलसिज्जइ ।
एत्तिउ फलु अत्थे जणिमाणत्थे,
जं दुत्थिमणि वइज्जइ ॥

× × × ×

अन्तिम प्रशस्तिः

सर्वज्ञ-शासने रम्ये घोराघौघ-विनाशने ।
धर्मानेक-गुणाधारे सूरस्थे सुरसंस्तुते ॥ १ ॥
अणहिल्लपुरे रम्ये सज्जनः सज्जनोऽभवत् ।
प्राग्वाटवंश-निष्पन्नो मुक्तारत्न-शतायणीः ॥ २ ॥
मूलराज-नृपेन्द्रस्य धर्मस्थानस्य गोष्ठिकः ।
धर्मसार-धराधारः कूर्मराज-समः पुरा ॥ ३ ॥
कृष्णनामा सुतस्तस्य गुणरत्न महोदधेः ।
बभूव धर्म-कर्मण्ये जनानां मौलिमंडनं ॥ ४ ॥
निद्रान्वय-महामुक्ता-मालायां नायकोपमः ।
चतुर्विधस्य संघस्य दान-पीयूष वारिदः ॥ ५ ॥
धर्मैकाजयती तस्य कृष्णस्येव सुभद्रिका ।
राणूनाम प्रिया साध्वी हिमांशोरिव चन्द्रिका ॥ ६ ॥
तस्यां पुत्रत्रयं जातं विश्व-सर्वस्व-भूषणं ।
बीजासाहणपालाख्यौ सोढदेवही स्तृतीयकः ॥ ७ ॥
चतस्रश्च सुतास्तस्या धर्म-कर्मैककोविदाः ।
श्री शृंगारदेवी च सूः सोग्गूरिति क्रमात् ? ॥८॥
कलिकाल-महाव्याल-विष व्याकुल चेतसः ।
जैनधर्मस्य संपन्ना जीवास्तु स्तत्र सुंदका ॥ ९ ॥
महाश्रावक-कृष्णस्य संतानेन शुभात्मना ।
व्याख्यापितः कथाकोशः स्वस्य कर्म-क्षयहेतवे ॥१०॥
कुन्देंदु-निर्मले कुंदकुंदाचार्यान्वयेऽभवत् ।
धर्म्मो मूर्त्तः स्वयं वा श्रीकीर्तिनामा मुनीश्वरः ॥११॥
तस्मात्तमोपहः श्रीमान्न प्रभावोऽति निर्मलः ।
श्रुतकीर्तिः समुत्पन्नो रत्नं रत्नाकरादिव ॥१२॥
विद्वान्समस्तशास्त्रार्थ-विचारचतुराननः ।
शरच्चन्द्रकराकार-कीर्तिव्याप्त-जगत्त्रयः ॥१३
व्याख्यानृत्व-कवित्वादि-गुणहंसैकमानसः ।
सर्वज्ञ-शासनाकाश-शरत्पार्वण-चन्द्रमा ॥१४॥
गांगेय भोजदेवादि-समस्त-नृप-पुंगवैः ।
पूजितोऽत्कृष्ट पादार विंदो विध्वस्त कल्मषः ॥१५

भव्य-पद्माकरानन्दी सहस्रांशुरिवापरः ।
ततो गुणाकरः कीर्ति महस्रीव पदोऽजनि ॥१६॥
कर्पूर-पूरोज्ज्वल-चारुकीर्तिः सर्वोपकारोद्यत-चित्तवृत्ते ।
शिष्यः समाराधित वीरचन्द्रस्तस्य प्रसिद्धो भुवि वीर्यचन्द्रः १७
सूरेश्चारित्र-सूर्यस्य तस्य तत्त्वार्थवेदिनः ।
विवेक वसति विद्वान्सोऽस्य श्रीचन्द्रोऽभवत् ॥१८॥
भव्य-प्रार्थनया ज्ञात्वा पूर्वाचार्यकृतां कृतिः ।
तेनायं रचितः सम्यक् कथाकोशोऽतिसुन्दरः ॥१६
यदत्र स्खलितं किञ्चित् प्रमाद वशतो मम ।
तत्क्षमंतु क्षमाशीलाः सुधियः शोधयंतु च ॥२०॥
यावन्मही मरन्मर्त्या मरुतो मंदरोरगाः ।
परमेष्ठी पावनो धर्मः परमार्थ-परमागमः २१॥
यावत्सुराः सुराधीशः-स्वर्गचन्द्रार्क-तारकाः ।
तावत्काव्यमिदं स्थेयाच्छ्रीचन्द्रोज्वल-कीर्तिमत् ॥२२॥

८—रयणकरंडसावयायार (रत्नकरण्डश्रावकाचार)
पण्डित श्रीचन्द्र, रचना काल सं० ११२३

आदिभागः—

सो जयउ जम्मि जिणो पढमो पढमं पयासिउं जेणं ।
कुगईसु पडंताणं दिण्णंकर-लंवणं धम्मो ॥१॥
सो जयउ संतिणाहो विग्घं सहस्साइं णाममित्तेण ।
जस्सावहत्थिऊणं पाविज्जइ इच्छिया सिद्धी ॥२॥
जयउ सिरि वीरइंदो अकलंको अक्खओ णिरावरणो ।
णिम्मल-केवलणाणो उज्जोइय सयल- भुवणयलो ॥३॥
सिद्धिवि विजय वुद्धि तुट्ठि पुट्ठि पीयंकर ।
सिद्ध सरूव जयंतु दिंतु चउवीस वि तित्थंकर ॥४॥
घत्ता—अवरवि जे जिणइंदा सिद्ध-सूरि पाठय वर ।
संजय साहु जयंतु दिंतु बुद्धि महु सुंदर ॥१॥

पणवेप्पिणु जिण वयणुग्गयाहं विमलइं पयाइं सुयदेवयाहं ।
दंसण-कह-रयणकरंडणामु आहासमि कव्वु मणोहिरामु ।
गुणवंत पहाणु महा महल्ल इत्थवि अणेय कई छइल्ल ।
हरिणंदि मुणिंदु समंतभद्द, अकलंक पयो परमय-विमद्दु ।
मुणिवइ कुलभूसणु पायपुज्ज, तहा विज्जाणंदु अणंतविज्ज
पय ? रसेणु महामइ वीरसेणु जिणसेणु कुवोहि-विहंजसेणु
गुणभद्दुवसांकुर उच्चमल्लु सिरि सोमराउ परमय-स-सल्लु
च उमुह चउमुह व पसिद्ध भाइं कइराइ संयंभु सयंभुणाइं ।
मह पुष्फदंतु तिहुयणरतु वरिणिज्जइ किं सुयणुवि कोसु ।
सिरिहरिस-कालिदासाइं सार, अवरवि को गणइ कइयाकार ।
दीवोहिं मह संपइ वारिसेहिं किं कीरइ तहिं अण्हारिसेहिं ।

घत्ता—सो सिरिचंद सुरिंद फणि णरिंद वंदिय पयउ ।
अक्खय सुक्ख णिवासु होइ देव परमप्पउ ॥३६॥

इय पंडियसिरिचंदकए पयडियकोउहलसए सोहणभाव-पव्वत्तए परितोसिय-बुह-चित्तए दंसणकहरयणकरंडए मिच्छत्त-पडहिं तिरंडिए कोहाइ-कसाय-विहंडए सत्थम्मि महागुण-मंडए देव-गुरु-धम्मायण-गुणदाम-पयासणो णाम पढमपरिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १ ॥

अन्तिमभागः—

परमार-वंस-मह गुण उरणाइं ।
कुंदकुंदाइरियहो अण्णाइं ।
देसीगण पहाणु गुण गणहरु,
अवइण्णउ णावइ सइ गणहरु ॥
तव पहा वि भाविय वासउ,
धम्मज्झाण विणिहय पावासउ ।
भव्वमणो णलिणाण दिणेसरु,
सिरिकित्ति तिसु चित्त मुणासरु ॥
तासु सीस पंडिय-चूडामणि,
सिरि-गंगेय-पमुह पउरावणि ।
पोलत मिय सुइया सरोरु कुमुणि,
उंहुलिण मय गयण सहासकुसल ॥
वरस-पसरय-साहिय-महियलु,
णियमहत्त-परिणिज्जिय-णहयलु ।
चउविह-संघ-महाधुर-धारण,
दुसह-काम-सर-घोर-णिवारण ॥
धम्मु व रिसिरूवें जस रूवउ,
सिरि-सुयकित्ति-णाम संभूयउ ।
तासु वि परवाइय-मय-भंजणु,
णाणा बुहयणमणि अणुरंजणु ॥
चारु-गुणोहर-मण-रयणायरु,
चाउरंग-गण-वच्छल्लय यरु ।
इंदिय चंचल मयहं मयाहिउ,
चउकसायसार गमिगाहिउ ॥
सिरिचंदुज्जल-जस संजायउ,
णामें सहसकित्ति विक्खायउ ।

घत्ता—तहो देव इंदुगुरु सीसु हुउ,
वीयउ वासव मुणि वीरिंदु ॥
उदयकित्तीवि तहा तुरिय,
सुहइंदु वि पंचमउ भणि उ ।

जो चरण कमल आयम पुराणु,
णाउत्तइं यहु साइम-समाणु ॥
आइरिय महा-गुण-गण-समिद्ध,
वच्छल्ल-महोवहि जय पसिद्ध ।
तहो वीरइंदु मुणि पंच मासु,
दूरज्झिय-दुम्मइ, गुण-णिवासु ॥
सउजण्ण-महामाणिक्क-खाणि,
णय-सीलालंकिउ दिव्व-वाणि ।
सिरिचंदु णाम सोहण मुणीसु,
संजायउ पंडिय पवम सीसु ॥
तेणेउ अणेय छरिय-धामु,
दंसण-कह-रयण-करंडु णामु ।
किउ कव्वु विहिय-रयणोह-धामु,
ललियक्खरु सुमणु मणोहिरामु
जो पढइ पढावइ एयचित्तु,
संलिहइ लिहावइ जो णिरुत्तु ॥
आयण्णइ मण्णइ जो पसत्थु,
परिभावइ अह-णिसु एउ सत्थु ।
जिण्णइ ण कंमायहिं इंदएहिं,
तोलिय इह लो पासंडिएहिं ॥
तहो दुक्किय कम्मु असेसु जाइ,
सो लहइ मोक्ख-सुक्खइं भणाइं ।
जिणणाह-चरण-जुय भत्तएण,
अमुणंते कव्वु करंतएण ॥
जं काइं वि लक्खण-छंद-हीणु,
जइ भणइं सुत्तउ मह अहिय-हीणु ।

घत्ता—तं खमउ सव्वु जण णमिय,
सुय-देवय अणयाय मह ॥
जमि पुन्नयणिज्ज सिरिचंदमईं,
घइ य भडारी णिउसमइ ।

णुणाग्ह सेरीमा वाससया विक्कमस्स महिवइणो ।
जइया गया हु तइया समाणिए सुंदरं रइयं ॥

कण्णणरिंदहो रज्जमुहि सिरि सिरियालपुरम्मि बुह ।
पालुपुर सोहि सिरिचंदे एउ कउ णंदउ कव्वु जयम्मि ॥
जयउ जिणवरु जयउ जिणधम्मु वि
जयउ जइ जयउ साहु संघइ सुहंकर ।
पराणंव हो भव्वयण
कुणउ जयहो सा सुह परंपर ।
दाण पुज्ज दय धम्म-रय सच्च मउच्च वि चित्त ।
भव्व जयंतु सया सुयण बहुगुण परहिय चित्त ॥
जयउ णरवइ णाम णायणेत्तु पयपालउ धम्मुरउ ।
सयणबंधु परिवारि सहियउ
णिएणामिय विउणु जणु ।
जेण णियय णियकम्मि णिहियउ
परुणयउ मेइणि सइं हयउ ।
वरिसउ देवमया वि कित्ति धम्मु
णाणइ जयउ जसु मंडण ण कयावि ॥
जाम मेइणि जाम महणाइड
कुल-पव्वय जाम तहिं ।
जाम दीव गह रिक्ख-यह
पालइ आयम सयल ।
जाम सग्गु सुर णियरु सुरवइ
जाम रायणु चंदु-रवि ।
तं जिणधम्मु पसत्थु ताम जणउ
सुहुभव्वयणि जयउ गुहु जइ साधु ।
जो सव्वणु तिलोयवइसिद्ध सइं मेंहु ।
ताम जणउ सुहु भव्वयणि दंसणकह रयणकरंडु ॥

इति श्री पंडिताचार्य-श्रीचन्द विरचिते रत्नकरण्डनाम शास्त्रं समाप्तम् ।

९—सुकमालचरिउ (सुकुमालचरित)
विबुध श्रीधर रचना सं० १२०८

आदिभाग :—
सिरि पंच गुरुहं पय वंदणहं पणविवि रंजिय समरहं ।
सुकमालसामि कुमरहो चरिउ आहासमि भव्वयणहं ॥

× × ×

एक्कहिं दिणे भव्वयण-पियारए,
बलडइ णामे गामे मणहारए ।
सिरि गोविंदचंद णिव पालिए,
जणवइ सुहयारयकर लालिए ।
दुत्थिय थारह अवयर मंडिए,
पवयणुद्धयवर अवदंडिए ।
जिणमंदिरे वक्खाणु करंतें,

भव्वयणहं चिरु दुरिउ हरंतें ।
कलवाणीए बुहेण अणिंदे,
पोमसेण णामेण मुणिंदे ।
भासिउ संति अणेयइं सत्थइं,
जिण सासणे अवराइं पसत्थइं ।
पर सुकुमालसामिणा मालहो,
कररुह मुह विवरिय वरबालहो ।
चारु चरिउ महुँ पडिहासइ तह,
गोवरु बुहयणमण हरणु वि जह ।
तं णिसुणेवि महियले विक्खाएं,
पयडसाहु पीथे तणु जाएं,
सलखण जणणी गब्भुप्पण्णें,
पउमा भत्तारेण रवण्णें ।
सहरसेण कुवरेण पउत्तउ,
भो मुणिवर पइं पभणिउ जुत्तउ ।
तं महु अग्गइ किएण समासहि,
विवरेविणु माणसु उल्लासहि ।
ता मुणि भणइ बप्प जइ णिसुणहि,
पुव्व-जम्म-कय दुरियइं विहुणहि ।

घत्ता—अहमथि वि णिरुसिरुहरु, सुकइ तच्चरित्तु विरयावहि ।
इह रत्ति वि कित्तिणु तव तणउ सुहु परत्थें धुउ पावहि ॥२

ता अरणहि दिणि तेण छइल्लें,
जिणभणियागम सत्थ रसल्लें ।
कइ सिरिहरु विणएण पउत्तउ,
तुहु परियाणिय जुत्ताजुत्तउ ।
पुहुं तुहु हियय सोक्ख-वित्थारणु,
भविदण मण चिंतिय सुहकारणु ।
जइ सुकमालसामि कह अक्खहि,
विरएविणु महु पुरउ ण रक्खहि ।
ता महु मणहु सुक्खु जाइय लइ,
तं णिसुणेवि भासइ सिरिहरु कइ

× × ×

भो पुरवाड-वंस सिरिभूसण,
भरिय-णिम्मल-पम्मत्त विहूसण ।
पुरक्कविणु दो एवि आयरणहि,
जंइ पुणिहउ मा अवगरणहि ।

इयसिरि सुकुमालसामि मणोहरचरिए सुंदरयर गुण-रयण णियरस भरिए विबुह सिरिसुकइ-सिरिहरविरइए साहु पीथे पुत्त कुमरणामंकिए अग्गिभूइ-वाउभूइ-सूरमित्त मेलावयण वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्तिमभागः—

आसि पुरा परमेट्ठिहि भत्तउ,
चउविह चारु दाण अणुरत्तउ ।
सिरिपुरवाड-वसमंडण चंधउ,
णिय गुण णियराणंदिय वंधउ ।
गुरु भत्तिय पणामिय मुणीसर,
णामें साहु जग्गु वणीसर,
तहो गल्हा णामेण पियारी,
गेहिणि मण इच्छिय सुहयारी ।
पविमल सीलाहरण विहूसिय,
सुह सज्जण बुहयणह पसंसिय ।
ताहें तणुरुहु पीथे जायउ,
जण सुहयरु महियले विक्खायउ ।
अवरु महिंदे वुच्चइ वीयउ,
बुहयणु मणहरु तिकउ तइयउ ।
जल्हणु णामें भणिउ चउत्थउ,
पुण वि सलक्खणु दाण-समत्थउ ।
छट्ठउ सुउ संपुण्णु हुअउ जह,
समुदपाल सत्तमउ भणउ तह ।
अट्ठमु सुउ णयपालु समासिउ,
विणयाइय गुण गणहिं विहूसिउ ।
पढमहो पिय णामेण सलक्खण;
लक्खण-कलिय-सरीर-वियक्खण ।
ताहे कुमरु णामेण तणूरुहु,
जायउ मुह पह पहय सरोरुह ।
विणय-विहूसण भूसिउ कायउ,
मय-मिच्छत्त-माण-परिचत्तउ ।

घत्ता—णाणु अवरु बीयउ पवरु कुमरहो हुअ घर गेहिणि ।
पउमा भणिया सुअयाहिं गणिय जिण-मय-पर वहुगेहिणि ।

तहे पाल्हणु णामेण पहूयउ,
पढम पुत्तु णं मयण-सरूवउ ।
बीयउ साल्हणु जो जिणु पुज्जइ,
जसु रूवेण ण मणहरु पुज्जइ ।

सइयउ वलें भणि वि जाणिज्जइ,
पंचम-सुयणहिं सम्माणिज्जइ।
तुरियउ जयउ सुरउ णामें,
णावइ णिवसइ दरमिउ कामें।
पुणहं णासिसहं पच्चक्खउ,
जिणमयर महं होउ दुक्खक्खउ।
मज्झुविए जि कज्ज ण भयणें,
.........................,
चउविहु संघु महीयलि णंदउ,
जिणवर-पय-पंकय पुणं दउ।
फ हु जाउ पिसुणु खलु दुज्जणु,
दुट्ठ दुगमउ णिदिय सज्जणु।
एउ सत्थु मुणिवरहं पढिज्जउ,
भत्तिए भवियणेहिं णिसु णिज्जउ।
जाम णाहं गणि चंद-दिवायर,
कुलगिरि-मेरु-महीयल-सायर।
पीथे वंसु ताम णहियंदउ,
सज्जण सुहि सयाइं णंदिदउ।
बारह सयइं गयइं कय हरिसइं,
अट्ठोत्तरं महीयले वरिसइं।
कसण पक्खे अगहणे आयए,
तिज्ज दिवसे ससिवार समायए।
घत्ता—बारह सयइं गंथह कयइं पद्धडियहिं ह-वयणउ।
जण-मण-हरणु-सुहु-वित्थरणु एउ सत्थु संपुण्णउ ॥१२

इय सिरि सुकमालसामि मणोहर चरिए सुंदर यर गुण-रयण णियरभरिए विबुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु पीथे पुत्त कुमार णामंकिए सुकुमालसामि सव्वत्थ-सिद्धि गमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि ६॥

१०—हरिवंस पुराणु (हरिवंश पुराण) धवलकवि

आदि भागः—

ओगाए दीहणालं सोमि-दली-कयह-केसर सुमोहं।
मह पुरिम तिमद्धिश्लं हरिवंस मरोरुह जयउ ॥ १ ॥
हरि-पंडुयाण कहा चउमुह वासेहिं भासियं जइ या।
तह विरयमि लोयपिया जेण ण णासेइ दंसणं पवरं ॥ २ ॥
विम-सोमिय वरवीरं जइ सा वारिस संठियारी।
दउत्त दंसण गइयं मिच्छसकंतियं कयं ॥ ३ ॥
मह गोतमेन भणियं सेणियराएण पुच्छियं जइ या।
तह जिणसेणेण कयं तह विरयमि किंपि उद्देसं ॥ ४ ॥
धण्णा किं मण्णमि हरी कप्पयरो मायरो-सुरसेलो।
णं णं अप्पपसंसा परणिंदा गरहिया लोये ॥ ५ ॥
अप्पाणं जेण थुवं बुद्धिविहीणेण णिंदियं तेण।
पुक्कार णवइ जणो पहायरो पायडो तह वि ॥ ६ ॥
जो सोहइ वि रयण पया विसुद्धा जिणवरेहिं जह भणिया।
णं तेण वि सासो भवियायण वच्छलो तह वि ॥ ७ ॥
सुन्वउ भवियाणंदं पिसुण चउक्काय मद्दउणसूलं।
धवलुय धवलेण कयं हरवंस-मण-सोहणं कव्वं ॥ ८ ॥
अत्थसारउदोसपरिमुक्कु,मणाणहिणिच्चाइयउधवलु कव्वुमणोहरु
एहु कसिउ भवियक्खणाहिं, करहु कएण जण गुणमहायरु ॥९॥
जिणणाहहोकुसुमंजलिदेवणु, णिक्भूसणगुणिवरपयवंदि।
पवर चरिय हरिवंस कवित्ते,धवलउ पयडिउ सूरहो पुत्ते ॥१० ॥

× × ×

कइं चक्कवइ पुव्वि गुणवंतउ,
धीर (धर ?) सेणु होंतउ सुपसिद्धउ।
पुणु सम्मत्त जुत सरागउ,
जेण पमाणगंथु किउ चंगउ।
देवणंदि बहुगुण जस भूसिउ,
जे वायरणु जिणिंदु पयासिउ।
वज्जसूरु सुपसिद्धउ मुणिवरु,
जें णय-पमाणु-गंथु किउ सुंदरु।
मुणि महसेणु सुलोयणु जेण,
पउमचरिउ मुणि रविसेणेण।
जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु,
जडिल मुणीणु वरंगचरित्तु।
दिणयरसेणें चरिउ अणंगहो,
पउमसेणे आयरिय पासहो।
अंधसेणु जे अमियाराहणु,
विरइय दोस विवज्जिय सोहणु।
जिण चंदप्पह चरिउ मणोहरु,
पाव-रहिउ धणयत्तु सु-सुंदरु।
वण्णमि किम गुणाइं बहुचइं,
विण्हुसेण रिसिमुणि चरियइं।
सीहणंदि गुरुणं अणुवेहा,
णरदेवें णवयार सुवेहा।
सिद्धसेणु जे भेउ णागउ,
भविय विणोय पयासिय चंगउ।

रामणंदि जे विविह-पहाणा,
जिण सासणि बहु-रइय-कहाणा ।
असगु महाकइ जे सु-मणोहरु,
वीर जणिंद चरिउं किउ सुंदरु ।
केत्तिय कहमि सुकइ-गुण-आयर,
गेय कव्व जहिं विरइय सुंदर ।
सणक्कुमारु जे विरयउ मणहरु,
कइ गोविंद पवरु सेयंवरु ।
तह वक्खइ जिणं रक्खिय सावउं,
जे जय धवलु भुवणि विक्खायउं ।
सालिहद्द कय जीयउं देवउं,
लोए चउमुह दोण-पसिद्धउ ।
एक्कहि जिण सासणे अच्छलियउं।
सेढु महाकइ जसु णिम्मलियउ ।
पउमचरिउ जि भुवणि पयासिउ,
साहु णरेहि णरवरहिं पसंसिउ ।
हुउ जडु तो वि किंपि अब्भासमि,
महियले जिणिय बुद्धि पयासमि ।

घत्ता—

सहस किरणु रइ वे विणय णिचंडे वि तिमिरं असेंसु पणासहिं ।
णियसत्तें मणि दीवउ जइविसु थोवउंतोवि उज्जोवि पयासहिं ॥२

× × × ×

मूले कहिउं इहु वीर जिणिंदु,
पुणु गोत्तमेण सुधम्मु मुणिंदु ।
जंवूसामिं विविहं रसएण,
णंदिमित्ति अवरज्जियं कएण ।
गोवद्धणु तह भद्दबाहु मुणि,
तह विसाहु पोट्ठिलु खत्तिउ मुणि ।
पुणु जय तह णाग सु सिद्धत्थु,
धिइसेणहो एं मइं सत्थु ।
विजयहो बुद्धिलं गंगदेवहो,
धम्मसेण णक्खत्त मुणिंदहो ।
जयपालहो पडुहो धुवसेणहो,
कंसायरियहो तहव सुभद्दहो ।
जयभद्दहो तह पुणु जसभद्दहो,
आउ सत्थु एहु लोहाइज्जहो ।
पुणु कमेण बहु गय सुयहाणहो,
एहु सत्थु आयउ जिणसेणहो ।

जिणसेणें पुणु इह उज्जोयउ,
अंवसेण रिसिणा मइ ढोयउ ।
एवइ हउं भवियणहं पयासमि,
पयडउ अत्थु असेसुवि दरिसमि ।
वालो विद्धो वि तिहइ सुहेण,
मुक्खु विविउ वीसु वुज्झइ जेण ।

घत्ता—

एहु जिण वयणु परोइउं कम-कमं
आयउ आगउ पुणु पवित्तु ।
णिसुणहो पावपणासणु भवियहु
बहुगुणु अविचलु-धरिविणु चित्तु ॥१॥

मइ विप्पहो सूरहो णंदणेण,
केसुल्ल उवरि तह संभवेण ।
जिणवरहो चरण अणुरत्तएण,
णिग्गंथहं रिसियहं भत्तएण ।
कुतित्थ कुधम्म विरत्तएण,
णामुज्जलु पयडु वहंतएण ।
हरिवंसु सयलु सुललिय इएहिं,
मइ विरयउ सुट्ठु सुहावएहिं ।
सिरि अंवसेणु गुरवेण जेम,
वक्खाणि कियउ अणुकमेण तेण ।

सज्जण गुणे वि बहुगुण भणंति,
दुज्जण पच्चोलिउ दोस लिंति ।
इहु दुट्ठहं खलहं सहाउ को वि,
लाए वि दोस णिद्दोस हो वि ।
जे खाहि पियहिं धणु विढवंति,
अप्पाउ समत्ता खल भणंति ।
जे विढ वि विसंचहि अत्थु केवि,
तिट्ठाउ खुल्लहिं खलहि तेवि ।
वक्खाणहिं जाणहिं जे पढंति,
वाय तरि हूया ते भणंति ।
जे विविह सत्थे णे मुणंति केवि,
जसु सुक्ख व लक्खण भणहिं ते वि ।
वसहहि महंत जे खंति पर,
ते वुच्चहिं खलहिं असक्कणर ।
जे परिहिउण सहहि पोरुसेण,
परजंडा वुच्चहिं खलयणेण ।

जे माय जिमक्कहिं लिप्पइंति,
तहु कुक्कड सुरइ ममणुको वि।

घत्ता—

जो कयइमिउ ण तेहिं चमुरेहिं सोहउ सुयवि ण देसमि।
पउरवहहं दोविणुरिमिय गंदेविणु ममाणिमुणहु कह मणमि॥१

अन्तिम भाग—

जिणवयण-दहो-णयमूव जेवि,
चउवयणा मंतम दंतु तेवि।
रोहइ दसंतु सुव विण्णरंतु,
णाणा-पयाण-पइ-पायडंतु।
मइ सुहि विहूणें कहिउ जंजि,
जिणमुहणिगाय महो खमउ तंजि
मुणिदेव पसाएणु अणुहएण,
णिहुसणि जंपिउ अंविणण।
पंडालंकारें ण विहीणु,
महु होम ण दीसउ सुदिहीणु।
जह वाणुय अंतइ जेम तेम,
तह पुण लिहिय अणीयसेण।
जिणसेण मुणु वेच्छेवि णहु,
मइ विरयउ भवियहो पुणु जिसेतु
जो को वि सुणइ णहु महपुराणु,
हरिवंसपुराणु हरिसुय पहाणु
जो लिहइ लिहावइ को वि भव्वु,
णाणा-पयगु तहो होइ सव्वु
हो मह विढव वहिरागु वयण,
वंभाहवेण पुण वि कयण।
मम्मइ ओवइ मयण काल,
जो णायइ हरिकुल णाम माल।
हे णाइ संति सायाहिराउ,
विहरंतु रोमिजिणु हरइ पाउ।
पावगु करिवह जिण णवण णाणु
णिग्गाउ णयणु महिरवाणु

घत्ता—

जो जिणे पयरागइं सुसच्चिवाइ णिमुणइ अंविर को मरहर
महो वासविसाणु जिण-सुहवाणु होउ देसि पयणुवि कहइ॥

इय हरिवंस पुराणे समत्तं,

११—छक्कम्मोवएस (षट्कर्मोपदेश)
अमरकीर्ति, रचनाकाल सं० १२४७

आदि भाग:—

परमप्प-भावणु सुह-गुण-पावणु
णिद्दलिय-जम्म-जरा-मरणु।
णाणमय-सिरि-सुंदरु पणय-पुरंदरु,
रिसहु णविवि भवियण सरणु॥

× × ×

अह गुज्जर-विसयहु मज्झि देसु,
णामेण महीयडु, बहु-पएसु।
णयरामर-णर-गामहिं णिरुद्ध,
णाणा-पयार-संपइ-समिद्धु।
तहिं णयरु अत्थि गोदहय णामु,
णं सग्गु णिविट्ठु सुरेम-धामु।
णाणावइं पंतिउ जहिं सहंति, (जमंति ?)—
मरयस्सहु सोहा ण वहंति।
धय-किंकिणि कलरावहिं सरिहिं,
णं कहइ सुरइं णाविय पसिद्धि।

घत्ता—

हेमागय-छोयहिं आय-णमीयहिं,
अणिमिसि मणि मोहियसउ।
पुवहिं संठामउ अणिसु-पयासउ,
पायडु अच्छु पयणियसउ॥२॥
तं चालुक्क-वंसि णय-भायउ,
णायइ कण्हु-णरिंदु पहाणउ।
सो कम्मरासि-विहंसणु,
भणिउ सम्मालिय-सुइंसणु।
जिय-कंदिमणेय-भणु-भायउ,
सत्तसग्गु णं हरिविय-रायउ।
मयण-राय-आविस-णिय-विरायउ,
पुइसिद्धि···वि अत्थि तहो विराउ।
धम्म-ओसधार-गुह-दायइं,
विहव-जम्मे सव पुण्णि-पयावइं।
आणु रिम सणु णयइ माणइं,
दुक्खु दुद्दिक्खु जेव ण णिवाइं।
जिमइ-ईसरोसहो अहि पंडेहर,
णं पुरिमा-हंसिहं णं वणयर।

दंसणेण जसु दुरिउ विलज्जइ,
पुण्ण-हेउ ज जणि मण्णिज्जइ ।

घत्ता —
अमियगइ महामुणि, मुणिचूणामणि,
आसितित्थु समसील-धणु ।
विरइय-बहु-सत्थउ, कित्ति-समत्थउ,
सगुणाणंदिय-णिवइ-मणु ॥ ५ ॥
गणि संतिसेणु तहो जाउ सीसु,
णिय-चरण-कमल-णामिय- महीसु ।
माहुर-संघाहिउ अमरसेणु
तहो हुउ विणेउ पुणु हय-दुरेणु ।
सिरिसेणसूरि पंडिय-पहाणु,
तहो सीसु वाइ-काणण-किसाणु ।
पुणु दिक्खिउ तहो तवसिरिणिवासु,
अत्थियण-संघ-बुह-पूरियासु ।
परवाइ-कुंभ-दारण मइंदु,
सिरिचंदकित्ति जायउ मुणिंदु ।
तहो अणउ सहोयरु सीसु जाउ,
गणि अमरकित्ति णिहणिय पमाउ ।
अहणिसु सुकइत्त विलोय लीणु,
जामच्छइ बहु-विह-सुय-पवीणु ।
तामण्णहिं दिणि विहियायरेण,
णायर-कुल-णयण-दिणेसरेण ।
चच्चिणि गुणवालहं णंदणेण,
अव दिण्णदाण पेरिय मणेण ।

घत्ता—
भव्वयण पहाणें बुहगुण जाणें, बंधवेण अणुजायइं ।
सो सूरि पवित्तउ, लहु विण्णत्तउ, भत्तिएँ अंब पसाइं ॥ ६ ॥
परमेसर पइं णवरस-भरिउ,
विरइयउ णेमिणाहहोचरिउ ।
अण्णु वि चरित्तु सव्वत्थ-स हउ,
पयडत्थु महावीरहो विहिउ ।
तीयउ चरित्तु जसहर-णिवासु,
पद्धडिया-बंधें किउ पयासु ।
टिप्पणउ धम्मचरियं हो पयडु,
तिह विरइउ जह बुज्झेइ जडु ।
सक्कय-सिलोय-विही-जणियदिही,
गुंफियउ सुहासिय-रयण णिही ।
धम्मोवएस-चूडामणिक्खु,
तहो झाण-पईउ जि झाणसिक्खु ।
छक्कम्मुवएसें सहुं पबंध,
कय अट्ठ संख सइं सच्चसंध ।
सक्कय-पाइय कव्वय घणाइं,
अवराइं कियइं रंजिय-जणाइं ।
पइं गुरुकुलु ताय हो कुलु पवित्तु,
सुकइत्तें सासउ किउ महंतु ।
कइयण-वयणामउ जे पियंति,
अजरामर होइ वि ते णियंति ।
जिह राम-पमुह सुयकित्तिवंत,
कइमुह-सुहाइ पेच्छहि जियंत
कइ तुट्ठउ अप्पापरु समणु,
अक्खयतणु करइ पसिद्धगणु ।

घत्ता—
मंतोसहिं-देवहं, किय चिरसेवहं, धुय पहाउ णहु सीसइं ।
परकाय-पवेसणु, किय-सासयतणु तिहजिह कइहिं पदीसइ ॥ ७
महु आहासहि पयणिय सम्मइं,
अइ काहण्णें गिहि- छक्कम्मइं ।
जाइं करंतउ भवियणु संचइ,
दिणि दिणि सुहु दुक्कयहिं विमुच्चइ ।
तेहिं विवज्जिउ णरभउ भव्वहं,
छग्गा-गल-थण-समु गय-गव्वहं (?)
मइं मइमूढें किं पि ण चिंतउ,
पुण्णं कम्मु इय कम्मु पवित्तउ ।
भव-काणणि भुल्लहो महु अक्खहि,
सम्म-मग्गु सामिय मा वेक्खहि ।
अमरसूरि तव्वयणाणंतरु,
पयडइ गिहि छक्कम्महं वित्थरु ।
मुणि कण्हपुर वंस-विजयद्धय,
णियरूवोहिय-मयरद्धय ।
पूयय देवहं सुइ-गुरु वासणा,
समय-सुद्ध-सज्झाय-पयासणा ।
संजम-तव-दाणहं संजुत्तइं,
जिणदंसणि छक्कम्मइं वुत्तइं ।

घत्ता—रयणत्तय-जुत्तउ, सइलहिं चत्तउ,
गुण-सील-तउ-हणिय-मलु ।

जो दिग्गि-दिण पणइं करइ विहेयइं,
मणुय जम्मु तहो पर महलु ॥८॥

इय छक्कम्मोवएसे महाकइ सिरि अमरकित्ति विरइए महा कव्वे गुणपाल णिरिंदाणि णंदण महाभव्व अंबपसायाणु मण्णिए दाणकम्मविवण्णण णाम चउत्थो संधि समत्तो ।

अन्तिमभागः—

ताइं गुणिणि सोहेवि णिरंतरु,
होयाहिउ विरद्दु णिहिमणरु ।
फेरेउ समस्तु मारंगिहि,
मणहरं उप्परि बुद्धि-महग्गिहिं ।
छक्कम्मोवएस [illegible] भवियहो,
धम्मणिमिन्तउ भणिइं कवियहो ।

अंबपसायइं चच्चिणिउत्तें,
गिह-छक्कम्म-पवित्त-पवित्तें ।
गुणपालहु गुणय णिपाविउ,
अवरेहि मि णियमणि संभाविउ ।

बारह सयइं समत्त-चयालिहिं,
विक्कम-संवच्छरहु विसालहिं ।
गयहिं मि भद्दवयहु पक्खंतरि,
गुरुवारम्मि चउद्दसि वासरि ।
इक्कें मासें यहु सम्मत्तिउ,
सइं लिहियउ आलसु अवहत्थिउ ।

णंदउ परमागम-णिरवाणगु,
भवसायर णियणाहु मागणु ।
णंदउ तहं पि देसि वीरहारि,
जिणगुरु-कमसुम्भव परमेसरि ।
णंदउ धम्मु जिणिंदें भासिउ,
णंदउ संघु मुणीसें भूसिउ ।

णंदउ महियइ धम्म-मग्गरु,
पय पंडिपाचउ-सुय-मइरइ ।
णंदउ सावयणु णिम्मल-दंसणु,
गुरुवग्गहि पाविय जिणसंघणु ।
णंदउ अंबपसाउ चिरायणु,
अमरकित्ति-गुरु-बंधु गुणायणु ।
णंदउ सावहं णिच्च पयाण,
जिणवर-णाम मणि-पय-णयणा ।

घत्ता—

णंदउ चिरु सावहिं मणु इहु
अमरकित्ति-मुणि-विहिउ धवलें ।
जावहि महि मारुय-मेरु-गिरि-सायरगु
अंब पमायविमिस ॥ १८ ॥

इय छक्कम्मोवएसे महाकइसिरि-अमरकित्ति-विरइए-महाकव्वे महाभव्व अंबपसायाणु मण्णिए तव-दाण-धम्मधम्मोवाम चउद्दसमो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ छ ॥
॥ संधि १४ ॥

१२—पुरंदर विहाण-कहा (पुरंदरविधान कथा)

अमरकीर्ति

आदिभागः—

परमप्पय भावणु सुहगुण थारणु,
णिहयणिवजम्म-जरा-मरणु ।
भासय सिरि सुंदर पयय पुरंदर,
णिम्महुयाणिवि णिहुवण सरणु ।
सिरिवीर जिणिंदहो समवसरणि,
सेणियराएं पुच्छणालिहि ।
जिणरूय-पुरंदर विहिहि कहिय तं,
गणहरदेवहि विहिय णिहि ।

अन्तिम भागः—

अमराइसि गुरुसिरि सिहरणाहं,
तह पंडीसर सीसि पमायइं ।
जाइ वि बहु गुणयर समगों,
जइमय पर णय दुहहिणाए ।
घडइ वि गुरुतर कुम्मुतिहि बंधर,
णिराहि पुरुपाविमेरो गंधइ ।

घत्ता—

जिणु इय पुरंदर विहि करइ सुभभाव जो पुण थाइ ।
सो सावयाराइ सेइ जहु अमरकित्ति णिव वेयइ ॥

जिणदत्त चरिउ (जिनदत्तचरित)
पं लक्खणु, रचनाकाल सं० १२७५

आदि भाग.—

णाणेव मरणव हंसहो,
दिप्पउ हंसहो णिंदय वहो ।
भवणि भुवणम चउदंसहो णणपयरुग हो
संतिहि णियहो जिणुपय वहो ।

× × ×

इय पणवेवि हय संसार-सरणि,
पुरवाडवंस तामरस तरणि ।
विल्हण तणुरुह पाय इय धामु,
जिणहरु जिणभत्तु पसिद्ध णामु ।
तहो णंदण णयणाणंद-हेउ,
णामेण सिरिहरु सिरिणिकेउ ।

णिय गोत्तामर पंथो सहीसु,
वणिणीह तरंगिणि तीरिणीसु ।
दुव्वसण कसर भर समण-मेहु,
अगलिय गउरउ गुण गरु अगेहु ।
परिचार भार धुर-धरण-धीरु,
विलसिय विलास सुरवर सरीरु ।

मुणि वयण कमल मयरंद भसलु,
पवयण वयणाहिल मुणण कुसलु ।
सो विलरामे णिवसंतु मंतु,
तहं णिवसइ लक्खणु सीलवंतु ।
तें सिरिणामें कह वसु पयार,
विरइ व पयडिय तहो पुरउ सार ।
णिसुणेवि कहा जिणहरहो पुत्त,
संपभणइ लक्खणहो सुबुद्ध जुत्त ।

घत्ता—

मुणिया हिलवर लक्खण भोकइ !
लक्खण कइ णिसुणे वि अणुरंजियउ ।
महु मणु गुण-गण साउ
पावणु पावें अहं जियउ ॥
पुणु पभणइ सिरिहरु णिसुणि लल्ल,
पर पंडिय सत्थ रस मइ महल्ल ।

वणि अरुहदत्त कइ कहहि तेम,
अहिणव विरइवि महु पुरउ जेम ।
फिट्टइ मण संमउ अज्जु सज्जु,
पाविज्जइ किं प परत्त कज्जु ।
तेसु पसाएं महु सहलु जम्मु,
लहु हवइ वप्प णिहणिय कु-कम्मु ।
अम्हाणुप्परि किज्जउ पसाउ,
अहु सज्जण परिगलिय गाउ ।
तुहुं अणुदिणु मे मणि पुज्ज णिज्ज,
पइं परि भाइउ भउ णिद णिज्ज ।

मुहु मुहु पभणइ कर फंसि जाणु,
लक्खणहो सिरिहरु हरियमाणु ।
बहु भत्ति कुणि वि मउलिय स-पाणि,
दय किज्जउ बंधव परमणाणि ।

घत्ता—

पर चित्तु परिक्खणु तस तणु रक्खणु
सुवियक्खणु लक्खणु स-धणु ।
तं णिसुणेवि पडिहासइ सिरि वि सरासइ
कुमइ-पंसु उवसमइ घणु ॥ ३ ॥
हो हो सिरिहर वणिवर कुमार,
मारावयार कय चारु चार ।

चारहडि चउर चउ रस्स उर,
उरयाहिव सणिणह भोय पउर ।
पउरिस रस रसिय सरीर मोह,
सोहाहिल कलिय पसुक्क मोह ।
मोहिय रूवें पुर रमणि विंद,
वंदियण सासण केलि कंद ।
कंदाविय दुट्ठ जणाण मुद्द,
मुद्दमइ विवज्जिय जस विसुद्ध ।

सुद्धा साहु ऊरिय तेयतार,
तारच्छवि तिरयण रयणसार ।
सारंग वग्ग वर दीहणेत्त,
णेत्ता हराम तामरस वत्त ।
.........पीणिअ सुयण हत्थ,
सत्थेहिं वियाणिय णिरु णायत्थ ।
अत्थावियसुय-पय-रस-विलेस,
सेसिय ? कुविसय विसरस पएस ।

हावाइ णट्ट रस मुणिय भंग,
अब्भंग य सासिय सिहरि संग ।
सिंगार विडवि पोसणु सुमेह,
मेहायर कय पंडिय णेह णेह ।
णेहिल्ल जणहिं कयकित्तिमाल,
मालइ मालंकिय कुडिल बाल ।
बालक्क किरण तणु-तेय लील,
लीलारस पयडिय कामकील ।
कीलारविंद मयरंद भिंग,
भिंगारहिं हाविय जिण णिसिंग ।

घत्ता—अरिदय सायर सायर सुहमण,
मायर दोसायर णायर तिलया।
वणि जिणयत्त कहंतर पुण्ण णिरंतर
णह णिरइज्जइ गुणणिलया ॥ ४ ॥

× × × ×

णिक्कलंकु अकलंकु चउमुहो,
कालियासु सिरिहरि सुमइ सुहो।
वय विलासु कइवासु असरिसु
दोणु वाणु ईसाणु सहरिसो।
पुप्फयंतु सुसयंभु भल्लओ,
वालमीउ सम्मइ रसिल्लओ।
इह कईउ भीम इय दिट्ठिया,
फुरइ धंम मही मइ परिट्ठिया।
धाउलिंग गुण णउ गुण ण कारओ,
कम्मु करणु ण समासु सारओ।
पय समत्ति किरिया विसेसया,
संधि छंदु वायरण भासया।
देस भास लक्खणु ण तक्कओ,
सुणमि णेव णामहि गुणक्कओ।
महाधवलु जयधवलु ण दिट्ठओ,
ण उर यण्ण पयमिह परिट्ठओ।
तह ण दिट्ठु सिद्धंतु णाय..............।

× × × ×

इय जिणयत्तचरिते धम्मत्थ-काम-मोक्खवण्णणगुणभार-गुणविन्ने सगुणसिरिसाहुल्लसुउ-लक्खण-विरइए भव्वसिरिलम्पवाममंणिए जिणयत्तउमाक्खाण-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भाग:—

इह होंतउ आसि जिणत्त सुद्धि,
पुज्जिउ जिणपर नि-रयण विसुद्धि।
जायस महावंस उवयराइ सिंधु,
गुण गरुयत्तर माणिक्क सिंधु।
आयर णरयणहो कोमणासु,
अक्खण सुंदिस णिक्कवडवासु।
अमयासु तासु सुउ सह पवासु,
साहुदु भडउ महुअरण वासु।
लख आणिय जिणमइ जुवइ तासु।
ताहं भय सत्त पसुत्त तासु।
पढमउ अल्हणु सुहि सरय सूरु,
परिवार-भारह-परमाण-पूरु।
पउयणु मयणाभय-पाय-पोट्टु,
अवमेय महामइ-रलिय,दुट्ठु।
जिणह्हवणच्चण-भूसण-सयत्तु,
अहिणाणि य णिहिल विणाय विणु।
मिच्छत्त * रिधय सम्मइवत्तु,
गंभीर परम णिम्मय मइएणु।
किल्लिएल-वेल्लि णिल्लूर-णियणु,
मायर मुउ लक्खणु णेइ-गिल्लु।
परिवार-भार-उद्धरण-धीरु,
जिण-गंध-वारि-पावण-सरीरु।
पवहिय-विपाल-वंदण-विसुद्धि,
सुग सम्पभाव-भावण पसुद्धि।
पहु-सेवय-णर-सिर-मट्ठ-पाय,
वंदीयण दीणह दिण्ण चाय।
भाषणिहि पयोसिय सूरिचंदु,
सउलामर-यह-कम चंदु-वंदु।

घत्ता—

सहोमोहणहो रमाल हो भोयपराज हो कल्लविद्दुण्ण महोयर
सुद्दि महामइ सोहण रिवमल मोहण गुणराहणणिहियापर

गाहल्लु साहुलु मोहणु मल्लु,
वह रयणु मयणु मतणु ति पहपल।
छुहमहि भायर कल्लघाइ भग,
सुहमहि ताहा जायासण थिय।
दुहमहि तादर पय पयरह-हुरेम,
गुहमहि मयणोजस-काणदेह।
साहु सहु सुणिय पिय यस मल्लुञ्ज,
वालंउउय जाम्य णिलय कज।
ताह वि णंदणु लक्खणु सलक्खु,
लक्खण-मण्णिअड-मयरद्धल-रुवरयु।
जिणसिद-जिरयण-वग-गाजिप-गयर,
ने निहुवणगिरि णिवसंति सयर।
सो निहुवणगिरि भगाउ इयवंस,
णिवउ बजेम णिम्मुल्लिदिट्ठ।

लक्खणु सव्वाउ समाणु साउ,
विक्खायउ विहिणा जणिय-राउ ।
सो इत्थ तत्थ हिंडंतु पत्तु,
पुरे बिल्लराम लक्खणु सु-पत्तु ।
मणहरु जिणहर तणुरुह पवित्तु ।
ते णिज्जिउ सिरिहरु परम मित्तु ।
विरदा णंदणु सम्माण घणउ,
लक्खण हो समउ सो करइ पणउ ।
तहे जि सणेहु णिब्भरु महंतु,
दिण दिण तं अइसय वुड्ढि जंतु ।
भद्दवण् पवुट्ठण् मेहुणीरु,
असराल-वारि-पोसिय- सरीरु ।
जं एयारह मण् मासि फारु,
णिवडइ णहारु उ णिब्भरुत्तु सारु ।
खर-कय पयंड-वम्हंड-पूरु,
जं जिट्ठइ णिट्ठरु तवइ सूरु ।
सुवणहो सुवणेसहु णाहु जंजि,
चिरु वट्टइ भोकह चित्तु तंजि ।

घत्ता—
जह अहिणव घण दंसणे ताव विहंसणे चंद कवडगं हुल्लियइ
सिरिहरुसिरिसाहारउरय-परिहारउलक्खणणाणहर सुल्लियइ

णवरेक्कदिणम्मि महाणुभाउ,
आभथि विल्लहो घत्थ-पाउ ।
पभणिउ भो वंधव अइ पवित्तु,
विरइव्वउ जिणयत्तहो चरित्त ।
तहो वयणें मई विरइउ सवोज्ज,
वणिणाहो ववसायउ मणोज्ज ।
पद्धडिया वंधं पायडत्थ,
आइहि जाणिज्जसु सुप्पसत्थु ।
सयलइ पद्धडिया एइं हुंति,
सत्तरि णवज्जु दस य दुणिण संतु ।
एयइ गंथइ सहसइ चयारि,
परिमाण मुणिहु अक्खर वियारि ।
हउ""रक्खरु खलिय लज्ज,
ण वियाणमि हेयाहेय-कज्ज ।
पय-वंध णिवंधु ण मुणमि किंपि,
सइ-विरइउ संपइ चरिउ तंपि ।

× × ×

इयहं चरित्तु जो को वि भव्वु,
परिपढइ पढावइ गलिय-गव्वु ।
जो लिहइ लिहावइ परमु मुणइ,
भावइ दावइ कहइ सुणइ ।
जो देइ दिवावइ मुणिवराह,
जह तह सम्मइ पंडिय पराह ।
सो चक्कवट्टि पउ आइ करिवि,
पालिवि स३कत्तण लच्छि धरिवि ।
अणुहुंज्जिवि संसारिय-सुहाइ,
सव्वइ दिव्वइ पयलिय-दुहाइ ।
उव्वहियाहिल सुहरस-पयासि,
पच्छइ गच्छइ णिव्वुइ णिवासि ।

घत्ता—
वारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं विक्कम कालवि इत्तउ ।
पढम पक्खि रविवारइ छट्ठि सहारइ पूस मासे सम्मत्तउ ॥३

× × ×

सम्मदंसण णाण णिरु सम्मच्चरिय विसालु ।
तं रयणत्तउ सिरिहरहो अहिरक्खउ चिरकालु ॥

—आमेर भंडार प्रति, सं० १६११

१४ सुलोयणाचरिउ (सुलोचनाचरित)
गणिदेवसेन

आदिभाग—
वय-पंच-तिक्ख-णहरो पवयण-माया-सुदीह-जीहालो ।
चारित्त-केसरड्ढो जिणवर-पंचाणणो जयऊ ॥१॥
तिहुवण-कमल-दिणेसु णिरुणासिय-घण तिमिर-भरु ।
पयडिमि चरिउ पसत्थु पणविवि रिसह-जिणेसरु ॥२॥

× × ×

णिवमम्मलहो पुरि णिवसंतें,
चारुट्ठाणें गुणगणवंतें ।
गणिणा देवसेणमुणिपवरें,
भवियण-कमल-पवोहण-सूरें ।
जाणिय धम्माहम्म-विसेसें,
विमलसेण मलहारिहि सीसें ।
मणि चिंतिउ किं सत्थब्भासें,
णिप्फलेण णिरु वयणायासें ।
जत्थ ण धम्म-जुत्त रंजिय सह,
विरइज्जइ पसत्थ-सुंदर-कह ।

एस वि य पा.ंव गुण वि चमक्किउ,
चिरु कइ कव्वइं चिंति विसंकिउ।
जहिं वम्मीय वास सिरि हरिसहिं,
कालियास पमुहहि कइ सरिसहिं।
वाण-मयूर-हलिय-गोविंदहिं,
चउमुह अवरु सयंभु कइंदहिं।
पुप्फयंत-भूपाल-पहाणहिं,
अवरेहिमि बहु सत्थ वियाणहिं।
विरइयाइं कव्वइं णिसुणेप्पिणु,
अम्हारिसइ ण रंजइ बुहयणु।
हउं तह वि धिट्ठत्तु पयासमि,
सत्थ रहिउ-अप्पउ आयासमि।

घत्ता—जइ सुरवइ करिमत्तु, तो किं अवरु महव्वउ।
जइ दुंदहि सुरसदु, तो किं तूर म वज्जउ ॥३॥

जइ आयासं विणयासुउ गउ,
तो किं अवरु म जाउ विहंगउ।
जइ सुरधेणुय जणयाणंदिणि,
दुज्झइ तो किं अवर गणंदिणि।
जइ कप्पद्दुमु फलइ मणोहरु,
तो किं फलउ णाहिं अवरु वि तरु।
जइ पवहइ सुर-सरि मंथर-गइ,
तो किं अवर णाहिं पवहउ णइ।
जइ कइ पवरहिं रइयइ कव्वइं,
सुंदराइं वयणहिमि अउव्वइं।
इउंमि किंपि नियमइ अणुरूवें,
विरए वि लग्गउ काइं वहूवें।
जइ वि ण लक्खणु छंदु वियाणमि,
अवरु निघंटु णाहिं परियाणमि।
णालंकारु कोवि अवलोइउ,
णवि पुराण-आगमु-मणु टोयउ।
मइं पारंभिय तो वि जडत्तें,
वरकह जिणधम्महो अणुरत्तें।
विसुणत्तें सुंदर मइ तूसइ,
हीणु णियवि सुयणत्तें पोसइ।

घत्ता—अह किं पच्छमि एहु, सम्मणिट रोमालओ।
जिम दुव्वें हंगाणु, घोयउ धोयउ कालओ ॥४॥

× × ×

किं करइ पिसुणु संगहिय पाउ,
छुडु महु सरसइ जोहग्ग थाउ।
छुडु णीहरंतु सुंदर पयाइं,
ललियाइं वन्द भासा-गयाइं।
छुडु णय-विरोहु संभवउ अत्थु,
छुडु होउ वयणु सुंदरु पसत्थु।
आयण्णहो बहुविहु-भेय-भरिउ,
हउं कहमि विराणउ चारु चरिउ।
महयरेंहि विचित्तु सुलोयणाहें,
णिव पुत्तहो मयणुक्कोवणाहें।
वयवंति हियय मिच्छत्तियाहं,
वर-दिढ-सम्मत्त-पउत्तियाहं।
जं गाहा-बंधें आसि उत्तु,
सिरि कुंदकुंद-गणिणा णिरुत्तु।
तं एव्वहि पद्धडियहिं करेमि,
परि किं पि न गूढउ अत्थु देमि।
ते णवि कवि णाउ संता लहंति,
जे अत्थु देवि वसणाहिं घि (णि) वंति।

घत्ता—कहियं जेण असेसु मिच्छत्ताउ ओहट्टइ।
अवरु वि बहुत्तर पाउ, तं जीवासिउ तुट्टइ ॥ ६ ॥

× × ×

इय सुलोयणाचरिए महाकव्वे महापुराणे दिट्ठिए गणि-देवसेण-विरइए पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १ ॥

चरमभागः—

णंदउ सुइरु जिणिंदहो सासणु,
जय सुहयरु भव्वयण सामणु।
णंदउ पयजें धम्मु पयासिउ,
पाढउ जेण सत्थु उवएसिउ।
साहु-धम्मु-रयणत्तय धारउ,
णंदउ सावउ वय-गुण धारउ।
दाणु देइ इंदिय मल-डमरहं,
वेज्जावच्चु करेउ मुणि-पवरहं।
णंदउ णरवइ मह परिवारें,
पालिणउ णिरु णियणायारें।
णंदउ पय-पय मुरुवउ पावें,
रंजिज्जउ जिण-धम्म-पहावें।
वीरसेण-जिणसेणायरियइं,
आयम-भार-भेय-वहु-भरियां।

तह संताणि समायउ मुणिवरु,
होट्टल मुत्त[1] णाम वहुगुणधरु ।
रावणु व्व वहुसीस-परिग्गहु,
सयलायम-जुत्तउ अपरिग्गहु ।
गंडविमुत्तु[2] सीसु तहो केरउ,
रामभद्दु णामें तव सारउ ।
चालुक्कियवंसहो तिलउल्लउ,
होंतउ णरवइ चाएं भल्लउ ।
तिणमिव मुयवि रज्जु दिक्खंकिउ,
तिरयण-रयणाहरणालंकिउ ।
जायउ तासु सीसु संजम-धरु,
णिंवडिदेउ णामु णिह णियसरु ।
तासु सीसु एक्को जि संजायउ,
णिहणिय-पंचेदिय-सुह-रायउ ।
सील-गुणोहर गुण रयणायरु,
उवसम-खम-संजम-जल-सायरु ।
मोह-महल्ल-मल्ल-तरु-गयवरु,
भवियण-कुमुयखंडु-वण-ससहरु ।
तवसिरि-रामालिंगिय-विग्गहु[3],
धारिय-पंचायारु-परिग्गहु ।
पंच-समिदि-गुत्तिय-तय-रिद्धउ,
गुणिगण-वंदिउ भुवण-पसिद्धउ ।
मयरद्धय-सर-पसर-णिवारउ,
दुद्धर-पंचमहव्वय-धारउ ।
सिरि मलधारिदेव पभणिज्जइ,
णामें विमलसेणु जाणिज्जइ ।
तासु सीसु णिज्जिय-मयणुब्भउ,
गुरु उवएसें णिव्वाहिय-तउ ।
कलइ धम्मु परिपालइ संजमु,
भविय-कमल-रवि-णिएणासिय-तमु ,
सत्थ-परिग्गहु-णिहय-कुसीलउ,
धम्म-कहाए पहावण-सीलउ ।
उवसम-णिलउ चरिय-रयणत्तउ,
सोम्मु सुयणु जिण-गुण-अणुरत्तउ ।
देवसेण णामें मुणि गणहरु,
विरयउ एउ कव्वु तें मणहरु ।
असुणंतेण किं पि हीणाहिउ,
सुत्त-विरुद्धउ काइंमि साहिउ ।
सयलुवि खमउ देइ-वाएसरि,
तिहुयण-जण-वंदिय-परमेसरि ।
फुडु बुहयणु सोहेप्पिणु भल्लउ,
तं करंत सुय-देइ-णवल्लउ ।
रक्खस-संवच्छर बुह-दिवसए,
सुक्क-चउद्दसि सावण-मासए ।
चरिउ सुलोयणाहि णिप्पण्णउ,
सद्द-अत्थ-वण्णण-संपुण्णउ ।
घत्ता—णवि मइं कवित्त-गव्वेण किउ अवरु केण णवि लाहें ।
किउ जिणधम्महो अणुरत्तएण मण-कय-परमुच्छाहें ॥ १ ॥

आमेर भंडार प्रति सं० १५६०

(दिल्ली पंचायती मंदिरकी खंडित प्रतिसे संशोधित)

१५—पज्जुण्णचरियं (प्रद्युम्नचरितं) सिद्ध या सिंहकविकृतं ।

आदिभागः— १

खम-दम-जम-णिलयहो ति-हुअण-तिलय हो
विगलिय-कम्म-कलंकहो ।
थुइ करमि स-सत्तिए अइणिरुभत्तिए
हरिकुल-गयण-ससंकहो ॥

पणवेप्पिणु णेमि-जिणेसरहो भव्वयण-कमल-सरणेसरहो ।
भव-तरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुम-सर-विणिवारणहो ॥
कम्मट्ठ-विवक्ख-पहंजणहो मय-घण-पवहंत पहंजणहो ।
भुवणत्तय-पयडिय-सासणहो छब्भेयजीव आसासणहो ॥
णिरवेक्ख णिमोह णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो ।
पर-समय-भणिय-णय-सय-महहो कम-कमल-जुयल-णय-
सम-महहो ॥
महसेसिय-दंसिय-सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-करसुप्पहहो ।
माणावमाण-समभावणहो अणवरय-णमंसिय-भावणहो
भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह संपय-पावणहो ॥
घत्ता—
भुवणत्तय-सारहो णिज्जिय-मारहो अवहेरिय-घर दंदहो ।
उज्जयंत गिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि-
कलंकदहो ॥

---

१. द प्रतौ 'पुत्त' इति पाठः, २. द प्रतौ 'गंडइपुत्त' इति पाठः । ३. अ प्रतौ 'विज्जहु' पाठः ।

इय दुरिय रिणं, तइलोयहणं ।
भव-भय-हरणं, णिज्जिय करणं ।
सुहफलकुरुहं, वंदिवि अरुहं ।
पुणु सत्थमई, कलहंसगई ॥
वरवरणपया, मणि धरिवि सया ।
पय-पाणसुहा, तोसिय विबुहा ।
सव्वंगिणिया, बहुभंगिणिया ।
पुव्वाहरणा, सुविसुद्धमणा ।
सुय-वर-णयणी, णय-गुण-णयणी ॥
कइयणजणणी, तं दुह-हणणी ।
मेहाजणणी, सुह-सुय-करणी ।
घर-पुर-पवरे, गामे णयरे ।
णिउ विउससहे सुह-भावणहे ।
सरसइ सु-सरा, महु होउ वरा ।
इम वज्जरइ, कुडु सिद्धकई ।
इय-घोर भए, णिसि भवियगए ।
पहरिद्धट्टिए, चित्त'तु-हिए ॥

घत्ता : —

जासुत्तउ अणइ तातहिं पेच्छइ णारिएक्क मणहारिणिया ।
सियवत्थ णियंथिय कंजय हत्थि य अक्खसुत्तसुयधारिणिया ।२।

सा चवेइ मिथिणं ति तक्खणे, काइंसिद्ध चिंतवहि णियमणे ।
तं सुणेवि कइ सिद्धु जंपए, महमणम्मि णिरु हियउ कंपए ।
कव्वुबुद्धि चित्त'तु लज्जिओ, तक्क-छंद-लक्खण-विवज्जिओ ।
ण वि समासु ण विहत्ति कारओ, संधि-सुत्त गंथहं असारओ
कव्वु कोइ ण कयावि दिट्ठओ, महु णिघंटु केणवि ण सिट्ठओ ।
तेण वहणि चिंतंतु अत्थमि,
गुरुअहो वि ताल हत्थ पंकमि ।
अंधहो वि णयणह पिच्छिरो,
गेय मुणवि वहिरो वि इच्छिरो ।
तं सुणेवि वाजय महासुई,
णिसुणि सिद्ध जंपइ सरामई ।

घत्ता—

भालसु मंकिकल्लहि हियउ मलेल्लहिं मज्झु वयणु इयहिंडु कहिं
हउं सुविधरयणें वहमि णिमेंसं, कव्वु किंपि तं सुहुं करहिं ॥३

ता मलधारि देउ मुणि-पुंगमु
णं पच्चक्ख धम्मु उवसमु दमु ।
माहवचंद आसि सुपसिद्धउ
जो खम-दम-जम-णियम समिद्धउ ।
तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु
वय-तव-णियम-सील-रयणायरु ।
तक्क-लहरि-झंकोलिय परमउ
वर-वायरण-पवर-पसरिय-पउ
जासु भुवण दूरंतरु वंकिवि
ठिउ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि
अभयचंदु णामेण भडारउ
सो विहरंतु पत्तु बुह-सारउ ।
सरिसर-णंदण-वण-संछण्णउ
मठ-विहार-जिणभवण रवण्णउ ।
वम्हण वाडउ णामें पट्टणु
अरि-णरणाह-सेण-दल वट्टणु ।
जो भुंजइ अरिय रय कालहो
रण-धोरिय हो सुअहो वल्लालहो ।
जासु भिच्चु दुज्जण-मण-सल्लणु
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भुल्लणु ।
तहिं संपत्तु मुणीसरु जावहिं
भव्वुलोउ आणंदिउ तावहिं ।

घत्ता—

णियगुण अपसंसिवि मुणिहि णमंसिवि जो लोएहिं अहुगंठियउ
णय-विणय-समिद्धें पुणु कइ सिद्धें सो जइवरु आउंछियउ ॥४॥

पुण पंपाइय-देयणा-णंदणु,
भवियण-जयमण-णयणाणंदणु ।
बुहयण-जणपय-पंकय छप्पउ,
भणइ सिद्ध पणमिउ परमप्पउ ।
विउल गिरिहिं जिह हय भवकंदहो,
समवसरणु सिरिवीरजिणिंदहो ।
णर-वर-खयरामर समवाए,
गणहरु पुच्छिउ सेणियराए ।
मयरद्धयहो विणिज्जिय मारहो,
कहहि चरिउ पज्जुण्णकुमारहो,
तं णिसुणेवि भणइ गणेसरु,
णिसुणइ सेणिय मगह-णरेसरु ।

× × ×

इय पज्जुण्णकहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए कइ-सिद्ध-विरइयाए पढमो संधी परिसमत्तो ॥ १ ॥

अन्तिम प्रशस्ति—

कृतं कल्मष-वृक्षस्य शास्त्रं शस्त्रं सुधीमता
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-सामज-भंजन ॥१

काव्यस्य काम्यं कमनीयवृत्तं वृत्तं कृतं कीर्तिमतां कवीनां ।
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजां लाभाय तस्यात्र सदैव कीर्तिः २॥

सव्वण्हु सव्वदंसी भव-वण-दहणो सव्व मारस्स मारो ।
सव्वाणं भव्वयाणं सवणमणहरो सव्वलोयाण सामी ।
सव्वेसिं वच्छरुवं पयडण-कुसलो सव्वणाणावलोई,
सव्वेसिं भूययाणं करुण-विरयणो सव्वयालं जओ सो ॥३

जं देवं देव देवं अइसयसहिदं अंगदाराणिहंतं,
सुद्धं सिद्धीहरत्थं कलि-मल-रहितं भव्व भावाणु मुक्कं ।
णाणायारं अणंतं वसुगुण गणिणं अंसहीणं सुणिच्चं ।
अम्हाणं तं अणिंदं पविमल-सहिदं देउ संसार-पारं ॥४

णादं मोहाणुबंधं साग्रह-णिलणु किं तदत्थं अणत्थं,
संतं संदेहयारं विबुह-विरमणं णिउन दैदीययाणं ।
वाणए सीए पवित्तं विजयदु भुवणे कव्व-वित्तं विचित्तं,
दिज्जं तं जं अणं विथरदि सुहरं णाणालाहं विदितं ॥५

घत्ता—

जं इह हीणाहिउ काइमि साहिउ अमुणिय सत्थ-परंपरइं ।
तं खमउ भडारी तिहुवण-सारी वाएसरि सच्चायरइं ॥

दुवई—जा णिरु सत्तभंगि जिण वयण-
विणिग्गय दुह विणासणी ।
होउ पसण्ण मज्झ सुहयारि,
इयरण-कुमइ-णासणी ॥

पर वाइय-वाया-हरण-दच्छु,
सुयकेवलि जो पच्चक्खु धम्मु ।
सो जयउ महामुणि अमियचंदु,
जो भव्व णिवह कइरवहं चंदु ।
मलधारिदेव पय पोम-भसलु,
जंगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु ।
तह पय-रउ णिरु उवणय अमइयमाणु
गुज्जर-कुल-णह उज्जोय-भाणु ।
जो उहय पवर वाणी विलासु
एवं विह विउसहो रल्हणासु ।
तहो पणइणि जिणमइ सुहमसील
सम्मत्तवंत णं धम्मसील ।
कइ सीहु ताहि गब्भंतरंमि
संभविउ कमलु जह सुर-सरंमि ।
जण वच्छलु सज्जण-जणिय हरिसु
सुइवंतु तिविह वइ-राय सरिसु ।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवरु
नामेण सुहंकरु गुणहं पवरु ।
साहारणु लहु वउ तासु जाउ
धम्माणुरत्तु अइ दिव्वकाउ ।
तहु मज्झु व महु एउ वि सुसारु
संविणोउ विणु कुसुम सरधारु ?
जायच्छहि चत्तारि वि सुभाय
पर उवयारिय जण जणियराय ।
एक्कहिं दिणि गुरुणा भणइ वच्छ
णिसुणहिं छप्पय कइ राय दच्छ ।
भो बाल-सरासइ गुण-समीह
किं अविणीयइं दिण गमहिं सीह ।
चउविह-पुरिसत्थ-रसोह-भरिउ
णिव्वाहहि एउ पज्जुण्णचरिउ ।
कइ सिद्धहो विरयंतहो विणासु
संपत्तउ कम्मवसेण तासु ।
महु वयणु करहि किं तुव गुणेण
हंतेण हुय छाया समेण ।

घत्ता—

किं तेण पहूयइं चउ धणइं जं विहलिय हं ण उ वयरइ
कव्वेण तेण किं कइयणहो जं ण छइल्लह मणु हरइं ।
गुणा पुणो पउत्तं पवियप्पं धरस पुत्त मा चित्ते ।
गुणिणो गुणं लहेविणु जइ लोओ दूसणं थवइ ॥१
को वारइ सविसेसं खुद्दो खुद्दत्तणं पि विरयंतो ।
भुवणे छुडु मज्झत्थो अमुवंतो णियसहावं वा ॥२
संभव-इव हुअ विग्वं सुण (मणु ?) याणं सेयमग्गे लगाणं ।
मा होहि कज्ज सिढिलो विरयहि कव्वं तुरंतो वि ॥३
सुह असुहं ण वियप्पहि चित्तं धीरे वि तेजए वयणा ।
परकज्जं परकव्वं विहडंतं जेहि उद्धरियं ॥४
अमिय मयंद गुरूणं आएसं लहेवि झत्ति इय कव्वं ।
णियमइणा णिम्मवियं णंदउ ससि दिणमणी जाम ॥५
को लेक्खइ सत्थमें दुज्जोहं दुज्जणं पिअ सुहयरं ।
भुवणं सुद्ध सहावं कर-मउलिं रइवि पच्छामि ॥६

जं किं पि हीण-अहियं विरसा मोहेतु तं पि इयकव्वे ।
धिट्ठत्तणेण रइयं खमंतु सव्वंपि महु गुरुणो ॥७॥
यच्चाव्य चतुराननाऽऽननिरतं सत्पद्यदानक्षमं ।
स्वैरं भ्रामयति भूमिभागमखिलं कुर्वन् चलत्वं क्षणात् ।
तेनेदं प्रकृत चरित्रमसमं सिद्धेन नाम्ना परं,
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्णं सुखदं श्रीपूर्व देवद्विपः ॥

(आमेर प्रति सं० १५७७ से और फर्रुखनगर प्रति सं० १५१० से)

१६ पासणाहचरिउ (पार्श्वनाथचरित) कवि देवदत्त

आदिभाग—:

चउवीसवि जिणवर दिट्ठपरंपर, वंदवि मूढदिट्ठि-रहिउ ।
वर-चरिउअणिंदहो पासजिणिंदहो णिसुणिज्जउ वइयरसहिउ ॥

वंदवि जिणलोयालोयणाण,
अतीद-अणागय-वट्टमाण ।
पुणु सिद्ध अणंत महागुणंस,
जो मोक्ख-महासरि-रायहंसु ।
आइरिअ सुयंबुद्धि-पार-पत्त,
सिद्धवहु कडक्खविणिहिय विचित्त ।
उज्झाय परम-पवयण पवीण,
बहु-सील सुणिम्मल-धम्म-लीण ।
पुणु साहु महव्वय-गूढ-भार,
बावीस-परीसह-तरु-कुठार ।
पंचवि परमेट्ठि महामहल्ल,
पंचवि णिम्मच्छर-मोह-मल्ल ।
पंचमि कहिउ दयधम्मु सारु,
पंचहमि पयासिउ-लोय-चारु ।
पंचहमि न इच्छिउ दुविहु संगु,
पंचहमि णिराउहु किउ अणंगु ।
पंचहंमि भग्गु-इंदिय-मडप्पु,
पंचहि किउ-णिव्विसु-विसय-सप्पु ।
पंचवि परिकलिय-असेस-विज्ज,
पंचवि णिय-णिय-गुण-गण-सहिज्ज ।
पंचहंमि पजिउ णाणई ममग्गु,
पंचहमि पयासिउ मोक्ख-मग्गु ।

घत्ता—

पणवि गुणंदवि भवियहिणंदवि जिणमंदिरे मुणि अच्छइ ।
पयडय-मणोहरे अप्पा-वंदरे मुकविसहो मणउ गच्छइ ॥१॥

सुकवित्त-करणे मणे वहगाहु, निसिसमइ वियप्पइ एव साहु ।
जाणियइं नमई कालक्खराइं, न सुयउ वायरणउ सरिथराइं ।

पय-छेउ-संधि-विग्गहु-समासु,मणि फुरइ न एक्कवि मइ-पयासु
छंदालंकारु न बुज्झियउ, णिघंटु तक्कु दूरुज्झियउ ।

नवि भरहु स बु वक्खाणियउ,महकइ किउ कव्वु न जाणियउ
सामग्गि न एक्क वि मज्झु पासि, उत्तरमि केव मह बु रासि ।

माहिय सइ माहुविसयण मणु, इय चित्तवंतु थिउ एक्कु खणु
कलहंसगमण ससिबिंब-वयण, विलुलंत-हार-मयवत्त-नयण ।

+ + +

सिरिपासनाह-चरिए चउवग्गफलेभवियजण-मण थंदे मुणिदेव-वंदरइए महाकव्वे विजया संधी ॥

अन्तिभाग:—

दुवई— देसिय गच्छि सीलगुण गणहरु,
भविय सरोजनेसरो ।
आस सुयंबु-रासि-अवगाहणु,
सिरि सिरिकित्ति मुणिवरो ।
तहो परम मुणिंदहो भुवण भाणि,
संजाउ सीसु तव-तेय-रासि ।
नामेण पसिद्धउ देवकित्ति,
.... ।

तहो सीसु तवेण अमेयतेउ,
गुणनाउ जासु जगि मउनिदेउ ।
गिव्वाण-वाणि गंगा-पवाहु,
परिचत्त-सगु तवसिरि-सणाहु ।
तहो माहवचंदहो पाय-भत्तु,
आसीहु सुयागरु सीस वुत्तु ।
निज्जाहिय-वय-भर अभयणंदि,
निय-नाउ लिहाविउ जेण चंदि ।
इय दुसम-कालि कुकया बलेण,
डोल्लंत धम्मु थिरु-कयउ जेण ।
तें दिक्खिउ वासवचंद सूरि,
जें निहिउ कसाय-चउक्कु-चूरि ।
भवियण-जण-नयणाणंदि-राइं,
उद्धरियइं जे जिण-मंदिराइं ।
तहो सीसु जाउ मुणि देवचंदु,
अविलंब वाणि कव कुमुअयंदु ।

रयणत्तय-भूसणु गुण-णिहाणु,
अण्णाण-तिमिर-पसरंत-भाणु ।
गुंदिज्ज नयरि जिण पासहम्मि,
निय संतु संतु संजणिय-सम्मि ।
अह अज्ज नियवि पासहो चरित्तु,
अब्भत्थि वि भविय जणेहि वुत्तु ।
छंदालंकार-ललिय-पयत्थु,
पुणु पासचरिउ करि पायडत्थु ।

घत्ता—

तें तहिं गुण गणहरि गोंदिज पुरवरि णिवसंतइ पासहो चरिउ
अक्खर-पय सारहं अत्थवियारहं सुललिय छंदहिं उद्धरिउ ॥१२॥

दुवई—

पास-जिणिंद-चरिउ जगि निम्मलु फणि-नर-सुरह गिज्जई ।
फुडु सग्गापवग्ग-फल पावणु खणु न विलंबु किज्जए ॥

अणु दिणु जिण-पय-पोमहि नवियहं,
गंथ-पमाणु पयासमि भवियहं ।
णाणा छंद-बंध-नीरंधहिं,
पासचरिउ एयारह संधिहिं ।
पउरच्छहि सुवण्णरस घडियहिं,
दोन्नि सयाइं दोन्नि पद्धडियहिं ।
चउवग्ग-फलहो पावण-पंथहो,
सइं चउवीस होंति फुडु गंथहो ।
जो नरु देइ लिहाविउ दाणइं,
तहो संपज्जइ पंचइं नाणइं ।
जो पुणु वच्चइ सुललिय-भासइं,
तहो पुण्णेण फलहिं सव्वासइं ।
जो पयडत्थु करे वि पउंजइ,
सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजइ ।
जो आयन्नइ चिरु नियमिय मणु,
सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु ।
दिणि दिणि मंदिरि मंगलु गिज्जइ,

नच्चइ कामिणि पडडु पवज्जइ ।
निप्पज्जहिं भुवि सव्वइं सासइं,
दुट्ठ-दुभिक्खु-मारि-भउ नासइं ।
अण्णु वि जं मइं कव्वु करंतइं,
अण्ण मणाइं रसमोहिय चित्तइं ।
लक्खण-छंद-रहिउ हीणाहिउ,
न मुणंतेण एत्थ किर साहिउ ।
तं महुँ खमहु विसुद्ध-चिंतामणि,
सत्त भंगि नय-पवर-पयासणि ।
जंतइ लोयसिहर-पुरवासहो,
कमठ-महासुर-दप्प-विणासहो ।
चउ-भासामय-सावण-चंदहो,
अट्ठसयवंतहो पास-जिणंदहो ।

घत्ता—

मुह-कुहर निवासिणि भुवणुब्भासिणि कुपय-कुपत्थ-कुनय-महणि
सा देवि सरासइ मायमहासइ देवयंद महुँ वसउ मणि ॥१३ ॥

सिरिपासणाह-चरिए चउवग्गफले भविय जणमणाणंदे
मुणिदेवयंद-रइए महाकव्वे एयारसियाइमा संधी समत्ता ॥

(मेरे पैतृक शास्त्रभंडारसे सं० १५४६ की खंडित प्रतिसे)

१८—सयलविहि-विहाणकव्व (सकलविधि-विधान-काव्य)

कवि नयनन्दी

आदिभाग :—

धवल-मंगल-सद्द-जयवट्ट-सुहलंमि सिद्धत्थयवि,
णरलोय-हरिसु व-संकमिउ-सग्गाउ जिणु ।
जयउ पुरिम-कल्लाण-कल सुव अह णं सिद्धि-बहू-विमल
मुत्तावलिहिं णिमित्तु सुह सुत्तिए।पियकारिणिइ सिप्पिहि
मुत्तिउ खित्तु ॥

जिण-सिद्ध-सूरि-पाढय-सवण,
पणवेप्पिणु गुरुभत्तिए ।
णीसेस विहाण-णिहाण फुडु,
करिम कव्व णिय-सत्तिए ॥
पयासिय-केवलणाण-मयोह,
णरामर-विंदरविंद-पबोह ।
वियंभिय-पाव-तमोह-विणास,
णमामि अहं अरहंत विणास ।
णिरामय-मोक्ख णहंगण-लीण,
कयावि ण वड्ढिय णो परिहीण ।
कलंक-विमुक्क जगत्तय-वंद,
णमामि सुसिद्ध अणोवम चंद ।
अलंघ महंत खमासुणि सयण,
अणग्घ-महारयणावलि-पुण्ण ।

घत्ता—सरियउ णायर सायर मुहमय,
णायर डोंगायर णायर तिलया।
धणि जिणपय कमलग्ग दुयणा णिरंतर
बहु णिरइज्जइ गुणणिलया ॥ ४ ॥

× × × ×

णिक्कलंकु अकलंकु चउमुहो,
कालियासु सिरिहरि सुयइ सुहो।
वय विलासु कइयासु ग्रसरिसु
दोणु वाणु ईसाणु सहरिसो।
पुप्फयंतु सुमयंभु भल्लओ,
वालमीउ सम्मइं रसिल्लओ।
इय कइंद भीम इय णिरिट्ठया,
फुरइ केम महो मइ वरिट्ठया।
धाउलिंग गुण धाउ गुण ण याणओ,
कम्मु करणु ण समासु लाणओ।
पय गमिणि किरिया विसेसया,
संधि छंदु वायरण भासया।
देस भास लक्खणु ण तक्कओ,
सुणमि णेव वायहि गुरुक्कओ।
मदाभयनु जयभयनु ण दिट्ठओ,
ण उर पय पयमिह वरिट्ठओ।
तह ण दिट्ठु णिरंतु णाय……………?

× × × ×

इय णिवपणपरिणे धम्मय-काम-मोक्खवरणागुव्वाए-
दुरिणे सगुणगिगिणागुरगुड-ससम्मय-णिरहण भव्वमि-
णरसयमाणंदिणु जिणवण्णुमाणवणि-णण्णणो णाम पढमो
परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ॥ संधि १ ॥

अन्तिम भागः—

इय दौलत पाणि विणय बुद्धि,
दुल्लिय विजण वि-सयल विसुद्धि।
आगम सदंत इयदाण णिणु,
गुण गणाणय मणिक्क णिणु।
णायर दाणमाणहो कंजणाणु,
कमल सुणि दिवायरआणु।
आरयाणु णणु सुइ मह णाणु,
णाइसु मरदर अइसरल साणु।
अप आणिय जिणमइ सुयइ तासु।
सावं गय सत्त पसुक्क तासु।
पउमउ अल्हणु सुहि मरय सूर,
परियार-धारह-परमाण-पूर।
पयरणु पयवालय-पास-पोट्टु,
खयमेय महामइ-दलिय,दुट्टु।
जिणहुयवरधवा-भूयण-समण,
पहिणाणि ण णिहिल विणाय णिणु।
णिच्छल · विणय वाच्छल्लु,
गंभीर परम णिम्मय सहल्लु।
किलिमल-पेल्लि णिम्मूर-णिणउ,
मायर मुउ लक्खणु पंह-णिणउ।
परिवार-भार-उद्धरण-धीर,
जिण-णाव-वारि-पावण-सरीर।
पयहिय-तिपाल-पंडण-विसुद्धि,
सुण सम्मभाव-भायण पसुद्धि।
बहु-सेवय-धार-णिर-वट्ट-णाम,
वंदीयण दीणह दिण्ण णाम।
भायणिहि पयोमिय सूरियंदु,
सवलामर-गह-णय पंदु-चंदु ॥

घत्ता—

बहोमोलणहो रमाल हो भोयवराल हो कलरणिट्ठण महोयर
दहवि महामइ सोहण रिडवल गोहण गुणराहणाविहिणायर

णाहलु माहलु मोहणु महल्लु,
तह रयणु मयणु मतणु वि पहुल्ल।
दुहमवि भायर कलणाह भग,
दुहमवि सादा माणाणा णिय।
दुहमवि सायर पर पयरु-दुरंद,
दुहमहि मयणोयम-बालचंद।
णाडु सहु सुणिय णिय वस सणुाल,
णाणंरुय णायर विलय क्षत्त।
णाह वि संदणु लाहणणु लक्खणु,
सवण्णु-अविणय-समदम-लक्खणु।
जिणणिय-विलास-सम-संसय-णाम,
ते णिहुअणुणिहि णिरवसिंण णाम।
सो णिट्ठणगुणिहि भणाइ उत्तंग,
णिणउ दलेदइ णिव्वाहिणंग।

लक्खणु सच्चाउ समाणु साउ,
विस्थायउ विहिणा जणिय-राउ।
सो इत्थ तत्थ हिंडंतु पत्तु,
पुरे विल्लराम लक्खणु सु-पत्तु।
मणहरु जिणहर तणुरुह पवित्तु।
ते णिज्जिउ सिरिहरु परम मित्तु।
विरदा णंदणु सम्माण घणउ,
लक्खण हो समउ सो करइ पणउ।
तहे जि सणेहु णिब्भरु महंतु,
दिण दिण तं अइसय वुड्ढि जंतु।
भद्दवण पवुट्ठण मेहुणीरु,
असराल-धारि-पोसिय- सरीरु।
जं एयारह भण मासि फारु,
णिवडइ णहारु उ णिब्भरत्तु सारु।
खर-कय पयंड-बम्हंड-पूरु,
जं जिट्ठइ णिट्ठरु तवइ सूरु।
सुवणहो सुवणेसहु णाहु जंजि,
चिरु वट्टइ भोकह चित्तु तंजि।

घत्ता—
जह अहिणव घण दंसणे ताव विहंसणे चंद कवउगं हुल्लियइ
सिरिहरसिरिसाहारउरय-परिहारउलक्खणणाणहर सुल्लियइ

णवरेक्कदिणम्मि महाणुभाउ,
आभत्थि विहहो वत्थ-पाउ।
पभणिउ भो बंधव अइ पवित्तु,
विरइज्जउ जिणयत्तहो चरित्त।
तहो वयणें मई विरइउ सवोज्ज,
वणिणाहो ववसायउ मणोज्ज।
पद्धडिया बंधं पायडत्थ,
आइहि जाणिज्जसु सुप्पसत्थु।
सयलइ पद्धडिया एइ हुंति,
सत्तरि णवज्जु दस य दुण्णि संतु।
एअइ गंथइ सहसइ चयारि,
परिमाण मुणिहु अक्खर वियारि।
हउ······रक्खरु खलिय लज्ज,
ण वियाणमि हेयाहेय-कज्ज।
पय-बंध णिबंधु ण मुणमि किंपि,
मइ-विरइउ संपइ चरिउ तंपि।

× × ×

इणहं चरित्तु जो को वि भव्वु,
परिपढइ पढावइ गलिय-गव्वु।
जो लिहइ लिहावइ परमु मुणइ,
भावइ दावइ कहइ सुणइ।
जो देइ दिवावइ मुणिवराह,
जह तह सम्मइ पंडिय पराह।
सो चक्कवट्टि पउ आइ करिवि,
पालिवि सक्कत्तण लच्छि धरिवि।
अणुहुंजिवि संसारिय-सुहाइ,
सव्वइ दिव्वइ पयलिय-दुहाइ।
उव्वहियाहिल सुहरस-पयासि,
पच्छइ गच्छइ णिव्वुइ णिवासि।

घत्ता—
वारहसय सत्तरयं पंचोत्तरयं विक्कम कालवि इत्तउ।
पढम पक्खि रविवारइ छट्ठि सहारइ पूस मासे सम्मत्तउ ॥२

× × ×

सम्मइंसण णाण णिरु सम्मच्चरिय विसालु।
तं रयणत्तउ सिरिहरहो अहिरमउ चिरकालु॥

—आमेर भंडार प्रति, सं० १६११

१४ सुलोयणाचरिउ (सुलोचनाचरित)
गणिदेवसेन

आदिभाग—

वय-पंच-तिक्ख-णहरो पवयण-माया-सुदीह-जीहालो।
चारित्त-केसरड्ढो जिणवर-पंचाणणो जयऊ ॥१॥
तिहुवण-कमल-दिणेसु णिरुणासिय-घण तिमिर-भरु।
पयडिमि चरिउ पसत्थु पणविवि रिसह-जिणेसरु ॥२॥

× × ×

णिवमम्मलहो पुरि णिवसंतें,
चारुट्ठाणें गुणगणवंतें।
गणिणा देवसेणमुणिपवरें,
भवियण-कमल-पवोहण-सूरें।
जाणिय धम्माहम्म-विसेसें,
विमलसेण मलहारिहि सीसें।
मणि चिंतिउ किं सत्थब्भासें,
णिप्फलेण णिरु वयणायासें।
जत्थ ण धम्म-जुत्त रंजिय सह,
विरइज्जइ पसत्थ-सुंदर-कह।

एम वि थ पावे गुण वि पसंसिउ,
थिउ कइ कव्वहं णिमि णिसंकिउ ।
जहिं वम्मीय वास सिरि हरिसहिं,
कालियास पमुहहिं कइ सारिसहिं ।
बाण-मयूर-हलिय-गोविंदहिं,
चउमुह धवल सयंभु कइंदहिं ।
पुप्फयंत-भूपाल-पहाणहिं,
अवरेहिमि बहु सत्थ वियाणहिं ।
विरइयाइं कव्वइं तिसुवेणियउ,
मणहारिमइ म रंजइ बुहयणु ।
हउं तह वि णिहणु, पयासमि,
सत्थ रहिउ-अप्पउ आयासमि ।

घत्ता—जइ सुरवइ करिमत्तु, सो कि अवरु महग्घउ ।
जइ दुंदहि सुप्पसद्दु, सो कि तूरु म वज्जउ ॥३॥

जइ आयासे विणयासुउ गउ,
सो कि अवरु न जाउ विहंगउ ।
जइ सुरधेणुय जणयाणंदिणि,
दुज्झइ सो कि अवर गवंदिणि ।
जइ कप्पदुमु फलइ मणोहरु,
सो कि फलउ णाहिं अवरु वि तरु ।
जइ वहइ सुर-सरि मंथर-गइ,
सो कि अवर णाहिं वहउ णइ ।
जइ कइ वरहिं रइयइं कव्वइं,
सुंदरगाइं वण्णहिमि भव्वइं ।
हउंमि किंपि णियमइ अणुरूवें,
विरइ वि णामउ कव्वु बहूवें ।
जइ वि ण सत्थागमु कंदु वियाणमि,
अक्खर णिघंटु णाहिं परियाणमि ।
वायरणु बंधि णालोइउ,
णवि पुराण-आगमु-णयु जोयउ ।
मइ णाहिय सो वि जाणें,
णायरु णिरुवमहो अणुराएं ।
णिरुवमें सुंदर मइ सुरए,
हीण णियाणि सुयस्स मे पेसए ।

घत्ता—एव कि वइ कि दप्पु, [illegible] ।
[illegible] ॥४॥

× × ×

किं करइ णिमुणु मंगलिय पाउ,
सुहु मडु मग्गइ ओहग थाउ ।
सुद्धु वीहरंतु सुंदर पयाइं,
लक्खियाइं पढ भासा-गयाइं ।
सुद्धु णय-विरोहु मंतउ कहु,
सुद्धु होउ सयलु सुंदर पसाउ ।
आयरणहो सुविहु-भेय-भरिउ,
हउं कहमि णिराणउ आण धरिउ ।
सइवरेहिं णिचिणु सुलोयणाहं,
णिय पुत्तहो मयपुरसोयणाहं ।
पयडंति हियय णिरवुत्तियाहं,
पर-दिउ-मम्मत-पउणियाहं ।
ज गाहा-बंधें आसि उत्तु,
सिरि कुंदकुंद-गणिणा णिरुत्तु ।
तं पद्धडियाहिं करेमि,
परि किं पि ण गूढउ अत्थु देमि ।
ते थवि धरि थउ मंदा लहंति,
जे मणु देवि पयडाहिं णि (णि) यंति ।

घत्ता—कहियं जेण असेसु णिरुवमभाउ थोवहइ ।
अवरु वि बहुभरु पाउ, तं ओमानिउ सुहइ ॥ १ ॥

× × ×

इय सुलोयणाचरिए महाकव्वे महापुराणे दिट्ठिए गणि-देवसेण-विरइए पढमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १ ॥

अन्तभाग:—

वंदउ सुहरु जिणिंदहो सासणु,
जय सुहयरु भवयण णासणु ।
वंदउ पवरु धम्मु पयासिउ,
पावह जेण सग्गु तह सिवउ ।
साहु-धम्मु-धम्माणय धारउ,
वंदउ सावय अट्ठ-गुण धारउ ।
दाणु देइ ईसिय अव-अणरा,
देवगुरु सत्थ मुणि-वरहं ।
वंदउ सावइ मइ संजाये,
सम्मत्त जिण णिरुवमाए ।
वंदउ [illegible] दुल्लहउ लाएं,
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ।

तह संताणि समायउ मुणिवरु,
होट्टल मुत्त[1] णाम बहुगुणधरु।
रावणु व्व बहुसीस-परिग्गहु,
सयलायम-जुत्तउ अपरिग्गहु।
गंडविमुत्तु[2] सीसु तहो केरउ,
रामभद्दु णामें तव सारउ।
चालुक्कियवंसहो तिलउल्लउ,
होंतउ णरवइ चाएं भल्लउ।
तिणमिव मुयवि रज्जु दिक्खंकिउ,
तिरयण-रयणाहरणालंकिउ।
जायउ तासु सीसु संजम-धरु,
णिंवडिदेउ णामु णिह णियसरु।
तासु सीसु एक्को जि संजायउ,
णिहणिय-पंचेंदिय-सुह-रायउ।
सील-गुणोहर गुण रयणायरु,
उवसम-खम-संजम-जल-सायरु।
मोह-महल्ल-मल्ल-तरु-गयवरु,
भवियण-कुमुयखंडु-वण-ससहरु।
तवसिरि-रामालिंगिय-विग्गहु[3],
धारिय-पंचायारु-परिग्गहु।
पंच-समिदि-गुत्तिय-तय-रिद्धउ,
गुणिगण-वंदिउ भुवण-पसिद्धउ।
मयरद्धय-सर-पसर-णिवारउ,
दुद्धर-पंचमहव्वय-धारउ।
सिरि मलधारिदेव पभणिज्जइ,
णामें विमलसेणु जाणिज्जइ।
तासु सीसु णिज्जिय-मयणुब्भउ,
गुरु उवएसें णिव्वाहिय-तउ।
कलइ धम्मु परिपालइ संजमु,
भविय-कमल-रवि-णिण्णासिय-तमु,
सत्थ-परिग्गहु-णिहय-कुसीलउ,
धम्म-कहाए पहावण-सीलउ।
उवसम णिलउ चरिय-रयणत्तउ,
सोम्मु सुयणु जिण-गुण-अणुरत्तउ।
देवसेणु णामें मुणि गणहरु,
विरयउ एउ कव्वु तें मणहरु।
अमुणंतेण किं पि हीणाहिउ,
सुत्त-विरुद्धउ काइंमि साहिउ।
सयणुवि खमउ देइ-वाएसरि,
तिहुयण-जण-वंदिय-परमेसरि।
फुडु बुहयणु सोहेप्पिणु भल्लउ,
तं करंत सुय-देइ-थवल्लउ।
रक्खस-संवच्छर बुह-दिवसए,
सुक्क-चउद्दसि सावण-मासए।
चरिउ सुलोयणाहि णिप्पण्णउ,
सद्द-अत्थ-वण्णण-संपुण्णउ।

घत्ता—णवि महं कवित्त-गव्वेण किउ अवरु केण णवि लाहें।
किउ जिणधम्महो अणुरत्तएण मण-कय-परमुच्छाहें॥ १॥

आमेर भंडार प्रति सं० १२६०

(दिल्ली पंचायती मंदिरकी खंडित प्रतिसे संशोधित)

१५—पज्जुण्णचरियं (प्रद्युम्नचरितं) सिद्ध या सिंहकविकृतं।

आदिभागः— १

सम-दम-जम-णिलयहो ति-हुअण-तिलय हो
वियलिय-कम्म-कलंकहो।
थुइ करमि स-सत्तिए अइणिरुभत्तिए
हरिकुल-गयण-ससंकहो॥

पणवेप्पिणु णेमि-जिणेसरहो भव्वयण-कमल-सरणेसरहो।
भव-तरु-उम्मूलण-वारणहो कुसुम-सर-विणिवारणहो॥
कम्मट्ठ-विवक्ख-पहंजणहो मय-घण-पवहंत पहंजणहो।
भुवणत्तय-पयडिय-सासणहो छव्वेयजीव आसासणहो॥
णिरवेक्ख णिमोह णिरंजणहो सिव-सिरि-पुरंधि-मणरंजणहो।
पर-समय-भणिय-णय-सय-महहो कम-कमल-जुयल-णय-
सम-महहो॥
महसेसिय-दंसिय-सुप्पहहो मरगय-मणि-गण-करसुप्पहहो।
माणावमाण-समभावणहो अणवरय-णमंसिय-भावणहो
भयवंतहो संतहो पावणहो सासय-सुह संपय-पावणहो॥

घत्ता—
भुवणत्तय-सारहो णिज्जिय-मारहो अवहेरिय-घर दंदहो।
उज्जयंत गिरि-सिद्धहो णाण-समिद्धहो दय-वेल्लिहि-
कलंकदहो॥

१. द प्रतौ 'पुत्त' इति पाठः, २. द प्रतौ 'गंडइपुत्त' इति पाठः। ३. अ प्रतौ 'विज्जहु' पाठः।

इय थुणिय तित्थं, तइलोयइत्थं ।
भय-भय-हरणं, तिजिणय करणं ।
सुहफलकरइं, वंदिवि भणइं ।
पुणु सप्पमइं, कलहंसगइं ॥

वरचरणपया, मम्मि धरिणि सया ।
पय-पालसुहा, सोम्मिय विबुहा ।
सव्वंगिणिया, बहुभंगिणिया ।
पुण्णाहरणा, सुविसुद्धमणा ।
सुय-घर-वयणी, धय-गुण-णयणी ॥

कइयणनयणी, तं दुह-हरणी ।
मेहाजणणी, सुह-सुय-करणी ।
घर-सुर-पवरे, णामे णयरे ।
णिव णिवसमहे सुह-मायवहे ।
णरणइ सु-णरा, महु होउ वरा ।
इम वज्जरइ, पुणु सिद्धवइ ।
इय-घोर भए, दिणि भवियगए ।
पहरिट्टहिए, णिएसु-हिए ॥

घत्ता :—

जासुणाउ मणइ णाहिं पेच्छइ णारिण्णक्क मयहारिणिया ।
णियणाम-तित्थ धय कंचय हत्थि य कमलमुगणुयधारिणिया ।२।

णा णवेइ णिसिणं णिसवक्खहे, णाइंमिव णिवसहि णियमवहे ।
तं सुवेवि वह णिद्दु जंतए, मइमाणणिय हियउ कंपए ।
कम्मुत्तुंडिणिणंगु मज्जिओ, सवक-णुद्द-सवक्खय-णियज्जिओ ।
ण वि ममाणु ण विरुत्ति कारणो, संधि-सुत्त णेयइं समारओ
कम्मु कोइ ण कयावि दिट्ठओ, महु णिरुंद्ध णेसवि सु सिट्ठओ ।

तेण बप्पिहि विणंतु ण्णयमि,
सुमरो वि ताम हणु वंधमि ।
सायरो वि आगरु णिवियुगे,
णेय सुयदिहि वहिरो वि हुणिपुगे ।
तं सुणेवि जायव महागुरु,
णिसुणि सिद्ध श्रेण्ड णामहं ।

घत्ता—

मायणु णीरिकायण्णवि हियउ मणोरहिं मज्झ वयणु दुर्जदिहु करहि
हउं सुंदिणयरगेवि कहसि णियेणे, कम्मु विलि तं पुट्ठ करहि ॥३॥

णा कसमारि देउ सुदि-पुणसु
तं पंचभाव धमु वयणहु वयु ।

माइवचंद णामि सुपसिद्धउ
जो सम-दम-जम-णियम समिद्धउ ।
तासु सीसु तव-तेय-दिवायरु
वय-तव-णियम-सील-रयणायरु ।
तक्क-लहरि-संखोलिय परमउ
वर-वायरण-पवर-पसरिय-पउ
जासु भुवण दूरंतरु वंकिवि
ठिउ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि
अभयचंदु णामेण भडारउ
सो विहरंतु पत्तु बुह सारउ ।
सरिसर-णंदण-वण-संछण्णउ
मठ-विहार-जिणभवण रवण्णउ ।
वम्हण वाडउ णामें पट्टणु
अरि-णरणाह-सेण-दल वट्टणु ।
जो भुंजइ अरियण गय कालहो
रण-धोरिय हो सुयहो वल्लालहो ।
जासु भिच्चु दुज्जणु-मण-सल्लणु
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहि भुल्लणु ।
तहिं संपत्तु मुणीसरु जावहिं
भव्वलोउ आणंदिउ तावहिं ।

घत्ता—

मिच्छत्त मयसंगिवि सुणिहि पसंगिवि जो लोयहि अणुगंछियउ
णय-विउण-ममिदि पुणु कइ सिद्धे सो जइवर पाडिच्छियउ ॥४॥

पुण पंपाइय-देवाणंदणु,
भवियण-जणमण-णयणाणंदणु ।
बुहयण-जणपय-पंकय छप्पउ,
भणइ सिद्ध पणविउ परमप्पउ ।
विउल गिरिहिं जिह हय भयरंगहो,
समवसरणु सिरिवीरजिणिंदहो ।
गणहर-पवर-मुणीसर-सत्थए,
गणहर पुच्छिउ सेणियराए ।
सगरचक्कवइहो णिव्विणय आवहो,
कहहि चरिउ पज्जुण्णकुमारहो,
तं णिसुणेवि भणइ गणेसरु,
णिसुणहि सेणिय मगह-णरेसरु ।

× × ×

इय पज्जुण्णचरिए पयडिय धम्मत्थ-काम-मोक्खाए बुह-सिद्ध-विरइयाए पढमो संधी परिसमत्तो ॥१॥

अन्तिम प्रशस्ति—

कृतं कल्मष-गृहस्य नाशनं शास्त्रं सुधीमता
सिंहेन सिंहभूतेन पाप-मातङ्ग-भंजनं ॥१

काव्यस्य काव्यं कमनीयवृत्तं वृत्तं कृतं कीर्तिमतां कवीनां।
भव्येन सिंहेन कवित्वभाजां लाभाय गत्यात्र सदैव कीर्तिः २॥

सव्वण्हु सव्वदंसी भव-वण-दहणो सव्व कारुण्ण सारो।
सव्वाणं भव्वयाणं सवणमणहरो सव्वलोयाण सामी।
सव्वेसिं चक्खुरूवं पयडण-कुसलो सव्वणाणावलोई,
सव्वेसिं भूययाणं करुण-विरयणो सव्वयालं जओ सो ॥३

जं देवं देव देवं अइसयसहिदं अंगदोसोण्हितं,
सुद्धं सिद्धी हरयं कलि-मल-रहिदं भव्व भावाणु सुद्धं।
णाणायारं अणंतं वसुगुण सहिदं अंसहीणं मुणिन्दं।
अम्हाणं तं अणिंदं पविमल-सहिदं देउ संसार-पारं ॥४

णादं मोहाणुबंधं साण्ह-णिलणं किं णयस्सं असारो,
संतं संदेहयारं विसुह-विरमणं णिउण देहीयणाणं।
वाए सीए पवित्तं विजयदु भुवणे कज्जु-वित्तं विचित्तं,
दिज्जं तं जं अणंतं वियरदि सुदरं णाणालाहं विसिट्ठं ॥५

घत्ता—

जं इह हीणाहिउ काइमि साहिउ अमुणिय सत्थ-परंपरई।
तं खमउ भडारी तिहुवण-सारी वाएसरि सच्चायरई ॥

दुवई—जा णिए सत्तभंगि जिण वयण-
विणिग्गय दुह विणासणी।
होउ पसण्ण मज्झ सुहयरि,
इयरण-कुमइ-णासणी ॥

पर वाइय-वाया-तरुव-दम्मु,
सुयकेवलि जो पच्चक्खु धम्मु।
सो जयउ महामुणि अमियचंदु,
जो भव्व णिवह कइरवहं चंदु।
मलधारिदेव पय पोम-भसलु,
जंगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु।
तह पय-रउ णिरु उवणय अमइयमाणु
गुज्जर-कुल-णह उज्जोय-भाणु।
जो उहय पवर वाणी विलासु
एवं विह विउसहो रल्हणासु।
तहो पणइणि जिणमइ सुहमसील
सम्मत्तवंत णं धम्मसील।
कइ सीहु ताहि गब्भंतरंमि
संभविउ कमलु जह सुर-सरंमि।
जणवच्छलु सज्जण-जणिय हरिसु
सुइवंतु तिविह-वइराय सरिसु।
उप्पण्णु सहोयरु तासु अवरु
नामेण सुहंकरु गुणहं पवरु।
साहारणु लहु वउ तासु जाउ
धम्माणुरत्तु अइ दिव्वकाउ।
तहु थासु स भाइ एउ वि गुणाल
संमिलोउ चित्त गुरुयण रसाल ?
आयन्नहि पंडिय वि सुभाय
पर उवयारिय जह आदिराय।
एक्कहिं दिणि गुरुणा भणइ धम्म
णिसुणहि दुण्णय कइ राय चन्द।
भो बाल-सरासइ गुण-समिद्ध
किं कणिगोयरु दिण गमहि सीह।
चउविह-सुविमत्थ-संमोह-भरिउ
णिग्घाडहिं एउ पज्जुण्णचरिउ।
कइ सिद्धहो विरयंतहो विणासु
संपत्तउ कम्मवसेण तासु।
मह वयणु करहि किं तुव गुणेण
हंतेण हुव प्पासा समेण।

घत्ता—

किं तेण पहूयइं मउ धणइं जं विहलिय हं ण उ वयरइ
कव्वेण तेण किं कइयणहो जं ण छइल्ल मणु हरइ।
गुणा गुणी पउत्तं पवियप्पं धरम गुत्त मा चित्ते।
गुणिणो गुणं लहेविणु जइ लोओ दूसणं थवइ ॥१
को वारइ सविसेसं सुद्दो खुद्दत्तणं पि विरयंतो।
भुवणो दुद्द मयभव्वो अमुवंतो णियसहावं वा ॥२
संभव-इय हुअ विव्वं मुण (मणु ?) याणं सेयमग्गे लगाणं।
मा होहि कज्ज सिढिलो विरयहि कव्वं तुरंतो वि ॥३
सुह असुहं ण वियप्पहि चित्तं धीरे वि तेजणु वयणा।
परकज्जं परकव्वं विहडंतं जेहि उद्धरियं ॥४
अमिय मयंद गुरूणं आएसं लहेवि भत्ति इय कव्वं।
णियमइणा णिम्मवियं णंदउ ससि दिणमणी जाम ॥५
को लेक्खइ सत्थम्मि दुज्जीहं दुजणं पिअ सुहयरं।
भुवणं सुद्ध सहावं कर-मउलिं रइवि पच्छामि ॥६

जं कि पि हीणाहियं विउसा सोहन्तु तं पि इयकव्वे ।
णिट्ठवियं मइं पयडं जं जि पहु सुत्तो ॥७॥
यत्काव्य प्रयुम्नस्याऽकलितं सम्यक्त्वानन्दकं ।
स्वैर प्राप्यति मुनिभागकलितं कुर्वन् सकर्ण घणान् ।
तेनेदं प्रकट चरित्रममलं सिद्धेन नाम्ना परं,
प्रद्युम्नस्य सुतस्य कर्णसुखदं श्रीपूर्व देवद्विषः ॥

(आमेर प्रति सं० १५७७ से और पंचायती मंदिर प्रति सं० १५१० से)

१६ पासणाहचरिउ (पार्श्वनाथचरित) कवि देवदत्त

आदिभाग—:

चउवीसवि जिणवर दिट्ठपरंपर, वंदवि सुदिट्ठि-सहिउ ।
वर-चरिउ कलिदंहो पासजिणिंदहो णिसुणिज्जउ चउविहसहिउ ॥

पणविवि तिलोयालोयजाण,
सरिस-पयासण-वट्टमाण ।
पुणु सिद्ध अणंत महाजनाम,
जो मोक्ख-महासिरि-सायरंगु ।
आइरिय सुर्वबुद्धि-सार-पत्त,
णिग्गहु कसायविसविहि पवित्त ।
उवझाय परम-पवयण पवीण,
बहु-सीस सुनिम्मल-धम्म-लीण ।
पुणु साहु सउणय-गुण-सार,
पावेण-णरणिह-मग-कुठार ।
पणविवि परमेट्ठि महाणुभाव,
पणवि णिम्मल-मोह-भाव ।
पणमवि अरिहंत दयामयसार,
पंचमवि पयासिय-मोक्ख-मग्ग ।
पंचमवि न इच्छिउ सुणिदु संगु,
पंचमवि णिवाहु विडवणु ।
पंचमवि भव-इंदिय-मग्गु,
पंचमवि जिण-णिक्किम-विमल-धम्म ।
पंचमवि पविमलिय-अविगम-जिणउ,
पंचमवि तिव-तिव-गुण-गाह-सहिउ ।
पंचमवि अजि तट शासई समग्गु,
पंचमवि पयासिय मोक्ख-मग्गु ।

घत्ता—

पंचवि गुरुपंचह अरिहंतहो सिद्धहं जिणहं दिवि सुदि धम्मइ ।
पवयण सयोभो सारय-देवि सुमइहो लहड णवहु ॥१॥

सुहरिउ-करणे सयो दढणाहु, विहिमणिविद्दयमइ एय णाहु ।
आणियणं नमई कानयम्माई, न मुणउ वायरणु गरियवाई ।
पय-छेउ-संधि-विग्गहु-समासु, मोदि मुणइ न पुणवि सइ-पयासु ।
छंदालंकारु न बुज्झियउ, णिघंटु गरुउ दूरुज्झियउ ।
नवि भरहु म मु यक्खाणियउ, सहकडु किउ कानु न जाणियउ ।
सामलि न पुक्क रि सउणु पानि, उत्तमि केम सइं मु वाणि ।
माहिय मइ माहुमिमणए मग्ग, इय चिंतंतु थिउ एणहु गउ ।
कलहंसगमण समिधिय-वयण, विगुलंग-हार-कवयच-नयण ।

\+ \+ \+

सिरिपासणाह-चरिए चउवग्गफलभरियणाण-कणा गंदे मुणिदेव-चंदरइए महाकव्वे विजया संधी ॥

अन्तिभाग:—

दुवई— देसिय गच्छि सीलगुण गणहर,
भविय सरोजनेसरो ।
आसि सुचंद्र-गणि पवणाहमु,
सिरि सिरिकित्ति मुणिवरो ।
तहो परम मुणिवदहो सुपवर भासि,
संजाउ सीसु गय-भेय-रासि ।
नामेण पसिद्धउ देवकित्ति,
.... ।
तहो सीसु मरेण धमेवाउ,
गुणगणउ जासु जगि मउनिहेउ ।
णिवाप-वाणि गंगा-पवाहु,
परिपुण्ण-मणु सरसिरि-सणाहु ।
तहो माहवचंदहो पाव-नासु,
आसीह सुपासहु सीस पुणु ।
णिम्मलिय-मय-भर अभयचंदि,
जिय-माइ विरहिय तेण वंदि ।
इय कुसल-कारि पु कलम पवेल,
होलरीन पज्जु णिय-सयक लेण ।
मे लिहियउ पासयचंद मुणि,
जो लिहिउ अपार-घउरु-सुणि ।
अभियण तह अनवरतंदिवसाइ,
उत्तारियई जे जिण-मंदिराइ ।
तहो सीसु जाउ मुणि देवचंदु,
दलियव सघठ वर कुमुदचंदु ।

रयणत्तय-भूसणु गुणु-णिहाणु,
अरणाण-तिमिर-पसरंत-भाणु ।
गुंदिज्ज णयरि जिण पासहम्मि,
णिव संतु संतु संजणिय-सम्मि ।
अह अज्ज णियवि पासहो चरित्तु,
अब्भत्थि वि भविय जणेहि तुणु ।
छंदालंकार-ललिय-पयत्थु,
पुणु पासचरिउ करि पायडत्थु ।

घत्ता—

तें तहि गुण गणहरि गोंदिज पुरवरि णिवसंतइ पासहो चरिउ
अक्खर-पय सारहं अत्थवियारहं सुललिय छंदहि उद्धरिउ ॥१२॥

दुवई—

पास-जिणिंद-चरिउ जगि णिम्मलु फणि-नर-सुरह गिज्जइं ।
फुडु सग्गापवग्ग-फल पावणु तणु न विलंबु किज्जए ॥

अणु दिणु जिण-पय-पोमहि णवियहं,
गंथ-पमाणु पयासमि भवियहं ।
णाणा छंद-बंध-णीरंधहि,
पासचरिउ एयारह संधिहि ।
पउरच्छहि सुवण्णरस घडियहिं,
दोणि सयाइं दोणि पद्धडियहिं ।
चउवग्ग-फलहो पावण-पंथहो,
सहं चउवीस होंति फुडु गंथहो ।
जो नरु देइ लिहाविउ दाणइं,
तहो संपज्जइ पंचइं णाणइं ।
जो पुणु वचइ सुललिय-भासइं,
तहो पुरणेण फलहि सव्वासइं ।
जो पयडत्थु करे वि पढंजइ,
सो सग्गापवग्ग-सुहु भुंजइ ।
जो आयन्नइ चिरु णियमिय मणु,
सो इह लोइ लोइ सिरि भायणु ।
दिणि दिणि मंदिरि मंगलु गिज्जइ,
नच्चइ कामिणि पडहु पवज्जइ ।
निप्पज्जहिं भुवि सव्वइं सासइं,
दुट्ठ-दुभिक्खु-मारि-भउ नासइं ।
अरणु वि जं मइं कव्वु करंतइं,
अमणु भणइं रसभोगिय चित्तइं ।
लक्खण-छंद-रहिउ हीणाहिउ,
न मुणंतेण पुण्व किउ साहिउ ।
तं महु खमउ विबुह-चिंतामणि,
सत्त भंगि णय-पवर-पयासणि ।
जांतइ लोयसिहर-पुरवासहो,
कमठ-महासुर-दप्प-विणासहो ।
घड-भासासय-सायण-चंदहो,
पउमपणंदहो पास-जिणंदहो ।

घत्ता—

सुह-कुहर णिवासिणि सुयसुहभासिणि कुपह-कुपण्ण-कुणय-महणि ।
सा देवि सरासइ मायमहासइ देवचंद महु वसउ मणि ॥१३॥

सिरिपासणाह-चरिए चउवग्गफले भविय जणमणाणंदे
मुणिदेवचंद-रइए महाकव्वे एयारसिमाइमा संधी समत्ता ॥
(मेरे पैतृक शास्त्रभंडारसे सं० १५४६ की खंडित प्रतिसे)

१७—सयलविहि-विहाणकव्व(सकलविधि-विधान-काव्य)
कवि नयनन्दी

आदिभाग :—

धवल-मंगल-णांद-णयणह-सुहलंमि सिवुव्ववि,
णरलोय-हरिसु य-संकमिट-सग्गाउ जिणु ।
जवउ पुरिम-कल्याण-कल सुव अह वां सिद्धि-बहू-विमल
मुत्तावलिहि णिमित्तु सुह सुत्तिए ।पियकारिणिइ सिप्पिहि
मुणिउ खित्तु ॥

जिण-सिद्ध-सूरि-पाठय-सवण,
पणवेप्पिणु गुरुभत्तिए ।
घोसेम विहाण-विहाण फुडु,
करिम कव्व णिय-सत्तिए ॥
पयासिय-केवलणाण-मयोह,
णरामर-विंदरविंद-पमोह ।
वियंभिय-पाव-तमोह-विणास,
णमामि अहं अरहंत विणास ।
णिरामय-मोक्ख णहंगण-लीण,
कयावि ण वड्डिय णो परिहीण ।
कलंक-विमुक्क जगत्तय-वंद,
णमामि सुसिद्ध अणोवम चंद ।
अलंघ महंत खमासुणि सरण,
अणग्व-महारयणावलि-पुरण ।

पाविय-संजम-मेरु-मुणिंद,
पणमामि गणेस गहीर-समुद्द ।
महव्वय-सेल-सरोवरि-चक्क,
णिवित्त-मउद्द-विसुद्ध-सील-मक्क ।
दिणाणु पहाणिय-वाइ-गइंद,
णमामि उवज्झय णाण-महिंद ।
पमाय-विवज्जिय-विसारय-दक्ख,
समोहिय-णिद्द-सुइंध-पक्ख ।
परीसह-णिज्जिय-तिव्व-सरीर,
णमामि पसेणवि संजम-धीर ।

घत्ता—इय परम पंच परमेट्ठि पहु पणविवि पुण्ण पयासहिं ।
विघोरिय-विम-विसहर-अवय-वि·········॥ १ ॥

हरिसिय सुरवर-गुण-गण-महण्णु,
सुत्तालंकरिउ महामहण्णु ।
तं पयड-तिजग-सिरि-हियय-हारु,
अत्थीहायंती विमल-सारु ।
पविमल-पयार-पयडिय-विणोहु,
णिग्गय-पिम्माय-विभिन्न-मोहु ।
तहिं सुरइ-गइग इव चित्त-हारु,
सयरी-पढवागद-पाव-पारु ।
तहिं परमइ-संजायउ देउ,
इय-पेतमयणु वाणी-पमेउ ।
विद्धसिय-पावमलु-सुमय-माणु,
पणवेवि पयडि जग-दिहाणु ।
पम्मावइ-सम-णायहंस-चंदु,
जयसिरि-णिवास सुवइ-णरिंदु ।
महो णेमिणाहु अप्पुर णरिंदु,
गुरुवय-गुणगण-पवर अणिंदु ।
रिद्धनायक-रिसि काणिवि भाणु,
पुरणिवह पट्टु विराण भाणु ।
महिमाकित्ती दे महइ व मणिंदु,
णाणविह विरणु मे गणिंदु ।

घत्ता—
जहिं जति सुरि हरिसियु सुणि जिणसासण-गुण-मोहणु ।
मासुम-संजाणि-अयरहउ, माणणि-अट्ठ-मय-मोहणु ॥ २ ॥
पणवेवि णिग्गंथ णिरंजणेवि झेउ,
सुणीसरहारिं पयपत्त-सचेव ।

पढमु पउरिय विणाहिवाणु,
सुहोमल-णिम्मल-भाणि-विजाणु ।
पुणु कुरु किवि कवित्तु मणिंदु,
प्पणामि ण तं कइया हउ दिट्ठु ।
णियं गणियं ण कएम सुणेमि,
पयायलम्मो मणु काइं करेमि ।
परं महु भट्ट गुणाढु मणेवि,
पव अइ पसिद्धहिं सिद्धहिं तेवि ।
पव देवहिं दाणव-णिदहिं पत्त,
धम्मेण-गुणायर-पयडइ-पत्त ।
गुरोक्कु वि कवहि पाविउ जेण,
पईवइ सो गुणपाई तेण ।
मए पुणु पंगुणि वज्झय तासु,
पयासउ मे गुणवंतु विचासु ।

घत्ता—पर-विद्द जिरखेवि महदणु भइवइ रयणिधि ट्ठिय ।
कविवंदहु भट्ट वि गुणगरप महंगुणहि बसु गंठिय ॥ ३ ॥

\+ \+ \+

मणु अप्पवयणु पामीड पाणु,
परवउ पामणु कवि कालियाणु ।
कोऊहलु वाणु मयूरसूर,
जिणसेणु जिणागम कमलसूर ।
वारायणु वरणाउ वि विपद्दु,
सिरि हरिसु रायसेहर गुणद्दु ।
जसइंधु जए जयरामणाणु,
जयदेउ जणमणाणंद-काणु ।
पालियउ पाणिणि पवरसेणु,
पायंजलि पिंगलु वीरसेणु ।
सिरिसिंहणंदि गुणसिंहभद्द,
गुणभद्द गुणियर समंतभद्द ।
अकलंकु विसमवाइयविमद्दि,
कामद्दु रुद्दु गोविन्द दंडि ।
भम्मुह भारह भारवि महंतु,
चउमुह सयंभु कइ पुप्फयंतु ।

घत्ता—
सिरिचंद पहाचंदु वि विवुह गुण गण णंदि मणोहर ।
सिरिकुमार सरसइ-कुमार-किरियालंकिय-सेहर ॥ ४ ॥

इमे अगणा जेते कइणो ललामा,
गुणालंकिया कित्ति-कंताहिरामा ।
ण चाणं भडत्तं कइत्तं निरुत्तं,
गुणं केवलं मज्झयं तं सउत्तं ।
जिणिंदस्स णिग्गंथ-पंथम्मि लीणो,
पयासेमि चायं कहं गंथहीणो ।
करामो भडत्तं जेणं सुप्पसिद्धं,
पयासेइ णाणं मऊरे णिसिद्धं ।
समुप्पण्णिया मज्झणो कव्वसत्ती,
सज्झए णिग्गुणत्ते ण कित्ती ।
अलंकार-सल्लक्खणा देसि छंदं,
ण लक्खेमि सत्यंतरं अत्थमंदं ।
परं लक्खणो रम्म भाई कणिट्ठो,
अलंकारवंतो वि सत्थं दिट्ठो ।
हुउ देसिउ सो वि देसंतराले,
पइट्ठो ण गेहे कइत्तो णिसाले ।
णिसंबंध सुद्धे र सु सुहोइ वण्णो,
ण जाणामि वाणा-विलासो पयण्णो ।
ण बुज्झेमि कव्वस्स णामं पि सुत्तं,
हसेऊण ता खुरिणा तेण उत्तं ।
अहं तुज्झ सज्झा कणिट्ठी पहाउं,
पयासेमि कव्वं भुअंगप्पयाउं ।

घत्ता—
जो चाउ चाउ चार इदि गुणु सु कइत्तणु ण पयासइ ।
णर-जम्म रयणु दुल्लहु लहवि भव सायरि सो णासइ ॥७॥

इय जंपिउ मुणि हरिसिंघु जाम,
पडिजंपइ मुणि णयणंदि ताम ।
चिरु कइ सरसइ कयणायवंसु,
सुकइत्त-सरोवर-रायहंसु ।

× × × ×

पच्चक्ख-परोक्ख-पमाण-णीर,
णय-तरल-तरंगावलि-गहीर ।
वर-सत्तभंगि-कल्लोल-माल,
जिण-सासणि-सरि-णिम्मल-सुसाल ।
पंडिय-चूडामणि विबुह-चंदु,
माणिक्कणंदि उप्पण्णु कंदु ।
दिढबुद्धि कढिण कंटय-पयंडु,
तहो तुहुँ हुउ सीसु गुणत्थ डंडु ।

तव्भूउ-विमल-सम्मत्त-सल्लु,
सयल-विहि-णिहाणु सुकव्व कम्मु ।
घणणय-मिच्छत्त-तमोह-दोसु,
धम्मत्थ-काम-कमणीय-कोसु ।
संकाइय-मलसंगम-विरामु,
दय-रम्म-रमा-रामाहिरामु ।
णायय-पय-हंसावलि-विलासु,
परमेट्ठि-पंच-परिमल-पयासु ।
केवलि-सिरि-कामिणी कम-विलासु,
सग्गापवग्ग-सुह-रस-पयासु ।
मुणि-गण वइ-मयरंद-परिसु,
मुहयणु-महुयर-मण-दिण्ण-हरिसु ।

घत्ता—
इय कव्वु कव्वु कोमल वरउ, जो लंकारु म कयणाहं ।
सो सिद्धि पुरंधिहे मणु हरइ, कयण्णु णहणु हुरकण्णाहं ॥११॥

× × × ×

मुणिवर-णयणंदि-सण्णिवद्धे पसिद्धे,
सयल-विहि-णिहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे ।
सुहड सुकइ चाइ पवणसुल्लासजुत्तो,
जणिय-पयह दत्तो चाइमो संधि वुत्तो ॥१॥

× × × ×

सिरि भोयएव धाराउरेहिं, कव्व णिणोणं अच्छइ ।
मुणि भणइ एम हरिसिंघु तहो, णायणंदि एउ सुपयासइ ॥१

पारंभि वि कव्वु ममंतएण,
पुर पट्टण पमुह कमंतएण ।
णायणंदि मुणिंदु मुणोहि रम्मु,
वल्लीसु णियच्छिउ लच्छि-धम्मु ।
जहिं वच्छराउ पुणु पुहइ वच्छु,
हुंतउ पुहु ईसरु सूदवच्छु ।
होएप्पिणु वत्थए हरि मएउ,
मंडलिउ विक्कमाइच्चु जाउ ।
भुवणेक्कमल्लु रायहो पियारु,
गुणवंतउ गउरि-गुण-पियारु ॥
अंवाइय कंचीपुर विरत्त,
जहं भमहं भव्वु भत्तिहिं पसत्त ।
जहिं वल्लहराए वल्लहेण,
काराविउ कित्तणु दुल्लहेण ।

जिए पडिमालंकिउ गयण-गामु,
णं देवहं दरिसिउ सुर-विमाणु।
जहिं रामणंदि गुण-मणि-णिहाणु,
जयकित्ति महाकित्ति वि पहाणु।
इय तिण्णि वि परिमग्ग-मई-मइंद,
मिच्छत्त-विडवि-मोडण-गइंद।

घत्ता —

जिणपुर गयउं तिहुयणहो सो रयणत्तय सोहए।
दुरमिय भव्वोहें गणहर, कलिकाल हो पडिबोहए ॥१॥

रामणंदि गणिउ मणिरूढउ,
जहिं जिणं धम्मंमि वि णिरूढउ।
तहिं विण् वि सत्ताहिणंदिया,
गुरिणा महारामणंदिणा।
थालहइंद-सीसेण जंपियं,
सयल-विहिविहाणं समप्पियं।
कइ दिग्गाइं पारंभिउ पुणा,
कोव-विहुणे-चित्त-पुण्णयो।
ण सुणेवि णयणंदि बोल्लए,
मणु कहि-कव्वेण कोल्लए।
रइए कव्वे इयमत्तिणिब्भरा,
तासु मणि संहारवे पत्ता।
कइइ तासु मी सायरिदए,
पर धराइंदसे पणिहए।
तिलि-अरिट्ठ-मरमट्ट-मणोहरे,
याइगामि मइ महिम-मंदरे।
जहिं जिणिंद-हर-पह-पराजिया,
चंद-सूर यहं अंग मज्जिया।
जहिं जिणागमुच्छव करेवहिं,
धीरमेत्त-जिणमेत्त देवहिं।
माल धवल अदधवल सव,
महाभेद्दु णिच्चमिह'व जिण-हरा।
विरइया मंण्णइं सुराहिवा,
सिहि-समहि-दागण दाविया।
पुंडरीय जहिं करि पवंजय,
इय सयल भुवण विजंइ।

घत्ता—जरसिरि-मागह-केल्हाण जिण जिणकाहिं।
जहिं सहिंसि सेहि पच्छिव मइरहं जिणु तिहुयणु सहहिं ॥२॥

अन्तिमभागः—

मुणिवर-णयणंदि-सण्णिबद्धे पसिद्धे,
सयलविहि-विहाणे एत्थ कव्वे सुभव्वे।
अरिह-पमुह-सुत्त-पुण्णागाहपाए
पभणिउ फुडु संधि अट्ठावण्णं समत्तो॥
संधि ५८॥ (प्रति आमेर भंडार, सं० ३५८०)

१८ अणुवय-रयण-पईव (अणुव्रत-रत्न-प्रदीप)
—कवि लक्खण, रचना काल सं० १३१३

आदिभागः—

पणविवि जिणे सिद्धे आयरिए पाढए य परमट्ठे।
अणुवय-रयण-पईवं सत्थं पुच्छं णिसामेह ॥

× × × ×

इह जउँणा-णइ-उत्तर-तडत्थ,
मह णयरि रायवड्डिय पसत्थ।
धण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध,
दाणुण्णय-कर-जण-रिद्धि-सिद्धि।
जिणमंदिर-कम्म-छिण्णिय रयण,
मयल-मणोहर-विविह-वयण।
चंदुर-पायारट्टाल-सोह,
जहिं सहहिं णिरंतर-गिरि-णिरोह।
चउहट्ट चच्चर-राम-गम्म,
मग्गण-गण-कोलाहल-समग्ग।
जहिं विवणे विवणे पणु कुप्पमंड,
जहिं कमिणहिं क्रियत्थ णिमंति-भंड।
लिच्छिवत्त-दाण-संताव-मोह,
जहिं वसहिं महायण गुरु-बोह।
पवहार-पार-गिरि-गुरु-सोप,
विहरहिं पमयण चउवण्ण लोय।
जहिं रूवणूर-संदण-विसेस,
सिप्पार-सार-कय-णिरवसेस।
सोहग्ग-लग्ग-जिय-धम्म-सीह,
आलिहिय-दिय-गइ-सय-महस-लोह।
जहिं चच्चर-चउरिद-दवल-गाम,
ण्णायत्त-सोहिं भूसिय विसाल।
पियवण विहुत्तउ उत्तिय-माल,
कुरुणिग-पवणालि-मद्द-धाम।
घर-सालुत्तुंग-तोरण-सहार,
जहिं सहहिं सेय-गोउर-दुवार।

जहिं दविणंगण-तहिं-पेम-छित्त,
लावण्ण-पुण्ण-धण-लोल-चित्त ।
जहिं चरड चाड कुसुमाल भेड,
दुज्जण-सखुद्द-खल-पिसुण-एड ।
ण वियंभहिं कहिमि ण धण-विहीण,
दविणड्ढ णिहिल णर धम्म-लीण ।
पेम्माणुरत्त परिगलिय-गव्व,
जहिं वसहिं वियक्खण मणुव सव्व ।
वावार सव्व जहिं सहहिं णिच्च,
कणयंवर-भूसिय-रायमिच्च ।
तंबोल-रंग-रंगिय-धरग्ग,
जहिं रेहहिं मारुण-सयल-मग्ग ।
तहिं णरवइ आहवमल्ल-एउ,
दारिद्द-समुत्तारण-स-सेउ ।

घत्ता—

उव्वासिय-परमंडलु दंसिय मंडलु कास-कुसुम-संकास-जसु ।
छल-कुल-बल-सामत्थें णीइ-णयत्थें कवणु राउ उवमियइ तसु

णिय-कुल-कइरव-वण-सिय-पयंगु,
गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पवणु,
मह सागह-गण-पडिदिण्ण-तवणु ।
दुव्वसण-रोय-णासण-पवीणु,
किउ अखलिय-सुजस मयंकु झीणु ।
पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु,
.... ।

माणिणि-मण-मोहणु मयरकेउ,
णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल-दिण्ण-हीरु,
विसुमुरणय-समर-भिडंत वीरु ।
खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्क-वंसु,
विवरीय-वोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-बल खल-कुल-पलय-कालु,
पहु-पट्टालंकिय विउल-भालु ।
सत्तंग-रज्ज-धुर-दिण्ण-खंधु,
सम्माण-दाण-पोसिय-सबंधु ।
णिय-परियण-मण मीमत्सण-दच्छु,
परिवसिय-पयासिय-केरकच्छु ।

करवाल-पट्टि-विप्फुरिय-जीहु,
रिउ-दंड-घंट-मुंडाल-सीहु ।
थइ-विसम-साह सुधाम-धामु,
चउ सायरंत-पाविडिय-णामु ।
णाणा-लक्खण-लक्खिय-सरीरु,
सोमुज्जल सामुद्दय-गहीरु ।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्लु,
हम्मीर-वीर-मण-णट्ठ-सल्लु ।
चउहाणवंस-तामरस-भाणु,
मुणियइ न जासु भुय-बल-पमाणु
पुजसीहि-खंड-वियखाण-कोसु,
छत्तीसाउह पयडण-समोसु ।
साहस-समुद्द बहुरिद्धि-रिद्धु,
अरि-राय-विसह-संकरु पसिद्धु ।

घत्ता—

पालिय-खत्तिय-सासणु परबल-तासणु ताण मंडल-उव्वासणु ।
मह-जस-पसर-पयासणु पव-जल-हरसणु दुण्णय-विति-पणासणु

तहो पट्ट-महाएवी पसिद्ध,
ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध ।
णिहिलंते उर-मज्झए पहाण,
णिय-पइमण पेसण-सावहाण ।
सज्जण-नण-कप्प-महीय-साह,
कंकण-केऊरंकिय-सुबाह ।
छण-ससि-परिसर-संपुण्ण-वयण,
मुक्क-मल-कमल-दल-सरल-णयण ।
आसा-सिंधुर-गइ-गमण-लील,
वंदियण-मणासा-दाण-सील ।
परिवार-भार-धुर-धरण-सत्त,
मोयई अंतर-दल-ललिय-गत्त ।
छह सण-चित्तासा-विसाम,
चउ-सायरंत-विक्खाय-णाम ।
आहमल्ल-राय-पय-भत्ति-जुत्त,
अवगमिय-णिहिल-विण्णाण-जुत्त ।
णिय-णंदणाहं चिंतामणीव,
णिय-धवलगिह-सरहंसिणीव ।
परियाणिय-करण-विलास-कज्ज,
रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ।

गंगा-तरंग-कल्लोल-माल,
मलकित्ति-मरिय-कडुइंतराल ।
कलयंठि-कंठ-कल-महुर-वाणि,
गुण गरुव-रयण-उप्पत्ति-खाणि ।
धारिराय-विसइ संकरहो सिद्ध,
सोहाग-लग्ग गोरिव्व विद्ध ।

घत्ता—तहिं पुरे, कइ-कुल-मंडणु,
दुरिय-खंडणु जिणवर सि य जिणेउ ।
सुपसिद्धउ कइ लक्खणु,
बोह-वियक्खणु पर-मय-राय ण दिणउ ॥४॥

पुव्वहिं दिणे सुणइ पमायय-चित्तु,
चिंतेइ मणम्मि महिएहि महत्तु ।
महु बोह-रयणु धण गरुय-गव्वु,
पुरयल-गव्वयाहं जम्मिय-दव्वु ।
कर-कंठ-करण-चहिरिय समत्तु,
घर-हर मइं सेय सव्वोद यत्तु ।
महु सु-कइत्तणु जिणा-विलास,
पुइयण-सुइ-मंडणु माहिलासु ।
भाणंद-पवाहइ अमिय-सेय,
ण विचारइ सुणइ ण हुय को वि ।
मइं चउद्द-कम्म-परिवाह सहाउ,
सम्माणिउ ताहिण्णइ दुह-विहाउ ।
एमेव कइत्तण-गुण-विसेसु,
परिगलइ विरत्त महु विसेसु ।
गेण्हुन्तएं वणिजयइं धम्मु,
विरयइ दयाउ इह सुयलि रम्मु ।
पाइयइ धम्मु-मणिक्क जेय,
सहसा संगइ गुरु मंदेय ।
धम्मेण रहिय घर-कम्मु कंतु,
इय चिंतयंतु कइ-चित्तु कंतु ।
हि पुण्णाणि पुण्णपरालिय,
जे परमइ पुण्ण-पहाण-णाह ।
मंदे धाइ महु गुरु-देविअ-कंदु,
महि-रुय-विणाय विरइवि इंदु ।
मइ-विहवाणंद-रायंद-भुणु
गरिंद-भाणु जा विरय गुणु ।
ता पुरओ सुणइ चत्तु,
जिण-मणाय-अविरयं-कयि दत्त ।

पाइरिउ ताइ हे सुह-सहाव,
कइ-कुल-णिवयासया गलिय-गाव ।
जिण-धम्म-रसायण-पाण-तित्तु,
गुरु भत्तउ परिसु जासु चित्तु ।
चिंता-किलेसु जं गुरइ कप्प,
तं तणिवि मज्झहिं मण-वियप्प ।

अइमुत्ति-राय-महमंति सुयइ,
जिण-सासण-परियप्प गुण पवइ ।
कणहेतु-कुल-कइरव-सेय-भाणु,
पाइया घमज्ज सव्वइं पहाणु ।
सम्मत्त धंगु सासयण-भत्तु,
सावय-वय-पालणु गलिय-गव्वु ।

घत्ता—

सो सुयइं मण-संतउ,
अविरय-तुंगउ विवियाणिहइ मणुन्नउ ।
गुणपालिहइ कइत्तणु सुयइ पत्तणु,
जिण-धम्मुत्तु उच्चयउ ॥५

इय सुणेवि मणवि पियरमाहि चंदु,
इह काले ण सज्जण होहिं अंदु ।
सहां माले विरयहि पयडु धम्मु,
सावय-वय-विहि-वित्थरणु-कामु ।

इउ पभणेवि भंविरि मण-महणि,
गय चंदादेवी विरय धत्ति ।
परि गणिय-विहाणि गोसु पुरउ,
कइ-लक्खणसु संगम-गिरि-चिगुड ।
जिणु चंदिवि भणिवि धम्म-रयणु,
पिरम्भइ मणे गाबलिय-णियणु ।

गुरु गुरु भावइ जं स्यणि दिणु,
चंदादेविए पभणिउ वयणु ।
तम ओउ म इयइ मणि गुणउ,
महु मग्ग विणाणा-वयणु सुणइ ।
गणेरिसरण-मणु लक्खणसु पहुय,
सोपाणि कण-कम्मापलमइ ।
हिय-णरि गणइ कम गंर-गुणि,
मण-कज्जु गुणिय गुरयइ-णाणणि ।
वलि पुयइ ण-मय एक-हिलि धंतु,
अणु को ण दीसइ महो दरंइ ।

सुप्पसरण-राउ धरइं तवेइ,
भणु कवणु दुवार-कवाड देइ।
अवमिय वय णलिणा चातुरंग,
धण-कण-कंचण-संपुणण चंग।
घर समुह गुंत पेच्छि वि सवारु,
भणु कवणु वप्प झंपइ दुवारु।
चिंतामणि-हारय-निबद्ध-जडिउ,
पज्जहइ कवणु सइं हत्थ-चडिउ।
घर-रंगुप्पण्णउ कप्परुक्खु,
जले कवणु न सिंचइ जणिय-सुक्खु।
सयमेव पत्त घरु कामधेणु,
पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु।
चारण-मुणि तेण जित्त-भवइ,
णय णाउ पत्त किर को ण णवइ।
वेऊस-पिंड करे पत्तु भक्खु,
को मुयइ निवे (इय)-जीवियक्खु।
मइ विज्जक्खर-गुण-मणि-णिहाणु,
पवयण-वयणामय-पय-पहाणु।
घर-धम्मिय-णर-मण [वो] हणत्थु,
वर-कइयणा विरइउ परमु सत्थु।
एमेव लद्ध-मह-पुण्ण-भवणु,
अवगण्णइ णरु धीमंतु कवणु।

घत्ता—

इह महियले सो धयण्णउ,
पुण्ण-पउण्णउ जसु णामें सुपसाहमि।
चिंतउ लक्खण-कइणा,
सोहण-मइणा कव्व-रयणु णिव्वाहमि ॥६॥

इह चंदुवाडु जमुणा-तडत्थु,
दंसिय-विसेस गुण-विविह-वत्थ।
चउ हट्ट-हट्ट-धर-सिरि-समिद्धु,
चउ वण्णासिय-जण-रिद्धि-रिद्धु।
भूवालु तत्थ सिहि मरहवालु,
णिय-देस-गाम-णर-रक्खवालु
तहिं-लंबकंचु-कुल-गयण-भाणु,
हल्लणु पुरवइ सव्वह पहाणु।
नरनाह-महा-मंडणु जणिट्ठु,
जिण-सासण-परिणइ पुण्ण-सिट्ठु।

तहो अभयवालु तणुरुहु हूट,
वणि-पट्ट किय-भालयल-रूट
णरवइ-समज्ज-सर रायहंसु,
मइमंत-थविय-चउहाण-वंसु।
सो अभयवाल-णरणाह-रज्ज,
सुपहाणु राय-वावार-कज्ज।
जिण-भवणु करायउ तें ससेउ,
केयावलि-झंपिय-तरणि-तेउ।
फुडावीढ-णाहयणा वोमु-कलहोय,
कलस-कलत्तिति-सोमु।
चउ सालउ तोरणु सिरि जणंतु,
पड-मंडव-किंकिणि-रण-झणंतु।
देहरुहु तासु सिरि साहु सोढु,
जाहडु-णरिंद-मइमंत-पोढु।

घत्ता—

संभूयउ तहो रायहो, लच्छि सहायहो पढमु जण मणाणंदणु।
सिरि वल्लालु णरेसरु, रूवें जिय-सरु सुद्धासउ मइणंदणु ॥७

जो साहु सोढु तहि पुर-पहाणु,
जण-मण-पोसणु गुण-मणि-णिहाणु।
तहो पढमु पुत्तु सिरि रयणवालु,
बीयउ कण्हडु कद्धिदु-भालु।
सो सुपसिद्धउ मल्हा-तणउ,
तस्साणु मणा जिउ सुद्धरूउ (?)।
उद्धरिय जिणालय-धम्म-भारु,
जिणसासण-परिणय-चरिय-चारु।
गंधोवएण दिण दिण पवित्तु,
मिच्छत्त-वसण-वासण-विरत्तु।
अरिराय-णाह-गोवाल-रज्ज,
वल्लालएव-णरवहं समज्ज।
सव्वहं रूव्वेसरु रयण-साहु,
वावरइं णरग्गलु चित्त-गाहु।
सिवदेउ तासु हुउ पढमु सूणु,
सिरि दाण (वंतु) ण गंध-थूणु।
परियाणइ णिहिल-कला-कलाउ,
विण्णाण-विसेसुज्जल-सहाउ।
मइ-महा-पंडिउ वि (उ)-सियासु,
अवगमिय-णिहिल-विज्जा-विलासु।

पहाडियारि संपुण्ण-गत्तु,
विष्णिय-सरोय संकाम-वत्तु ।
आपुत्रवए सो सिरि रयणवालु,
गउ सग्गाळए गुण-गण-विसालु ।
तहो पच्छए हुउ सिवएव साहु,
पिउ-पट्टि पइट्टिउ गहिय-साहु ।
आहवमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ,
महयणहं मज्झि गुण-गण-णिलउ ।
सो साहु पइट्ठिउ-अहिय-सेउ,
सिवदेउ साहु कुल-धम्म-केउ ।

घत्ता—

जो करइ सुपुणउ पुण्ण पउणउ मज्झि मंदरिकि चिरयाणउ
आहवमल्ल-णरिदंहु सयणा णंदहु मंतमज्झ पहुसाणउ ॥८॥

सिया तस्स सज्झस्सरणा सम्मत्तदृढा,
गुरूणं पए भत्ति काउं वियड्ढा ।
स-भत्तार-णायारविद्धाणुगामी,
परारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ।
सुदायार-चारित्त-णीरेक-तुण्णा,
सुपत्ताण संतोहयणं पवित्ता ।
स-सामाय-कामार-मारा मराली,
किवा-दाण-संतोसिया वंदियाली ।
पमस्सा गुराणा मणंदेव-चित्ता,
राम (रमा) राम-रम्मा मए वाउ चित्ता (?)।
तमाणं सुंदरोल-संपुण्ण-तुण्हा,
सुगणो महामाह मोडम्म गुरुहा ।
दया-धम्म-भेद-सुवर्ण सुधारा,
महण्णवं सुद्द सीवाजयारा ।
जहा चंदसूराणुगामी भवाणी,
जहा सच्च-संदेहि सच्चाण-माणी ।
जहा गोण-दिराविहो रंभ रामा,
रमा रामवालिस्स संपुण्णकामा ।
जहा रोहिणी सोमदेवस्स मण्णा,
महादेवी ससुरस्सस सासण रयणा ।
जहा सुरिणी सुणिंदे सरोहा,
विमहंसस साहा जहाकमसोमा (?)।
जहा सच्चई कंसकेसस्स सारा,
सुसीलस्स ठेहरूवी सेवमारा ।

एए कंसुणो (कमयणो) दाणियो सुदंसणो,
जहामयण-मण्णस्स सम्मत्त-विणी

घत्ता—

तासु सुलक्खणह विहिय सुचरकम अणुणामिणि वढ जयनंदिया
तहि हुव बे णंदणय णयाणंदय हरिदेउ वि दिउराउ हिया ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

सिरि लंबकंचु-कुल-कुमुय-चंदु,
कल्लाणवल्ली-घण-धवल-कंदु ।
जस-धवल-धवलिय-सोम-गंडु,
चाहिवरि-विमरथ-कुलिस दंडु ।
पयराइ-पलाइय-पक्खय पवणु,
भव्वयण-वयण-गिरि-सपय-तवणु ।
उम्मूलिय-मिच्छणाणपीढ,
जिय-मयणसत्त-विरयण-विमोह ।
दंसण-णाण-भूसण-भूसियंगु,
वजिलय-पर-दारंगणिय-पसंगु ।
पयणय-विहाय-पवयण-समांगु,
विलक्खण-गुण-गण-माणिक्क-कोसु ।
सयपवि-परपवित-मग्ग-मणिदु,
धम्म-दाण-चविय-वंदियण-विंदु ।
संसाराइ-परिभमण भीरु,
जिण-कल्लाणय-पोमिय-सरीरु ।
गुरु-देव-पाय-पुंडरिय-भसलु,
विणयाविहिय-णव-मोक्ख-मग्गु ।
महमइ सयणह तहु चायराइ,
पुर-परियारवर-गमय-बाहु ।
कन्हडु पहिलइ जण-गुण्णाणिंद,
आहवमल्ल-राय-महमंति विंद ।
तहो पढम-कलिय विणयदेव,
महसुहुणो कड्ढा सयणरोलु ।
माहुरहो परियो जइणा-गुरुण,
गुरुहुण्डगुम-निक्कम्मरुण्ड ।
आयम-कुल-मयद-निरावरोह,
पवमिच्छाई विहियावरोह ।
इह सणुयम-रयणु-पइंद करु,
विरयह कव्वित्ति परहरि ति गच्छु ।

संतगुु-णाम-जाउ-अइ-दुल्लहु ।
एयहिं सत्तहिं सुयहिं पसाहिउ,
सोमएउ णं णयहिं जिणाहिउ ।
जो पढमउ णंदणु वासाहरु,
सयल-कलालउ लंछण-ससहरु ।
पेक्खेविणु सारंगणरिंदें,
णाहु-चरण-कुल-कइरव-चंदें ।
रज्ज-धुराधरु णियमणि जाणिवि,
मंति-पयम्मि ठविउ सम्माणिवि ।
अप्पिवि देसु-कोसु-धणु-परियणु,
भुंजइ रज्ज-सोक्ख-णिच्चल-मणु ।

घत्ता—
सोसुअणु-गुणायरु बुहु-विहियायरु दुक्खिय-जण-णव-कप्पतरु
जिण-पय-पंकय-महुयरु सिरिवासद्धरु जाअच्छइ तहिं दुरिय-हरु

ता पेक्खवि पंडिय धणवालें,
विहसिवि पभणिउं बुद्धि-विसालें ।
भो सम्मत्त-रयण-रयणायर,
वासद्धर हरिराय-सहोयर ।
विणय-गुणालंकिय णिम्मच्छर,
पंडिय-जण-मण-रंजण-कोच्छर ।
करिवि पइट्ठ भव्वजणु-रंजिउ,
जे तित्थयर-गोत्त आवज्जिउ ।
धण्णउं तुहं गुरुभत्ति-कयायर,
मइ-सुइ-कित्ति-तरंगिणि-सायर ।
जिणवर-पाय पओरुह-महुयर,
सयल-जीव-रक्खण-सु-दयायर ।
दुस्समकाल-पहाव-गुरुक्कउ,
जिणवर-धम्म-मग्गि जणु वंकउ ।
दुज्जण-पउर-लोउ-अकयायरु,
विरलउ सज्जणु गुणिविहियायरु ।
असहायहो जगि को वि ण मण्णइ,
धम्म-पहावें लब्भइ उण्णइं ।
धम्महीणु जणु जहिं जहिं गच्छइ,
तहिं तहिं सम्मुहुं कोवि ण पेच्छइ ।
तें कज्जें धम्मायरु किज्जइ,
धम्महीणु ण कयावि हविज्जइ ।
इय धम्महो पहाउ उर घुट्टउ,
णिसुणिवि वासाधरु संतुट्ठउ ।

घत्ता—पुणु जंपिवि पियचायए महुरु तहिं गुरुचरणग्गें ठियउ ।
बहुविणए सिरिवासद्धरेण कइ धणवालउ पत्थियउ ॥६॥

जिण-पय-पंकय-इंदिरेण,
आयम-पुराण-सुइ-मंदिरेण ।
सम्मत्त-रयण-रयणायरेण,
कइ पुच्छिउ-पुणु वासाहरेण ।
भो कि अविणोएं गमहिं कालु,
मइ-वंतु सुणहिं जिणु सामिसालु ।
क रि-कव्वु मणोहरु सव्व-चित्त,
जिण-चक्कि-काम-कइ अइ-विचित्त ।
जसु णामइं णासइ णिहिलु दुरिउ,
वाहुवलि-कामएवहो चरियउ ।
जस असणोवरि तंबोलु भव्वु,
तह जिण तिलओवरि सहइ कव्वु ।
तुहुं विरयहि भव्व-मणोहिरामु,
पद्धडिया बंधें सद्धामु ।
कं विज्जए जाए ण होइ सिद्धि,
पुरिसें जेण ण लद्ध-लद्धि ।
किं किविणएण संचिय-धणेण,
किं णिण्णेहं-पिय-संगमेण ।
किं णिज्जलेण घण-गज्जिएण,
किं सुहडें संगर-भज्जिएण ।
किं अप्पणेण गुण-कित्तणेण,
किं अविवेयं विउ-सयणेण ।
किं विप्पएण पुणु रूसिएण,
किं कव्वें लक्खण-दूसिएण ।
किं मणुयत्तणि जं जणिय भव्वु,
किं बुद्धिए जाएण रइउ कव्वु ।
इय वयण सुणिवि संवाहि वासु,
धणवाल पयंपइ वियसियासु ।
भो कुणमि कव्वु जं कहिउ मज्झु,
गुरुयण हंसाएं किं असज्झु ।
हउं करमि कव्वु बुह-जणिय-दासु,
तुच्छमइ णं पयडइ जस-पयासु ।
णालोयउ पवयणु पय-सुअंगु,
णउ-लद्धउ मइ-कइयणहं संगु ।

घत्ता—वायरण महोवहिं दुत्तरु सइ-लहरि वित्थिण्णउं ।
णाणाभिहाण-जल-पूरियउ णउ हउ पारुत्तिण्णउं ॥ ७ ॥

घाणसरि-टीका-सरयवास,
हुअ आसि महाकइ मुणि-पयास।
सुअ-रयण-हुवियं-कुमय-रेणु,
कइ-चक्कवट्टि-सिरि धीरसेणु।
महि-मंडलि वणियउं विणुइवंदि,
वायरण-कारि सिरि-देवणंदि।
जइणेंद णामु जडयण-दुलक्खु,
किउ जेण पसिद्धु स-लायलक्खु।
सम्मत्ताहरु सुसु रायमल्लु,
दंसण-पमाणु वरु रयउ कव्वु।
सिरि.वज्जसूरि गणि गुण-णिहाणु,
वि.यउ मह छंददसण-पमाणु।
महासेण महामइ विउ समहिउ,
घण णाम सुलोयणचरिउ कहिउ।
रविसेणें.पउमचरित्तु वुत्तु,
जिणसेणें हरिवंसु वि पवित्तु।
मुणि जडिलि जडत्त-णिवारणत्थु,
यं.वरंगचरिउँ लंकाय पयत्थु।
दिणयरसेणें कंदप्पचरिउ,
वित्थरिय महिहि णव-रसहं भरिउ।
जिण-पासचरिउ अइसयवसेण,
विरयउ मुणिपुंगव-पउमसेण।
अमियाराहण विरइय विचित्त,
गणि अंबसेण भव-भोस-चत्त।
चंदप्पहचरिउ मणोहिरामु,
मुणि विण्हुसेण किउ धम्म-धामु।
धणयत्तचरिउ चउवग्गताय,
अवरेहि णिहिउ णाणापयार।
मुणि सीहणंदि सहरय णामु,
अणुपेहा-कय-संकप्प-णामु।
णवयारणेहु णरदेव वुत्तु,
कइ असग विहिउ वीरहो चरित्तु।
सिरि-सिद्धसेण पवयण विणोउ,
जिणसेणें विहिउ आरिसेतु (आरिसोउ)
गोविंदकइ दंसण-कुमार,
कइ-रयण-समुहो सद्द-पार।
गणधरु सिद्ध-गुण-मुणिउ तेउ,
सुय सामिहणु कइ औ१ देउ।
वर पउमचरिउ किउ सु-कइसेढु,
इय अवर णायवर वलयवेढु।
घत्ता—चउमुह दोणु सयंभुकइ पुप्फयंतु पुणु वीरु भणु
ते णाण-दुमणि-उज्जोय-कर हउ दीवोवमु हीणु-गुणु ॥८॥
तं णिसुणिवि वासाहरु जंपइ,
किं सुहं सुद्द चिताउलु संपइ।
जइ मयंकु किरणहिं धवलइ भुवि,
सो खज्जोउ ण छंडइ णिय-छवि।
जइ खयराउ गयणे गमु सज्जइ,
सो सिहंडि किं णिय-कमु वज्जइ।
जइ कप्पतरु वनिय फल कप्पइ,
सो किं तरु लज्जइ णिय संपइ।
जसु जेत्तिउ मइ-पसरु पयट्टइ,
सो तेत्तिउ धारणियलें पयट्टइ।
इय णिसुणिवि संघाहिव वुत्तउ,
कइणा धणवालेण पउत्तउ।

× × × ×

इयसिरि-बाहुबलि-देव-चरिए सुहडदेव-सवण-सुह धणवाल-विरइए, महाभव्व-वासद्धर-णामंकिए सेणियराय-समवसरण-समागमो वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधिः १ ॥

अन्तिमो भागः—

× × × ×

जंबुदीव-भरह-वर-संतरि,
गिरि-सरि-सीमाराम-णिरंतरि।
अंतरवेइ मज्झि धणरिद्धउ,
तहं कायिट्ठ-विसउ सु-पसिद्धउ।
णीर-राणि उप्पत्ति पविसउ,
सूरीपुरु जण-णरपालंतउ।
सूरसेणु णरवइ तहो णंदणु,
अंधय-विट्ठि-राउ रिउ-मद्दणु।
तहो पइवय णिय-पाण-पियारी,
णाम सुभद्दा देवि भडारी।
दस-कुमार तहिं णंदण जाया,
धीर-विक्ति तिहुयण-विक्खाया।
सायर-विजउ पढमु दक्खिणीयउ,
पुणु अक्खोहु णाम दुइ बीयउ।
तइयउ थमियासउ सिरिवल्लहु,
पुणु हिमवंतु तुरिउ आणदु दुज्जहु।

विजउ णामु पंचमु सुह-यदणु,
छट्ठउ अचलु रिद्धि-सयकंदणु।
सत्तमु णामु पसिद्धउ धारणु,
पुणु अट्ठमउ तणुब्भउ पूरणु।
सुउ अहिचंदु णवमु पुणु जाणहु,
दहमउ सुउ वसुएवउ माणहु।
एयहं लहु अंकोऽतिमदोवर,
लावण्णें णिज्जिय अमरच्छर।
समुद् विजअ सूरीपुरि थप्पिउ,
चंदवाडु वसुएवहो अप्पिउ।
तहो सुउ रोहिणेउ अरि-गंजणु,
देवइ-णंदणु अणु जणद्दणु।
तहो संताण कोडि-कुल-लक्खइं,
संजाया केवलि-पच्चक्खइं।
पुणु संभरि णरिंद महि भुंजिय,
जायव-सुव्वभत्तें रंजिय।
असवंतु चहुवाण पुहइ पहु,
तहु मंतिउ जदुवंसिउ जसरहु।
पहुगण पत्तिहु अउ धरणीयलि,
आसावुरि सुरि-पय-पंकय-अलि।
साहु णाम गोकणु मंती तहु,
जिणवर-चरणंभोरुह-महुलिहु।
हुउ संभरि णरिंद महिवालउ,
कण्णदेवु-णाम-पय-पालउ।
सोमदेउ तहो मंति सहोयरु,
सयल-कलालंकउ णं ससहरु।

घत्ता—पुणु सारंगु णरिंदु अभयचंदु तहो णंदणु।
तहो सुअ हुउ जयचंदु रामचंदु णामें पुणु॥

णिव-सागर-रज्जि-समयंकिउ,
वासाहरु मंतिउ णीसंकिउ।
णिय-पहु-रज्ज-भार-दिढ-कंधरु,
विबुह-वंदि-तरु-पोसण-कंधरु।
एक्कु जि परमप्पउ जो झावइ,
वे ववहार सुद्धणय भावइ।
जो ति-काल रयणत्तउ अंचइ,
चउ णिओय-रुइ कह-वि ण मुच्चइ।
जो परमेट्ठि-पंच-आराहइ,
जो पंचंग-मंत-महि साहइ।
जो मिच्छत्त पंच अवगण्णइ,
छक्कम्महिं जो दिणि दिणि गम्मइं।
जो रूसंतु-रज्जु सु णिहालइ,
सत्त-तच्च-सद्दहइ रसालइ।
दायारहु-गुण-संतत-रत्तउ,
सत्त वसणें जो कहिवि ण रत्तउ।
अट्ठ मूलगुण-पालण-तप्परु,
सइंसण अट्ठंग रयणावरु।
अट्ठ-सिद्ध-गुण-गण-सम्माणइं,
अट्ठदव्व-पुज्जिय जिण-चरणइं।
णव-विह-पुण्ण-पत्त दाणायरु,
णव-पयत्थ-परिरक्खण-णायरु।
णव-रस-चरिउ सुणइं पक्खाणइं,
दह-लक्खण-धम्महिं रइ-माणइं।
एयारह अंगइं मणि इच्छइ,
एयारह-पडिमाउ णियच्छइ।
बारह-सावय-वय-परिपालइ,
तेरह-विहि चरित्तु सुणिहालइ।
चउदह-कुलयरक्खमुवपस्सइ,
चउदह-विह-पुव्वहिं-मणु-वासइ।
चउदह-मग्गण-वित्थरु-जोवइ,
चउदह पुरिस सत्तण उज्जोवइ।

घत्ता—
तहो बंधउ रयणसीहु भणिउ भज्जा य मेरु सुपसिद्धउ।
जिणबिंब-पइट्ठ-रणेवि पुणु जिणवर-गोत्तु णिबद्धउ॥२॥

वासद्धर पिययम वे घरिणिउं,
परियण-पोसण णं कुरु धरणिउं।
वे पक्खुज्जल पर ण मरालिय,
सील-तरुहिं णं वेल्लि रसालिय।
पेमंकिय-कुल-सरणं पोमिणि,
सुयण-सिहंडिणि णं जलहर-झुणि।
पइ-वय-सील-सलिल-मंदाइणि,
दुक्खिय-जण-जण-णिव-सुह-दाइणि।
उदयसिरी होमा विणय-जुय,
चउविह-संघहो कप्पणिही इय।
उअर-सप्पि-सुय-रयण-समुब्भव,
संजाया कुल-हरण-तणुब्भव।
पढम-पुत्तु जयपालु गुणंगउ,

रूवेणं पच्चक्ख अणंगउ ।
हुउ जसपाल विवरखणु बीयउ,
पुणु रउपालु पसिद्धउ तीयउ ।
तुरियउ चंदपालु सिरि-मंदिरु,
पंचमु सुअ विहराज सुहंकरु ।
छट्ठउ पुण्णपालु पुण्णायरु,
सत्तमु वाहड्डु णाम गुणायरु ।
अट्ठमु रूवएउ रूवड्ढउ,
पुत्तहिं अट्ठ-सुअहिं-चिर-वड्ढउ ।
भाइय-भत्तिजय-संजुत्तउ,
णंदउ वासाधर गुण जुत्तइ ।
जं हुउं पच्छिउ पसमिय गव्वें,
वासाहर-संघाहिय-भव्वें ।
तहो भयवं मइं आसि दिट्ठउ,
जं गणहर सुअ-केवलि-सिट्ठउ ।
सो पेच्छिवि मइं पाइय कव्वें,
विरयउ बुह-धणवालें भव्वें ।
सिरि-बाहुबलि-चरिउ जं जाणिउं,
लक्खण छंदु तक्कु ण वियाणिउं ।

घत्ता—लक्खण-मत्ता-छंद-गण-हीणाहिउ जं भणिउ मइं ।
तं खमउ सयलु अवराहु वाएसरि-सिवहं संगइं ॥३॥

विक्कम-णरिंद-अंकिय-समए,
चउदह-सय-संवच्छरहिं गए ।
पंचास-वरिस-चउ-अहिय-गणि,
वइसाहहो सिय-तेरसि सु-दिणि ।
साइं णक्खत्ते परिट्ठियइं,
वरसिद्धि-जोग-णामें ठियइं ।
ससि-वासरे रासि-मयंक-तुले,
गोलग्गें मुत्ति-सुक्कें सवले ।
चउवग्ग-सहिउ णव-रस-भरिउ,
बाहुबलिदेव-सिद्धहो चरियउ ।
गुज्जर पुरवाड-वंसतिलउ,
सिरि-सुहड-सेट्ठि गुण-गण णिलउ ।
तहो मणहर छाया गेहणिय,
सुहडाएवी णामें भणिय ।
तहो उवरि जाउ बहु-विणय-जुओ,
धणवालु वि सुउ णामेण हुओ ।
तहो विण्णि तणुब्भव विउल-गुण,
संतोसु तह य हरिराय पुण ।
चिरु णंदउ-धम्मु जा महिवलए,
सायर-जलु जा सुर-सरि मिलिए ।
कणयहि जाम वसुहा अचलु,
वासरहो छट्ठउ ताम कुलु ।
जो पढइ पढावइ गुण-भरिओ,
जो लिहइ लिहावइ वर-चरिओ ।
संताण-वुड्ढि वित्थरइ तहो,
मणवंछिउ पूरइ सयलु सुहो ।
बाहुबलि-सामि गुरु-गण-संभरणु,
महु णासउ जम्म-जरा-मरणु ।

घत्ता—जो देइ लिहावइ वि पत्तहो, वायइ सुणइ सुणावइ ।
सो रिद्धि-सिद्धि-संपय लहिवि, पच्छइ सिव-पउ पावइ ॥४॥

श्रीमत्प्रभाचन्द्र-पद-प्रसादादवाप्तबुद्धया धनपालदक्षः ।
श्रीसाधुवासाधर-नामधेयं स्वकाव्य-सौधे कलशी-करोति ॥

इति बाहुबलि-चरित्रं समाप्तम् ।

(आमेर-भंडार, प्रति सं० १५८९
पं० पन्नालाल सरस्वती भवनकी प्रतिसे संशोधित)

२० चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रभचरित) भ० यशःकीर्ति

आदिभागः—

णमिऊण विमल-केवल-लच्छी-सव्वंग-दिण्ण-परिरंभं ।
लोयालोय-पयासं चंदप्पह-सामियं सिरसा ॥१॥
तिक्काल-वट्टमाणं पंचवि परमेट्ठिए ति-सुद्धोऽहं ।
तह नमिऊण भणिस्सं चंदप्पह-सामिणो चरियं ॥२॥

घत्ता—

जिण-गिरि-गुह-णिग्गय, सिव-पह-संगय, सरसइ-सरि सुह-कारिणिय
महु होउ पसण्णिय गुणहिं रवण्णिय तिहुवण-जण-मणहारिणिय

हुंवड-कुल-णहयलि पुप्फयंत,
बहु देउ कुमरसिंहवि महंत ।
तहो सुउ णिम्मलु गुण-गण-विसालु,
सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु ।
जसकित्ति विबुह-करि तुहु पसाउ,
महु पूरहि पाइय कव्व-भाउ ।
तं निसुणिवि सो भासेइ मंदु,
पंगुलु तोडेसइ केम चंदु ।
इह [illegible] बहु गणहर णाणवंत,
जिण-वयण-रसायण वित्थरंत ।

णमि कुंदकुंद वच्छलज्ज गुणु,
को वराणाए सक्कइ उयर जसु।
कलिकाल जेण ससि सिहिङ णामु,
सइ दिट्ठउ केवल णंत-धामु।
णामें समंतभद्दहु वि मुणिंदु,
अइ णिम्मलु णं पुण्णिमहि चंदु।
जिउ रंजिउ राया रुद्दकोडि,
जिण-थुत्ति-मित्ति सिवपिंडि फोडि।
णीहरिउ विंबु चंदप्पहासु,
उज्जोयंतउ फुडु दह दिसासु।
अकलंकु णाइं पच्चक्खु णाणु,
जें तारा-देविहि दलिउ-माणु।
उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध,
णिद्दाडिय पडिजय सयल-बुद्धि।
सिरि-देवणंदि मुणिवइ पहाउ,
जसु णाम-गहणि णासेइ पाउ।
जसु पुज्जिय अंचाएई पाय,
संभरण मित्ति सवखणि ण आय।
जिणसेण सिद्धसेण वि भयंत,
परवाइ-दप्प-भंजण-कयंत।
इय पमुहहं जहिं वाणी-विलासु,
तहि अम्हह कह होई पयासु।

घत्ता—
तहि थुणइ फणीसरु, बहु जीहाहरु, अह सहसक्खुतिरिक्खइ।
तहि परु जिण-चरणइ, सिवसुहकरणइ, किह संथुणइ समिक्खइ

× × × ×

अन्तिमभागः—

गुज्जर-देसहं उम्मत्त गामु,
तहिं छड्डा-सुउ हुउ दोण णामु।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्व-बंधु,
जिण-धम्म-भारि जें दिण्णु खंधु।
तहु सुउ जिट्ठउ वहुदेव भव्वु,
जें धम्म कज्जि विव कलिउ दव्वु।
तहु लहु जायउ सिरि-कुमरसिंहु,
कलिकाल-करिदंहो हणण-सीहु।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु,
जिण-पुज्ज-दाण-गुणगण-रमालु।
तहो उवरोहिं इह कियउ गंथु,
हउं णामु णामि किंपिवि सत्थु गंथु।

घत्ता—
जा चंद दिवायर सव्व विसायर, जा कुल पव्वय भूवलओ।
ता एहु पयट्टहु हियइं चहुट्टउ, सरसइं देविहिं मुहि तिलओ।

इय-सिरि-चंदप्पह-चरिए महाकइ-जसकित्ति-विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण-भूसणे सिरिचंदप्पह-सामि णिव्वाण गमणो-णाम एयारहमो-संधी परिच्छेओ सम्मत्तो॥

(मेरे पैत्रिक-शास्त्र-भंडारसे) सं.—१५३०

पंडव-पुराणु (पांडव-पुराण) (भाषा अपभ्रंश)
कर्ता-भ० यशःकीर्ति. रचना-काल सं १४९७

आदिभागः—
वोह-सु-सर-पयरट्ठहो गय-धय-रट्ठहो सिरिवलाम सोरट्ठहो।
पणविवि कहमि जिणिट्ठहो गुणथल-विट्ठहो कह पंडव-धयरट्ठहो॥

जो भव्व सरय-वोहण-दिणिंदु,
हरिवंस-पवण-पह णिसियरिंदु।
सव्वंग सलक्खणु लद्धसंसु,
णिय-कम्म-णियवखाणण विहंसु।
भव-भीयहं सत्तहं ललिय हंसु,
वे पक्ख समुज्जलु णाइ हंसु।
जेसिं वर-जम्मि पयडिउ अहिंसु,
जो सिद्धि-मरालिहिं परमहंसु।
जें णाणें पवियाणिउ ण हंसु,
जो तिरयणाहु वज्जरिय हंसु।
अण-चाय-विसा-सारंग-वरिसु,
जम्मणे हरि-किय सारंग-वरिसु।
णिय-कंतिए जिउ सारंगु सज्जु,
सारंगेण जि मेल्लिउ अवज्जु।
णिह-मोहु चइ वि सारंगु जाउ,
सारंगु णाणेण दिण्णउ न राउ।
सारंगें पणविय णिच्च-पाउ,
सारंग पाणि कर तुलिउ राउ।
चउतीसातिसयहिं सोहमाणु,
वसु-पाडिहेर-सिय-चत्त-माणु।
चउ-घण-चमरेहिं विजिज्जमाणु,
जसु लोयालोय पमाणु णाणु।
जें पयडिउ बावीसमउ तित्थु,
जसु अणुदिणु पणवइ सुरहं सत्थु।
समुद्द-विजय सिवएवीहे पुत्तु,

सो नेमिणाहु गुण-सील-जुत्तु ।
जसु तित्थें जाउ महियलें पवित्तु,
पंडवहं चरिउ अच्छरिय-जुत्तु ।

घत्ता—
तह पणविवि सिद्धहं णाण-समिद्धहं आयरियहं पाठयहं तहं ।
साहुहु पणवेप्पिणु भाउ धरेप्पिणु चायसरि जिण-वयण-रहं ॥१

पुणु पणवेप्पिणु जिणु वड्ढमाणु,
अज्जवि जस तित्थु पवड्ढमाणु ।
चउ-कम्म हणि विहु परम-णाणि,
जोयण-पमाण-जसु दिव्व-वाणि ।
जं जए पयडिय पंचत्थिकाय,
छद्दव्व तह व कालहो न काय ।
जीवाइ-पयासिय-सत्त-तच्च,
पुणु णव-पयत्थ-दह-धम्म-सच्च ।
सम्मत्तु वि पणविसइ दोसु चत्त,
णिस्संकिय संवेयाइं जुत्त ।
पउजरिउ विविहु सायार-धम्मु,
अणयार-धम्मु णिह णिमहु कम्मु ।
जसु समवसरणु जोयण-पमाणु,
जे भणियउ तिलोय-पमाण-ठाणु ।
पुणु इंदभूइ-पमुहइ णवेवि,
णिय-गुरुहु अणुज्जल गुण सरेवि ।
चिर कइ हु करेप्पिणु परम भत्ति,
सुउ किंपि पयासमि णियय-सत्ति ।
इय चिंतंतउ मणि जाम थक्कु,
सुणि णाम परायउ साहु एक्कु ।
इह जोयणिपुरु बहु पुर-हिसारु,
धण-धण्ण-सुवण्ण-णरेहि फारु ।
सिरि-सर-वण-उववण-गिरि-विसालु,
गंभीर-परिह-उत्तुंग-सालु ।
तहिं णिवसइ जालपु साहु भव्वु,
णिउणी भज्जालंकिउ अगव्वु ।
सिरि-अयरवाल-वंसहिं पहाणु,
सो संघहं वच्छलु-विगय-माणु ।
तहो णंदणु धीरहा णय-पमाउ,
..................सहं जि णाउ ।
आवेप्पिणु हितमयाउ दिट्ठु,
से णवि सम्माणिउ किउ वरिट्ठु ।

घेनाही तहो पिय णाम सिट्ठ,
गुरुदेव-भत्त परियणहं इट्ठु ।
तहो णंदणु णंदणु हेमराउ,
जिणधम्मोवरि जसु णिच्च-भाउ ।
सुरतान मुमारख-तणइं रज्ज,
मंतितणे थिउ णिय भार कज्ज ।

घत्ता—
जें अरहंतु-देउ मणि भाविउ, जासु पहुत्तें, को णिय ताविउ ।
जेण कराउउ, जिण चेयालउ, पुण्णहेउ चिर-रय-पक्खालउ ॥२

धय-तोरण-कलसेहिं अलंकिउ,
जसु गुरुत्ति हरि जाणु वि संकिउ ।
पर-तिय-बंधउ-पर उवयारिउ,
जेण सम्मु जणु धम्महं तेरिउ ।
संघ धुरंधरु-पवहु सुणिज्जइ,
सावय-धम्में णिच्च मणु रंजइ ।
सत्त वसण जे दूरें वज्जिय,
सील-सयण-चित्ति वि आवज्जिय ।
सत्त गुणहं दायारहं जुत्तउ,
णव-विह-दाण-विहिए णाउ चत्तउ ।
पयणं पणय-गुणें मउ भंजिउ,
रयणत्तय-भावण-अणुरंजिउ ।
विणएं दाणु देइ जो पत्तहं,
जिणु तिकालु पुज्जइ समचित्तहं ।
तासु भज्ज-गुण-रयण-वसुंधरि,
गंधो णाम णिय-गइ-जिय-सुरसरि ।
रूवें चेल्लण-देवि पहाणिय,
जिणवर-भत्तिहिं णं इंदाणिय ।
अमिय-सरस-वयणहिं सच्चहिं प्रिय,
णाउ संघोत्तराय अणुरंजिय ।
उवरि कढिल्लु सील जें धारिउ,
रयणत्तय हारें मणु पेरिउ ।
धम्म सवण-कुंडल जें धारिय,
जिण-मुद्दा-मुद्दिय संचारिउ ।
जिण-गेहम्मि गमण-णेउर-सरु,
तहो चंदण-कंकण सोहिय-करु ।
जिणवर-मंत सरणु कुंचउ उरि,
जिणवर-हवणु तिलउ किउ णिय-सिरि ।
एयहं आहरणहं जा सोहिय,

भार मुणिवि कंचणहि ण मोहिय ।
तासु पुत्तु पल्हणु जाणिज्जइ,
चाएं तक्कुय-गणहिं थुणिज्जइ ।
वीयउ सारंगु वि पिय भत्तउ,
कउला तइउ धम्महिं रत्तउ ।

घत्ता—
पल्हण णंदणु गुणणिलउ गोल्हणु माय-पियर-मण-रंजणु ।
वील्हा साहुहें अवरु सुउ लखा णामु जण-मण आणंदणु॥३

दिउ राजही य भज्जहि समेउ,
कीलंतहं हुउ संताण जोउ ।
णंदणु हूंगरु तह उधरणक्खु,
हंसराउ तयउ सुउ कमल-चक्खु ।
एक्कहिं दिणि चिंतिउ हेमराय,
जिणधम्म हीणु दिणु अहलु जाय ।
णिसुणिज्जइ चिर पुरिसहं चरित्तु,
हरि-नेमिनाह-पंडवहं वित्तु ।
ता होइ मज्झ जम्मु वि सलग्घु,
णासइ-चिर-संचिउ-पाउ-सिग्घु ।
इय चिंतिवि जिण-मंदिरहि पत्तु,
जस मुणि पणविवि अक्खिउ सचित्तु ।
सोउं इच्छमि पंडवचरित्तु,
पयडहि सामिय जं जेम वित्तु ।
विवरीउ सव्वु जणु वज्जरेइ,
णरयावणि दुक्खहो णाउ डरेइ ।
तं णिसुणिवि जंपिउ मुणिवरिंदु,
चंगउ पुच्छिउ वुहयणहं चंदु ।
पंडव-चरित्तु अइ-गहणु जइवि,
तुव उवरोहें हउं कहमि तइवि ।
तो तहो वयणें गुण-गण-महंतु,
पारंभिउ सद्दत्थहं फुरंतु ।
सज्जण-दुज्जण-भउ परिहरेवि,
णिय-णिय-सहाव-रत्तें वि दोवि ।

घत्ता—सज्जणु वि सहावु अकुडिल-भावु
ससि-मेहुव उवयार-मई ।
पर-दोस-पयासिरु अवगुण-भासिरु
दुज्जणु सप्पु व कुडिल-गई ॥४॥

× × ×

इय पंडवपुराणे सयल-जण-मण-सवण-सुहयरे सिरि-गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु-वील्हा-पुत्तराय मंत्ति-हेमराज-णामंकिए कुरुवंस-गंगेयउ-धिति-वण्णणोणाम पढमो सग्गो ॥प्रथमसंधिः॥१॥

चरमभाग :—

णंदउ सासणु सम्मइणाहें,
णंदउ भवियण-कय-उच्छाहें ।
णंदउ णरवइ पय पालंतउ,
णंदउ उदय-धम्मु वि रिसिहिंकिउ ।
णंदउ मुणिगण तउ पालंतउ,
दुविह-धम्मु भवियणहं कहंतउ ।
दाण-पूय-वय-विहि-पालंतउ,
णंदउ सावय-गुण-रय-चत्तउ ।
कालें विरिसिय णिच्च परिसयकउ,
कासवि धणु कणु देंति ण थक्कउ ।
पज्जउ मंदलु गिज्जउ मंगलु,
णच्चउ णारीयणु रहसें कलु ।
णंदउ वील्हा पुत्त गुणवंतउ,
हेमराउ-पिय-पुत्त सहुत्तउ ।
अत्थ-विरुद्ध बुहहिं सोहिव्वउ,
धम्मत्थें आलसु नउ किव्वउ ।
विक्कमराय हो ववगय कालए,
महि-सायर-गह-रिसि अंकालए ।
कत्तिय-सिय अट्ठमि बुह वासर,
हुउ परिपुण्ण, पढम नंदीसर ।
जहु मही-चंदु-सूरु-तारायणु,
सुर-गिरि उवहि ताउ सुह भायणु ।
जाता णंदउ कलिलु हरंतउ,
भविय-जणहिं वित्थारिज्जंतउ ।

घत्ता—इय चउविह संवह विहुणिय विग्घहं
णिण्णासिय भव-जर-मरणु ।
जसकित्ति-पयासणु अखलिय-सासणु
पयडउ संति सयंभु जिणु ॥२३॥

इय पंडव-पुराणे सयल-जण-मण-सवण-सुहयरे सिरि-गुणकित्ति-सिस्स-मुणि-जसकित्ति-विरइए साधु - वील्हा-पुत्त हेमराज - णामंकिए - णेमिणाह-जुधिट्ठर-भीमाज्जुण-निव्वाण गवणं, नकुल-सहदेव-सव्वट्ठसिद्धि-बलदह - पंचम - सग्ग गमण - पयासणो णाम चउतीसमो इमो संगो समत्तो ॥संधि ३४॥

सिरि कट्ठसंघ माहुरहो गच्छे,*
पुक्खर-गणि मुणिवरहं विसिट्ठि ।
संजायउ वीर जिणक्कमेण,
परिवाडिए जइवर णिट्ठमेण ।
सिरि देवसेणु तह विमलसेणु,
तह धम्मसेणु पुणु भावसेणु ।
तहो पट्टि उवण्णउ सहसकित्ति,
भवरयण भमिय जए जासु कित्ति ।
तह विणयउ मुणि गुणकित्ति णामु,
तव-तेएं जासु सरीरु खामु ।
तहो सिसु संजउ जसकित्ति जाउ
आयरिय पणामिय दोसु-राउ ।
ते पय बुद्धिए विरइयउ गंथु,
भवियहं दाविय-सुह-मग्ग-पंथु ।

(प्रति आमेर और देहली पंचायती मंदिर शास्त्रभंडारसे, सं० १५१२, सं० १६६१)

२२. हरिवंशपुराण

(भ० यशःकीर्ति) रचनाकाल सं० १५००

आदिभागः—

पणविवि अरहंतहो कुणयविहंसहो भविय-कमल-सरहंसहो ।
पणविवि जिणहंसहो मुणिपयहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥

जय रिसह रिसीसिय जिण-पयास,
जय अजिय-अजिय हय-कम्मपास ।
जय संभव भव-कंदर-कुठार,
जय अभिणंदण परिमिणिय कुमारि ।
जय सुमइ सुमय पयडिय-पयास,
जय पउमप्पह णासिय-कुलिंग ।
जय जय सुपास हय-कम्मपास,
जय चंदप्पह ससि-भास-भास ।
जय सुविहि सुविहि-पयडण-पवीण,
जय सीयल जिण वाणी-पवीण ।

जय सेय-सेय किय-विगय-सेय,
जय वासुपुज्ज भव-जलहि सेय ।
जय विमल विमल गुण-गण-महंत,
जय संत दंत जिणवर अणंत ।
जय धम्म धम्म जिण हरिय ताव,
जय संति समिय-संसार-भाव ।
जय कुंथु सुरकिण्णर-सुहम-पाणि,
जय अरिजिण चक्की सयल-णाणि ।
जय मल्लि णिहय-तिल्लोक-मल्ल,
जय मुणिसुव्वय चूरिय-ति-सल्ल ।
जय णमि जिण विस-रह-चक्कणेमि,
जय जहिय राय रायमइ णेमि ।
जय पास असुर-णिम्महिय-माण,
जय वीर विहाणिय-णाय-पमाण ।

घत्ता—
पुणु विणय-सरीर णय-भवतीर सील छुड गुण सूरिवरा ।
उवज्झाय सुसाहू हुय सिवलाहू पणविवि पयडमि कह पवरा ॥१॥

पुव्व पुराण जासु बहु वित्थर,
काल-पहावें भणियइं दुत्तर ।
अयरवाल-कुल-कमल-दिणेसर,
दिउचंदु साहु भविय-जण-मणहर ।
तासु भज्ज चालुहिइ भणिज्जइ,
दाण गुणहिं लोएहि थुणिज्जइ ।
सत्त-सील-आहरणहिं सोहिय,
भाइ गुणिहि पंचवणहिं णं मोहिय ।
ताहि पुत्तु जिणदास विणायउ,
दिउढा णामधेउ बहु जाणउ ।
तहो हवणोंहि सई यहु पावउ,
णिसुणइं भवियण-मण-णिसुणउ ।
जासु सुयोणइं महारउ-णिरुज्जइ,
मग्गणगणहं सुद-संदरसद ।
यह महंतु णिरुवमु जसु मंदिर,
ता हरिवंसु सईमि चोहिंगिउ ।
गइ-णाय-संबंध-तुरंगउ,
जिणसेणहो मुणहो पउ पयडिउ ।
तहु सीसु वि गुणभद्द वि मुणिंदु,

*यह प्रशस्तिका यह भाग आमेर प्रतिमें नहीं है, प्रति-लेखकोंसे छूटसे छूट गया जान पड़ता है । किन्तु पंचायती मंदिर देहलीके शास्त्र-भंडारकी प्रतिमें मौजूद है, इसी परसे यहां दिया गया है ।

वाईहिं कुंभदारण-मयंदु[1] ।
सज्जण-दुज्जण-भउ अवगरिणवि,
ते णिय-णिय-सहाव-रय दोरिणवि ।
कडुयउ-णिंबु महुरु इंगाली,
अंबिलु वीयपूर-चिंचाली ।
तिंह सज्जण सुसहावें वच्छलु,
दुज्जणु दुट्ठु गहइ कवियण छलु ।
लेउ दोसु सो मइं मोकल्लिउ,
जइ पिक्खइ ता अच्छउ सलिलउ ।

× × ×

अन्तिमभागः—

इहु हरिवंसु सत्थु मइ अक्खिउ,
कुरुवंसहो समेउ णउ रक्खिउ ।
पढमहि पयडिउ वीर-जिणेंदे,
सेणियरायहो कुवलय-चंदें ।
गोयमेण पुणु किय सोहम्में,
जंबूसामि विण्हु सणामें ।
णंदिमित्त अवरज्जिय णाहें,
गोवद्धणेण सु भद्दयवाहें ।
एम परंपराए अणुलग्गउ,
आइरियहं मुहाउ आवग्गउ ।
सुणि संखेव सुत्तु अवहारिउ,
मुणि जसकित्ति महिहि वित्थारउ ।
पद्धडिया छंदें सुमणोहरु,
भवियण-जण-मण-सवण-सुहंकरु।
करि वि पुराणु भवियहं वक्खाणिउ,
दिढु मिच्छत्तु मोह-अवमाणिउ ।
जो इउ चरिउ वि पढइ पढावइ,
वक्खाणेप्पिणु भवियहं दावइ ।
पुणु पुणु सद्दहेइ समभावें,
सो मुच्चइ पुव्वक्किय-पावें ।
जो आयरइ ति-सुद्धि करेप्पिणु,
सो सिउ लहइ कम्म छेदेप्पिणु ।
जोणु एम चित्तु णिसुणेसइ
सग्गु-मोक्खु सो सिग्घु लहेसइ ।

एउ पुराणु भवियहं आसासइ,
आउ-बुद्धि-बलु-रिद्धि पयासइ ।
वइरिउ मित्तत्तणु दरिसावइ,
रज्जत्थिउ विरज्जु संपावइ ।
इट्ठ समागमु लाह सुहाइवि,
देवदिंति वर मच्छरु णु चिंति ।
गह साणुग्गह सयल पयट्टहिं,
मिच्छाभाव खणद्धें तुट्टहिं ।
आवइ सव्व जाहिं खम भावें,
सुह-विलास घरि होहि सदावें ।
पुत्त-कलित्तत्थियहं सुपुत्तहं,
सग्गत्थियहं थणु हुज्जइ ।
जो जं इच्छइ सो तं पावइ,
देसंतरि गउ णिय घरि आवइ ।
भवियण संबोहणहं णिमित्तें,
एउ गंधु किउ णिम्मल-चित्तें ।
णउ कवित्त कित्तहें धणलोहें,
णउ कासुवरि पवड्ढिय मोहें ।
इंदउ रहिएउ हुउ संपुण्णउ,
रज्जे जलालखान कय उण्णउ ।
कम्मक्खय णिमित्तु णिरवेक्खें,
विरइउ केवल धम्मह पक्खें ।
अत्थ-विरुद्धु जं जि इह साहिउ,
तं सुयदेवि खमउ अवराहउ ।
णंदउ णरवइ णाय सपत्तउ,
सइता उवणिय पय पालंतउ ।
णंदउ जिणवर सासणु बहुगुणु,
णंदउ मुणिगणु तह सावय जणु ।
कालि कालि कालिविणि वरिसउ,
णच्चउ कामिणि गोमिणि विलसउ ।
पसरउ मंगलु वज्जउ मद्दलु,
णंदउ दिउढासाहु गुणग्गलु ।
जावहि चंदु सूरु तारायणु,
णंदउ ताम गंथु रंजिय जणु ।
विक्कमरायहो ववगय कालइं,
महि इंदिय दुसुण्ण अंकालइं ।
भादवि सिय एयारसि गुरुदिणे,
हुउ परिपुण्णउ उग्गंतहिं इणे ।

---

१ यह पंक्ति आमेर प्रतिमें नहीं है, किन्तु पंचायती मंदिर देहली भंडारकी प्रतिमें पाई जाती है ।

मय थालीम संग म-मायहु,
गंथ-पमाणु मणुट्ठहं जाणहु ।

घत्ता—

हरिवंसु पढु मइं वज्जरिउ हरिवलएोमहिं चरित्त विमिट्ठिउ ।
परियाढिए वहिउ मुणीसरहं तं तिह भवियहं सिट्ठउ ॥

इह कट्टसंघे माहुरहं गच्छि,
पुक्खरगणे मुणिवर-वइ जिलच्छि ।
संजाय। वीर जिणुक्कमेण,
परिवाडिय जइवर णिहयएण ।
सिरि देवसेणु तह विमलसेणु,
मुणि धम्मसेणु तह भावसेणु ।
तहो पट्ट उवण्णउ सहसकित्ति,
अणवरय भमिय जए जासु कित्ति ।

तहो सीसु सिद्धु गुणकित्ति णामु,
तव-तेएं जासु सरीरु खामु ।
तहो बंधउ जस मुणि सीसु राउ,
आयरिय पणामिय दोसु-गाउ ।
तहो पट्ट णिविट्ठउ मलयकित्ति,
मलधारि मुणीसरु पयडिकित्ति ।
तहं अणुपहं मातउ दिव्व भाउ,
आमीसालु विज्जय णयहु जाउ ।

इह जोयणिपुर पहु पुर हंगए,
धण-धण्ण-सुवण्ण-घरेहिं फारु ।
सरि-सर-वण-उववण गिरि-विसालु,
गंभीर परिह उत्तुंगु सालु ।
उववणइ तहां पामिहि वहंति,
णर-णारि जत्थ कीडंति वहंति ।
जहिं घरि-घरि ईसर भूइ-जुत्त,
घरि घरि दिव जिय-गोरीहि रत्त ।
जणवरउ जत्थ वट्टइ सुभिक्खु,
णउ चोर-मारि णउ ईय-दुक्खु ।
जहिं कालि कालि वरिसंति मेह,
णंदहिं णायर-जण अविरय-णेह ।
जहिं पेरावउ उत्तुंगु देहु,
धय रयण-म-घंटहिं णं करिंदु ।
जिण-पडिमा मंदिर विमल-भव्वु,
कइलासु व उण्णउ तिय-सव्वु ।

घत्ता—

तहिं जिणवर-मंदिर णयणाणंदिरि, णाइवि विवि मुह वच्छहिं
सावय-वय-पालहिं जिणु जयकारहिं माणिय दाणु पयच्छहिं ॥

जहिं डूंगर पंडिउ वइ सुदक्खु,
अणुदिणु परिपोसइ धम्मु-पक्खु ।
तहिं अयरवाल-वंसहं पहाणु
सिरि गग्ग-गोत्त णं सेय भाणु ।
जं रूवें वे पज्जिय काम-बाणु,
दिउचंद साहु किय पत्त-दाणु ।

मत्ताहो भज्जिय इट्टु पत्ति,
बालुहिय णाम णय-विणय-जुत्ति ।
तहिं णंदण चत्तारि वि महंत,
संघहो दिउढा-दूमाहिं जुत्त
जो पढम गुणग्गलु आसराउ,
णिय पिय तोसउहो भद्दराउ ।

सुउ चोखा जिण-सुय-भत्त साहु,
पिय पम पीधाही मदुगाहु ।
पुणु दिवचंद भज्जहिं गब्भहूउ,
गुण अग्गलु देमो णाम बीउ ।
देमो पिय परिहुव महुर-वाणि,
णय-सच्च-सील-गुण-रयण खाणि ।
सुतु णामें जिणमय विणीय,
कीलंतहं सा णंदण पसूय ।

मोल्हणु लक्खमणु तहं गोइंद दक्खु,
दाणेक्कचित्तु णं कप्परुक्खु ।
देमो बीया भज्जा गुणंग,
देल्हो णामें मयरद्ध संग ।
जिण-सासण वच्छल सुद्धभाव,
जिण-णूण-दाण रय-रिद्ध सहाव ।
गोइंद पिय ओतहो गुण-महंतु,
पिय-पाय-भत्त जिणुयालु-जुत्तु ।
दिउढा साहुहि पिय-सइ-विणीय,
पूल्हाही सइ सीलेण सीय ।
तहे लाडो णामें पवर भज्ज,
संघई जिणधायर चइ सलज्ज ।
भत्ताहो भत्तिय विणयवंति,
रूवें सइ पिय हुव कामकंति ।

तहो पुत्त वीरदासुवि गुणंगु,
पिय साधाही रूवें अणंगु।
तहो णंदणु णामें उदयचंदु,
पिय-माय-कुमुयवणाइ इंदु।
तुरियउ णंदणु छूमासयत्तु,
पाहुलही पिय करमसिंह पुत्तु।

घत्ता—

एयाहिं मज्झि णंदणु तइओ, दिउचंद साहुहि कि वण्णिज्जइ।
दिउढाणामें सुद्धमणु सिंहु सुदंसणु इव जाणिज्जइ।

अरहंतुवि एक्कु जि जो झायइ,
ववहार सुद्धणउ भावइ।
जो तियाल रयणत्तउ अंचइ,
चउ-णिओय रइ-कहव ण मुच्चइ।
चउविह संघहं दाणु कयायरु,
मंगल उत्तम सरण विणय-परु।
जिणवरु थुइवि तिकालहिं अंचइ,
धणु ण गणेइ धम्म-धणु संचइ।
जो परमेट्ठि पंच आराहइ,
पंचवि इंदिय-विसयइं साहइ।
जो मिच्छत्त पंच अवगण्णइ,
पंचम गइ णिवासु मणि मण्णइ।
जो अणुदिणु छक्कम्म णिवाहइ,
दाण-पूय-गुरु-भत्तिहिं साहइ।
जो छज्जीव-निकायहं रक्खइ,
छह दव्वइं गुण-भाव णिरक्खइ।
सत्त-तच्च जो णिच्चाराहइ,
सत्त-वसण दूरेण पमायइ।
सत्तवि दायारह गुणजुत्तउ,
इह परसत्त भयहं जो चत्तउ।
अट्ठ मूलगुण जो परिपालइ,
उत्तर गुण सयल वि संभालइ।
सइंसण-अट्ठंग-रयण-धरु,
मज्ज-दोसु परिवज्जण-तप्परु।
णव णव णयवि पयत्थइं बुज्झइ,
दह-विह धम्मग्गहण वि रुच्चइ।
एयारह पडिमउं जो पालइ,
वारह वयइं णिच्च उज्जालइ।

जो वारह भावण अणुचिंतइ,
अप्प-सरूव भिण्णु तणु मण्णइ।
दिउढा जसमुणि पवि पविसुवि,
काराविउ हरिवंसु-चरित्तुवि।

घत्ता—

जामहिं णहु सायरु चंदु दियायरु ता णंदउ दिउढा हु कुलु
जें विण्हुहि चरियउ कुरु-वंसहं सहियउ काराविउ हय-पाव

इय हरिवंसपुराणे कुरुवंस-साहिदिट्ठए विवुह-चित्ता-रंजण-विगुणकित्ति-सीसु मुणिजसकित्ति-विरइए ... दिउढा-णामंकिए णेमिणाह-जुहिट्ठिर-भीमज्जुण-णिव्वाण गमण (तहा) णकुल-सहदेव सव्वट्ठसिद्धि-गमण-वण्णणं णाम तेरहमो सग्गो समत्तो॥ संधि १३॥

(लिपि सं. १६४४ पंचायती मंदिर दिल्ली शास्त्र भंडारसे

२३—जिणरत्ति कहा (जिनरात्रिव्रत कथा)

भट्टारक यशःकीर्ति

आदिभाग :—

पणविवि सिरिमंतहो अइसय-जुत्तहो वीरहो णासिय-पावमलु
णिच्चल मण भव्वहं वियलिय-गव्वहं अक्खमि फुडु जि रत्ति फलु

परमेट्ठि पंच पणविवि महंत,
तइलोय णमिय भव-भय-कयंत।
जिण-वयण-विणिग्गय दिव्ववाणि,
पणमेवि सरासइ सहखाणि।
णिग्गंथ उहय-परिमुक्क-संग,
पणवेवि मुणीसर जिय-अणंग।
पणविवि णियगुरु पयडिय-पहाउ,
फलु अक्खमि जिणरत्तिहि जहाउ।

अन्तिमभाग :—

णिसुणिवि गोयम भासिउ णिराउ,
वउ गहिउ भत्ति मणि करि विराउ।
जिणु वंदिवि तह गोयमु गणेसु,
णिय णयरु पत्तु सेणिउ णरेसु।
दह-तिउण वरिसि विहारिवि जिणंदु,
पयडेवि धम्मु महियलि अणंदु।
पावापुर वर मज्झिहि जिणेसु,
वेदिण सह उज्झिवि मुणिईसु।

चउसंमह कम्मह करि विणासु,
संपत्तउ सिद्ध-णिवास-वासु।
देवाली अम्मावस भणेइ,
महो देउ बोहि देवाहिदेउ।
चउदेव-णिकायहं अइमणुज्ज,
आइवि विरइय णिव्वाण-पुज्ज।
तिउ णिम्मिवउ जो जि करेइ भव्वु,
पावेइ मोक्खु संहरिय-गव्वु।

घत्ता—
जिण णिम्मियउ णाह अक्खिउ गुणहं कित्ति मुणीसे।
णिरिजमकित्ति सुणिंदें कुवलयचंद जिणगुरु-भत्तिविसेसें ॥१२॥
अमुणिय कव्वविसेसें तह वि जं बीरणाह-अणुराएं।
णिद्दूसणेण रइयं तं खमउ भारही अमयो ॥
इति जिनरात्रिव्रत कथा—(आमेरशास्त्र भंडारसे)

४२ रविवउ कहा (रविव्रत कथा)

भ० यशःकीर्ति

आदिभाग :—
आदि अंत जिणु वंदिवि भावइ,
धरेवि मणि गुरु णिग्गंथ णवेविणु।
गुणयहं अणुमेरवि पुव्वंग अज्जयणाहं णामथाह तहं रवि-वउ
पमणमि भावयहं, जासु करंतहं जज्जइ संपइ पवरा ॥

अन्तिमभाग :—
णामत्तिरोंइ पमाणं त्तिवणहं सो कहइ,
पंडिय सुरजन णामहं भज्जउ पढ लवइ।
जो इहु पढइ पढावइ णिसुणइ कहणु देइ,
सो जसकित्ति पसंसिवि पावइ परम गइ ॥२०॥
(दिल्ली पंचायती मन्दिर शास्त्र भंडारके गुटकेसे)

२५—पासणाह-चरिउ (पार्श्वनाथ चरित)

(कवि श्रीधर) रचनाकाल सं० ११८९

आदिभाग—
एरिय भुवणत्तयहो पाव-तमत्तहो
णिज्जिय-मुण-मणि-गण-भरिउ।
सोहिय भवसायहो पणवेवि पासहो
पुणु पयडमि तासु वि चरिउ ॥
× × ×
विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु,
चिर चरिय कम्म दुक्खावहारु।
विहरंतें कोउहल वसेण,
परिहच्छिय वाएसरि रसेण।
सिरि-अयरवाल-कुल-संभवेण,
जणणी-बीलहा-गब्भुब्भवेण।
अणवरय विणय-पणयारुहेण,
कइणा बुह गोल्ह-तणुरुहेण।
पयडिय तिहुयण-वइ गुणभरेण,
मण्णिय सुहि सुयणें सिरिहरेण।
जउँणा-सरि सुर-णर हियय-हार,
णं वार विलासिणि-उअर-हार।
डिंडीर-पिंड-उप्परिय-णिवल,
कीलिर रहंग थणोव्वड धवल।
सेवाल-जाल-रोमावलिल्ल,
बुहयण-मण-परिरंजण छइल्ल।
भमरावलि-वेणी-वलय-लच्छि,
पप्फुल्ल-पोम-दल-दीहरच्छि।
पवणाहय सलिलावत्तणाहि,
विणिहय-जणवय तणु-ताव-वाहि।
घणघय-घलघल-जल घुसिण लित्त,
दर फुडिय-सिप्पिउड दसण-दित्ति।
वियसंत सरोरुह पवर-वत्त,
रयणायर-पवर-पियाणु रत्त।
विउलामल पुलिण णियंब जासु,
उत्तिण्णी णयणहिं दिट्ठु तासु।
हरियाणए देसे असंखगामे,
गामियण जणिय अणवरय कामे।

घत्ता—
परचक्क-विहट्टणु सिरि-संघट्टणु, जो सुरवइणा परिगणिउ।
रिउ रुहिरावट्टणु विउलु पवट्टणु, ढिल्ली णामेण जि भणिउ ॥२
× × ×
जहिं असि-वर-तोडिय रिउ-कवालु,
णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु।
णिरु दलवट्टिय हम्मीरवीरु,
वंदियण-विंद-पवियण्ण-चीरु।
दुज्जण-हियवावणि दलण-सीरु,
दुण्णय-णीरय-णिरसण-समीरु।

बल-भर-कंपाविय णायराउ,
माणिणि-यण-मण-संजणिय-राउ ।
तहिं कुल-गयणं गणेसिय पयंगु,
सम्मत्त विहूसण भूसियंगु ।
गुरुभत्ति णविय तेल्लोक-णाहु,
दिट्ठउ अल्हण णामेण साहु ।
तेण वि णिज्जिय चंदप्पहासु,
णिसुणेवि चरिउ चंदप्पहासु ।
जंपिउ सिरिहरु ते धण्ण ंत,
कुलवुड्ढि विहवमाण सिरियवंत ।
अणवरउ भमइं जगि जाहिं किति,
धवलंती गिरि-सायर-धरित्ति ।
सा पुणु हवेइ सुकइत्तणेण,
वाएण सुएण सुकित्तणेण ।

घत्ता—

जा अविरल धारहिं जणमण हारहिं दिज्जइ धणु वंदीयणहं ।
ता जीव णिरंतरि भुअणब्भंतरि भमइं किति सुंदर जणहं ॥४

पुत्तेण विलच्छि-समिद्धएण,
णय-विणय सुसील-सिणिद्धएण ।
कित्तणु विहाइ धरणियलि जाम,
सिसिरयर-सरिसु जसु ठाइ ताम ।
सुकइत्तें पुणु जा सलिल-रासि,
ससि-सूर मेरु-णक्खत-रासि ।
सुकइत्तु वि पसरइ भवियणाहँ
संसग्गें रंजिय जण-मणाहँ ।
इह जेजा णामें साहु आसि,
अइ णिम्मलयर-गुण-रयण-रासि ।
सिरि-अयरवाल-कुल-कमल-मित्तु,
सुह-धम्म-कम्म-पवियण्ण-वित्तु ।
मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज,
सीलाहरणालंकिय सलज्ज ।
बंधव-जण-मण-संजणिय-सोक्ख,
हंसीव उहय-सुविसुद्ध पक्ख ।
तहो पढम पुत्तु जण वयण रामु,
हुउ आरक्खि तसजीव गामु ।
कामिणि-माणस-विद्दवण-कामु,
राहउ सव्वत्थ पसिद्ध णामु ।

पुणु बीयउ विवुहाणंद-हेउ,
गुरु भत्तिए संथुअ अरुह-देउ ।
विणयाहरणालंकिय-सरीरु,
सोढल-णामेण सुवुद्धि धीरु ।

घत्ता—

पुण तिज्जउ णंदणु णयणाणंदणु जगे णट्टलु णामें भणिउं ।
जिणमइ णीसंकिउ पुण्णालंकिउ जसु बुहेहिं गुण गणु गणिउं ॥५

जो सुंदरु बीया इंदु जेम,
जण-वल्लहु दुल्लहु लोय तेम ।
जो कुल-कमलायर-रायहंसु,
विहुणिय-चिर-विरइय-पाव-पंसु ।
तित्थयरु पयट्टावियउ जेण,
पढमउ को भणियइं सरिसु तेण ।
जो देइ दाणु वंदीयणाहं,
विरएवि माणु सहरिस मणाहं ।
पर-दोस-पयासण-विहि-विउत्तु,
जो ति-रयण-रयणाहरण-जुत्तु ।
जो दिंतु चउव्विहु दाणु भाइ,
अहिणउ बंधू अवयरिउ णाइं ।
जसु तणिय किति गय दस दिसासु,
जो दिंतु ण जाणइं सउ सहासु ।
जसु गुण-कित्तणु कइयण कुणंति,
अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति ।
जो गुण-दोसहं जाणइं वियारु,
जो परणारी-रइ णिव्वियारु ।
जो रूव-विणिज्जिय-मार-वीरु,
पडिवण्ण-वयण-धुर-धरण-धीरु ।

घत्ता—

सोमहु उवरोहें णिहय विरोहें णट्टलसाहु गुणोह-णिहि ।
दीसइ जाएप्पिणु पणउ करेप्पिणु उप्पाइय भव्वयणदिहि ॥६

तं सुणिवि पयंपिउ सिरिहरेण,
जिण-कव्व-करण-विहियायरेण ।
सव्वउ जं जंपिउ पुरउ मज्झु,
पइ सब्भावें बुह मइ असज्झु ।
परसंति एत्थु विवुहहं विवक्ख ।
बहु कवड-कूट-पोसिय सवक्खु ।

अमरिंग धरणीधर गिर विलग्ग,
घर मरुथ णिरुप सुह कयणलग्ग।
अणहिय परणुर गुण गरुअ रिद्धि,
दुव्वयण हणिय पर कज्ज सिद्धि।
कयणा ता मोडण मग्ग रिल्ल,
भूमिउ डिमंगि णिद्दिय गुणिल्ल।
को सक्कइ रंजण ताहं चित्तु,
सज्जण पयडिय सुअणत्त रित्तु।
तहि लहइ महु किं गमणेण भव्व,
भव्वयण-बंधु परिहरिय-गव्व।
तं सुणिवि भणइं गुण-रयण-धामु,
अल्हणु णामेण मणोहिरामु।
पउ भणिउं काइ पइं भरहमत्तु,
किं मुणहि ण णट्टलु भूरिसत्तु।
घत्ता—जो धम्म-धुरंधरु उवयार-कंधरु सुअण-सहावालंकरिउ
पसुदिणु णिच्चलमणु जसु संघवयणु करइ सयणु णेहायरिउ।
जो भव्वभाव पयडण समत्थु,
ण कया वि जासु भासिउ णिरत्थु।
णाइयणइ पयणइं दुज्जणाइं,
सम्माणु करइ पर सज्जणाइं।
संगग्गु समीहइ उत्तमाहं,
जिणधम्म विहाणें णिम्मलाहं।
णिरु करइ गोट्ठि सहुं बुहयणेहिं,
सत्थत्थ-वियारस हिय-मणेहिं।
किं बहुणा तुज्झु समासिएण,
अण्णउ अर्णत पसंसिएण।
सहु पयणु ण थाइड सो कयावि
जं भणमि करइ सहु तं सयावि।
तं णिसुणेवि सिरिहरु चलिउ तेत्थु,
उवविट्ठउ णट्टलु साहु जेत्थु।
तेणवि तहो आयहो विहिउ माणु,
गारउ णेहाणुगय समाणु।
जं पुव्व जम्मि पविरइउ किंपि,
इह विहिवसेण परिणवइ तंपि।
सण्णुवइ णिविहिं लंकिउ जाम,
अल्हणु णामेण पउत्तु ताम।
घत्ता—
भो णट्टल णिरुवम धरिय कुलक्कम
भणमि किंपि पइं परम सुहि।
पर समय परंमुह अगणिय दुम्मह
परिपालिय जिण समय विहि॥८॥
काराविवि णाहेयहो णिकेउ,
पविइण्णु पंच वण्णं सुकेउ।
पइं पुणु पइट्ठ पविरइय जेम,
पासहो चरित्तु जइ पुणवि तेम।
विरयावहि ता संभवइ सोक्खु,
कालंतरेण पुणु कम्ममोक्खु।
ससिमिरयर-बिंबे णिय जणणि णामु,
पइं होइ चडाविउ चंद-धामु।
तुज्झु वि पसरइ जय जसु रसंत,
दस दिसहि सयल असहंत हसंतु।
तं णिसुणिवि णट्टलु भणइं साहु,
सइयाली पिय यम ठयाउ णाहु॥
भणु गंड रसायणु सुह पयासु,
रुच्चइ ण कासु हयतण्ण पयासु।
एत्थंतरि सिरिहरु बुह तेण,
णट्टलु णामेण मणोहरेण।
भो वहु महु पयडिय णेहभाउ,
तुहुँ पर महु परियाणिय सहाउ।
तुहुँ महु अम मरसीरह सुमाणु,
तुहुँ महु भावहि णं गुण-णिहाणु।
पइं होंतएण पासहो चरित्तु,
आयण्णमि पयडहि पावरित्तु।
तं णिसुणिवि णिसुणिउ कइवरेण,
पयवरउ सद्द-अरमइ-धरेण।
घत्ता—
विरयमि णयणाएँ पविमल भावें
एह णयणें पासहो चरिउ।
पर दुज्जण णियरहिं हयगुण पयरहिं
पर पुणु आयरायण मरिउ॥ १॥

× × ×

इय सिरिपासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुण-भरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण॥ १॥
विहरंत-विमाणाणो कम्मादीशह संडयो आदो।
कच्चपण्डु पडिलयं पढमो संधी परिसमत्तो॥ २॥ संधि १॥

अन्तिमभाग :—

राहव साहुहें सम्मत्त-लाहु,
संभवउ समिय संसार-दाहु।
सोढल नामहो सयल वि धरित्ति,
धवलंति भमउ अणवरउ कित्ति॥
तिरिण वि भाइय सम्मत्त-जुत्त,
जिणभणिय धम्म-विहि करण धुत्त।
महिमेरु जलहि ससि सूरु जाम,
सहुँ तणुरुहेहिं णंदंतु ताम।
चउविहु वित्थरउ जिणिंद-संघु,
परसमय खुद्दवाइहिं दुलंघु॥
वित्थरउ सुयजसु भुअणि पिल्लिल,
तुट्टउ तडित्ति संसार-वेल्लि।
विक्कम णरिंद सुपसिद्ध कालि,
ढिल्ली पट्टणि धण कण विसालि॥
सणवासि एयारह सएहिं,
परिवाडिए वरिसहं परिगएहिं।
कसणट्ठमीहिं आगहणमासि,
रविवारि समाणिउ सिसिर भासि॥
सिरि पासणाह णिम्मलु चरित्तु,
सयलामल-गुण रयणोह दित्तु।
पणवीस सयइं गंथहो पमाणु,
जाणिज्जहिं पणवीसहिं समाणु।

घत्ता—

जा चन्द दिवायर महिह रसायर ता बुहयणहिं पढिज्जउ।
भवियहिं भाविज्जउ गुणहिं थुणिज्जउ वरलेयहिं लिहिज्जउ॥८

इय पासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमरिणायं मणुज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण॥
पुव्व-भवंतर-कहणो पास-जिणिंदस्स चारु-निव्वाणो।
जिण-पियर-दिक्ख-गहणो वारहमो संधी परिसमत्तो॥

संधि १२

आसीदत्र पुरा प्रसन्न-वदनो विख्यात-दत्त-श्रुतिः,
सूश्रूषादिगुणैरलंकृतमना देवे गुरौ भाक्तिकः।
सर्वज्ञ-क्रम-कंज-युग्म-निरतो न्यायान्वितो नित्यशो,
जेजाख्योऽखिलचन्द्ररोचिरमलस्फूर्जद्यशोभूषितः॥१॥
यस्यांगजोऽजनि सुधीरिह राघवाख्यो,
... तिर ...-सर्व्व-दोषः।
अग्रोतकान्वय-नभोङ्गण-पार्व्वणेंदुः,
श्रीमाननेक-गुण-रंजित-चारु-चेताः॥२॥
ततोऽभवत्सोढल नामधेयः सुतो द्वितीयो द्विपतामजेयः।
धर्मार्थकामत्रितये विदग्धो जिनाधिप-प्रोक्तवृषेण मुग्धः॥३
पश्चादूबभूव शशिमंडल-भासमानः,
ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः।
सद्दर्शनामृत-रसायन-पानपुष्टः
श्रीनट्टलः शुभमना क्षपितारिदुष्टः।
तेनेदमुत्तमधिया प्रविचिन्त्य चित्ते,
स्वप्नोपमं जलदशेषमसारभूतं।
श्रीपार्श्वनाथचरितं दुरितापनोदि,
मोक्षाय कारितमितेन मुदं व्यलेखि॥४॥

—प्रति आमेर भंडार सं० १५७७

नोट—इसके बादमें णट्टलसाहुके सम्बन्धमें १५-२० पंक्तियाँ और दी हुई हैं जिनका सम्बन्ध प्रशस्तिसे न होनेके कारण यहां नहीं दी गईं।

२६—वड्ढमाणकव्व (वर्धमानकाव्य)

—कवि हरिइंद (हरिश्चंद)

आदिभाग—

परमप्पय भावणु सुह-गुण-पावणु णिहणिय-जम्म-जरा-मरणु।
सासय-सिरि-सुंदरु पणय-पुरंदरु रिसहु णवित्ति तिहुयण-सरणु
पणवेप्पिणु पुण अरहंताणं दुक्कम्म-महारि-खयंताणं।
वसुगुण-संजोय-समिद्धाणं सिद्धाणं ति-जय-पसिद्धाणं॥१॥
सूराणं सुद्ध चरित्ताणं-वय-संजम-भाविय-चित्ताणं।
पयडिय समग्गसत्थायाणं भव्वयणहो णिरुज्झायाणं॥२॥
साहूणं साहिय-मोक्खाणं सुविसुद्धज्झाण-विहि-दक्खाणं।
सम्मत्त-णाण-सुचरित्ताणं स-तिसुद्धएण वमि पवित्ताणं॥३॥
वसहाइसुगोत्तमाणं सु-गणाणं संजम-धामाणं।
अवहारि व केवलवंताणं ....॥४॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

जय देवाहिदेव तित्थंकर,
वड्ढमाण जिण सव्व-सुहंकर
णिरुवम कणय रसायणु धण्णउ,
कव्व-रयणु कंडलु भउ पुण्णउ।
सो णंदउ जो णियमणि मण्णइं,
वीर-चरित्तु वि [मणु] आयण्णइं।

सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ,
रस-रसड्ढु जो पढइ पढावइ।
जो पयत्थु पयडेवि सुभव्वहं,
मणि मच्छरु करेइ सुभव्वहं।
णंदउ देवराय णंदउ घर,
होलिवम्मु फग्गुण च उपवाय कर।
पहु धरित्तु जेण णिप्पारिउ,
जेहाविय गुणियण उवयारिउ।
होउ संति णीमेसहं भव्वहं,
जिण-पय-भत्तहं विगलिय-गव्वहं।
वरिसउ मयल-पहुमि घणयारहं,
मेह-जालु पावस-पमुहारइं।
घरि-घरि मंगल होउ सउच्छउ,
दिणि-दिणि घण घणाइं संपुण्णउ।
होउ संति चउविह जिण-संघहु,
देसयाल धरणाह दुलंघहु।
णंदउ सासणु वीर-जिणिंदहो,
सेणियराय-णरिंद-णिवासहो।
मंदर-सिहरि होउ जम्मुच्छव,
घरि-घरि दुंदुहि-सद्दु अणुच्छउ।
होउ सयल पूरंतु मणोरह,
परमाणंद पवड्ढउ इह मह।
अमिय-विंदु उग्गइ पयडइं णंदउ,
जगि भणि मिणु वि दुरिय-णिकंदणु।
णिच्चाणंदइ सम्मत्त दय किज्जउ,
सासय-सुह-णिहाणु मह दिज्जउ।
आरहा साहु साहणु सहुणंदणु,
गाढय-अयमण-सयणाणंदणु।
होउ णिराउल णिय-कुल-मंडणु,
मग्गहा-जण दुह-सोह विहंडणु॥
होउ संति सयलहं परिवारहं
भणि पवड्ढउ गुण-रयण-धारहं।
पउमणंदि मुणिणाह गणिंदहु,
चरण सरणु गुरु कइ हरिइंदहु।
जं होणाहिउ कव्वु-रयहं,
पउ सिहउ सम्मइ अरियहइं।

सं सुयएवि-देवि जगसारी,
महु पसाहु खमउ भंडारी।
दय-धम्म-पवत्तणु विमल सुकित्तणु णिमुणउहो जिणइंदहो।
जं होइ सुयएणउ इउ मणि मयणउ तं सुह जगि हरिइंदहो॥
इति श्री वर्धमानकाव्ये श्रेणिकचरित्रे एकादशमः संधिः।
प्रति जैनसिद्धान्तभवन आरा लि० सं. १६००

२७—भविसयत्त कहा (भविष्यदत्त-कथा)
कवि श्रीधर, रचनाकाल सं. १२३०

आदिभागः—
मणि-पह जिणवरणइं सिव-सुहकरणइं पणविवि णिम्मल-
गुण-भरिउ।
साहामि पवित्तल सुय पंचमिफलु भविसयत्त-कुमरहो चरिउ

× × ×

सिरि चंदवार-णयर-ट्ठिएण,
जिण-धम्म-करण उक्कंठिएण।
माहुर-कुल-गयण तमीहरेण,
विबुहयण सुयण मण धण हरेण।
णारायण-देह समुब्भवेण,
मण-वयण-काय णिंदिय-भवेण।
सिरि वासुएव गुरु-भायरेण,
भव-जलणिहि-णिवडण-कायरेण।
णीसेसें सविलक्खण गुणालएण,
मइवर सुपट्ट णामालएण।
विणएण भणिउ जोडेवि पाणि,
भणिए कइ सिरिहर मज्झवाणि।
इह दुल्लहु होइ जीवहं णरत्तु,
णीसेसहं सं-साहिय परत्तु।
जइ कहव लहइ दइवहो वसेण,
चउगइ भमंतु जिउ महरसेण।
ता विलउ जाइ गब्भे रि तेम्बु,
यायाहउ खणेमर पच्छु तेम्बु।
अह लहइ जम्मु ता बहु-निहेहिं,
वेयहिं पीडिज्जइ दुह-णिहेहिं।
अह सिरिय सायरि वय-णमोयरि अवयरइ णिम्वणि धणगु
पय-पाय-विहीणउ आयइ दीणउ णासो णरि श्रीदइ गिणु॥२
इउ आवइ मावइ मह महण,
सई परिवज्जिउ संगर-सहण।

१ यह पाठ जैनसिद्धांत भवन आराकी प्रतिमें नहीं है।

कप्पयरुव्व विउलासगु सयत्ति,
दुल्लहु रयणु व पुरारोण पत्ति ।
जइ पुयहिं विरयमि णोवयारु,
उग्वाडिय सिव सउ हुलन वारु ।
ता किं भणु कइ मइ आयगुण,
जम्मणु-मह पीडा-कारणुण ।
पउ जाणि वि सुललिय पर्याहिं सत्थु,
विरयहिं गुरुयण मणहरु पसत्थु ।
महु तणिय माय णामेण जुत्त,
पायडिय जिणेसर भणिय सुत्त ।
वणिवइ भविसयत्तहो चरित्तु,
पंचमि उववासहे फलु पवित्तु ।
महु पुरउ समक्खिय वप्प तेम,
पुव्वायरियहिं भासियउ जेम ।
तं णिसुणेविणु कइणा पउत्त,
भो सुप्पद पइं वज्जरिउ जुत्तु ।
जइ मुज्झ समत्थि णाउ करेमि,
हउं अज्जु कहव णिरु परिहरेमि ।
ता किं थायइ महु बुद्धियाइं,
कीरइ विउलाणु स-सुद्धियाइं ।

घत्ता—किं बहुणा पुणु-पुणु भणिएं सावहाणु विरणुवि मणु ।
भो सुप्पद महमइ जाणिय भवगइ ण गणमि हउं मणे विसुण-यणु

× × ×

इय सिरि-भविसयत्त-चरिए विबुह-सिरि सुकइ सिरिहर-विरइए साहु णारायण-भज्ज-रुप्पिणि-णामंकिए भविसयत्त उप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि १

अन्तिम भाग:—

णरणाह विक्कमाइच्च काले
पवहतए सुहयारए विसाले ।
बारहंसय-वरिसहिं परिगएहिं,
फागुण-मासम्मि बलक्ख पक्खे,
दसमिहिं दिणे तिमिरुक्कर विवक्खे ।
रविवार समाणिउ एउ सत्थु,
जिह मइं परियाणिउ सुप्प सत्थु ।
भासिउ भविस्सयत्तहो चरित्तु,
पंचमि उववासहो फलु पवित्तु ।

—प्रति आमेरभंडार लिपि सं० १५३०

२८ संभवणाह चरिउ (संभवनाथ चरित)

कवि तेजपाल

आदिभाग:—

पणविवि जिणिंदहो चरिम जिणिंदहो वीरहो दंसणणाणवहो ।
सेणियहु णरिंदहो कुवलयचंदहो णिसुणहु भवियहो पवरकहा।
सेणियरायहो लच्छि महायहो सयलु सउण्णउ सुहयरु ।
कुवलय आसासणु तम णिण्णासणु जयउ चरिउ णं हि मयरु

वसंततिलका—संवद्द सत्तमधरा णियजीवके वि,
सीलेण ·········· पाडलहि विवेट ।
णोणु णिवद्द फलहस्स फलेण जस्स,
सद्दलस्स महिमा पयडेमि तस्स ॥छ॥
अहो भवियहो णिसुणहु थिरु करेहु,
सेणियचरित्तु जइ तह सुणेहु ।
जिह पयडिउ गोयमसामि जेम,
वहु रस रसड्ढु हउं भणमि तेम ।
इह दीवि भरह खेत्तंतराल,
हिउ मगहदेसु गिरि सरि विसाल ।
कणयाढिय जो संदण वरेहिं,
तरु सहलिय कुसुमिय पल्लव घरेहिं ।
रयणायरुव्व रयणायरेहिं,
उवणय घणुव्व बहु-जल-सरेहिं ।
कय कव्वु व बहुरस-पोसणेहिं,
वल्लहइ व कय हलकरि सणेहिं ।
कयहु व कंसा णिच्चंदणेहिं,
धरहु व सेविउ सक्कंदणेहिं ।
बहुधणवेलुव कय-विक्कएहिं,
मीमंसु व पोसिय तक्कएहिं ।
अज्जव सहिव्व जण भोइएहिं,
समसरणु व संठिय जोइएहिं ।
जं सोहइ पुरु तहिं रायगेहु,
·········· ······ ··· ।
जय पास वर भास पूरिय जणास,
जयवीर जिणइंद णिद्दह णिव्वास ।
वारसंगि समयगय जिणमुहणिग्गय छद सया पोसिय णिरय ।
दुविहालंकारहिं णेय पयारहिं सा भयवइ सइ जयउ सय ॥१॥
पुणु पणवेमि मुणि तव-तेय-चारु,
चिर चरियकम्म दुक्खावहारु ।
मुणि सहसकित्ति धम्माणुवट्टि.
गुणकित्ति गुणायरु ताह पट्टि ।

तहो सीसु सेय-सच्छी-णिवासु,
जसकित्ति विणायम पह-पयासु ।
तहो पट्टि महामुणि मलयकित्ति,
उद्धरिय जेण चारित्त जित्ति ।
तहो सीसु पसंसमि णाय-णिरेय,
परमप्पउ झाइउ पवर जेण ।
तहो पउम णाण सूरीकएण,
तहो णामहिं णियमणु दिण्णु जेण ।
गुणभद्दु महामइ महमुणीसु,
जिणसंगहो संवरु पंचसीसु ।
जे केवि भव्व कंदोट्ट-चंद,
पयवेण्णिणु तह अरविंदु जिंद ।
मुणि गुणकित्ति भडारउ सत्थ वियारउ सत्थ सुहंकरु विणयसणु
मइ पय पयवंतहो मणि कुणंतहो कव्व-सत्ति संभवउ फलु ॥२॥
इह दुम्मु दीवि भारहि पसिद्धु,
णामेण सिरिपहु सिरि-समिद्धु ।
दुग्गु वि सुरम्मु जण जणिय-राउ,
परिहा परियरियउ दीहकाउ ।
गोउर सिर कलसाहय पयंगु,
णाणा लच्छिए आलिंगि दंगु ।
जहिं-जण सयणायं दिराई,
मुणि-यण-गाय-मंडिय-मंदिराइं ।
सोहंति गउर-घर कइ-मणाहराइं,
मणि-जडिय किवाडइं सुंदराइं ।
जहिं वसहिं महायण चुय-पमाय,
पर-रमणि परम्मुह मुक्क माय ।
जहिं समय करहिं घड घड हडंति,
पडिसद्दें दिसि विदिसा फुडंति ।
जहिं पवण-गमण धाविय तुरंग,
णं वारि-रासि भंगुर-तरंग ।
सो भुंजइ वीर-मुहासमेहिं,
मरघय भवन-सोहय गमेहिं ।
सुरयण वि मणोहरहिं जहिं सरागु,
णिच्चेविणु सायाणइ गुणग्गु ।
पेउ-सील-विहूसणु परियणु पउरु सिरिपहु णामें णयरि-सिरि ।
रहि गिरवइ संविय जं सुरवइ सपुण्ण पत्त पयंड सिरि ॥३॥
किं वण्णमि तह अरि-मलिय-भेउ,
जहि-मरणि वयटु कय विवेउ ।
चउहस्थम्मि दुग्गाह गाहि (?),
णामें पसिद्धु दाउदसाहि ।
पच्चेम वाणि मंडसु असेसु,
णियबाहि सहियणु पुव्वदेसु ।
तिहुवणिण ण कोवि जे समु पयंडु,
दक्खिणदिसि पेसिउ णयय दंडु ।
पच्छिम दिसि खरबइ जे णियंति,
सेवंति पाउ सवमट लियंति ।
उत्तर दिस णरवइ सुद्द वि दप्पु,
मागंति पाण होयंति कप्पु ।
किं किं गुण वण्णमि णयउ तासु,
णं तोयणिहिव्व गंभीरमासु ।
मय इन्दिय-यरु णं कप्परुक्खु,
णयाद्दिणु जणा वयहो विलुत्तु दुक्खु ।
तहिं कुल गयणंगणि दिणयरंगु ।
सम्मत्तादि-भूषण-भूसियंगु ।
सिरि अग्गरवाल कुल कमल-मित्तु,
कुलदेवि णायउ मित्ताण गोत्तु ।
इह लच्छिदेव णामेण आसि,
अइ णिम्मलयर-गुण-रयण-रासि ।
वाल्हाही णामें तासु भज्ज,
सीलाहरणालंकिय सलज्ज ।
तहो पढम पुत्तु जण-णयणाणंदु,
कुल आरविन्द सम सीय भाणु ।
णामें णिउणी जण-जणिय णाणु,
पोयउ दोलु सुपसिद्धु णामु ।
तहो बीइ वरंगण णि-अयमार
णामेण महादिव्वहो सुतार ।
सोहमि दोहिमि सुहलक्खणहि सज्जहिं सोहइ सेट्ठि घर ।
जिम चंद सुयंदहि सणहरहिं सिन्धु जिसमर णियम पहु ॥४॥
तहं दिउडी पुत्त चयारि धार,
णियसत्ति वि विहविय-वीर-साह ।
दिउसी णामें जण जणिय-मोह,
गुरु-भत्तिए सयड-धम्म देह ।
सम्माणु संघउ भयरु जाउ,
जिणपायसरोरुहकिय भाउ ।
जो दिंतु दाणु चउविहयणाइं,
जिणु वि साणु साहमि-समाणे ।

जसु तणियकित्ति गय दस दिसासु,
जो दिंतु ण जाणइ सद्द सहासु।
जसु गुण कित्तणु कइयण कुणंति,
अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति।
जो गुण-दोसई जाणई वियारु,
जो परणारी-रइ-णिव्वियारु।
जो रयणत्तय-भूसिय-सरीरु,
पडिवण्णा-वयण धुर धरण धीरु।
रेहइ थील्हा णामेण साहु,
गुरुभत्ति णविय तिल्लोक णाहु।
तस्साणुय अवरुवि मल्लिदासु,
को वण्णिवि सक्कइ गुण-सहासु।
जिणु कुंथुदासु छट्ठमउ भाइ,
जिण पुज्ज पुरंदर गुण विहाइ।
ता भणइ थील्हु ते धण्णवंत,
कुल-बल-लच्छी-हर णाणवंत।

अणवरउ भमइ जणि जगि जाहं किंत्ति,
धवलंती सयरापर धरत्ति।
ता पुणु हवेइ सुकइत्तणेण,
अहवा सुहि पुत्त सुकित्तणेण।
धणु दिंत किंत्ति पसरेइ लोइ,
णवि दिज्जइ तो जस-हाणि होइ।
अहं किं पुत्तें धणुहम्मि जाम,
कित्तणु विहाइ धरणियलि ताम।
सुकइत्तें जा गिरि-सरि-धरत्ति,
ससि सूरि मेरु णक्खत्त पंति।
सुकइत्तु वि पसरवि भवियणम्मि,
संसग्गें रंजिय सज्जणम्मि।
अह सावय कुल तो महु पहाणु,
तेहावमि संभव-जिण पुराणु।

एतहिं गुण सायरु जण तोल्लायरु जिण सासण भर णिव्वहणु
सावय-वय पालउ सुद्धु सुहालउ दीणाणाह रोस-हरणु ॥५॥

धम्मेण तव पुत्तु समसव्व सुहयारि,
चाएण कण्णु बल-रूवेण कंसारि।
समदिट्ठि वर वंसि णियगोत्ति णहि-चंदु,
जिणधम्मवर मुत्ति सावय मणाणंदु।
लखमदेव सोभव्व सुप्पुत्तु महि धण्णु,
महादेवही माइवर अंगि उप्पण्णु।

णामेण थील्हा जिणं भत्ति सुत्तासु,
तें भणिउं कइ इक्क दिय हम्मि सिरियासु।
जिणणाह कम मूलि सिरु थाइ थिरु संतु,
अक्खेइ णिय कज्ज सिरिमंतु सु-महंतु।
भो पंडिया लद्ध वर कव्व-कय-सत्ति,
अणवरय पहुंचिहिय आजम्म जिणभत्ति
भव-दुह-तरंगाल-सायर-तरंडस्स,
णं मद्दिय रइणाहु गुणमणि करंडस्स।
चहुभेय दुट्ठ-कम्मारि-हय जेण,
परिधविय भव्वयण दयधम्म अमिएण।
छंडवि ड ण सव तिव्व दित्ती दियंदस्स,
पाइडहि वर कव्वु संभव-जिणिंदस्स।

तं णिसुणि विभासइ सरि विसरासइ तेजपालु जयमि तु बुहु।
तव-वय कय-उज्जमु पालिय संजमु अवहत्थिय गिहदंड दुहु(?)॥६

भो णिसुणि थील्हु वर सुद्धवंस,
णिय-कुल-कमलायर-रायहंस।
मणिमलिया वि दुस्समु कालुण्हु,
दुय माण विवज्जिउ दुक्ख-गेहु।
णर णरवइ पुव्वहि धम्महीण,
बहु पावयम्म विहवेण खीण।
जो जो णरु दीसय सो दु मित्तु,
किंह अत्थि पयट्टइ मज्झु चित्तु।
जिण संभवहो चरिउ एम,
णायण्णु कहमवि कहमि केम।

× × ×

इय संभव-जिणचरिए सावय-विहाणफल भरिए पंडिय-सिरितेजपालविरइए सज्जणसंदोह-मण-अणुमण्णिए सिरि-महाभव्व थील्हा सवण-भूसणे सिरिविमलवाहणणिव-धम्म-सवण-वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्तिम भाग—

अयरवाल कुल-णहिं दिवलाहिउ,
भीतणु गोत्तु गुणेण य साहिउ।
णावडिकुल देवय संतुट्ठउ,
धण······धणधार पउट्ठउ।
सोता संवाहिउ चिरु हुंतउ,
णिय विढत्तु सिरिहलु भुंजंतउ।
चउविह संघभत्ति जे दाविय,
जे जिणबिंब पइठ कराविय।

तेजा तासु पुत्तु घणरिद्धउ,
जोव्वण सिय लावण्ण समिद्धउ ।
तासु-वरंगणि हिय-मिय भासिणि,
थिर राजही दिढ जिण-सासणि ।
लखमदेउ तहो सुअ गुणरिद्धउ,
णिय रूवोह हणिय मयरद्धउ ।
वाल्हाही तहो णामें पत्ती,
मुणिवर चयण जिणागम भत्ती ।
खिउसी तासु पुत्तु गुणसायरु,
वच्छराजही येह कयायरु ।
गोमिदासु तहो सुउ संजायउ,
देवदासु अवरुवि विक्खायउ ।
खिवसी घणगु होलु तहो भायरु,
छाल्हाही पियथमु सुक्खायरु ।
देवपालु तहो पुत्तु पसिद्धउ,
आचरइ अवरु गुण-रिद्धउ ।
लखमएव सिह बीय वरंगण,
महादेवही णाइ सुरंगण ।
दिवसी तासु पुत्तु गुण-सायरु,
गंगदेवही णाइय भउजरु ।
घत्ता—तहो पुत्तु कुमारसीहु अवरु दिसचंदु जाणित्तउ ।
णागराजु चउत्थउ धम्ममइ पुणि पंचायणु पंचमउ ॥२६॥
दुवई—णिद्दण कुंढ मंद वि दाणं देइ सहउ लंवये थील्हा ।
तासु बंधु कुल मंडणु,दुह-सिहि-समणु णवघणे ॥६॥
फोल्हाही णामें तहो भामिणि,
सुहलक्खण सधम्म रु सामिणि ।
तासु कुक्खि उप्पण्णु मणोहरु,
तिहुणपाल णामें कुल-ससहरु ।
थील्हा मज्जु अवरु लहुयारी,
आसराजही बहुगुण सारी ।
तासु कुच्छि रयमलु उप्पण्णउ,
पुण्णवंतु महिमंडलि धण्णउ ।
थील्हा लहुउ बंधु गुण-देढउ,
जिणवर मल्लिदासु सुपसिद्धउ ।
मात्रणही तहो तीय महाइय,
रेहइ पुत्त चयारि विराइय ।
हंसराजु पढमउं जण-पुज्जिउ,
पुणु जगसी णरपति ती) तइज्जउ ।
तुरियउ महणसीहु वयणय करु,
चंदहु ताम जाम ससि दिणयरु ।
लखमदेव सुउ पंचमु सारउ,
जिणवर कुंथुदासु हय मारउ ।
जसु णामेण दुहिय-सोक्खं-करु,
छिण्णउ आजम्मु वि जायउ गरु ।
जा सुत्तउ पेच्छेविणु वंगउ,
लज्जइ कामु वि णाउ अणंगउ ।
जसु गंभीरिय गुण असईसउ,
अंभोणिहि खारत्तणु पत्तउ ।
जो जिणमासिय धम्म धुरंधरु,
णिय जसेण धवलिय गिरिकंदरु ।
तहो पिय धणयाही धर धण्णउ,
भोज्जु तासु पुत्त उप्पण्णउ ।
राजा अवरु जाउ दिहियारउ,
सज्जण-जण-मण-णयण-पियारउ ।
घत्ता—पवयण सुवयणसउ मइं रइउ अमलीकय दिसिमंडलु
सा थील्हा मयणि परिट्ठविउ संभवजिण कइ कुंडलु ।
दुवई—जयगुरुवयण सिहिय संजोएं असुहिंधण णियत्तयं ।
हिय मियत्तसिरम्म सोवण्णइं लेहिणिकर पवत्तयं ॥६॥
णिय विरयाणएण णेवाविउ,
सोहेविणु मुणिणाहहो दाविउ ।
साहु साहु तासु वणहो भासिउ,
रयणत्तय गुणेण संवासिउ ।
णाणा-छंदुविंद-मणि-जडियउ,
संभवजिणु-गुण-कंचण घडियउ ।
एहु चरिउ कुंडलु सोहिल्लउ,
थील्हा सवणाहरणु अमुल्लउ ।
वट्टउ जिणवर धम्म धुरंधरु,
वणि वरणीय पयासण सुंदरु ।
सम्मइंसण गुणेण पुरंदरु,
णियरूवें सव्वंगें सुंदरु ।
जिह धम्मु विवड्ढिउ दयजुत्तिय,
जिय उवसम भावेण जि संतिय ।
जिह पुण्णें दहक्खिय हुत्तणु,
तिह थील्हा संताण पवत्तणु ।
अमुणंतेण एहु आहासिउ,
जिणणाहें जो आगम-भासिउ ।

मुणिवर णाहिय जि सोहिव्वउ,
महुलहु बुद्धिए दोसु म दिव्वउ ।
घत्ता—जण मंगलयरु एहु मण्उं आढाविउ जिणधम्म पहुव्वण ।
······पवड्ढउ धरणियलि णिम्मल-बोहि-समाहि-महो ॥

इय संभवजिण-चरिए सावयायार विहाण-फलाणुसरिए-कइतेजपाल वण्णिणदे सज्जण-संदोहमणि-अणुमण्णिणदे सिरि महाभव्व-थील्हा सवण भूषणो संभवजिण णिव्वाण गमणो-णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि ६॥

—प्रति पं० प० दि० जैन सरस्वतीभवन ब्यावर लिपि सं० १५८३

२६ वरंगचरिउ (वरांगचरित)

कवि तेजपाल रचनाकाल सं० १५०७

आदिभागः—

पणविवि जिणईसहो जियवम्मीसहो केवलणाण पयासहो ।
सुर-णर-खेयर-बुह-णुय-पय-पयरुह, वसु कम्मारि विणासहो ॥१

वसु-गुण-समिद्ध पणवेवि सिद्ध,
आयरिय णमो जगि जे पसिद्ध ।
उज्झाय-साहु पणविवि तियाल,
सिव-पहु दरसावय गुण-विसाल ।
जाणुसरि होउ पसण्ण-बुद्धि,
जिणवर वाणिय कय-विमल-बुद्धि ।
हउं णेहु छंद लक्खण-विहीणु,
वायरणु ण जाणमि बुद्धि-हीणु ।
णउ जाणमि संधि समास किंपि,
धिट्ठत्त करेसमि कव्वु तंपि ।
हउं जाणमि जिणवर भत्ति जुत्ति
वित्थरइ जेण पविमल सुकित्ति ।
जे विउल वियक्खण बुद्धिवंत,
जिणभत्ति-लीण पंडिय महंत ।
ते हं णाहिउ पउ सुणिवि कव्वु,
परिट्ठवहु चारु पउ परम भव्वु ।
सुरसरणयरहिं णिवसंत संत,
महु चिंतउ वणिणाय मणि महंत ।
महु णाम पसिद्धउ तेयपालु,
महं गमिउ णिरत्थउ सयलु कालु ।
एवहि हउ करमि चिरमलु हरमि रायवरंग चारु चरिउ ।
जणु जणि णाणहु तमुहयचंदु कोऊहल-सएहि भरिउ ॥१॥

अंतिम भागः—

सय पमाय संवच्छर तीयइ,
पुणु सत्तगल सट्ठवोलीणइ ।
वइसाहहो किण्ह वि सत्तम दिणि,
किउ परिपुण्णउ जो सुह महुर-झुणि ।
विउलकित्ति मुणिवरहु पसाएं,
रइयउ जिणभत्तिय अणुराएं ।
मूलसंघ गुणगण परियरियउ,
रयणकित्ति हुयउ आयरियउ ।
भुवणकित्ति सीसु वि जायउ,
खम-दमवंतु वि मुणि विक्खायउ ।
तासु पट्टि संपय विणिविट्ठउ,
धम्मकित्ति मुणिवरु वि गरिट्ठउ ।
तहो गुरभाइ विमलगुण धारउ,
मुणि सुविसालकित्ति तव सारउ ।
सो अम्हहं गुरु जहि महु दिण्णिय,
पाइय करण बुद्धि मइ गिण्हिय ।
जिणभत्ति-पसायं मइ अणुरायं कियउ कव्वु कय तमु विलउ
पुणु गुरुणा सोहिउ हरइ तिरोहिउ विउलकित्ति सुहयण-तिलउ

तर पियवासउ पुरसुपसिद्धउ,
धण-कण-कंचण-रिद्धि-समिद्धउ ।
वरसावडइ वंसु गल धारउ,
जाल्हउ णाम साहु वणिसारउ ।
तासु पुत्तु सूजउ दयवंतउ,
जिण धम्माणुरत्त सोहंतउ ।
तासु पुत्त जहि कुल उद्धरियउ,
रणमल्ल णामु सुणहु गुणभरियउ ।
तहो लहुयउ वल्लालु वि हुंतउ,
जिण कल्लाणइ जत्त कुणतउ ।
पुणु तह लहुयउ ईसरु जायउ,
सपइ अत्थइ दप गुणारायउ ॥
पोल्हणु णामु चउत्थु पसिद्धउ,
णाय-पुरसेण दव्व बहुलद्धउ ।
इय चत्तारि वि बंधव जायणु,
वर खंडिलवाल्ल विक्खायणु ॥
रणमल णंदणु ताल्हुय हुंतउ,
तासु पुत्त हउ कइ-गुण-जुत्तउ ।

तेयपालु महु णामुय सिव्वउ,
जिणवर-भत्ति विसुद्ध-गुण-लद्धउ ॥
कम्मक्खय कारणु मल अवहारणु अरुहभत्ति मइं रइयउ ।
जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ येहु चरिउ सुइ सहियउ ॥

एहु सत्थु जो सुणइ सुणावइ,
एहु सत्थु जो लिहइ लिहावइ ।
एहु सत्थु जो महि वित्थारइ,
सो णरु लहु चिरमल अवहारइ ॥
पुणु सो भवियणु सिवपुरि पावइ,
जहिं जर-मरणु ण किंपि वि आवइ ।
णंदउ णरवइ महि दयवंतउ,
णंदउ सावय जणु धण-वंतउ ॥
महि भिञ्च-णाहहु धम्मु पवट्टउ,
खेगु मञ्च जणावइ परिवड्ढउ ।
कालि कालि वर पावसु वरिसउ,
सञ्च लोउ दय-गुण उक्करिसउ ॥
अज्जिय मुणिवर संघु वि णंदउ,
सयलु कालु जिणवरु जगु वंदउ ।
जं किंपि वि हीणाहिउ साहिउ,
हीण-बुद्धि कव्यु त्ति णिव्वाहिउ ॥
तं सरसइ मायरि खम किज्जउ,
यवर वि पंडिय दोसु म दिज्जउ ।

जो णरु दयवंतउ णिम्मल चित्तउ णिच्चु जि जिणु आराहइ ।
सो अप्पउ झाइवि केवलु णयवि मुत्ति-रमणि सो साहइ ॥

इय वरंग-चरिए पंडियतेयपाल-विरइए मुणिचिंदल-कित्तिसुपसाए वरंग-सव्वत्थसिद्धि-गमणो णाम चउत्थ संधी परिच्छेओ सम्मत्तो, ॥संधि ४॥

—प्रति ,भट्टारक हर्षकीर्ति शास्त्रभंडार, अजमेर
लिपि० सं० १६०७

३० सुकुमालचरिउ (सुकुमाल चरित)
मुनि पूर्णभद्र

आदिभागः—

पढमु जिणवरु णविवि भावें जउ-मउड
विहूसियउ तिसय विएहु मयणारि णासणु ।
असुरासुर-णर-थुय-चलणु सत्त तच्च
णव पयत्थ णव णयहिं पयासणु ॥
लोयालोयपयासयरु जसु उप्पण्णउ णाणु ।
सो पणवेप्पिणु रिसहजिणु अक्खय-सोक्ख-णिहाणु ॥
ध्रुवकं—पणवेवि भडारउ रिसह णाहु,
पुणु अजिउ जिणेसरु गुण सणाहु ।

× × × ×

अन्तिमभागः—

इय भरहखेत्त संपण्ण देसु,
ठिउ गुज्जरत्तु णामेण देसु ।
तासु वि मज्झहं ठिउ सुपसिद्धु,
णायर-मंडल-धण-कण-समिद्धु ।
तहिं णयरु णाउ संठियउ ठाणु,
सुपसिद्धु जगत्तउ सिय पहाणु ।
सिरि वीरसूरि तहिं पवर-आसि,
विणयालंकिउ गुण-रयण-रासि ।
मुणिभद्द सीसु तहिं जाउ संतु,
मोहारि-विणासणु णिम्ममत्तु ।
तासुवि सुकमारुह पयाउ,
सिरि कुसुमभद्द मुणीसहु सीसु जाउ ।
तासुवि भवियण-यण आस पूरि,
संजायउ सीसु गुणभद्दसूरि ।
हउं तासु सीसु मुणि पुण्णभद्दु,
गुणसील-विहूसिउ गुण-समुद्दु ।
मइ बुद्धि विहीणेंउ एहु कव्वु,
विरयउ भवियण णिसुणंत सव्वु ।
घत्ता— जा सज्जण-सायरु सवइ दिवायरु
जाम मेरु महि-वलय थिरु ।
जा हवइ णहंगणु जणमण रंजणु
ता एउ सत्थु जइ होइ चिरु ॥१८॥

इय सिरि सुकुमालसामि-चरिए भव्वयणाणंदयरे सिरि गुणभद्द सीसु मुणि पुण्णभद्द-विरइए सुकुमालसामि-सव्वत्थ-सिद्धि गमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो ॥

—प्रति पंचायती मंदिर शास्त्र भंडार दिल्ली ।
लिपि सं० १६३२

३१ णेमिणाह चरिउ (नेमिनाथ चरित)
अमरकीर्ति रचनाकाल सं० १२४४

आदिभागः—

विजयंतु णेमि पह-णाह-ससिणा पुण्ण-पहा पयोइंता ।
कुसुमं णाय हरिसउडा सियमणि पडिमिम्व-लक्खणा णिच्चं ॥१

तहिं साहि सिकंदरु सामिसालु,
णिय पइ पालइ अरियण भयालु ।
तं रज्जि वसइ वणिवरु पहाणु,
दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-णिहाणु ।
जो अयरवाल कुल-कमल-भाणु,
सिवल-कुवलयहु वि सेय-भाणु ।
मिच्छत्त-वसण-वासण विरत्तु,
जिण-सासणि गंथहु पाय-भत्तु ॥
चउधरिय णाम चीमा सतोसु,
जो वंसह मंडणु सुयण-पोसु ।
तं भामिणि गुण-गण-सील-खाणि,
मल्हाही णामें महुर-वाणि ॥
तं णंदणु णिरुवम गुण णिवासु,
चउधरिय करमचंदु अरुहदासु ।
जिणधम्मोवरि जें वद्धगाहु,
णिव हियइ इट्ठु पुरयणहु णाहु ॥
जिण-चरणोदएण वि जो पवित्तु,
आयम-रस-रत्तउ जासु चित्तु ।
उद्धरिउ चउव्विह-संघभारु,
आयरिउ वि सावय-चरिउ चारु ॥
चउदाणवंतु णं गंध-हत्थि,
वियरेइ णिच्च जो धम्म-पंथि ।
सम्मत्त-रयण-लंकिय सरीरु,
कणयायलु व्व णिक्कंपु धीरु ॥
सुहि परियण-कइरव-वणहिं हंसु,
जिणवर-सहमज्झें लद्ध-संसु ।
तं भामिणि दिउचंदहि मियच्छि,
जिण-सुय-गुरु भत्तिय सील सुच्छि ॥
तं जायउ णंदणु सील खाणि,
चउमहणा णामें अमिय-वाणि ।
धण-कण-कंचणु-संपुण्ण संतु,
पंडियहं वि पंडियगुणं-महंतु ॥

दुहि-यण-दुह-णासणु वुह कुल-सासणु जिण सासण-रह-धुर-धवलु
विज्जा लच्छी घरु रूवें णयरु अह णिसु किण विह उद्धरणु॥४

णर-रयणह णं उप्पत्ति-खाणि,
जा वीणा इव कलयंठि वाणि ।
सोहग्ग-रूव-चेलणि य दिट्ठ,
सिरि रामहु सीया जिह वरिट्ठ ॥
तहि वीर उवण्णा रयण चारि,
णं णंत चउक्क सुरूव-धारि ।
तम्मज्झि पढमु वियलियसुवत्तु,
लक्खण-लक्खंकिउ मसव-चत्तु ॥
अतुलिय-साहसु णहलंकणेहु,
माणण कएणु संपइहिं गेहू ।
धीरें गिरि गंभीरें सायरु,
णं धरणीधरु णं रवि-ससि सुरु ।
णं सुरवरु पइ पोसणु सुहंकरु,
णं जिणधम्मु पयडु थिउ वसु वरु ।
जिं णियजलि पूरिय दाणि मर्हि,
जो णिय सुह पालइ सुयणसुहि ॥
दिउराजु णामु चउधरिय सुहि,
जिणधम्म-धुरंधरु धम्मणिहि ।
विण्णाण कुसमु बीयउ सुपुत्तु,
जो सुणइ जिणेसर धम्मसुत्तु ॥
सुपवीणराय-वावार-कज्जि,
गंभीरु जसायरु बहुगुणिज्ज ।
भाभू चउधरिय विसुद्ध भाइ,
जो णिव-मणु रंजइ विविह भाइ ।
अण्णु वि तीयउ रिसिदेव-भत्तु,
गिह-भार-धुरंधरु कमल-वत्तु ।
चुगनाणामें चउधरिउ उत्तु,
जो करइ णिच्च उवयारु त ?ु ॥
पुणु चउथउ णंदणु कुल-पयासु,
अवगमिय सयल-विज्जा-विलासु ।
जिण-समयामय-रस-तित्त-चित्तु,
छुट्टाणामें चउधरिय उत्तु ॥

ए चउ भाइय जिणमइ-राइय, दिउराजुणामु गरूवउ सुपईं
णाणासुह विलसइ कइयण पोसइ णियकुल कमलज्जु पुहइं ॥५

तं पणइणि-पणइ-णिवद्ध-देह,
णामें खेमाही पिय-सणेह ।
सुर-सिंधुर-गइ सइवइ-विलील,
परिवारहु पोसण सुद्धसील ॥

अण्णहि दिणि जिणवर गंथदत्थु,
सम्मत्त-रयण-लंकयहि पत्थु ।
गउ अरुह-गेहि दिउराज साहु,
चउधरिय रायरंजणपयाहु ॥

भावें वंदिउ तहं पासणाहु,
पुणु जिण-गंथाणं णविवि साहु ।
सिद्धंत-अत्थ भाविय मणेण,
पुरयणु सुहयारउ सुरयणेण ॥
तहं दिट्ठउ पुणु सरसइ-णिवासु,
माणिक्यराज जिण गुरहं दासु ।
तेणवि संभासणु कियउ तासु,
जा गोट्ठि पयासइ बहु सुपासु ॥
तं जिण अंचण पसरिय गुणेण,
अक्खिउ सुहसूरा चंदयेण ।
भो। अयरवालकुल कमलसूर,
सुहयण जणाऊ मण आस पूर ॥
जिणधम्म-धुरंधर गुण-णिकेय,
जसपूर दिसंतर किय ससेय ।
चउधरिय खेमहणासुय सुणेहिं,
कलिकालु पयलु णियमण धरेहिं ॥
दुज्जण अविणट्ठवि दोस गाहि,
बहंति पढर पुणु पुहइ माहि ।
इय सुकइत्तणि पुणु बद्धणाहु,
णिय हियइ धरेप्पिणु पासणाहु ॥
सत्थत्थ-कुसल सइ रसह भरिउ,
सिरिअमरवइरसेणहु त्ति चरिउ ।
भउ बंधु गरिट्ठहु सुहइमज्झि,
णं आइसाइ हीणंह दु सज्झि ॥
जह जाय पुरिसवर तवहं धारि,
वरसीहमल्ल पमुहाइ सारि ।
तं वयणु सुणेप्पिणु मणि पुलएविणु अक्खइ देवराज सुहहो
भो माणिक पंडिय सील अखंडिय वयणु एकु महु सुणहिं लउ
अन्तभाग :—

णंदहु जिणवर सासण सारउ,
जिणवाणी वि कुमग्ग-णिवारउ ।
णंदउ सुहयण समय परिट्ठिय,
णंदउ सज्जण जेवि सविट्ठिय ॥
णंदउ णरवइ पय रक्खंतउ,
णय-मग्गु लोमहं संदरिसंतउ ।
संति वियंभउ पुट्ठि वियंभउ,
तुट्ठि वियंभउ, दुरिउ णिमुंभउ ॥
सेणिउ णिग्गउ णरय णिवासहु,
जिणधम्मु वि पयडउ भव-णासहु ।
जिं मच्छरु मोहवि परिहरियउ,
सुहयज्झाणि जं णियमणु धरियउ ॥
हेमचंदु आयरिउ वरिट्ठउ,
तहु सीसु वि तव-तेय-गरिट्ठउ ।
पोमणंद धरणंदउ मुणिवरु,
देवणंदि तहु सीसु महीवरु ॥
एयारह पडिमउ धारंतउ,
राय-रोस-मय-मोह-हणंतउ ।
सुहज्झाणें उवसमु भावंतउ,
णंदउ बंभलोलु समवंतउ ॥
तहं पास जिणेंदहु-गिह-रवण्ण,
बे पंडिय णिवसहिं कयायवण्ण ।
गरुवउ जसमलु गुणगण णिहाणु,
बीयउ लहु बंभउ भव्व जाणु ।
सिरि संतिदास णंदण्ण आणु,
चच्चइ सिरिपासु जिणय-माणु ॥
णंदउ पुणु दिवराउ जसाहिउ,
पुत्त-कलत्त-पउत्तु वि साहिउ ।
घत्ता—रोहियासि पुरि वासि, सयलु लोउ सह णंदउ ।
पास जिणहु पय-सरणु, णाणा थोत्तहिं वंदिउ ॥११
पुणु णामावलि भणउ विसारी,
दायहु केरी वयण विसारी ।
अइरवालु सुपसिद्ध विभासिउ,
सिंघल गोत्तिउ सुयण-समाहिउ ॥
चूल्हा णिवि अहिहाणें भणिउ,
जे णिय-तेएं कुलु संताविउ ।
करमचन्दु चउधरिय गुणायरु,
दिवचंदही मज्झहि त्ति मणोहरु ॥
तस्स तणुरुह तिण्णि वि जाया,
णं पंडव इव तिण्णि समाया ।
पढमउ सत्थ-अत्थ-रस-भायणु,
महणचंदु णं उइयउ धरइणु ॥
तह वणिया पेमाही सारी,
पुत्तचउ किं जुव मणहारी ।
अग्गिमु णामें जिउ सेयंसिउ,
उज्जल जसचरिओ त्ति जयंसिउ ॥

असुवइ परहर तियहिं विरत्तउ,
जं असच्च कइया गाउ उत्तउ।
दिउराजु जि जिण सहहि महल्लउ,
गोणाही तिय रमणु वि भल्लउ ॥
तहु कुक्खि सिप्पि मुत्ताहलाइं,
उप्पणइं वेसु परिउ सलाइं।
पहिलारउ णिय कुलहं वि दीउ,
हरिवंसु णामु गुणगण विदीउ ॥

घत्ता—तहु भज्जा गुणहिं मणुज्जा, मेल्हाही पभणिज्जए।
गउरि गंग णं उवहि सुया तहु कस उप्पम दिज्जइं ॥१२

पुव्वहि अभयदाणु असु दिण्णउ,
तह सुउ अभयचंदु सुणि संथिउ।
अवरु वि गुण-रयणहिं रयणायरु,
देवराज सुउ सयल दिवायरु ॥
रतणपालु णामें पभणिज्जइ,
तहु भूराही ललण वि गिज्जइ।
देवराय पुणु बीयउ जायउ,
झाभू णामें जग-विक्खायउ ॥
तह चोवाही भज्ज कहिज्जइ,
तो तेयहु णेहें जो छिज्जइ।
पढमउ णायराउ तहु कामिणि,
सूवटही णामें जणराविणि ॥
बीयउ गेल्हु वि अवरु पयासिउ,
झाभू तीयउ पुत्तु पयासिउ।
चाओ णामें जग-विक्खायउ,
महणासुउ चुगणा पिय भासउ ॥
डूंगरही तहु भामिणि सारी,
खेतासिंघ णंदण जुयहारी।
सिरियपालु पुणु रायमल्लु
पुणु कुंवरपालु भासिउ जडिल्लु ॥
मइणा अवरु चउत्थउ णंदणु,
छुटमल्लु वि जो धम्महु संदणु।
फेराही अंगण मण-हारउ,
दरगहमल्लु वि णंदणु रइ सारउ ॥

घत्ता—करमचंदु पुणु पत्तु, बीयउ जो जुवि भणिउ।
साहा हिय पिय उत्तु गुरु-पय रत्तु त्ति णाणिउ ॥१३

तहो अंतहो अंगोभव तिण्णि जोय,
विसुसुय पवणंजउ अज्जुणो य।
पहलारउ रावणु तस्स णारि,
रामाही जाया अहि वियारि ॥
तहु सरीरि सुअ चारि उवण्णा,
पुहइमल्लु वि पढमु सुवण्णा।
तस्स भज्ज बहु णेहालंकिय,
कुलचंदही जाया बहु संकिय ॥
कित्तिसिंघु तहु कुक्खि उवण्णउ,
गग्गिर गिर णाव कंचण वण्णउ।
पुणु जस चंदुव चंदु भणिज्जइ,
लूणाही पिय यम अणुरंजइ ॥
तह वि तणंधउ लक्खणलंकिउ,
मदणसिंघ जो पावह संकिउ।
अवरुवि वीग कंठु वीणायरु,
पोमाही तहु कामिणि मणहरु ॥
णारसिंघु वि तउ सुउवि गरिट्ठउ,
लच्छि पिल्लु णं पियरहं इट्ठउ।
पुणु लाडणु रूवें मयरद्धउ,
तहु वीवोकंता वि जसद्धउ ॥
पुणु जोजा बीयउ पुत्तु सारु,
णियरूवें जित्तउ जेण मारु।
दोदाही कामिणि अणुरंजइ,
जें सुहि मरणें सग्गि गमिज्जइ ॥
जोजा अवरुवि णंदणु सारउ,
लखमणु णामें पंडिय हारउ।
मल्लाही कामिणि तहु णंदणु,
हीरू णामें जण-मण-णंदणु ॥

घत्ता—अवरुवि णंदणु तीयउ ताल्हू णामें भासिउ।
चाल्हाही मणहारु वे सुय ताहं समासिउ ॥१४॥

पढमउ पोमकंति दामू सुहो,
इच्छाही भामिणि दिण्णउ सुहो।
महदासु वि तहु पुत्तु पियारउ,
पुणु दिवदासु बीयउ मणहारउ ॥
साधारणाही भज्ज मणोहरु,
घणमलु णंदणु तहु पुणु सुहयरु।
जगमलही कामिणि तहु सारी,
चायमल्लु सुय पोसण हारी ॥
इय दिवराजहं वंसु पयासिउ,
काराविउ सत्थु जिं रस सारउ।

कोह-मोह-भय-माण-वियसउ,
जं अक्खरु ण किंपि विएणासिउ ॥
सुपसाएं वि विरुद्धउ भासिउ,
.........................।
.........................,
हं सरसइ महु खमइ भंडारी ॥
वीर जिणहो मुहु णिग्गय सारी,
जे धारें ते भव-सरि-तारी ।
हेम-पोम आयरिय विसेसें,
धंमुज्जाएं गुण गणियाणहोसें ॥
महु कव वड्ढिय वयणधरेप्पिणु,
कव्व सुवण्णहु लोह वि देप्पिणु ।
मत्त-अत्थ-सोहग्ग खिवेविणु,
अण्ण-विरुद्ध किट्टि कड्ढेविणु ॥
सोहिउ पुणु वि मणु लाएविणु,
होउ चिराउसु कव्वु-रसायणु ।
विक्कम रायहु ववगय कालहं,
लेसु मुणीस विसर अंकालहं ॥
धरणि अंक सहु चइतवि मासें,
सणिवारें सुय पंचमि दिवसें ।
कित्तिय णक्खत्तें सुह जोएं,
हुउ उप्पएणउ सुत्तु वि सुह जोएं ॥

हो वीर जिणेसर जग परमेसर पत्तिउ लहु महु दिज्जउ ।
जं हि कोहु ण माणु भाव ण जाणु, सासय-पय महु दिज्जउ ॥१५

॥ इय महाराय-सिरिअमरसेण-चरिए चउवग्ग-सुकह कहासमरसेण-संमरिए सिरिपंडियमाणिक्कु-विरइए साधुसिरि-महणासुय-चउधरि-देवराजणामंकिए सिरि अमरसेणमुनि पंचमगग-गमणवण्णणो णाम सत्तमं इमं परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ ७ ॥

—प्रति आमेर भंडार सं० १५७७

कार्तिकवदी चतुर्थी रविवार सुवर्णपथ (सुनपत) में लिखित ।

३४—णागकुमारचरिउ (नागकुमारचरित)

कविमाणिक्यराज रचनाकाल सं० १५७९

आदिभागः—

ग्रन्थ प्रतिमें आदिके दो पत्र न होनेसे उससे आगेका भाग दिया जाता है:—

× × ×

तहिं जिणमंदिरु धवलु भव्वु,
सिरि आइणाह जिणबिंब दिव्वु ।
तहिं णिवसइ पंडिय सहखणि,
सिरि-जयसवाल-कुल-कमल-तरणि ॥
इक्खाकु वंस महियलि वरिट्ठु,
बुह सूरा णंदणु सुउ गरिट्ठु ।
उप्पएणउ दीवा उरि रवएणु,
बुहु माणिक्कु णामें बुहहि भएणु ॥
तहि अंतरि सावउ इक्कु पत्तु,
वय-दाण-सील-णियमेण जुत्तु ।
बुहयण रंजणु गुण गण विसालु,
विच्छिएण वत्थ दिप्पंत भालु ॥
धम्मत्थ काम सेवंतु संतु,
तस जीव दयावरु सिरिमहंतु ।
मेरुव्व धीरु गुणगण-गहीरु,
जिण-गंधोवय-णिम्मल सरीरु ॥
णरवइ सह मंडणु सव्व भासि,
सोहाणा गोट्टु सुय सील-रासि ।
चंदुव्व भुवण-संतावहारि,
वर रूव स वएणउ णं मुरारि ॥
अह अंग विहूसिउ णं महेसु,
मंदारय पुज्जिउ णं महेसु ।
जिण पयसी संकिउ णीलकेसु ॥
रस दंसण पालउ सुयण-तोसु,
सिरि ठाकुराणि जिणधम्म धुरंधरु ।
सुरवइ करभुय जुयलेहिं विमलु,
सिरि जइसवाल इक्खाकु वंसु ॥
सिरि जगसी णंदणु सुद्धवंसु,
टोडरमल णामें घर पयलु ।
जं कित्ति तिलोयइ पूरि थिरु ॥

ते आइ वि जिणहरि णयणाणंदणि आइणाहु जिणवंदियउ ।
पुणु दिट्ठउ पंडिउ मवियण मंडिउ अह विणयं अब्भत्थियउ ॥

× × ×

इय-वय-पंचमि सिरिणायकुमारचरिए विबुह-चित्ताणु-रंजिणे सिरिपंडिय-माणिक्यराज-विरइए चउधरिय-जगसी सुय-राय-रंजण-चउधरि टोडरमल्लणामंकिए जयंधर-विवाह-वण्णणो णाम पढमो संधि परिच्छेओ समत्तो ।

अन्तिम भाग :—

णंदउ जिणवरिंद जिण-सासणु,
दय-धम्मु वि भव्वह आसासणु।
णंदउ णरवइ पइ पालंतउ,
णंदउ मुणिगणु सुत-तउ-वंतउ ॥
णंदउ जिण सुहमग्गि चरंतउ,
भवियणु दाण-पूय विरयंतउ।
कालि कालि धाराहलु वरिसउ,
दुक्ख-दलिद्दु दुहिक्खु विणिरउ ॥
घरि-घरि णारिउ रहसं णच्चउ,
घरि घरि मंगलु गीउ पदरिसउ।
घरि-घरि संखु समुद्दलु वज्जउ,
घरि-घरि लोउ सुहेहिं रंजउ ॥
चउविह संघह दाणहं पोसणु,
जिणवरिंद-सुय-गुरु-पय अच्चणु।
णंदउ टोडरमल्लु दयालउ,
पुत्त-कलत्त-सुयण-पइ-पालउ ॥
जावहिं मेरुचंदु रवि णहयलि,
णंदउ एहु गंथु ता महियलि।
भवियण लोयह पाढिज्जंतउ,
णंदउ चिरु दुक्खिउ विहुणंतउ ॥
विक्कमरायह ववगय-कालें,
जे समुणीस विसर अंकालें।
पणरह सइ गुणवालिह उरवालें,
फागुण चंदिण पक्खिलसिवालें ॥
णवमी सुह णक्खित्त सुहवालें,
सिरि पिरथीचन्दु पसायं सुंदरें।
हुउ परिपुण्णु कव्वु रस-मदिरु,
सज्जण-लोयह विणउ करेप्पिणु ॥
पिसुण-वयण कद्दमेण भरेप्पिणु,
विरयउ एहु चरित्तु सुबुद्धिउ।
जइ यहु अत्थ-मत्त हीणउ हुउ,
ता महु दोसु भव्वु म गहियउ ॥
विणवइ माणिक्क कई इम,
महु खमंतु विवुह गुणमंतिम।
अण्णुवि असुंणंते हीणाहिउ,
मइ-जलेण जं कायमि साहिउ ॥
तं जि खमउ सुयदेवि भडारी,
कइयण-जण तिल्लोयहु सारी।
सुहयण रोसु म करहु महु उप्परि,
अइ रोसें सोहिज्जहु गंथु वरि ॥
विसमट गामिणि वज्जउ मंदलु,
णाच्चउ कामिणि होउ सुमंगलु।
गुरयण वच्छलें पंडिएण,
माणिक्कराज वज्जिय-मएण ॥
तं पुण्णु करेप्पिणु एहु गंथु,
टोडरमल्ल हत्थें दिण्णु सत्थु।
णिय सिरह चडाविउ तेण गंथु,
पुणु तुट्ठउ टोडरमल्लु हियइ णंपि ॥
दाणें सेयांसह कण्णु तं पि,
पंडिउ वर पट्टहिं धविउ तेण।
पुणु सम्माणिउ बहु उच्छवेण,
वर वत्थहं कंकण-कुंडलेहिं ॥
अंगुलियहि मुद्दिम णिय-करेहिं,
पुज्जिउ आहारहि पुणु पुणु तुरंतु।
हरि रोविय सज्जिउ वियायं णिरुत्तु,
गउ णियवरि पंडिउ गंथु तेण।
जिण-गेहि णियउयहु उच्छवेण ॥
तहिं मुणिवर वंदहिं सुक्क गंथु,
दिण्णउ गुरु-हत्थें सिवह-पंथु।
वित्थारिउ अत्थु वियारि तेण,
भव्वयणाह सुहगइ दावणेण ॥
पुणु टोडरमल्लहं णिवसरि पुण्णह लिहयइ गंथ बहुसुच्छ णिरु
जिणगिह मुणिसंघहं तव-वय-वंतहं णाण दाणु तं दिण्णु वरु ॥

शुभंभूयात्। ग्रंथाग्र ३३००
प्रति आमेरभंडार लिपि सं. १५६२

३५–सम्मइ-जिणचरिउ (सन्मति-जिन-चरित्र) कवि रइधू

आदिभाग—

जय सररुहभाणहुँ वड्ढियमाणहु वड्ढमाणतित्थेसरहु।
पणविवि पय-जमलं णह-पह-विमलं चरिउ भणमि तहु हुय सरहु
वीरस्साणंत विंत्ति अमर-वदि-णुदं धम्मभूयादअद्दं,
णट्ठा कम्मट्ठविंत्ति परमगुणस्साहिरामं जिणस्स।
वंदित्ता पाय-पोमं ति-जय मणसुयं धम्मचक्काहिवस्स,
वोच्छं भव्वत्थजुत्तं अणह-सुहहरं तच्चरित्तं पवित्तं ॥१॥

× × ×

केवलणाण-सतणु-पहवंती,
साय-वाय-सुह-कमल हसंती।

विविण पमाण-णयण-जोवंती,
दो-दह-णिय अंगइं गोवंती ॥
वे-णाय-कोमल-पयहिं चलंती,
चउदह-पुव्वाहरण-धरंती ।
ति-जय-चित्ति विब्भमु विहुणंती,
अत्थ-पसत्थ-वयण-भासंती ॥
कुणय-विहंडणि संतावंती,
णाणा-सद्द-दसण सोहंती ।
छंद-दुविह-भुयडाल-रवण्णी,
णायरणंगु णहिं सुयवण्णी ॥
जिणमय-सुत्त-वत्थ-पंगुरणी,
सील-महाकुल-हर-हर-धरणी ।
दुविहालंकारेण पहाणी,
होउ पसण्ण जिणेसहु वाणी ॥
सुयदेवि भडारी ति-जय पियारी दुरियवहारी सुद्धमइ ।
कइयण-यण-जणणी सुहफल-जणणी सा महु दिज्जउ विमलमई

संसारोवहि-पोय-समाणा,
विगय-दोस वे मुणियं पमाणा ।
णाण-चउक्को जोय दिवायरु,
थावर-तस सत्ताहं दयायरु ॥
जे हुय गोयमु पमुह भडारा,
ते असेस पणविवि सरहारा ।
ताहं कमागय तव-तवियंगो,
णिच्चब्भासिय-पवयणसंगो ॥
भव्व-कमल-सर-बोह-पयंडो,
वंदिवि सिरि जसकित्ति असंगो ।
तस्स पसाएं कव्वु पयासमि,
चिर भवि-विहिउ असुह णिण्णासमि ॥
जइ कह भवि मणुयत्तणु लद्धउ,
देस-जाइ-कुल-धस-विसुद्धउ ।
तं हेलइ विहलउ ण गमिज्जइं,
सत्थब्भासें सहलो किज्जइं ॥
गोवग्गिरि दुग्गमि णिवसंतउ, बहु सुहेण तहिं ।
पणमंतउ गुरु-पाय पायडंतु जिण सुत्तु-महिं ॥३॥
जिण-धम्म कम्मम्मि कय उज्जमो जाम,
णिय गेह सयणि यलि सुहि सुत्तु बहु ताम ।
सिविणंतरे दिट्ठ सुयदेवि सुपसण्ण ।
आहासए तुज्झ (?) हउं जायमु पसण्ण ॥

परिहरिहिं मण चिंतकरि भव्वणिरु कव्वु,
खलयणहं मा डरहिं भउ हरिउ मइ सव्वु ।
तो देविवयणेण पडिउ विमाणंदु,
सक्खणेण सयणाउ उट्ठिउ जि गय-तंदु ॥
दिसवहणियतोय पुणु तुट्ठ चित्तंमि,
संपत्तु जिणगेहिं सुहगइं णिमित्तम्मि ।
पणवेवि जिणणाहु बहुविह विसंथुत्ति,
मुणिपाय वंदेवि जायक्कु जसमुत्ति ॥
ता तम्मि खणियंभ-धय-भार भारेण,
सिरि अइरवालंकवंसम्मि सारेण ।
संसार-तणु-भोय-णिव्विण्णचित्तेण,
वरधम्म-झाणामएणेव तित्तेण ॥
सत्थत्थरयणोह-भूसिय-सदेहेण,
दहएग पडिमाण पालण स-णेहेण ।
खेल्हाइ हाणेण णमिऊण गुरुत्तेण,
जसकित्तिविणयाहु मंडिय गुणोहेण ॥
भो मयण-दावग्गि-उल्हवण-घणदाण,
संसार-जलरासि-उत्तार-वर-जाण ।
अम्हह पसाएण भव-दुह-कयंतस्स,
ससिपहजिणेंदस्स पडिमा विसुद्धस्स ॥
काराविया मइं जि गोवायले-तुंग,
बहुचाणि णामेण तित्थम्मि सुह-संग ।
आजाहिया हाण महु जणाय सुपवित्त,
जिणदेव मुणि पायगंधोवसिरसित्त ॥
दुल्लंभु णर-जम्मु महु जाइ इहु दियणु,
संगहिवि जिण-दिक्ख मयणारि जिं छियणु ।
तहिं पडिय उवयारं कारणेण जिण-सुत्ति,
काराविया ताहि सुणिमित्त ससि-दित्ति ॥
कलि-कालु जिणधम्मधुर धारएहस्स,
तिजयालए सिहरि जस सुज्झल्हदस्स ।
सिरि कमलसीहस्स संघाहिवस्सेव,
सुसहायएणावि तं सिद्धु इह देव ॥
जणणी तणयारहु णर-मणयारहु, हुवउ तस्स णिब्भार हउ ।
एव्वहिं मुणि-पुंगम बहु-सुय-संगम आहासमि णिरुविगय-भउ ॥
महु मणम्मि सल्लेवकु पयडइ,
तुम्ह पसाएं सोऊ हट्टइ ।
चिंति परमु वइराउ धरिंतें
सु-तव-भारि विगडु धारंते ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पुणाइ बहु वणिय-कुल भूरि णिवसंति,
जिण-पूय-उच्छव सुदाणाइं वरसंति ।

णिम्मलु कुलुब्भूय गुवईय जिणहम्मि,
कर पूय संजुत्ति कय जंति सुहकम्मि ॥

तं णयरु को वण्णणेई सुकइलोइ,
सुरगुरु वि वण्णंतु संदेह मइ होइ । -

तहि पट्टणि अरिदल वट्टणि जिण-पय-पयरुह-भमरणिहु ।
सुविए मेहय णिरुसहजपालणिरुअयरवालकुल गयणविहु

तहु णंदणु मुणियण-पायभत्तु,
विहलियजणासपूरण सुमत्तु ।

संघाहिउ सहएव जि पसिद्धु,
चउविह-संघहं चाए समिद्धु ।

णियकुल-कुवलय-अरुणीस-तुल्लु,
पर-उवयारहं जो भणि अमुल्लु । मु

काराविवि जिणहु पइट्ठ जेण,
लच्छिहिं फलु गिण्हिउ सुहमणेण ।
तित्थयर गोत्तु दुल्लहु णिबद्धु,
महिमंडल णिम्मलु सुजसु लद्धु ।
तोसउ णामें तहु लहुउ बंधु,
सत्थत्थ-कुसल जो सच्चसंधु ।
जिणचरणकमल-गंधोवएण,
मणु सिंचिवि कलिमलु हणिउ जेण ।
संसार-महाभय-णासणाइं,
पणिहियइं जेण सुह-भावणाइं ।
सग-पमय-तिमिर-घण-चंदरोइ,
जिणधम्म-धुरंधरु एत्थु लोइ ।
सम्मत्त रयण-भूसिय-णियंगु,
जे पालिउ सावय-वय अभंगु ।
सुहमण-जणाण जो भत्तिवंतु,
बहु सील-सउच्चें सइमहंतु ।
दाणेण गुणेण वि सहपजोग्गु,
धम्माणुएण जसु चित्तु लीणु ।
आजाहो णियमण-सुह-णिहाणु,
सणियर-णिदहं जें लद्धु माणु ।

तहुं पुणु तहो भज्जहुं णियणिय गज्जहुं णामु पयासहिं कज्जु णिरु
जेम जि णाणंतरि, इह भरहंतरि परिपट्टहं सो तं जि थिरु ॥८

जहं पयपास-जिणिंदह केरउं,
चरिउं रइउं बहु सुक्ख-जणेरउ ।

पुणु मेहेसर चमुवइ चरिउं,
लोय पयासिउं बहुरस-भरिउं ।

खेमसीह वणिणाहहु णामें,
किं पइं पूरिय चित्तहु कामें ।

पुणु तेसट्ठि पुरिस-रयणायरु,
पयर महापुराणु महसायरु ।

कुंथु णास विण्णत्तिवसें जिहं,
पइं विरयउं पुणु भो पंडिय तिहं ।

सिद्धचक्कविहिं पुणु जि पउत्ती,
हरसीसाहु णिमित्त णिरुत्ती ।

पुणु बलहद्द-चरिउं सुक्खासिउं,
तहेव सुदंसण-सीलकहासिउं ।

धण्णयकुमार-पमुह बहु चरियइं,
जिह पय विहियइं भूरिरस-भरियइं ।

तिह कर वड्ढमाण जिणणाहहु,
चरिउं जि केवलणाण पवाहहु ।
महु वयणे तोसउहु णिमित्तें,
पयहिं तं दु मणि विहिय ममत्तिं ।
तं णिसुणिवि हरसिंहहु पुत्तें,
खण-भंगुर-संसार-विरत्तें ।
गुरु-पय-कमल-हत्थ धारेप्पिणु,
कइणा बोलिउ ता पणवेप्पिणु ।
हउं तुच्छमइ कव्वु किह कीरमि,
विणु वलेण किम रणमहि धीरमि ।
णो आयण्णिय वायरण तक्क,
सिद्धंत चरिय पाहुड अवरक्क ।
सुहावम परम पुराण गंथ,
माणस-संसय-तम-तिमिर-मंथ ।
किह कव्वु रयमि गुणणाम-समुह,
को उग्घाडइं जिण-समय-गुह ।
अम्हारिसेहि णिय घर कईहिं,
सुह-कुखइं मज्झि अणिरूय-मईहिं ।
माणस्स वि धारणि गहणु सम्मु,
मो किं कीरिज्जइं णाइ कव्वु ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

णंदउ राणउ णीइवियाणउं,
पय पुणु णंदउ पाउ-णिकंदउ।
सावय धणुवि पुयण समग्गुवि,
........................।
घरि घरि वीयराउ अंचिज्जउ,
मिच्छावस भरु भव्वहं खिज्जउं।
मुणि जसकित्तिहु सिस्स गुणायरु,
खेमचंदु हरिसेणु तवायरु।
मुणि तहं पाल्हवंभुए णंदहु,
तिण्णि वि पावहु भारु-णिकंदहु।
देवराय संघाहिव णंदणु,
हरिसिंघु बुहयणं कुल-आणंदणु।
पोमावइ-कुल-कमल-दिवायरु,
सो वि णंदउ एत्थु जसायरु।
जस्स धरिज रइधू बुहु जायउ,
देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ।
णंदउ एहु णंदउ चिरु भुयणि,
पाविज्जंतु पयट्टउ इह कवि।

घत्ता—गोवग्गिरि-दुग्गहिं, खय अरि भग्गहिं, सुवण्णयरे।
गोउर चउवारहिं, तोरण-फारहिं, बुहयण-मण-संतोस-यरे॥२८

णयणिह मेहहिं, जिणवर गेहहिं,
मणिगण चंदिरि, णयणाणंदिरि।
जिणु पुज्जिज्जइ, धम्मु सुणिज्जइ,
णिच्च वि जत्थहिं, धवल णवत्थहिं।
तउ वा विउज्जइ भव-मलु-खिज्जइं,
जहिं पुणु घरि घरि, धण कंचण भरि।
मंगल गिज्जहिं, उच्छह किज्जहिं,
सावय लोयहिं, मणहु पमोयहिं।
णिच्चिहिं पत्तइं, गुण-गण-जुत्तइं,
दाणइं दिज्जहिं, पुण्णइं खिज्जहिं।
घरि घरि मइ मग्गु, भाविज्जइं मग्गु,
तासु भावणइं, कम्म-मलु-णिज्जइं।
णारणि णारणि, वर कंचण मणि,
णिवसहिं धणिवर, इन्दें जिणवर।
करि-वर-दाणें, जहिं अप्पाणें,
रंगइं भिगाइं, सजि णाणगइं।
दइ दिस धाविय, कण्ण ण पाविय,
णइं बुह-ईसरु, णाइं सुरेसरु।
इन्दें णं सरु, कंतिय ससहरु,
खत्तिहिं आयरु, णारह सायरु,
कर करवाले, अरि-खय काले।
तोमर वंसहु, ति-जय-पसंसहु,
उज्जोयणायरु, कुल संतय धरु।
णामें डोगरु, अरि-यण-खयकरु,
तासु जि रज्जहिं, मह णिरवज्जहिं।
जिणहरि ठंते, सुहमइवंते।
विरयउ कव्वे, एहु जि भव्वे।
पुव्वायरियहिं, पट्टि गुणायरु,
अणुक्कमेण संठिउ, णयसायरु।

मिच्छत्त-तिमिर हरु-णाइं सुहायरु, णायमत्थहरु तव-णिलउ
णामेण पयट्टु जणि देवसेणु गणि, संजायउ चिरु बुह-तिलउं

तासु पट्टि णिरुवम गुण-मंदिरु,
णिच्च भव्वयण-णिसाणंदिरु।
विमल मई फेडिय मल-सगगु,
विमलसेणु णामें रिसि-पुंगमु।
वत्थु-सरूव धम्म-धुर-धारउं,
दह-विह-धम्मु भुवणि वित्थारउ।
वय-तव-सील-गुणिहि जे सारउ,
बज्झब्भंतर संग-णिवारउ।
धम्मसेणु मुणि भवसर तारउं,
........................।
भायसेणुणु भाविय णिय-गुणु,
दंसण-णाण-चरणु तहं चेयणु।
दोविह तविण जेण ताविउ-तणु,
धम्माणइं पोसिउ भव्वहं गणु।
मूलुत्तर-गुणेहिं जो पावणु,
सुदप्पहु सल्ल संभावणु।
कम्म-कलंक-पंक-सोसण हणु,
सहसकित्ति उव्वासिय-भव-वणु।
तासु पट्टि उदयद्दि-दिवायरु,
बज्झब्भंतर-तव-कय-धायरु।
बुहयण-सत्थ-अत्थ-चिंतामणि,
सिरि गुणकित्ति-सूरि पावउ जणि।
तहु सिहासणि सिहरि पइट्ठिउ,
मुत्ति-रमणि रायणोक्कंठिउ।

खीमी णामा वरसील थत्ति,
को कइ वण्णइ तहिं गुणहं कित्ति ।
सा परिणिय तेण गुणायरेण,
वहुकालें जं तें सायरेण ।
णिय भायर णंदण गुण णिउत्त,
मागेप्पिणु णिरिहिउं कमलवत्त ।
हेमा णामें परिवार-भत्तु,
तहो घरहो भारु देप्पिणु विरत्तु ।
विसयहं सुहु मणिवि दुह-णिमित्तु,
.... ।
जिण-वय-धारण-उक्कंठएण,
संसारु असारउं मुणिमणेण ।
जणणी जणणुवि परिवार लोउं,
सयलहं वि खमावणु करिवि सोउं
अप्पणु वि खमेप्पिणु तक्खणेण,
जिणवेसु धरिउं णीसल्लएण ।
जसकित्ति मुणिंदहु णविवि पाय,
अणुवय धारिय ते विणय-भाय ।
तोसउ णंदणु दिवराज अण्णु,
साधाहिय पिय णेहें पसण्णु ।
परिवार-भत्तु गुणसेणि-जुत्तु,
णिय-वंस-णयण-उज्जोइ-मित्तु ।
सच्चावभासि सच्चेयलीणु,
जिणधम्म कम्मु कारण पवीणु ।
तहु णंदणु जाया दुण्णि वीरु,
जिणधम्म-धुरंधर गुण-गहीरु ।
चंदुव्व कलायरु सिहरुचंदु,
पढमउं सज्जणजणाइं अणंदु ।
बीयउं पुणु णामें मल्लिदास,
वीसेगुणहं जिणवरहुं दास ।
तोसउ हु पुत्ति तुणु विणिण जाय,
जिणधम्म-कम्मि रय विणय-भाय ।
जेठी णामें जीवो जि उत्त,
जिण-पय-गंधोवइ णिच्च सित्त ।
वय-णियम-सील-पालण-समग्ग,
जिण-समयहुभरु धरणि अभग्ग ।
लहुडी णामें सेल्हरी पवित्त,
विहु परिवारहं जा णिच्च भत्त ।
सीलें सोहग्गें सिय-समाणु,
णिरु पत्तहं चउविह देय दाणु ।
तहिं णंदण हूया विण्णि सज्ज,
झांझू भोजा णामें मणोज्ज ।
पंच जि भायरहं वि अण्ण सूय,
जाल्ही वीरो पमुहाइ हूय ।
इहु परियणु वुत्तउं, सजस पवित्तउं, जा कणयायलु सूर ससि ।
जावहिं महिमंडलु, दिवि आहंडलु, णंदउ तावहिं सजसवसि ॥३४

इय-सम्मइ-जिण-चरिए, णिरुवम-संवेय-रयण-संभरिए, वरचउवग्गपयासे, वुहयण-चित्तस्स जणिय-उल्लासे, सिरि-पंडिय-रइधू-विरइए, साहु सहजपालु-सुय-सिरि संघाहिव सहएव-लहुय-भायर-महाभव्व-तोसउ-साहुणाम-णामंकिय-कालचक्क तहेव दायारस्स वसणिद्देस-वण्णणो णाम दहमो संधी परिच्छेओ समत्तो । संधि १० । लिखितं पांडे केसा ॥

वि० सं० १६०० प्रति सिद्धान्त भवन, आरा,
नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली ।

३६ सुकोसल-चरिउ — रचनाकाल सं० १४९६
(सुकोशल चरित्र) — पंडित रइधू

आदिभाग—

जिणवर-मुणिविंदहु थुव-सय-इंदहु चरण-जुवलु पणवेवि तहो
कलिमल-दुहनासणु सुहयण-सासणु चरिउ भणमि सुकोसलहो
तिहु मेय पसिद्ध जि भुवणि सिद्ध,
णिकल तहं सयल विसद्द-रिद्ध ।
वसुगुण-समिद्ध वसुकम्म-मुक्क,
वसुमी वसुहहिं जे णिच्च थक्क ।
परमाणंदालय अप्पलीण,
उप्पत्ति-जरा-मरण-त्ति-हीण ।
वर णाणमए णरसेण सिच्च,
ते णिक्कल सिद्ध णवेवि णिच्च ।
जे घायइं कम्म विणासणेण,
महि विहरहिं केवल-लोयणेण ।
अड पाडिहेर अइसय सु-सोह,
भावत्थि विभावणि भवणिरोह ।
अहि-णर-सुर-वइणा णमिय-पाय,
सव्वहं हिय मागहि जाह वाय ।
ते सकल सिद्ध तहं पुणु णवेवि,
पुणु वारसंग सुय पय सरेवि ।

जिण-वयण-विणिग्गउ वयण-पिंडु,
तं सद्द सिद्ध झाइवि अखंडु।
ए सिद्ध तिविह पणविवि णिरीह,
मिच्छत्त-माण-णिद्दलण-सीह।
तह गणहर सामिय सुद्द गइ गामिय भव-सर सोस-दिणेसर।
जे सत्त सत्तसय पयडिय महिदय, तेणयण हियं णिदय सर ॥१
ते पणविवि बहु भत्तिए गणहर,
ताहं पट्टि पुणु जे हुव मुणिवर।
• विजयसेण वसुहाय गुणायर,
आयम-सत्थ-अत्थ-रयणायर।
तेहिं अणुक्कमि सूरि महाणउं,
छंद-तक्क-वायरणहं ठाणउं।
खेमकित्ति णामेण जईसरु,
महिउ जेण दुम्महु णिरहं सरु।
तासु पयासणि कलिमल-चत्तउ,
णिच्च चित्त भाविउ रयणत्तउ।
बारह-विह-तव तेय-सुहंकरु,
हेमकित्ति अहिहाणु दुरिय-हरु।
तासु पट्टि तव लच्छिहि मंदिरु,
अइ अकंपु णं छट्टउ मंदिरु।
दुद्दम-इंदिय वल-दमणायरु,
भव्वह-मण-संसय-तम-भायरु।
मणसिय-विसहर-विस-णिण्णासउ,
तेरहविह चारित्त जो धारउ।
आयम रस रसेण जो सित्तउ,
अहणिसु जें भाविउ रयणत्तउ।
कुमरसेणु णामें कलि गणहरु,
पणविवि णिय-भाव सुद्धिए भव-हरु।
अवर वि जे णिग्गंथ महामुणि,
पावखोडि वि णिट्ठु ठविय बहु गुणि।
अवराहिं दिणि जिणहरि थयगाणंतरि रइधू बहु-सुह-मणरम्मो
जिणवर दिट्ठउ णयण मणिट्ठउ मिउ घर धरियण गउ कम्मो ॥२
तहिं वंदिउ गरुवइं परमेसरु,
कुमरसेणु पुणु परम जईसरु।
आसीवाउ दिण्णु तहु ताए,
पेहु समग्ग वि धरिय ताए।
पुणु गुरुवा जंपिउ सो दक्खिय,
रइधू णिसुणहि सत्त अलंकिय।
सुव जुगउ अवेमि हउ पेसणु,
तं करणिज्जु अवसु दुह-णासणु।
जहं पइ णेमि जिणिंदहु केरउ,
चरिउ रइउ बहु सुक्ख जणेरउ।
अण्णुवि पासहु चरिउ पयासिउ,
खेऊ साहु णिमित्त सुहासिउ।
बलहद्दहु पुराण पुणु तोयेउ,
णियमणु आणुराएं पइं कीयेउ।
बहु सुकोसल चरिउ सुहंकरु,
विरयहिं भव-सय-दुक्ख-खयंकरु।
तं णिसुणिवि हरसिंघहु णंदणु,
पडिजंपइ किम जिण-पय-वंदणु।
सत्त-अत्थ-हीणउ हउ सामिय,
किम पंगुल हवंति णह गामिय।
किम ण तरंतु तरइ पुणु सायरु,
किम अरिभिडइ रणं गणि-कायरु।
बोल्लहु पुणु करिहु किं बोल्लइ,
किम वरकुंड-थयल हर भरु भिल्लइ।
आसि कइंदहिं चरिउ जि भासिउ,
कह विरयमि हउं तं गेहासिउ।
पिंगल छंदु विहत्ति ण जाणवि,
किम अप्पउ कइत्त गुणि माणवि।
अहं तुम्हह वयणहिं करमि सत्थु सुहमय-वरणु।
पर कारणु सामिय तव पइ गामिय, एक्कु अण्ण संसय-हरणु ॥३

अंतिमभाग—

जं गयउ मणाहीणउं चरित्तु,
सम भणिउ किंपि हट्ठु गुण पवित्तु।
तं कोमलमुह णिम्मय सुवाणि,
महु खमहु भंडारो अत्थ-खाणि।
सुहयण म णियहहु किंपि दोसु,
सोहेज्जहु एहु धर्णय रोसु।
भवि भवि होज्जउ महु धम्म बुद्धि,
संपज्जउ तह दंसण-विसुद्धि।
भवि भवि दुल्लह मग्गहिं बोहि,
संपज्जउ महु भव-भम-विरोहि।
णाणउ णंदउ सुहि वयउ देसु,
जिण-सासण णंदउ जिणु-सेसु।

सावय-यण गंदहु किय सुकम्म,
जे वय-भरु धारहिं णट्ठ-छम्म।
णंदउ रणमलु पुणु साहु धरणु,
जिं चरिउ कराविउ इहु रवण्णु।
मुणियण सहसारहो तव-वयधारहो
मरुसेण सामिहु तणओ।
उवएससुहंकरु णासिय-भव-दुहु
महु मणि णिच्च थुत्ति कुणओ॥२॥
सिरि विक्कमे समयंतरालि,
वट्टंतइं दुस्सम विसम कालि।
चउदह सय संवच्छरइं अण्ण,
छण्णउव अहिय पुणु जाय पुण्ण।
माह दुजि किण्ह दहमा दिणम्मि,
अणुराहु रिक्खि पयडिय सकम्मि।
गोवागिरि (गोवग्गिरि) डूंगर णिवहु रज्जि,
पइ पालंतइ अरिराय तज्जि।
जिण-चरण-कमल णामिय सरीरु,
सावय-वय-रहधुर-धरण-धीरु।
*सिरि अयरवाल कुल गयण चंदु,
सघवीर विधा जण जणिय णंदु।
वे पक्खुज्जल सात णिय भज्ज ?,
अभणी णामा वय-सील-सज्ज।
तहि उवरि उवण्णउ णर-पहाणु,
अह-णिसु भाविउ जिं धम्म-झाणु।
महलगि दिउ णामें साहु धरणु!
णिय जसेण महि वीढ छण्णु।
तहु भज्जा दुक्खिय-जण जणेरि,
मह सील तीर वहणेक्क धीरि।
वीरो णामा वर चाय-लीण,
गइ हंसिणीव सद्देण वीण।
तहु पुत्तु पढमु जिण-पाय-भत्तु,
आणाहिहाणु गिह-धम्मि रत्तु।
तहु धरिणि गुणायर सुद्ध सील,
जिण-धम्म-रसायणि जाहि कील।
वीधो णामा गेह-लच्छि,
चउविह-संघह दाणेण दच्छि।
तहि उवरि उवण्णा गुण संपुण्णा, पुत्त तिण्णि लक्खणहि जुवा
ताह जि पुणु पढमउ णं ससि पढमउ, पीथा णामें दीह भुवा
तासु पिया पियचित्त सुहायरि,
भणिय कुवेरदेव णं सुरसरि।
बीयउ णंदणु फुड्ड जस जसयरु,
णिय-कुल-कमल वियासण-भायरु।
पल्हण सी (सा) हु वसण-मण-चत्तउ,
जिण-चरणारविंद-रय-रत्तउ।
कउर पालही तहु [सुह] भामिणि,
णाहहु चित्त णिच्च अणुगामिणि।
तीयउ सुउ पुणु बहु लक्खण धर,
जो आराहइ अह-णिसु जिणवर।
देव-सत्थ-गुरु पायहि लीणउ,
कहमवि वयणु ण जंपइ दीणउ।
रणमलु णामु महिहि विक्खायउ,
जालपही पियतम-अणुरायउ।
तिं सुक्कोसल चरिउ कराविउ,
णिच्च चित्ति पुणु तहु गुण भाविउ।
जामहि रयणायरु णाहि ससि भायरु, कुलगिरि-वर-कणयद्दि वरा
तावइं जं तउ बुहहिं णिरुत्तउ चरिउ पवट्टउ एहु धरा॥२३

इय-सुकोसल-मुणिवर-चरिए णिरुवम-संवेय-रयण-संस (भ) रिए सिरि-पंडिय-रइधू-विरइए सिरि-महा भव्व-आणासुत-रणमल-णाम-णामंकिए सुकोसल-णिव्वाण-गमणं णाम चउत्थो संधी परिच्छेओ समत्तो॥ छ॥ संधि ४॥

प्रति देहली पंचायती मन्दिर लिपि सं० १६३२

सिरि पासणाह चरिउ (पार्श्व पुराण)

पं० रइधू

आदिभाग—

पणविवि सिरिपासहो, सिवउरि-वासहो,
विहुणिय पासहो गुण-भरिओ।
भवियहं सुह-कारणु, दुक्ख-णिवारणु,
पुणु आहासमि तहु चरिओ॥
पुणु रिसहणाहु पणविवि जिणिंदु,
भव-तम-णिण्णासणि जो दिणिंदु।
सिरि अजिउ वि दोस-कसायहारि,
संभउ वि जयत्तय-सोक्खकारि।

---

*— सिरि अयर वाल वंसहि पहाणु,
सिरि विधा संवइ (ई) गुण णिहाणु।
सुकौशल चरित १–४

अहिणंदणु जिणु पुणु णाण-चक्खु,
सिरि सुमइदेउ पोसिय-सपक्खु ।
पउमप्पहु पउमाऽऽलिंगि अंगु,
सिरि जिणु सुपासु पुणु विगय-संगु ।
चंदप्पहु जिणु चंदंसु वण्णि,
सिरि पुप्फयंतु तित्थयरु णाणि ।

सीयलु वि सील-वय-विहि-पवीणु,
सेयंसु वि सिव-पय-णिरय-लीणु ।
वासवेण महिउ जिणु वासुपुज्जु,
विमलुवि विमलयर गुणेहि पुज्जु ।
तित्थयरु अणंतु वि अंत मुक्कु,
अरि-कोह-माण-मय-मयल-मुक्कु ।

सिरिधम्मु वि धम्मामय-णिहाणु,
पुणु संति जिणेसरु जय-पहाणु ।
सिरिकुंथु वि णंत-चउक्कठाणु,
अरणाहु वि लोयालोय-जाणु ।
सिरि मल्लिणाहु तित्थयरु संतु,
मुणिसुव्वउ अइमय सिरि महंतु ।
तह णमि जिणेसु पावाहि मंतु,
पुणु रिट्ठणेमि राइमइ-कंतु ।

सिरि पासणाहु विग्घंत-यारि,
पुणु वड्ढमाणु दुग्गइ-णिवारि ।
तसु तित्थ पयट्टइ भरह खेत्ति,
पयडिय धम्माहम्म जुत्ति ।

वि सयल जिणेसर, हुय होसहि पर, ते सयल वि पणवेवि धरा
हुण जिणपर-वाणी लोय-पहाणी, णियमणि धारिवि परम्परा

पुणो वि गोयमो मुणी पणामिया जिणज्झुणी,
पयत्थ जेण भासिया सुसत्त जीव भासिया ।
अणुक्कमेण सासु जे, जई वि जाय सव्व ते,
णविवि णाण-धारया भवण्णवोहि-तारया ।
मुणिंदु तादं मंतई, णिराय-रोस मंजई,
जिणेस सुत्त भासओ गुणाण भूरिवासओ ।
सुचेयणाण लक्खओ तवेण सोसिओ परओ,
सहस्सकित्ति पट्टि ओ गुणग्गकित्ति णाम ओ
सुणासु पट्टि अ.यरो वि णाणमग्ग-णायरो,
हिमीसु गरुयणागरो अपत्तसिक्ख-दायरो ।

जसक्खकित्ति सुंदरो अकंपु णाय-मंदिरो,
सुसिस्सु तस्स जायओ समाणुखेण राइओ ।
सुखेमचंद णायरो जिओ ज्झिणि गओ मदो,
रिसीम मज्झ मज्झु ए मई विसाल दिंतु ते ।
महिवीढि पहाणउं णं गिरि राणउं, सुरहं वि मणि विंभउ जणिउं
कउ सोमहिं मंडिउ णंदहु पंडिउ, गोवायलु णामें भणिउं ॥२

जहि सहहि णिरंतर जिण-णिकेय,
पंडुरसुवण्णधयवसु समेय ।
सट्टाल-सतोरण अत्थ हम्म,
मणमुह संदायण णं सहम्म ।

चउहट्ट चच्च सहाम जत्थ,
वणिवर ववहरहि वि गहि पयत्थ ।
मग्गण ठाण कोलाहल समत्थ,
जहि जण णिवसहि परिपुण्ण अत्थ ।

जहि आवणम्मि णिय विविह भंड,
कणवट्टहिं कसियहिं अग्गखंड ।

जहि वसहिं महायण सुद्धबोह,
णिरुवंचिय पुण्ण-णाण सोह ।
जहिं णिवसहिं वर चउवण्ण लोय,
पुण्णेण पयासिय दिव्वभोय ।
ववहार-सार-संपण्ण सव्व,
जहिं सत्त-वसण मय-हीण भव्व ।
सोवण्णघूड मंडिय विसेस,
सिंगार भारकिय णिरवसेस ।

सोहग्ग-णिलय जिणधम्मसील,
जहि माणिणि माण महग्घ लील ।

जहि चारु चाट कुसुमाल दुट्ठ,
दुज्जण सखुद्द खल पिसुण धिट्ठ ।
णवि दीसहि कहिमि दुहिय दीण,
पेमाउरसु मग्गणि पवीण ।
जहि रेहहि हय-गय-दलिय-मग्ग,
तंबोल-रंगरंगिय-धरग्ग ।

जहि सव्व अणुव्वयहिं णिहाद,
दुग्गहु अवरु कह पहणाइ ।
मोयणयरेण णं उवहि जाय,
णं तोमर णिव पुण्णेण आय ।

ताइ विसोहिउ गोयायलक्खु,
णं भज्ज समाणउं णाहु दक्खु ।
हलाच्छि जसायरु णं रयणायरु, बुहयण जुहुण इंदउरु ।
त्थत्थहिं सोहिउ जणमणु मोहिउ, णं वर णायरहं एहु गुरु ।३
तहिं तोमर कुल सिरि रायहंसु,
गुणगण रयणायरु लद्धसंसु ।
अण्णायणाय णासण पवीणु,
पंचंग मंत सत्थहं पवीणु ।
अरि-राय-उरत्थलि-दिण्ण-दाहु,
समरंगणि पत्तउ विजय-लाहु ।
खग्गग्गि डहिय जें मिच्छ-वंसु,
जसऊरिय ऊरिय जे दिसंतु ।
णिव-पट्टालंकिय विउल भालु,
अतुलिय-बल-खल-कुल-पलय-कालु ।
सिरि णिवगणेस णंदणु पयंडु,
णं गोरक्खण विहिणउ वसंडु ।
सत्त गरज्ज भरदिण्ण खंधु,
सम्माण-दाण-तोसिय-सबंधु ।
करवाल पट्टि विप्फुरिय जीहु,
पव्वंत णिवइ-गय-दलण सीहु ।
अइ विसम साह सुहाम धामु,
सायरहु तीर संपत्तु णामु ।
छत्तीसाउह-पयडण-पसिद्ध,
साहस-सायरु जस-रिद्ध-रिद्धु ।
र-चल-संतासणु णिव-पय-सासणु णं सुरवरु वहु-धण-धणिउं
व जलहर खस्सरु पहुपहुई धरु, डोंगरिंदु णामें भणिउं ।।४
तहु पट्ट महाएवी पसिद्धु,
चंदादे णामा पणयरिद्ध ।
सयलंते उर मज्झहं पहाण,
णिय-पइ-मण-पोसण-सावहाण ।
तहु णंदणु णिरुवम गुण-णिहाणु,
तेयग्गलु णं पचक्खु भाणु ।
णं णवउ जसंकुरु पुहमि जाउ,
णं जय-सिरीए पयडियउ भाउ ।
सिरि कित्तिसिंधु णामें गरिट्ठु,
णं चंदु कलायरु जय मणिट्ठु ।
सिरि डूंगरसीह णरिंद रज्जि,
वणियरु णिवसइ पुणु वहु दु सज्जि ।
दुक्खिय-जण-पोसणु गुण-णिहाणु,
जो अयरवाल-कुल-कमल-भाणु ।
मिच्छत्त-वसण-वासण-विरत्तु,
जिण सत्थ णिग्गंथहं पायभत्तु ।
सिरि साहु पहुणुजि पहसियासु,
तहु णंदणु णिरुवम गुणणिवासु ।
सिरि खेमसीह णामेण साहु,
जिण धम्मोवरि जें बद्ध-गाहु ।
जिणचरणोदएण वि जो पवित्तु,
आयम-रस-रत्तउ जासु चित्तु ।
उद्धरिउ चउव्विह संघ भारु,
आयरिउ वि सावय चरिउ चारु ।
रिसि दाणवंतु णं गंध-हत्थि,
वियरेइ णिच्च जो धम्म-पंथि ।
सम्मत्त-रयणलंकिय सरीरु,
कणयायलुव्व णिक्कंपु धीरु ।
सुह-परियण-कइरव-वण-हिमंसु,
उद्धरिउ पुरण पालहु जि वंसु ।
धण-कण कंचण-संपुण्णु संतु,
पंडियह वि पंडिउ गुण-महंतु ।
दुहियण-दुह-णासणु वुह-कुल-सासणु जिण-सासण-रहधुर-धरणु
त्रिजालच्छीधरु रूवेण सरु अहणिसु-किय-विह उद्धरणु ।।५
तहु पणयणि पणय णिबद्धदेह,
णामेण धणोवइ सीलगेह ।
सुर सिंधुरगइ पायडिय लील,
परिवारहु पोसण सुद्ध सील ।
णर रयणहं णं उप्पत्ति खाणि,
गय-हंसिणीव कलयंठि-वाणि ।
सोहग्ग-रूव चेल्लणि व दिट्ठ,
सिरि रामहु जिह पुणु सीय सिट्ठ ।
तहिं उवरि उवण्णा रयण चारि,
णं णंत चउक्क सरूव धारि ।
तह मज्झि पढमु वियसिय सुवत्तु,
लक्खणं लक्खंकिउ वसण-चत्तु ।
अउलियसाहु सहसेक्क-गेहु,
सिरि सहसराजु णामें सुणेहु ।
विण्णाण-कुसलु वीयउ सुपुत्तु,
जो सुणइ जिणेस-भणिउं सुत्तु ।

सुपवीणराय वावार-कज्जि,
गंभीरु जणायरु बहु-गुणज्जि ।
पइराजु पहायरु पुहमियाइ,
जो णिव मणु रंजइ विविह भाइ ।
धयणु वि तीयउ सिरि-देव-भत्तु,
गिह-भार-धुरंधरु कमल वत्तु ।
सिरि देवसीहु देवावयारु,
जो करइ णिरुव उवयारु सारु ।
चउयउ चंदणु पुणु कुलु पयासु,
अवगमिय णिहिल-विज्जाविलासु ।
जिण समयामय-रस-तित्त चित्तु,
सिरि होलिवम्मु णामें पवित्तु ।
एमहिं चहुं सहियउ गुणगण अहियउ खेउंसाहु जणायरु ।
णाणाबुह विलसइ जइंयण पोसइ णिय-कुल-कमल दियायरु

अण्णहिं दिणि णायम सत्थदक्खु,
मम्मत्त-रयणलंकिय समक्खु ।
गउ जिण-हरि खेउं साहु माहु,
भावें वंदिउ तहिं णेमिणाहु ।
पुणु पाल्हवंभु पणविउ तेण,
सिद्धय भाव भाविय मणेण ।
पुणु तहिं दिट्ठउ सरसइ-णिकेउ,
रइधू पंडिउ पयडिय विवेउ ।
तेण वि संभासणु कियउ तासु,
सो गोट्ठि पयासइ बहु सुपासु ।
ता जिण अच्चण पसरिय सुवेण,
जंपिउ हरसिय मंत्री सुवेण ।
भो अयरवाल कुल कमलसूर,
पंडिय-जणाण मण-आसपूर ।
जिणधम्म-धुरंधर गुण-णिकेय,
जम-णमर-दिगंतर किय ममेय ।
सिरिपज्जणसाहु णंदण सुएहिं,
कल्लिकालु पयडु णिय-मणि मुणेहिं ।
दुज्जण चरियइं वि दोसणाहि,
वट्टंति पउर पुणु पुहइ माहिं ।
मइं सुयइ णाणि पुणु बहुगुणाहु,
पय णिव मणुग्गंं णामणाहु ।
गुरु मग्गु कुमग्गु सोमोहि भाग,
सिरि णामचरित्तहु जणण-सार ।

तहु वयण सुणेप्पिणु मणि-पुलएप्पिणु, जंपइ खेउं तासु पुणु ।
भो रइधू पंडिय सील अखंडिय, तुहु वि एक्कु महु वयणु सुणु

णिय गेहि उवण्णउ कप्प-रुक्खु,
तहु फलु को णउ वंछइ ससुक्खु ।
पुण्णेण पत्तु जइ कामधेणु,
को णिस्सारइ पुणु विणय-रेणु ।
तह पइ पुणु महु किउ मई पसाउ,
महु जम्मु सयलु भो अज्जु जाउ ।
तुहुं धण्णु जासु एरिसउ चित्तु,
कइयण-गुणु दुल्लहु जेण पत्तु ।
बहु जोणि भवंतारंत कालु,
भवि भमइ जीउ मोहेण वालु ।
कहमवि पावइ णउ मणुव जम्मु,
अह पावइ तो पयडइ कुकम्मु ।
बालत्तणि असइ अभक्खु-भक्खु,
रंगइ महि महइ अणंत दुक्खु ।
कहमवि पावइ तारुण्ण भाउ,
वम्मह-वसेण सेवेइ पाउ ।
ण वियाणइं जुत्ताजुत्त-भेउ,
णउ सत्थु ण मुरु अरहंतु देउ ।
धावइ दहदिहि दविणत्थि णिरणु,
णउ भावइ चेयणु परहु-भिण्णु ।
लोहें वद्दहु आलियउ रसंतु,
पर-धणु-पर-जुवइं मणि सरंतु ।
मिच्छत्तु विसम-रस-पाण-मत्तु,
णउ कहमवि जिणवर धम्मु पत्तु ।
अहवा विपत्तु णउ मुणइं तत्तु,
विहलउ हारइ पुणु णाय रत्तु ।
वयणुव्व दुलहु माणवहु जम्मु,
मह पुण्णें मइं लद्धउ सकम्मु ।
भो पंडिय सिरि णामहु चरित्तु,
पभणहिं हउं सुणमिसु एयचित्तु ।
ते भव्वजि सुणहिं जिणिंद-वाणि,
मंदहु किरि मा णित्ति ठाणि ।

इय साहुहु वयणें णियमियणयणें पंडिएण हरिसेप्पिणु ।
तें कव्व रसायणु सुहमयदायणु पारद्धउ मणु देप्पिणु ॥८॥

अन्तिमभाग :—

सिरि अयरवाल-कुल-लद्ध-संसु,
एंडिल गोत्तें वरणाइं हंसु ।
जोइणिपुरम्मि णिवसंतु आसि,
सिरि देदासाहु स पुण्ण-रासि ।
पुणु तासु अणुक्कमि लच्छिकोसु,
महियाणामें जण जणिय-तोसु ।
तहु णंदणु पैरूपावहीणु,
पुणु तासु तणुब्भउ धम्मि लीणु ।
अच्चियति जिणवर चरणारविंद,
मह दाणें पोसिय वंदिविंद ।
णामेण पुण्णपालु जि पउत्तु,
चाहडिय णाम पुणु तहु कलत्तु ।
तहु पुत्तु विणिण चंदक सोह,
जिणधम्म धुरंधर पयड गोह ।
तह गरुवउ साहु जा पउत्तु,
नाथू साहु वि पुणु तासु पुत्तु ।
नाथूसाहुहु सुव विणिण हूव,
झाझणु वीधा गुणसारभूव ।
बीयउ जि पुण्णपालहु जि पुत्तु,
जायउ भावियउ जिणिंद सुत्तु ।
जिणवरपयभत्तउ गिह-वयरत्तउ, जसु जसु वंदियणहिं गुणिउं ।
परियण-सुह-दायणु गुणसय भायणु पजणसाहु णामें भणिउं
तहु पिय वील्ही णामं गुणायर,
पियमयम चित्तहो णिच्च सुहायर ।
ताहि तणुब्भउ महि विक्खावउं,
अहणिसु पवयण-गुण-अणुरायउ ।
चउविह-संघ-भार-धुर-धारिउ,
जें मिच्छत्त-महागउ मोडिउ ।
संसारहु संसरणे भीयउ,
दाणेणं सेयंसु जि बीयउ ।
खेउं णाम साहु विक्खायउ,
देव-सत्थ-गुरु-पय-अणुरायउ ।
तासु धणो णामा पियवइं मइं,
जिम राहवहु सीय वम्महुं रइं ।
णंदण चारि तासु जय सारा,
संजाया गुणियणहं पियारा ।
ते चत्तारि वि चहु दिसि मंडण,
जाचय जण-मण-रोस विहंडण ।
सहसराजु पढमउ तहं सच्चइ,
जो संघवी गिरनारहु वुच्चई ।
स-रतनपालही णामा तहु पिय,
उधरण सुवं उच्छंगिरमियमिय ।
पहाराजु जि बीयउ ससिकर-पहु,
दाण भोय उवमिज्जइ सो कहु ।
मयणपालही तहु पिय धरणी,
सोणपाल णंदणेण सउण्णी ।
तीउ पुत्तु पुणु रइपति भासिउ,
गिह-भर-भारु वहणु जसु भासिउ ।
कोडी णामा तासु जि भामिणि,
अहणिसु सधव-चित्तमण-रामिणि ।
ताहि पुत्तु लोहगु णं ससहरु,
वंजण लक्खण चच्चिव मणहरु ।
चउथउ सुउ विज्जारस भरियउ,
होलिवम्मु णामें विप्फुरियउ ।
तहु कलत्त सरसुत्ती णामा,
दाण सील सुंदर अहिरामा ।
तहु पुत्तु गुणायरु णाउं कलायरु, चंदपालु णामेण सिसु ।
इहु वंसु पवित्तउ जिण-पय-भत्तउ, णंदउ महि-धण कण-वरिसु
एयहं सव्वहं जो मज्झि सारु,
खेऊं सुसाहु कण्णावयारु ।
तें काराविउ पासहु पुराणु,
भव-तम-णिण्णासणु णाइं भाणु ।
कइणा विरएप्पिणु सुह मणेण
रइधू णामेण वियक्खणेण ।
संपुण्ण करेप्पिणु पयड अत्थु,
खेऊंसाहुहु अप्पियउ सत्थु ।
बहु विणए त गिण्हियउ तेण,
तक्खणि आणंदिउ णिय-मणेण
दीवंतर-आगय- विविह-वत्थु,
पहिराविव अइसोहा पसत्थु ।
आहरणहिं मंडिउ पुणु पवित्तु,
इच्छादाणें रंजियउ चित्तु ।
संतुट्ठउ पंडिउ णिय-मणंमि,
आसीवाउ वि दिण्णउ खणम्मि ।

अविरल-जल-धारहिं वरसइ णिवारहिं तप्पउ मेइणि णिच्चपरा
कलि-मल-दुह णिज्जहु मंगल णिज्जहु पास-पसाए धरि जि धरा

णिरवद्दव णिवसउ सयलु देसु,
पय पालउ णंदउ पुणु णरेसु।
जिण-सासणु णंदउ दोस-मुक्कु,
मुणिगणु णंदउ तहिं विसय-चुक्कु।
णंदहु सावय-यण गलिय-गाव,
जो णिसुणहिं जीवाजीव भाव।
सिरि खेऊंसाहु सुधम्मि रत्तु,
णंदणहिं समउ णंदउ बहुत्तु।
णंदउ महि णिरमिय असुह कम्मु,
जो जीव दयावरु परम धम्मु।
महि णंदउ पास पुराणु एहु,
सज्जण जणाह जि जणिउ णेहु।
कंचण महिहरु जा ससि दिणिंदु,
जा पुणु महियलि कुल महिं हरिंदु।
जा सक्क सग्गि सुरसिय समिद्दु,
ता साय पवट्टउ गंथ सिद्दु।

मच्छर-मय-हीणउं सण-पवीणउं पंडिय-मण-णंदउ मुणिह।
पर-गुण-गहणायरु वय-णियमायरु, जिणपयपयरह णाविय सिरु

इय सिरि पासणाह-पुराणे आयम-अत्थ-सुणिहाणे सिरि-पंडिय-रयधू-विरइए सिरि महाभव्व-खेऊंसाहु णामंकिए सिरिपासजिण-पंचकल्लाण-वण्णणो तहेव दाणा-वंस-णिद्देसो णाम सत्तमो संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ॥छ॥ संधि ७ ॥छ॥

प्रति तेरापन्थी बड़ा मन्दिर जयपुर, लिपि सं० १६५५

३८—पउमचरिउ (पद्म पुराण) कवि रइधू

आदिभागः—

पर णय-विंद्संणु मुणिसुव्वय जिणु,
पणविवि बहु-गुण-गण-भरिउ।
सिरिरामहो केरउ सुक्ख जणेरउ,
सहु-लक्खण पयडमि चरिउ॥
सिरि णाहणाह-मण्णणु इद्दु,
पणवेप्पिणु लोयत्तय-वरिट्ठु।
पुणु ससि-पहु धम्मामय मयंतु,
भव्वयणहं भयहरु संतु॥
तहिं मंडिवि जीव-दया-पहाणु,
जि भासिउ महियलि विमल-णाणु।
पुणु वड्ढमाणु-चरमिल्ल देउ,
सो सव्वहं जीवहं करय-सेउ॥
पुणु ताहं वाणि उम्माए विचित्त,
लोयत्तय-गामिणि वरण दित्ति।
पुणु इंदभूइ गणहरु णवेवि,
सोधम्मु वि जंबूसामि तेवि॥
पुणु ताहं अणुक्कमि देवसेणु,
इंदिय-भुअंग-णिद्दलण-वेणु।
पुणु विमलसेणु तह धम्मसेणु,
सिरिभावसेणु गय-माव-रेणु॥
तह सहसकित्ति आयम-पहाणु,
तहिं पट्ट-णिसण्णउ गुण-णिहाणु।
गच्छह णायकु सिरि गुणमुणिंदु,
सद्दत्थ-पयासणु विणय-कंदु॥

तहु पट्ट जईसरु णिहय-रईसरु जसकित्ति मुणियण-तिलउ।
तह सिस्स पहायउं वय-तय-ठाणउं खेमचंदु आयम-णिलउ॥

गोवग्गिरि णामें गढु पहाणु,
णं विहिणा णिम्मिउ रयण-ठाणु।
अइ उच्च धवलु णं हिमगिरिंदु,
जहिं जम्मु समिच्छइ मणि सुरिंदु॥
तहिं डुंगरिंदु णामेण राउ,
अरिगण-सिरग्गि-संदिण्ण-घाउ।
तुंवर-वर-वंसहं जो दिणिंदु,
जि पयलहं मिच्छहं खयिउ कंदु॥
तह पट्ट धरणि णं रूव-लच्छि,
णामें चंदादे अइ-सुदच्छि।
तहु सुउ कित्तिसिंघु जि गुणिल्लु,
जो रायणीइ-आयण-दइल्लु॥
णिउ-णाय मग्गु पच्चक्ख मारु,
पज्जुण्णु व महियलि कुमर सारु।
तहिं रज्जि वणीमरु सुद्धचित्तु,
संचियउ जेण जिणधम्म-वित्तु॥
जसु चित्तु सु-पयहं दाण-रत्तु,
जिणणाह-पय जो णिच्च-भत्तु।
भायालपय अइ-णिम्मिहि लीणु,
काउस्सग्गें सम्मु किंयउ खीणु॥
आयमु-पुराण-पढणहं मणगु,
दिय-मणुय-जम्मु जि किउ कयत्थु।

जो अयरवाल-वंसहं मयंकु,
विहु-पक्ख-सुद्ध सो णेय वंकु ॥
वाटूसाहुहु णंदणु पवीणु,
णिय-जणणिहि-लोइय-विणय-लीणु ।
जिण-सासणु-भत्तु कसाय-खीणु,
हरसीहु साहु उद्धरिय-दीणु ॥
तहो भज्जा गुण-गण-सज्जा घोचंदही णामें भणिया ।
मुणिदाण-पियंकर वय-णियमायर णं पविति रूवहो तणिया॥ २
वीई तिय वील्हाही गुणंग,
अइसील-विसुद्ध वि णाय-गंग ।
जेठिहि णंदणु सिरि करमसीहु,
गिह-भारु धुरंधरु बाहु दीहु ॥
मुणिसह णिवसह जसु पढम लीह,
जाचय-जणाण पूरिय-समीह ॥
तसु भज्जा जौणाही पवीण,
गुरुदेव सत्थ-पय-भत्ति लीण ।
तहु वहणीऽणंतमती पहाण,
मह-सील-लीण गिह-लद्ध-माण ॥
चउविह दाणें पोसिय-सुपत्त,
अह-णिसु जिणवर-कम-कमल-भत्तु
लहुईहिं पुत्ति रूवें सुतारु,
णामेण तनो नेहें सुसारु ॥
जिण-चरण-कमल णाविय-सरीरु,
वय-तरु-णिव्वाहण-धीरु वीरु ।
अण्णहिं वासरि चिंतियउ तेण,
हरसीह णाम इच्छियं सिवेण ॥
किं किज्जइ वित्तें विहिय ममत्तें जेण ण दीणु भरिज्जइ ।
किं तेण वि काएं पयडियराएं वय-तरु जिण ण धरिज्जइ ॥३
णारभउ पाविय करणीउ एम,
भवदहि णिवडणु णो होइ जेम ।
चिंतिव्वउ दंसणु णाणु इट्ठु,
चरणु वि पुणु लोयत्तय-वरिट्ठु ॥
धम्मु जि दहलक्खणु लोयसारु,
सेविव्वउ एत्थु भवण्णतारु ।
विणु धम्में जीउ ण सुक्खि थाइ.
तं विणु कर चडिउ वि सयलु जाइ ॥
इय चिंतिवि पुणु गउ साहु तत्थ,
अच्छइ पंडिउ जिणगेह जत्थ ।
बहु विणएं पुणु विण्णत्तु तेण,
कर आरोप्पेविणु णिय-सिरेण ॥
भो रइधू पंडिय गुण-णिहाणु,
पोमावइ-वर-वंसहं पहाणु ।
सिरिपाल बम्ह आयरिय सीस,
महु वयणु सुणहि भो बुह-गिरीस ॥
सोढल-णिमित्त णेमिहु पुराणु,
विरयउ जहं कइ-जण-विहिय-माणु ।
तहं रामचरित्तु वि महु भणेहिं,
लक्खण समेउ इउ मणि मुणेहिं ॥
महु साणराउ तहु मित्त जेण
विण्णत्ति मज्झु अवहारि तेण ।
महु णामु लिहहि चंदहो वि माणि,
इय वयणु सुद्ध णिय चित्ति ठाणु ॥
इय णिसुणिवि वयणइं, जंपिय सवणइं पंडिएण ता उत्तउ ।
हो हो किं वुत्तउ एत्थुं अजुत्तउ हउं गिह कम्में गुत्तउ ॥ ४ ॥
घडएण मवइ को उवहि-तोउ,
को फणि-सिर मणि पयडइ विणोउ ।
पंचाणण-मुहि को खिवइ हत्थु,
विणु सुत्तें महि को रयइ वत्थु ॥
विणु बुद्धिए तहं कव्वहं पसारु,
विरएप्पिणु गच्छमि केम पारु ।
इय सुणिवि भणइं हरसीहु साहु,
पावियउ जेण महि धम्म लाहु ॥
तुहं कव्वु धुरंधरु दोसहारि,
सत्थत्थ-कुसलु बहु-विणय-धारि ।
करि कव्वु चिंत परिहरहिं मित्त,
तुह मुहिं णिवसइ सरसइ पवित्त ॥
तं वयणु सुणिवि भणियउ तेण,
पारद्धु सत्थु पुणु पंडिएण ।
तह विहु दुज्जण महु भउ करंति,
घूयड जह दुमणिय भय उवंति ॥
जहं काय-विंद मडयहु सरीरु,
सेयंति पेय-वणि लोय भीरु ।
तहं अवगुणु गुणु ते पाव लिंति,
णिय पयडि सहाउ जि पायडंति ॥
सज्जण अब्भत्थमि हंउ सतुम्ह,
एत्थेव खमेव्वउ दोसु अम्ह ।

इहु तुम्ह पसाएं करमि कव्वु,
हउं मइ-विहीणु सोहेहु सव्वु ॥

जसु मइ इह जोत्तिय सो पुणु तेत्तिय पयडउ दोसु ण अत्थि इह णिय घणु अणुमारें सहु परिवारें णवसाउत्ति सो करउ णिहा ॥२

× × ×

इय पउमचरिय-पुराणे बुहयणविंदेहिं लद्ध-सम्माणे सिरिपंडिय-रइधू विरइए पाइय-बंधेण अत्थि तिहि-सहिए सिरि हरिसीहु साहु-कंठ-कंठाहरणे बहुय-लोय-सुह-सिद्धि-करणे वंस-णिरूवण-रावण उप्पत्ति-वण्णणो णाम पढमो संधि-परिच्छेओ समत्तो ॥

चरम भाग :—

भव्वहं गुण णंदउ किउ सुकम्मु,
पुरु णंदउ जिणवर-भणिउ धम्मु ।
राउ वि णंदउ सुहि पय समाणु,
णंदउ गोवगिरि अचलु ठाणु ॥
सावय जणु णंदउ धम्म-लीणु,
जिणवाणी आयण्णण पवीणु ।
देसु वि णिरवद्दउ सुहि-पसेउ,
घरि घरि पविज्जउ आइदेउ ॥
णंदउ पुणु हरसीसाहु एत्थु,
जि भाविउ चेयण-गुण पयत्थु ।
सई संगिमतु जसु फुरइ चित्ति,
कलिकाल-धरिय जि भाण सत्ति ॥
सिरि रामचरित्तु वि जेण एहु,
काराविउ सव्वहं जणिय णेहु ।
तहु णंदणु णामें करमसीहु,
मिच्छत्त महागय-दलण-सीहु ॥
सो पुणु णंदउ जिण-चलण-भत्तु,
जो राय महायणि माणु पत्तु ।
सिरि पोमावइ परवाल वंसु,
णंदउ हरिसिंघु सघत्री जासु संसु ॥
वाद्दोल माहणसिंह चिरु णंदउ
इह रइधू कइ तीयउ विधरा ।
मोलिक्क समाणउ कल गुण जाणउ
णंदउ महियलि सोवि परा ॥ १७ ॥

इय पउमचरिय-पुराणे बुहयण-विंदेहिं लद्ध-सम्माणे सिरि पंडिय-रइधू-विरइए पाइय-बंधेण अत्थ-तिहि-सहिए सिरिहरिसीह-साहु-कंठ कंठाहरणे बहुयलोय-सुह-सिद्धिकरणे सिरिराम-णिव्वाण-गमणो णाम एकादसमो संधि परिच्छेओ समत्तो ॥११॥

प्रति आमेर भंडार, लिपि सं० १५५१

(स० १५४६ की लिखित नया मन्दिर धर्मपुराकी अपूर्ण प्रतिसे संशोधित)

३६—मेहेसर चरिउ
(मेघेश्वर चरित) कवि रइधू

आदिभाग—

सिरि रिसह जिणिंदहु सुवसय इंदहु भवतम चंदहु गणहरहु ।
पय-जुयलु णवेप्पिणु चित्ति णिहणेप्पिणु चरिउ भणमि मेहेसरहु

जय रिसहणाह भव-तिमिर-सूर,
जय णासिय णासिय कुमइ दूर ।
जय करण हरण गणहरि पणाव,
जय ति-जय-सुहंकर सुद्धभाव ॥
जय तियस-मउड-मणि-घिट्ठ-पाय,
जय णाइ जिणेसर वीयराय ।
जय णिम्मल केवल णाण णाह,
जय अट्ठदह दोस-विगय पवाह ॥
जय भासिय तच्चं रूवसार,
जय अण्णोवहि णिरु पत्त पार ।
जय णाणमरि वह हिम-गिरिंद,
जय परम निरामय महि अणिंद ॥
जह निहय पमाय भयंत संत,
जय मुत्ति-रमणि-रंजण-सुकंत ।
जय धम्मामय मन्नि सुजस सोह,
जय भव्वहं दुग्गइ-पह-निरोह ॥
पुणु सिरि वीर जिणिंदु पणविवि भणिए सुद्धउ ।
सम्मइंसणु सारु जासु तिरयें मइ लद्धउ ॥१॥
साम-थाय-मुह-कमल-हसंती,
वे पमाण-णयणहिं पेच्छंती ।
पवयण वयण भणइ गिरि कोमल,
णाणा सद्द दसण-पह-णिम्मल ॥
वे उवओय करण जुगु संठिउ,
णासा वंस सुचरित्तु परिट्ठिउ ।
रेहा तिण्णइ सह गत्त कंदलि,
वे णय उरह सहहि उरत्थलि ।
वायरणंगु उयरु णिरु दुग्गमु,
णाहि पत्य गंभीर मणोरमु ।

दुविह छंद भुयदंड रवरणी,
जिण मय सुत्त सुवत्थहिं छण्णी ॥
सुकइ पसारु णियंबु विसालउ,
अंग पुव्वओ तूसु रमालउ।
संधि-विहत्ति-पयहि णिरु गच्छइ,
रस णव णट्टभाव सु पयच्छइ ॥
पंचणाण आहरणहिं लंकिय,
मिच्छावाइहि कहि व ण पंकिय।
विमल महाजस पसर विहूसिय,
जम्म-जरा-मरणत्ति अदूसिय ॥
सा होउ महुप्परि तुट्ठमणा, कुमइ-पडल णिण्णासणि।
तिल्लोय पयासणि णाणधरा. रिसहहु वयण णिवासिणि ॥२
पुणु सिरि इंदभूइ गणसारउ,
पणविवि जिण-णाहहु गिरिंधारउ।
तासु अणुक्कमेण पुणि पावणु,
जायउ वहु सीसु वि ण उ रावणु ॥
णं सरसइ सुरसरि रयणायरु,
सत्थ-अत्थ-सु-परिक्खण-णायरु।
सिरि गुणकित्ति णामु जइ-पुंगमु,
तउ तवेइ जो दुविहु असंगमु ॥
पुणु तहु पट्टि पवर जस-भायणु,
सिरि जसकित्ति भव्व-सुह-दायणु।
तहु पय पंकयाइं पणमंतउ,
जा वुह णिवसइ जिणपयभत्तउ ॥
ता रिसिणा सो भणिउ वियोएं,
हत्थुणिए वि सुमहु तेजोएं।
भो रइधू पंडिय सुसुहाएं,
होसि वियक्खणु मज्झु पसाएं।
इय भणेवि मंतक्खरु दिण्णउ,
तेणाराहिउ तं जि अच्छिण्णउ ॥
चिर पुण्णें कइत्त गुण सिद्धउ,
सुगुरु पसाएं हुवउ पसिद्धउ।
एत्थत्थि वि सुंदरु रयणीहि भूयलि पायडु सुक्खयरु।
दे यट्टहु कुडुव अयलु णिरु गोपायलु णामें णयरु ॥३॥
णार रयणाहरु णं मयरहरु,
अरियण भयहरु णं वज्जहरु।
णं णाय कणाय कसवट्ट पहु,
णं पुहइ रमणि सिरि सेहरहु ॥
वण उववण छण्णउ णाइ भड्ड,
णयणहं रुहदातण णाइंणडु।
सोवण्ण रेखणइ जहिं सहए,
सज्जण वयणु व सा जलु वहए।
उत्तुंगु धवलु पायारु तसु,
णं तोमर णिव संताण जसु।
जहिं मणहरु रेहइ हट्ट पहु,
णीसेस वत्थु संचय जि वहु।
वर कणय रयण पह विप्फुरिउ,
णं महियलि सुरधणु वित्थरिउ।
जहिं जण णिवसहिं उवयार-रया,
धण-कण-परिपुण्ण-सधम्मसया।
तहिं राउ गुणायरु पवर जसु अरियण-कुल-संतावरु।
सिरिडूंगरिंदु णामें भणिऊ स-पयावें जिउ सहसयरु ॥४॥
णीइ तरंगिणि णावइ सायरु,
सयल-कलालउ ण वि दोसायरु।
वे पक्खुज्जलु णिय पय पालउ,
म्लिच्छ-णरिंद-वंस-खय-कालउ।
एयच्छत्तु रज्जु जि जो भुंजइ,
गुणियण विंदह दाणें रंजइ।
सयल-तेउराह णिरु सेवी,
पट्ट महिसि तहु चंदाएवी।
तहु णंदणु भूयलि विक्खायउ,
रयदाणें कलिकण्णु समायउ।
कित्तिसिंह णामेण गुणायरु,
तोमर-कुल-कमलायर भायरु।
सिरि डूंगरणिव रज्जि वणीसरु,
अत्थि दुहियजण-मण-चिंताहरु।
अयरवाल वंसं वर-भायरु,
दाण-पूय-वहुविहि-विहियायरु।
पजणु साहु जिणपय-भत्तिल्लउ,
पर-उवयार-गुणेण अमुल्लउ।
तहु णंदणु दमवल्ली सुर-तरु,
जें णिव्वाहिउ जिणसंघहु भरु।
अप्पा-पर सरुव-गुण-जाणणु,
कुणय-गइंद-विंद-पंचाणणु।
गुणमंडिय विग्गहु जस-लुद्धउ,
रयणत्तउ मणि भावइ सुद्धउ।

बुहयणहं विंदहं णिरु सम्माणइ,
पवयण--अत्थ सचित्ति पमाणइ ।
खेमसीहु णामेण पवित्तउ,
वीयराय-कम-कमलहिं भत्तउ ।

घत्ता—
तहु भज्जा सीलगुणेण जुया,सुद्ध-सलक्खण ललिय-गिरा ।
जाणइ वसणाहहु भत्तियरा पयडधणोरु णामेण वरा ॥५॥

णंदणु चारि ताह सजाया,
दाण चार ण महि विक्खाया ।
पढमु ताहिं परिणारि सहोयरु,
विणयकिउ णियकुलगिह-सेहरु ।
गिरणारहु संघाहिउ बंधरु,
सहसराजु णामें णर-सिंधुरु ।
पुणु बीयउ भाणदिय सज्जणु,
किउ ववमाएं जेण धणज्जणु ।
जाणि विबुद्धि विसालु णरेंदि (दे)
थप्पिउ अप्पपासि अणिदि (दें) ।
पहराजु जि वि णामेण पसिद्धउ,
जो जिणवयणु य मण्णइ सुद्धउ ।
पुणु तीयउ णंदणु गुणमंदिरु,
सज्जण-जणमण-णयणाणंदिरु ।
बुहयण-तरुवर-पोसण-कंधरु,
रइ(ह)पति-गिहभर-धरण-धुरंधरु ।
विज्जा कोसुदाधु अइ दुल्लहु,
तुरियउ सयल-बंधव-जण-वल्लहु ।
जे अवगमिउ सुयंगु अभंगउ,
बुहचूडामणि विणय वगंगउ ।
होलू साहू णिहिल-गुण-भायणु,
जो सेवइ णिय-धम्म-रसायणु ।

घत्ता—
एयहिं चउसुर्णाहं पसाहियउ खेऊ साहू पसण्ण-मणु
सुहु भुंजइ रंजइ परियणहं विलसइ धम्म णिम्रोय घणु ॥६॥

अण्णहिं दिणि सो पुणु गिहि थक्कउ,
णिय-मणि चिंतइ साहु गुरुक्कउ ।
पाविवि वित्तु पवरु जो माणउ,
धम्मि ण सेवइ सो जि अयाणउ ।
सो अप्पें अप्पाणउ वंचइ,
जो धणु महियलि सोहें संचइ ।
दाणु ण देइ ण मिट्ठउ भक्खइ,
णिय-पाणहु स भूमि णिक्खिव्वइ ।
घिप्पइ परियणहिं वलि मंडइ,
लेइ चोरु अह राणउ दंडइ ।
डहइ अग्गि अहठाणु जि मुल्लइ,
इह अत्थहु गइ कहव ण चल्लइ ।
इ एउ जाणेवि सहिउ णिरु किज्जइ,
पत्तहु दाणु णिरंतरु दिज्जइ ।
सइं विढत्तु णिय सत्थें णिज्जइ,
किं पि ण परयलि तं पाविज्जइ ।
इम चिंति वि जिणमंदिर पत्तउ,
तहिं बुह दिट्ठउ वियसिय वत्तउ ।
संघवीय हरसिंघउ णंदणु,
मिच्छत्तावलि वल्लि-णिकंदणु ।
भणइं साहु भो सुणि सुय-सायर,
विमलचित्त गुरुभत्ति-कयायर ।
किं णिय कालु गमहि अविणोएं,
भज्झु वयणु अवहारहिं मोए

घत्ता—
करिकव्वु गुणायर भव्वणिरु मेहेसर रायहु चरिउ ।
जि कलिमलु खिज्जइ सुहु हवइ जो धम्मामय विप्फुरिउ ॥७॥

इय णिसुणिवि जंपियउ गुणालें,
कइणा विणय गुणेण रसालें ।
भो सहंसण भणि रयणायर,
पुण्णपाल कुलकमल-दिवायर ।
जिणधम्मालंकिय णिम्मच्छर,
बुहयण-जण-मण-रंजण-कोच्छर ।
सयल-जीव-रक्खण सुदयावर,
णिसुणहि खेऊसाहु सुहंकर ।
पचम-काल-पहाउ गुरुक्कउ,
धम्ममग्गि जणु अह-णिसु वंकउ ।
घरि घरि दुज्जणु जणु अकयायरु,
विरलउ दीसइ कुवि सज्जण णरु ।
हउं पुणु छंदु विहत्ति ण जाणउ,
वायरणोवहि-तरणि अयाणउं ।
सद्दामद्दहु भेउ ण बुज्झमि,
गुणमत्ता भेउ ण मणि सुज्झमि ।

पणविवि सद्दंसणु दुग्गय-भंसणु विहुणिय-जम्म-जरा-मरणु ॥
× × × ×

वीयराय-मुह-कमलहु णिग्गय,
बहु-वण्णंकिय अत्थ-समग्गय ।
छंदालंकारेहिं रवण्णी,
सा भारइ महु होइ पसण्णी ।
संसारोवहि-पोय-समाणा,
विगय-दोस जणि गुणिय-पमाणा ।
मइ-सुइ-ओहिण-णाण-दिवायर,
तस-थावर-सत्ताह-दयावर ।
जे हुय गोयम पमुह भंडारा,
ते पणवेप्पिणु तिहुवण-सारा ।
तह पुणु सुतव-ताव-तवियंगो,
भव्व-कमल-संवोह-पयंगो ।
णिच्चोंब्भासिय पवयण-अंगो,
वंदिवि सिरिजसकित्ति असंगो ।
तासु पसाए कव्वु पयासमि,
आसि विहिउ कलि-मलु णिण्णासमि ।

घत्ता—

एत्थु जि भारहि खेत्ति जणि पसिद्धु णं इंदउरु ।
गोपायलु णामेण तं जइ वणइ तियस्स गुरु ॥२॥

जहिं उववणाइ (उववणाइं) रय-परिमलाइं,
कइ कलहाइं मुहखंडिय फलाइं ।
जहिं सरवराइ णिम्मल जलाइँ,
पोसिय-मराल-सारस-कुलाइं ।
जहिं दीहयाउ बहु जलयराउ,
जल-कीलिय वर णिव णरवराउ ।
जहिं मंदिराउ बहु भोमयाइं,
छुह-पह दित्तीए रहिवोमयाइं ।
जहिं आवणाइं मणि सामलाइं,
वित्थरिय-रयण-पुंजुज्जलाइं ।
कत्थ वि वणि-कुल विक्किय स-वत्थ,
मूइव सह विक्कय सण्ण हत्थ ।
सिहिं तावें सुज्झइ कुणइ केम,
मह तव-संतत्ता भव्वु जेम ।
जहिं पुण्ण पऊरिय पण्णसाल,
णामर-णरेहिं भूसिय विसाल ।
जिण सिव विवुज्जल णियय सम्म,
अंधग्ग-धयावलि-रुद्ध-धम्म ।
संतिक्क एह चग महिमा स-सोह,
सावय जणाह पयणिय-पवोह ।
चउसाल णयं तोरण सहार,
जहिं सहहिं सुब्भ सोहण विहार ।

घत्ता—

जह जिणहरि जिणपडिम चंदकंति-विद्दुम-घडिया ।
सोहंति णिच्च बुहयण-महिय भव्वहं सिव-संपय-घडिया ॥३

जहिं घरि घरि गुम्मइ वर मंगलु,
जहिं घरि घरि अच्चिय अंचिज्जइ गयमलु ।
जहिं घरि घरि पोसिज्जइ दुत्थिउ,
जहिं घरि घरि जणु दीसइ मुदियउ ।
जहिं घरि घरि पविहिय सम्माणइं,
पत्त जि भेयहिं दिज्जहि दाणइं ।
जहिं घरि घरि दंसणु गाइज्जइ,
घरि घरि सद्दंसणु वण्णिज्जइ ।
घरि घरि सद्दंसणु सुमियारउ,
घरि घरि जणु सद्दंसणु धारउ ।
जहिं णारीय सुसील अखंडिउ,
घरि घरि सद्दंसणु गुण-मंडिउ ।
अविहव-सुहय णाह-विवज्जउ,
वाल विद्ध जे तरुणि सलज्जिउ ।
तेहिं जि सयलहिं दोस-अच्छिण्णउ,
सम्मद्दंसणु दिढु पडिवण्णउ ।
डिंभ जि दंसणु दंसणु घोसहिं,
चच्चरि चच्चरि वुह संतोसहिं ।

घत्ता—

तव-ताव-पवित्ता विगय-रया पवयणत्थमणि गण-उवहि ।
दोविह-संजम-भर-धरण-खमा रिसिवर जिणहरि वसहिं जहि

जिणवर-सासण-सरुह-पयंग,
भवियण-कइरव-वण-सिय-पयंग ।
मिच्छत्त-महद्दिय-वज्जदंड,
परिपालिय-दुद्धर-वय-अखंड ।
णिच्छम्म धम्म पडउण अमंद,
भव्वेहिं णिच्च पय-कमल-चंद ।
एरिस जइवर जहिं णिच्च ठंति,
सम्माइ झाण कम्मइ हणंति ।
तहिं डुंगरेंदु णामें णरिंदु,
तोमरकुल कमलायर-दिणिंदु ।

मुणिय इणं भुयवल पमाणु,
समरंगणि अण्णु ण तहु समाणु ।
णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ,
... .
साहण समुद्दु जयसिरि-णिवासु,
जस ऊपरि पउरिय दह दिसासु ।
करवाल-णिहाएं अरि-कवालु,
तोडिवि घल्लिउ णं कमल-णालु ।
दुव्विच्छु मिच्छ रणरंगु मल्लु,
अरियण-कामिणि-मण दिण्णु सल्लु ।
सपयावें जिय णं तरणि जेण,
जसु रज्जि पयावट्टिय सिवेण ।

घत्ता—
उव्वासिय परमंडलु रामचंद संका जसु ।
छलवल साम छहुणो इणियइ हो कवणु राउ उवमिय तसु ॥५

तहु रज्जि महायण वहु घणड्ढ,
गुरु-देव-सत्थ विणएं वियड्ढ ।
जहिं संति वियक्खण मणुव सव्व,
धम्माणुरत्त वर गलिय-गव्व ।
जहिं सत्त-वसण-चुय-सावयाइं,
णिवसंहिं पालिय दो-दह-वयाइं ।
सम्मइंसण मण (णि) भूसियंग,
णिच्चोब्भासिय-पवयण-सुयंग ।
दारापेखण विहि णिच्च लीण,
जिण-महिम-महुच्छव णिरु पवीण ।
चेयण-गुण अप्पारुह पवित्त,
जिण-सुत्त-रसायण सवणतित्त ।
पंचमु दुस्समु अइ विसम कालु
णिद्दलिवि तुरिउ पविहिउ रसालु ।
धम्मज्झाणें जे कालु लिंति,
णवयारमंतु अह-णिसु गुणंति ।
संसार-महण्णव-वडण-भीम,
णिस्संक-पमुह-गुण-वण्णणीय ।
जहिं णारीयण दिढ-सील-जुत्त,
दाणें पोसिय णिउ तिविह पत्त ।
तियमिसेण लच्छि अवयरिय एत्थु,
गयरूव ण दीसइ वि कावि तत्थु ।
वर-अंवर-कणयाहरणएहिं,
मंडिय-तणु सोहहिं मणि-जडेहिं ।
जिण-ण्हवण-पूय-उच्छाह-चित्त,
भव-तणु-भोयहिं णिच्च जि विरत्त ।
गुरु-देव-पाय पंकयहिं लीण,
सम्मद्दंसण-पालण- पवीण ।
पर-पुरिस स-बंधव सरिस जाहिं,
अह-णिसु पडिवण्णिय णिय मणाहिं ।
किं वण्णमि तहिं हउं पुरिस-णारि,
जहिं डिभवि सत्त-वसणावहारि ।
पव्वहिं पव्वहिं पोसहु कुणंति,
घरि घरि चच्चरि जिण-गुण थुणंति ।
साहम्मि य वच्छलु णिरु वहंति,
पर अवगुण झंपहि गुण कहंति ।
एरिस सावयहिं विविहिय माणु,
णेमीसर जिण हरि वद्धमाणु ।
णिवसइ जा रइधू क व गुणालु,
सुकवित्त रसायण णिहि रसालु ।

घत्ता—
तास जस पसर-पूरिय-णहेण संघ-भार-धुर-धरिय सिरु ।
सिरि कमलसीह सघाहिवेण वुहयणु त्ति विण्णत्तउ ॥६॥

× × × ×

अम्हहिं किंपि धम्मु चिंतिज्जइ,
तं ण करहु सक्कमि संकिज्जइ ।
पडि दिणम्मि इय चिंत कुणिज्जइ,
तुम्हाणेसे तं संपज्जइ ।
जस कित्तणु तउ णिरुवइ सइं,
पुणु अखंडु अणंतु हवे सइं ।
हउं वराउ महियलि असमत्थउ,
मणुव-जम्मु किं णेमि णिरत्थउ ।
तं णिसुणेप्पिणु पुलइय-कायें,
कित्तिचंद कुमरहु पुणु तायें ।
वियसि विजंपिउ डुंगररायें,
कमलसीह वणिवर संपायें ।
पुण्णु कज्जु जं तुव मणि रुच्चइ,
तं विरयहि साहु समुच्चइ ।
जे पुणु अण्ण केवि सु-सहायण,
करहु करहु ते धम्म महायण ।
किं पि संक मा किज्जइ चित्तहिं,
संतुट्ठउ हउं धम्म-णिमित्तहिं ।

ता गुरुभणियालाव सुणेप्पिणु,

रइधू बुहु जंपइ पणवेप्पिणु ।

त्ता:—

म्हहं आएसें कव्वुविसेसें करमि ण संसउ धरमि मणि ।

रकारण वट्टइ चित्ति पयट्टइ सेयोगण कुवि णियमि जिणि॥२

तं सुणिवि भणइ गुणकित्ति एम,

भो पंडिय तुहु णउं मुणहि केम ।

गोवागिरि णिवइ पएसि धम्मु,

पुरुपाल संडु णामेण मणु ।

इक्खाइ वंसि तहि चिरु वणेंदु,

अगणिय जाया पणविय जिणेंदु ।

जसवालु जसायरु गुण-महंतु,

करमू पटवारि जणि महंतु ।

तुहु णंदणु णिरुवमु गुण-णिवासु,

अहणिसु जो अच्चइ जिणवरासु ।

चउविह संघ विणयाणुरत्तु,

सिरि पूनउ साहु सधम्मि वत्तु ।

तुहु भज्जा सील गुणस्स खाणि,

सव्वहि य णाइं तित्थयर-वाणि ।

तिहुवण सिरि मुणियण-पय-विणीय,

सिरिहरसिरि जिम राहवहु सीय ।

एयहिं संजणिया चारि पुत्त,

लक्खण-लक्खंकिय विणय-जुत्त ।

णिय-कुल-मयंकु पुणु पढमु ताहं,

भुल्लणु जि साहु पयडहु जणाहं ।

बीयउ पुणु बुहयण-जण-निवासु,

सिरि रूले णामे जस-पयासु ।

तइयउ णंदणु मयणावयारु,

सिरि कामराजु णामेण साहु ।

चउथउ णंदणु आसण्णि वासु,

आ॰ लु णामें सो कुल-पयासु ।

एयहि जो पढमउ गुण-गरिट्ठु,

सिरिभुल्लण णामें साहु सिट्ठु ।

घत्ता:—

आरउण पुरवरे मुह लच्छिधरे, तहिं पहुवइरि-णिकंदणु ।

तोमरकुल मंडण अरि-सिर खंडणु, सिरि डूंगरिंद णंदणु ॥३॥

× × ×

इय सिरि वणकुमार-चरिए कय सुह-भावण-फलेण विप्फुरिए सिरि पंडिय-रइधू-विरइए सिरि पुण्णपाल-सुत साहु सिरि भुल्लण-णामंकिए धणयत्तजम्म वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

णंदउ महिवइ णाए पवीणु

णंदउ सज्जण यणु भरिय-दीणु ।

णंदउ स-धम्मु सिव-सोक्खयारि,

णंदउ जइवर वट्टय-भार-धारि ।

इक्खकु वंस-मंडण-मयंकु,

सिरि पुण्णपाल-णुप्र विगय-संकु ।

णंदउ भुल्लण णामेण साहु,

णिउराइ वल्लह दीह-बाहु ।

महु होज्जउ विमलसमाहि-बोहि,

जा दुग्गइ-गमणहु पह-णिरोहि ।

णिय-कालें वरसिउ मेघमाल,

गिहि गिहि संभुहु मंगल य माल ।

बहु-अत्थ-समिद्धहु चरित्त एहु,

परिपुण्ण करिवि संवेय-गेहु ।

पंडिएण समप्पउ पाव-णासु,

भुल्लण हु हत्थि पयडिय-पयासु ।

तेण जि णिय सीसि चडाविएण,

पुणु पंडिउ पुज्जिउ पणमिएण ।

घत्ता—

गुण मुणिहु पसाएं पयडिय-राएं सिद्धउ कव्व-रसायणु ।

सो पाइज्जंतउ अत्थ-समंतउ वट्टउ सुह-सय-भायणु ॥१६॥

जिण गुण गणराएं वज्जियमाएं,

चरिउ करावउ एहु वइ ।

तहु वंसु पसिद्धउ बुह जण रिद्धउ,

पयडमि जणमण-सुक्खकरु ।

धण-कण-जण-पुण्णउ सुह-णिवासु,

पुरुपालि संडु अरि विहिय तासु ।

तहिं वणिवरु जिण-पय-चंचरीउ,

भव-भमणहु जो मुणि णिच्च भीउ ।

करमू पटवारिउ गुण-गरिट्ठु,

सोइं सुणाइं मुणि-दाण इट्ठु ।

तहु भज्जा रूवा रूवसार,

णं सील-वयहु पढमिल्लकार ।

तहु णंदण णव णं णव-पयत्थु,

गोवद्धणाइ भणि मुणिय-सत्थु ।
रद्धरणु पढमु उद्धरिय-दीणु,
साधारणु सावय-धम्म-लीणु ।
तीयउ खल्हउ खम-गुण-महंतु,
तुरियउ पुण्णउ पुण्णे महंतु ।
मल मुक्क मल्हि पंचमउ वुत्तु,
जो परियणाहं आयमु पवित्तु ।
रयणत्तय-भत्तउ रयणु साहु,
हरि भुत्ति हरु पुणु दीह-बाहु ।
अट्ठमउ धिरराजु गुणोह ट्ठाणु,
धूवलि नवमउ बुज्झिय पमाणु ।
एहं जि मज्झि चउत्थउ जि वुत्तु,
सिरि पुण्णपालु भणि मुणिय सुत्तु ।

घत्ता—
तहु पढमी भामिणि कुलगिह-सामिणि विहुवणसिरि णामें भणिया
बीई पुणु मणसिरि णं पीयउ सिरि मह पवित्तु रूवहु भणिया ॥

णंदण य चारि तहु विणयवंतु,
णं णंतचउक्क जि अणि सहंतु ।
ताहं जि गुरुमं नत्तणि अ भुल्लु,
सिरि भुल्लणु णामाणे जि अतुल्लु ।
तहुमय चउविह-पत्त-भत्त,
णिउरादे णामा गिहु महंत ।
बीयउ णंदणु सूलेसु जाणि,
तहु भज्जा महासिरि णेह खाणि ।
तहु तिण्णि पुत्त कुल-भवण दीउ,
......................काम दीउ ।
अमरदित लाडमखु ....?...
णं रयणत्तउ जायउ पयक्खु ।
तीयउ णंदणु पुणु कामराज,
कल्लाणसिरी भज्जा सराज ।
चउथउ सुउ आमलु विणय-पाउ,
परिवार-सहू णंदउ सराउ ।

घत्ता—
एयहं सव्वहं पुणु पयडिय बहुगुणु णंदउ भुल्लणु गुण भरिउ
धणयत्तकुमारहु सुहफल सारहु कारिवओ वइ इहु चरिउ

इय सिरि धणकुमार-चरिए कय-सुय-भावण-फलेण विष्फुरिए सिरि पंडिय-रइधू-विरइए सिरि पुण्णपाल-सुय-साधु सिरि-भुल्लण-णामंकिए भव्वजीवाणुमण्णिए धणकुमार-णिव्वाण-गमण-वण्णणो णाम चउत्थो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥४॥

४३—जसहरचरिउ (यशोधर-चरित)

कवि रइधू

आदिभाग:—

सिरि रिसह पवित्तहु केवल-णेत्तहु सिव-सिरि-पत्तहु कम-जुयलं
पणविवि तिजईसहु विजिदर ईसहु जसहर-कह पयडमि विमलं

जाम सुक्इ जिण-पय-पणमंतउ,
अच्छइ चेईहरि णिवसंतउ ।
ताम ईसि विहसेवि पयत्तें,
णिब्भाराहिय मणि रयणत्तें ।
दो-विह-सुतव ताव-संतत्तें,
णिम्मल-गुण-गणाण णिह पत्तें ।
कमलकित्ति णामेण जि गुरुणा,
तेण पवत्तउ मइ सुइ-गुरुणा ।
भो भो सुणहि रइधू पंडिय,
पइं कइत्त बुहयण सह-मंडिय ।
दय-गुण-धारं जसहर-चरियउ,
विरयहि धम्म रसायण-भरियउ ।
अयरवाल-वंसंवर-समहरु,
जिण-पय-कमल-दुरेहु दुरिय-हरु ।
कमलसीह-साहुहु जो णंदणु,
णिच्च तियाल-विहिय-जिण-वंदणु ।
मिच्छा-समय-परम्मुहु संतउ,
णिम्मल-जस-भूसिय-लोयत्तउ ।

छह-कम्माणुरत्तु गुण-मंदिरु,
रायहंस गणि तेयें चंदिरु ।
कंचणु दाणे परिणिय बुहयण,
हेमराय णामें भाव [हि] मण ।
सो सोयारु पयडु जणि जाणहि,
तासु णामु सुकइत्तणि ठाणहि ।

सो कइत्त आयासु पमाणई,
अइसएण तुम्हहं सम्माणई ।
तव-वय-सम-दाणाइ गुणावर,
जीव-दया-विण सयल अहलयर ।
इदि सिरि गुरुणा देसिउ जामहि,
कइणा सव्वय मण्णिउ तामहि ।
हेमणामु णिरु तुम्हाएसें,
कव्व सुरायलो ठवमि विसेसें ।

४५—अप्पसंबोहकव्वं (आत्मसंबोध काव्य)

कवि रइधू

आदिभाग:—

जय मंगल-गारउ वीर भडारउ भुवण-नमंसु विमल-गुणमणु ।
लोगोत्तमु सोत्तमु संजम नीरासु आराहमि तहं जिण-चरणु

चउवीसमु जिणु हय-पंच-बाणु,
तिहुवण-सिरि-सेहरु वड्ढमाणु ।
पडणइ-गमणागमण- चुक्कु,
कम्मट्ठ-निविड-बंधण-विमुक्कु ।
गुण-मानजोगि-उप्पत्ति-तीरु,
परमप्पय-सुह सायर-गहीरु ।
परिसेसिय-पंच-सरीर-भार,
पाविय संसार-समुद्द-पार ।
आवरणु हीणु भव-भयतमोउ,
णाउणु-विमुक्क हय-मोहतोउ ।
सुरनाम-गोत्तु णिरुद्धभाउ,
परिगलिय सुहासुह-सुहय-भाउ ।
अवहत्थिय पंच-पयार-दुक्खु,
संपत्तु महोत्थाणंत-सुक्खु ।
जुव जोगि-नियण्णु सुमणोहि रम्मु,
संसार असेसावइ पणासु ।
णासिय तिमिरु पज्झलियलक्कु,
लोणाउग्गाल-सम-पयडि चक्कु ।
अणु-गंग-दव्व-संबंध-चत्तु,
सय-केवल-अन्त-नरय-पत्तु ।
फेडिय अट्ठारह-दोस भाउ,
धोयिय-मणाइ-दुव्वार-राउ
छद्दव्व-सरूव फुरंत णाणु,
सहजाणंदाचल-सुह-णिहाणु ।

घत्ता—

सो वीरु जिणेसरु भुवण-दिणेसरु हियइ धरेविणु भव-हरणु ।
जइ बुद्धि पयासें करमि समासें णिय-संबोह-पवित्तयरणु ॥१॥

× × ×

अन्तिमभाग:—

इय संखेवें हय-गव्वयाइं पंचवि भासियइं अणुव्वयाइं ।
जो पालइ सो तिहु गईं न जाइ, उप्पज्जइ सुरगइ विमल ठाइ
वउ हवइ तासु इय पंच भेउ,
जो अरुहागमि बुज्झेवि अणेउ ।
बुज्झइ परमागमु सुणुवि सोइ,
जसु तत्तपरतइ सद्दहणु होइ ।
तत्तत्थहँ पुणु सम्मत्तु जाणु,
जिणु सम्मत्तें ण वि होइ णाणु ।
विणु णाणें चारित्तु वि पवत्तु,
विणु चारित्तें मज्झइ न मोक्खु ।
विणु मोक्खें सुहु पेम किम होइ,
तेण जि गायम्मु महंतु सोइ ।
किं करि सम्मत्तु महेवि णाणु,
पउ णिज्झइ सय णिम्मुइ णिहाणु ।
तिय मग्गहो साणुकरणु सोइ,
पाविज्जइ दिव पउ सुह-णिबोइ ॥

घत्ता—

सम्मत्तवेसेण णाणु सहेवि धरेवि मग्गु ।
णाणिज्जइ मोक्खु भविअहि भव-दुह खउहरणु ॥१२॥

इय अप्पसंबोहकव्वे समत्त-सत्त-सत्तु-सासत्त-सुद्धये णवमा-वाण - सुहबुज्झ-सयइवे मद्दयो संधि - परिच्छेओ समत्तो ॥

४६–सिद्धंतत्थ-सार (सिद्धान्तार्थसार)

कवि रइधू

आदि भाग:—

मुत्ति-रमणि-कंताणं अरिहंताणं णवेवि संताणं ।
णिरयणगुणड्ढत्ताणं पावंकुरहं पवित्ताणं ॥१॥
सिद्धंत-अत्थसारं भव-भय-हारं गुणड्ढ-साहारं ।
वण्णातीद-महप्पं सिद्धवणं चावि पावहं दुक्खं ॥ २ ॥
सुद्धप्पभावणाभवसुहेण तित्तस्स भव-विरत्तस्स ।
पत्तस्स धम्मलाहं जिण-सुय-मुणि-पायभत्तस्स ॥ ३ ॥
वसतस्स तोमराए वणिवराणहस्स खेमसीहस्स ।
तस्स णिमित्तं किज्जइ रइधूणामा बुहेणेदं ॥ ४ ॥
दंसण-जीवसरूवं गुणठाणाणं वि भेय किरियाय ।
कम्मं सुपंग लद्धी अणुवेहा धम्म-झाणं च ॥ ५ ॥
एयाणं हि सरुवं पयडंताणं छलं ण गाहिव्वं ।
जइ चुक्कमि ता भव्वा कायव्वं [सुद्ध] भव्वेहि ॥ ६ ॥

× × ×

इति श्रीसिद्धांतार्थसारे शुद्धात्मतत्व संवित्यावारे श्री पं० रैधू [रइधू] कृतो [कृते] संसार-सरण -भय-भीतेन खेमसीसाधुनानुमोदितो सम्यग्दर्शन-कथनमुख्यत्वेन प्रथमोऽङ्कः ॥ १ ॥

नोट:—प्रति में अन्तिम भाग उपलब्ध नहीं है ।

४७-वित्तसारं (व्रतसारं) कवि रइधू

आदिभागः—

सासयपयपत्ताणं वसुगुणजुत्तणकम्मचत्ताणं ।
णमिऊणं सिद्धाणं भणामि णं वित्तसारवत्तं ॥ १ ॥
भरहाइ परमेट्ठीणं बारस-अंगाण सूरिविंदाणं ।
तयरण-मुद्धोए पय तह पणवेप्पिणु तिजय खेमाणं ॥ २ ॥
अग्गोयवंस-णह-ससि दाण विहाणेण णाइ-सेयंसो ।
कइयण मणक्कय-तोसो हालू साहुस्स अंगओ विदिदो ॥३॥
परमेट्ठि-पायभत्तो वत्तो विसणाण रत्तु पत्ताणं ।
णिद्दंभो सुविणीओ आदू आहिहाण साहु सीलंगो ॥ ४ ॥
तेणाऽविय भव-भीए णाविय सीसेण धम्मराएण ।
भणिओ सुकइ-पहाणो लहिवि खणं पावणं खेमं ॥ ५ ॥
भो सत्थोवहि-पारय रइधू कइ-तिलय पइजि बहु भेयइ ।
चरिय पुराणइ विरइवि सज सरसें पीणिओ भुवणो ॥६॥
मह पुण म.णस-कमलं संकुइओ अत्थि जणण-भय-भीओ ।
तुह वयण-सूर-किरणहिं तं वियसइ णिच्च कालम्मि । ७॥
जइविहु अत्थि अणप्पो सम्मत्तो भय-लवाण धुउसारे ।
तहवि हु तेण जुदो कुवि वदाउमु जाय णरयम्मि ॥ ८ ॥
जइ पुणु चरिय-पउत्तो सम्मत्तो होदि भव्वजीवाणं ।
ता पुग्गइ णहु गच्छइ एरिसु माहप्पु वित्तस्स ॥ ६ ॥
जह-कणय-कडय-जडिओ रयणो दीसइह णिरुवमो लोए ।
तह संजमेण सहिदो सम्मत्तो भव्व-सत्ताण ॥ १० ॥
तमहं चरित्त सारं सोऊं वेच्छेमि तुम्ह वयणादो ।
जि हवदि जम्मु सहलो सासय-पह-संबलो चेव ॥ ११ ॥
इदि थाया अवसाणे कइणा भणिदो विअट्ठवयणेण ।
अइभव्वं अइभव्वं स-पर-हिद तुम्ह वयणेदं ॥ १२ ॥
जगमल्ल ताप-पावण सुहभावण सुद्ध-चित्त कइ-रंजण ।
जपइ एव पउत्तं तं वसिदं माणसे अम्ह ॥ १३ ॥
जो कवि चरित्तसारं पुच्छदि भणदोह सुणदि कयरामो ।
सो भव्वरायगुणजुओ हवदि कयत्थो जणे-पुज्जो ॥ १४ ॥
भणमीह वित्तसारं स मइ विहूईए दोससगहणे ।
मा होंतु जणा तप्पर सोहिं सुद्धं हि कायव्वं ॥ १५ ॥

अन्तिमभागः—

हरसिंघ संघाहिव-सुओ कइत्त-पव्वार-वूढणिय-खंधो ।
गुरुयण भत्ति कुणंतो ण एंदउ उदयराएण ॥ १३४ ॥
गुणियण-पविहिय-राओ सुपत्तचाओ सदिट्ठि णिम्माओ ।
आदूसाहू चिर इह जीवदु तिय-पुत्त-पोत्तेहिं ॥१३५॥

४८-पुण्णासवकहा (पुण्याश्रव कथा) कवि रइधू

आदि भागः—

पणविवि सिरिवीरं णाण-गहीरं भव-जलणिहि-परतारयं ।
पुण्णासव-सत्थं सुरहर-पंथं भणमि कहाणिउरूवमयं ॥१॥

वंदिवि पुणु अरहंताण पयं,
दंसिय-सासय-णिल्लेव-पयं ।
वसु कम्म-पयडि-चुय-सिद्धाणं,
सम्मत्ताईयगुण-रिद्धाणं ।
लोयग्गसिहरि ट्ठिदि-पत्ताणं,
उप्पत्ति-मरण-जर-चत्ताण ।
छत्तीस-गुणायर-सूरीण,
रायाइदोस-कय-दूरीणं ।
दो-दह-सुअंग-अज्झयणिरयं,
वज्जिय-सत्त-भय-पाढय विरयं ।
स-सरूव सुहायर साहूणं,
परि सेसिय-चउ-विकहा-कहणं ।
विद्दुम इव णिय रसरत्तमइ,
... ...
एयहं वि समाणसकमलिणिरू,
तिरयण सुदिए धारेवि थिरू ।

घत्ता—

जिण हिमगिरिवयण पोमदहहो सरसइं सुरसरि णिग्गमिया ।
जासा फिडेप्पिणु मल-पडलु सुमइ पयत्थ रणमिया ॥१॥

दो-विह-तव-पह अग्गेसरेण,
खंडिय् झाणा सिरईसरेण ।
पण-इदय-उरय-दियेसरेण,
भव्वहं मणकंज-दिणेसरेण ।
गोयम-गणि-भणुकम्म-पयट्टिएण,
सिरि कमलकित्ति गुरुणा जवेण ।
एकहि दिणि धम्माएसु दिण्णु,
भो बुह कि वासरु गमहि सुण्णु ।
स-कइत्त-विणोएं जाउ कालु,
पुण्णासउ विरयहि जणि विसालु ।
पुण्णा सवेण सुह सिद्धि होय,
त विणु माणुस भउ विहलु लोय ।
सुह भाउ पवट्टइ जेण जेण,
तं तं कायव्वउ इह बुहेण ।
अइकामिऊण तारिसि वयणु तेण,
तं पडि वण्णउ पणमिय सिरेण ।

घत्ता—

सकरत्त महाभरु भव-भय-रामहरु दुक्कर होइ जयम्मि णिरु ।
जो तहो णिव्वाहइं गउभवणाहइं सो कुमिदोसइ विरलु णरु॥२

इय चिंतति तहु णिपकुसियउं,
भव्व विणाउ णिय माणसि तरियउं ।
पत्तु-पीथि णारहं वरिसंतरि,
विसइ कुमारपलिदो रवि पहयरि ।
चंदवाड पट्टण विपसायउ,
तियस णाय तुणं (णिलय णं) तुहु गुरु-दायउ ।
कालिंदी सरि घउदिसु रुद्धउ,
णं भमइ पिउ पणय पबुद्धउ ।
धण-कण-कंचण-सिरि-संपुण्णउ,
णं कयपुण्णु महाजण धण्णउ ।
सई चितु व परणरहं अगम्मो,
सव्वहं सुहयरु णंदय धम्मो ।
वायरणु व परिहा-सालंकिउ,
पर-विवाय-धरिविंद-असंकिउ ।
पंडुर पायारालय विलउ ?,
णं णिव स-यर-जसेण सुपवित्तउ ।
धवलहरइं धवलइं णं सुर-हर,
दाणुण्णय कर जाण रिद्धीसर ।
वावाराणुरत्त जहिं वणिवर,
वसहिं णिव्व णिय सम्माणेवर ।
जहिं जिणविंब समुज्जल पुज्जिय,
मंडपसिहरिधयावलि-सज्जिय ।
तोरण पवलि पयार दुरिय-हर,
सोहण पउर-विहारि मणोहर ।

घत्ता—

तहिं णिउ णिवणीइं तरंगिणीहिं सायरु पवर रज सालउ ।
सिरि चाहुवाणि कुल-गयण-रवि सत्तित्तय गुण-पालउ ॥३॥

सिरि रामइंदु वड्डिय विवेउ,
दालिद्द भोणिहि-तरण-सेउ ।
तं णिय-हत्थें जाणिवि समुत्थु,
णंदणु रज्जारुहु गुण-महत्थु ।
णिव पट्टय थप्पिउ वइरिअ-मद्दु,
महिवइ णामेण पयावरुद्द ।
गंभीरत्तणि रणि दुद्धरासि,
तेएं दिणवइ सण्णय पयासि ।
मेरुवि वीरसें गुरु कलत्तु,
रूवेण गंगु वि महिय-गत्तु ।
मह भीम वि जो पाइवि धणत्तु,
पिउ सीय णिवेइय णिम्मिय-गत्तु ।
धरमिंद-कुल सस-मन-पसर-कालु,
गुणियण-संदोह-समाहि-कालु ।
पड-सायर-तडि संगल-णालु,
अतुलिय-साहस उद्दाम बाहु ।

घत्ता—

जय-लच्छि-णिवासउ गुणगण-पयासउ णाइं कप्पु व विमलमई
गिरिराय-पमाणउ अविचल-पत्तउ मह व पवगुण जगणियई,

तहो रविज दलिणा नवल-गाहु,
रिणायम-रयणायरु-जिल-णाहु ।
सिरि पउमावइ गुरुयाउ बंधु,
उद्धरिउ जेण जण-मद्द-गांधु ।
जोइणिपुराउ णिव णविविभाउ,
सोमउ णामेण विसुद्ध भाउ ।
तहो णंदणु [पउ] जणिया णंदणु,
पालिणाण णा पड पंथिलगु ।
जायाणंदणउवक सुता,
णं पुणु णिमोय भारि वि संजुत्त ।
सइ पढमिल्लउ जल-भर-णिवासु,
संपाहिय णामें सोमिदासु ।
धम्मेसरु-णिव-वावार-कज्जि,
सुमहंत-पुरिस-पहु-रूढ रज्जि ।
जिण बिंब-पत्तेय-विसुद्धबोह,
णिम्माविवि दुग्गइ-पह-णिरोह ।
सुपइट्ठ कर विउ सुह-मणेण,
तित्थेस गोत्तु बंधियउ जेण ।
पुणु सुर-विमाण समु सिह तेऊ,
णिय-पह-कर-पिहियउ-चंद-तेउ ।
कराविउ जि जिणणाह-भवणु,
मिथ्यामय-मोह-कसाय-समणु ।
बुहियण-चिंतामणि जस-मयंकु,
वंदियण विंद-थुउ सलयसंकु ।
तहो णंदणु पुणु वीयउ गुणिल्लु,
परणारि परम्मुह सुद्ध सीलु ।
अतुलिय-साहस सहसेक्क-धामु,

साधारणु णामें रूव-कामु
पुणु तीयउ सग-वसणा वहारि,
जिण-भणिय-सत्थ-अत्थावहारि।
णिग्गंथ-सवण-पय भत्ति लीणु,
णामेण होलि उद्धरिय दीणु।

घत्ताः—

तुरियउ गुण-पावणु काम-सुह-भावणु जसवल्ली आहारतउ।
गुणियण-कय-मित्ति णिरुवम भत्ती वारसिंघु णं कुसमसरु

एयहं·······सगरीय तेण,
सोमसिरि जणणि गब्भु वेण।
मि सत्त-वसण-णिरुवम-चुएण,
······ ······ · ·········।
सत्थत्थ-परिवत्त-णायरेण,
फुल-कुसुम-वियासणि सायरेण।
णिय-जस-धवलिय-महिवीढएण,
सम्मत्त-पमुह-गुण गूढएण।
धाइणा वच्छल्ल-परायणेण,
परियाणिय-सारासार एण।
पं णेमिदास संघाहि वेण,
सहु भायेरण पणमिय-सिरेण।
एक्कहि दिणि हुउं संठिउ सलीणु,
णुवि एत्तु तेण बहु करिवि माणु।
भो रइधू बुह वड्ढिय-पमोय,
······················।
संसिद्ध जाय तुहु परम-मित्तु,
तउ वयणामिय-पाणेण वित्तु।
पइकिय पइट्ठ महु सुहमणेण,
जाजम-पूरिय-धण-कंचणेण।
पुणु तुव उवएसें जिणविहारु,
काराविउ मइं दुरियावहारु।
पइं होंति··············,
एकज्जि चित्ता वड्ढइ पत्त।
तुहु सकइत्तण फल कामधेणु,
महु सारु रायमणु पुणु अरेणु।
पइं विरयाइं णाणा पुराण,
सिद्धंतागम जुत्तिए पहाण।
पुण्णासउ हउ वयणाउ तुज्झु,
सोहं वट्टमि इय चित्तं मज्झु।
सकयत्तं [थापहि] मज्झु णामु,
जिह होइ अचलु सासउ सधामु।
इय संघाहि व विण्णंति वाय,
तहि कालमुणेविणु मइ अमाय।
संघाहिउ वुत्तउ वियसिएण,
पइ वुत्तु भणिउ सण यज्जुवेण।
परकारणु वट्टइ दुसमु कालु,
परदोस गाहिं खलयण करालु।
ते दुमहि कव्वु सहाव सुट्ठु,
कालाहि जेम वि सुखि विविदुद्ध।
दुज्जण परगुण ण सहनिपाव,
साणे विजि पुण्णिणम समि-पयाव।
जइ विहु एरिस ते तह वि कव्वु,
तं उवणिं (वणिय ?) पेरिउ करमि भव्वु।
सज्जण दुज्जणहं णिमगगहोंति,
गुण-दोमगाहि पयडिवण भति।
पुण्णासव विरयमि पुण्ण होय,
तय जमु वित्थारमि एत्थु लोय।

घत्ता—

तइया पडिवण्णाउ मइ जि अत्थिण्णउ एंतिउ कालुजि वंजिणिरु
बीसरिउं सुहावउं मय सुहभावउं एवहि महु मणिप्पवकुथिरु॥६

अन्तिमभाग—

घत्ता—

तहि सोमवंसि पुण गुणहं णिहि जोइणिपुरि संजोरचिउ
तेजू णामें तयाहियउ वुहिए कणया यलु व थिरु॥१॥

जिहं मुणिहं खमासुह गइ सहिज्ज,
णं णामेण कल्हो तिहं तासु भज्ज।
तहि उवरि उवण्णाउ फुल-पयासु,
जसु जसु वित्थरियउ दह-दिसासु।
थरम्ह ? अहि हार्ण विइउ लोइ,
धण-दाण-विहाणें बुह पमोइ।
साहति पिपयम वहु विमल चित्त,
णं सील-वित्ति सुहगइ-णिमित्त।
तहु सुउ जिण-पय-पयरुह-दुरेहु,
णिम्मल-मणु कमलावास-गेहु।
परियण-सुहु-पोसण-कप्परक्खु,
निरसियउ दुरासउ जि विवक्खु।
णामेण साहु तोसउ भलेउ,

पविमाणिउ जि जिण-समय-वेउ ।
तहु पिय पइ-वय-वर-सलिल-गंग,
मलणासिणि णावइ तहा भंग ।
णं णर-रयणहं उप्पत्ति खाणि,
अह सोमपुत्ति सोनाहि जाणि ।

घत्ता—

तहिं गब्भ-उवण्णा लक्खण-पुण्णा पुण्णाव-पत्ता-विमल-मणा
दुवि (जिण)व जण-पोसणा विणय-कुल-भूसण पत्तारि जिणु
पज्जिणवरणा ॥१०॥

चारि भाण णं सुह-पय-भायर,
ठिय-मज्जाय चारि ण सायर ।
ताहं पढमु पुहयण लक्खाणिउ,
णिव पयावरुद्द सम्माणिउ ।
बहु-विह-धाउ-फलिह-विद्दुम-मउ,
कारावेविणु अगणिय पडिमउ ।
पतिट्ठाविवि सुहु आवज्जिउ,
तिणि तिलोयर-गोत्तु समज्जिउ ।
जि णाह-जाग सिहरु णेईहरु,
पुणु णिम्माविय ससियर-पह-हरु ।
सोमिदासु णामें संवाहिउ,
जि जिण-संघ-भार-णिव्वाहिउ ।
तस्स पिया लच्छी पसुहायर,
णाम भिखी वण्णिय विणयायर ।
अवर वि मणिको सुद्धपइव्वय,
णं धम्मह सहयारि वरदय ।
तिण्णि तासु णंदण संजाया,
णं लवणंकुस जय विक्खाया ।
जो इच्छिय-दाणें सुर-भूरुह,
जो चिंतामणिव्व पोसिय सुहु ।
जो पर सुव्व करणय दाणेट्ठउ,
रिसराम णामें सो जेट्ठउ ।
तस्स पिया गइसिरि संजाया,
णिय-पियम-भत्तिए अणुराया ।
जसु जम्माणमि जिणवर-बियहं,
तिलउ पढिण्णउ दुरिय-णिसु भहं ।
कुलहु तिलउ तिलकू ति वुत्तउ,
तोसउ साहहु पुणु वीयउ सुउ ।
अइरावइ करि कर सण्णिह भुउ,

....

परहु वद्धिण णियत्त पयत्थु,
दहु-लक्खण धम्मेहु णिय सगहु ।
अणुलिय णाहुन सय साहारउ (णु),
साहु सधू णामें णं वारणु ।

घत्ता—

तहु पिय कुलहर-मंडण णयणा सिरि णामें पुण गयणा ।
कोई पुण णायहु मम्मरदा भणियं णइ पुणि-मणि-जुवा ॥११॥

अट्ठमुणि णामें तह सुउ हुवउ,
वीरदासु पुण लक्खण-जुत्तउ ।
जसु जम्मणि पुण्णासहरदयो,
हरिस भरिउ पणविउ परमप्पो ।
धीराजन्न पुण बीयउ णंदणु,
पाहंसि-संग-भिक्खा-गमरंजणु ।
होलिवम्मु अज्ज य पुण सोहिउ,
देवसिरि भत्तर णिय मोहिउ ।
वासदेव हुरपति वेणंदण,
तासु पत्तिणा रूवलणा णंदण ।
पुणु तुरियउ सुउ सुखाहिंग पुण्णउ,
गिरणारहु संघाहिउ पुण्णउ ।
वीरसिंघु वंदिवहिं थुत्तउ,
भज्जा कन्हो पन्नं अणुरत्तउ ।
खीलहा संखोणं णंदणउ,
रेहइ जिणवर-पय-वंदंतउ ।
अह पुणु तोलहस हयकोयर,
णंदण तिण्णि अत्थि सोहावर ।
देल्हा तापया (य) वय सोहिल्लउ,
पुणु साल्हे णामेण गुणिल्लउ ।
कमलसीहु तीयउ जिण-भराउ,
मिच्छा-मनय-परम्मुह संतउ ।
हंसराजु णामें देल्हू सुउ,
साल्हे पुत्त अजू जिण-पय-जुउ ।
महिपति कमलसीह कुल मंडणु,
विणएं गुरुयणाहं आणंदणु ।

घत्ता—

इय-परियण-जुत्तउ सोम-कलत्तउ णोमिदास सुय-भाय-जुउ
णंदउ जा रवि ससि णहि कय दिणणिसि जाकणयायलु
अयलु धुउ ॥१२॥

णंदउ जिणसासणु सुगइ-ठाणु,
तिल्लोय,मरूव-पयास-भाणु ।
णंदहु गुरुयण णिग्गंथ रूव,
जे धाणे थक्क पलंब-भूव ।
णंदउ चिरुराउ पयावरुद्द,
अवगाहिव जि आहव-समुद्द ।
भव्वयण वि णंदहु सच्च भासि,
सिरि चंदवाड पट्टण-णिवासि ।
णंदउ बुहियण सत्थत्थजाणि,
पयडी कयजेहिं जिणिंदवाणि ।
सिरि पोमावइ पुरवार-वंसु,
णंदउ महिमंडल विमय-पसु ।
णंदउ सवि हूइ ए उदयराउ,
रइधू कइ जासु पसिद्ध ताउ ।
णंदहु सज्जण कय सव्वमित्ति,
परिभमिउ णेमिदासस्स किति ।
णिय समए सया वरिसंतु मेह,
मंगल हुवं तु णिरु गेह गेह ।
तह सयल पया सुक्खेण ठाउ,
संपज्जउ बोहि-विसुद्ध-भाउ ।

घत्ता—
सवेया णंदहि बुहियण विदंहि पयडिज्जंतउ गंथुहहु ।
णंदउ चिरु सायरु इच्छिय ससुहरु कुमइ-तिमिर-भर-दलण-विहु ॥१३॥

इय-पुण्णासवसत्थे पयडिय-सुह-हेउ-परम-परमत्थे सिरि पंडिय-रइधू-वण्णिए सिरि महाभव्व-संघाहिव-णेमिदास-अणुमण्णिए पत्त-दाण-फल-वण्णणो णाम तेरहमो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥१३॥

४६—जीवंधरचरिउ (जीवंधर चरित)

कवि रइधू

आदिभाग:—
सिव सिरि रयणायरु सम्मदमावरु भूरि गुणायरु जय तिलओ ।
पणविवि तित्थेसरजिणुजीवंधरचरिउभणमितहुसुहणिलओ ॥
जय आइदेव तित्थेसदेव,
जय अजियसामि लोयग्गगामि ।
जय संभवेस हय भव-किलेस,
अहिणंदणक्ख जयअजय पक्ख ।
जय सुमइ संत तिजय हु महंत,
जय पउमणाह गय सयलवाह ।
जय जिण सुपास पूरिय-जणास,
जय णिसिवई संसय तिमिररासि ।
जय पुप्फयंत पडिय सुतंत,
सीयल जिणंद जय कुरुह कंद ?
सेयंस संस जय कुगइ-भंस,
जय वासुपुज्ज हरि सयहि पुज्ज ।
जय विमल सुद्ध भव्वं सुबुद्ध,
जय पहु अणंत गुणगण अणंत ।
जय धम्मधार भव उवहिं पार,
जयदेव संति हय लोय-भंति ।
जय कुंथ कुंथ पमुहह अमंथ,
जय अर हयारि तच्चहं वियारि ।
जय मल्लि मल्ल चूरिय-विसल्ल,
मुणि सुव्वयंक जय भव असंक ।
जय णमि णिरीह पायड णिधीह,
जय रिट्ठणेमि सुह सुरह णेमि ।
जय पासणाह णाणे अथाह,
जय जयहि वीर सुरगिरिव धीर ।

घत्ता—
ए ए तित्थयरा तिजय महियरा णाणें भोणिहि विमय मला ।
महु पणमंतहु भत्तीभरि (रे) ण सुमइ पयासहु ते सयला ॥१॥
सरस्सई सुसामिणी सु सत्यपाय गामिणी,
जिणेस वत्त वासिणी पमाण-णाय-भासिणी ।
सुवण्ण वण्ण देहया कईय ण ण मोहया,
कुमग्गजाण रोहिणी जडाण चित्तबोहिणी ।
सुमायरी महंसया हवेउ णेह संजुया,
सुभव्व कव्वभोयणं जणाण चित्त मोयणं ।
पयत्थिऊण पीणउं हवामि जिय वीणउ ?
णिगंथमग्गचारिणो सुयंग संग धारिणो ।
कसायचक्कहारिणो सुजम्मसिंधुतारिणो,
सुधम्मरुक्ख वारिणो दुहंग प्राण सारिणो ।
सुणेयमाइ सूरिणो णिरास भाय दूरिणो,
सुताह पायकंजयं णवेवि पाव-भंजयं ।

घत्ता:—
इह गोपायलिजणधण पउरे मंदिर-सिर-धय-छिविय-गहे ।
हय-गय-भड-संकड-हट्ट-वहे सेविय-मंडलीय-णिवहे ॥२॥
तहि णिवसंतें जणियाणदें,
पोमावइ सुवंस-णह-चंदें ।

हरिसिंघ संघाहिव तणु आणं,
रइधू कइणा विनविय माणं ।
तेणेवकहिं दिणि जिणहन्विंदे,
गुणयणु जह पमाणु गुणवंदे ।
णिव णिच्चउ भववेणि णिवारउ,
णिसुह पमुह कह गुणगण पियारउ ।
महापुराणु पवखाणिज्जंतउ,
णिसुणिउ तेण जि गुरु मुह हुंतउ ।
तह सम्मइंसण पहु धारउ,
को मुह कह पयडु जय सारउ ।
इय वणिणज्जंतउ णिसुणेविणु,
णिव मणि अइव पमोउ धरेविणु ।
जिणु गुण वण्णणि महणिरुणामो,
सउउ जाउ पंणिय बुह कामो ।
इय जंपत्तउ जणा पुरओ कइं अइव जाम णिरूवणुउ ?
भाणियव दोसु फेडंतुमणे चिंतइ बहु गुण पुण्णउ ? ।।३।।
सह पुराणु सिरि तेहर चरियउ,
को मुह कह कुंडल पुणु वणियउ ।
कुंथुदास वाहिण कण्णंतरि,
मइ पहिराविउ तं इच्छंतरि ।
जइ वि सुगुण रयणहि सोहिल्लउ,
तहि वि ण सोहइ सो इयकल्लउ ।
वणायायलहु एम भाम (स?) हिजए,
एक्कु सुरु (सूर?) कि देइ पयवसण ।
पउ (त) सचित्ति चिंतेप्पिणु कइणा,
भासिउ वणिवरस्स सुहयइणा ।
भो भो कुंथयास आयण्णहि,
जइ वि अम्हं तुहु किंपि ण भण्णहि ।
तह वियाम कण्णहि तउ संधमि,
जीवंधर गुण चरिउ पवंधमि ।

घत्ता—
इय सुकइ पउत्तउं णेह-जुओ णिसुणिवि आणंदियसमणु ।
वियसंति वयणु कुंथु जि भणइ विणयरायभरण वियत्तणु।।४

अन्तिमभागः—
तहो पाय कमल तत्ती जुवेण? मइ हरिसिंघ संघाहिव सुवेण ।
सोलहकारण वय फलु बहुत्तु, थो उविअविखउ सत्तिएणिरुत्तु ।

घत्ता—
जाणारि अहव पुणु कोविणिरु सोलहकारण वउ करइ ।
सो तित्थयरत्तु लहेविणिरु, पच्छइ सिउपुरि संचरइ ।।२६।।

कुंथयास साहु सिरि गेहउ,
थविउ महापुराण, हुविणय इउ ।
धाहिण सवणि सुवण्णहिमिढउ,
सम्मइंसणु रयणु णिबद्धउ ।
को मुह कह ववाय वर कुंडलु,
पहिराविउ पइ जिण परिमंडलु ।
सोलह-भावण-भाविणमण-अहिमउ,
जीवंधर-गुण-णाण-पहिवउ ।
जीवउ भवणाहरणु पहुल्लउ,
थाम सवणि भणिउ सोहिल्लउ ।
रइधू पइणा णिय विण्णाणें,
पविमाणिय सतवत्थ-पहाणें ।
गुरुपुर-वयण-सिहिणा संजोगं,
अमुणि पमाण-पज्जालण-जोगं ।
हिमय गूमि पविकरु सुणराउ,
तेहिमि इयउ तेण पमाणउ ।
थरि णिज्जा सो वणिवर भूसिउ,
साहु साहु ता णोयहि भासिउ ।
सुणइ णाणि णिच्छिवि अणुरत्तो,
अच्चइ तरला णिगणि सत्तो ।
तेह जि भूमिउ सो इह सावउ,
णिय णंदउ हीज्जउ दीहाणउ ।

घत्ता—
सयतीस पमाण सलोवाहिं जि वण्णिउ जीवंधर चरिउं ।
कुंथयाइ जीवहं णिच्च हिओ णंदउ रइधू गुणभरिउं ।।२७

इय जीवंधरजिणचरिए सोलहकारण विहाण फल वरिए सिरिमहाकइ-रइधू-वण्णिदे सव्वेहिं सवणि-पमुम-णिदे सिरिमहाभव्व-कुंथदास-सवणभूसणे जीवंधरजिण विहारवण्णणं णाम तेरहमो संधी परिच्छेओ समत्तो ।।१३।।
जा सुरगिर कणयंगो जा ससि सूरो महीवलं उवही ।
तज्जीवंधरचरिओ स णंदउ कुंथुयासेण ।। १ ।।

इत्याशीर्वादः

५०-सवणवारसि विहाणकहा (श्रवणद्वादशी विधानकथा)

कर्ता—भट्टारक गुणभद्र

आदिभागः—
वंदिवि वाएसरि सद्दखाणि, अणुसरि गोयम सेणियहो वाणि
पभणेमिसवणवारसिविहाणु,भव्वहं सिव-साहणु सुह-णिहाणु

नोट—प्रति बहुत ही अशुद्ध लिखी हुई है ।

अन्तिमभागः—
गुणि पय पणविवि परि गय भराव, जाणिय-चउगइ-दुह-सुहसहाव
सो नवइ एवउ किउविहिय जेम, मुणि भाविउ सव्वहं हुवउ तेम
सम्मु विजो णरणारी करेइ, सो एरिसु फलु सवसें लहेइ।
सारंग साहु सुउ गुणविलासु इय कह मणि भावइ देवदासु
घत्ताः—
सिरीगुणभद्द मुणीसरेण यह कह किय पवयणु अणुसरेण
जिण एसि उवरिलउ देहिणउ जर-जम्मणं-मरणु हरेहि लहु

५१—पक्खवइ वय कहा (पाक्षिकव्रतकथा)
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभाग—
वंदिवि सिरि वीरहो पय जुयलु भत्तिए णासिय कम्ममलु।
पक्खवइवयहो कह कहमितिहा, गणहर पयडिय पुव्वजिहा
अन्तिमभागः—
घत्ता—
मवनोहवि मणु थिरु ठाविवि पुव्वसूरि-विरइय-कहा।
गुणभद्दें कोमलसद्दें पयडिय एउव भुवणि इह ॥८॥

५२—आयासपंचमी कहा (आकाशपंचमी कथा)
कर्ता—भ. गुणभद्र
सिद्धि विलासिणि कंतु पणविवि णावें हय मरणु।
वीरजिणिंदु महंतु कम्म-महिहरण-दवजलणु ॥
णहपंचमिविहि विरयमि भव्व, जिह पुव्वायरियहि रइय सव्व
अन्तिमभागः—
घत्ता—
कह भविषय जिहमइ तविउय मलयकित्ति पयभत्तें।
गुणभद्दें कोमलसद्दें मुत्तिसुहा-मय मत्तें ॥६॥

५३—चंदायणवय कहा (चंद्रायणव्रत कथा)
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभागः—
णविवि चिउविहसंघ परमेसरु, णासिय भवियण दुरियरिणु।
फलु पमणमि चंदायणवयहो णारिय जम्म जम्महि जणहो ॥
अंतिम भागः—
घत्ताः—
इय चंदायणवउ भणियउ कयकिउ मलयकित्ति पय-भत्तिए।
गुणभद्द गणीसें विमलमणीसें भव्वयणहं जिय-मत्तिए ॥२॥

५४—चंदण छट्ठी कहा (चंदनषष्ठी कथा)
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभागः—
पणविवि जिणपयजुयल जम्म-जरा-मरण-खय पयडियतच्च सहिट्टिहिं।
फलु पमणमि सव्वउ दरसमि भवियहं चंदण छट्ठिहिं ॥
अन्तिमभागः—
घत्ता—
सिरि मलयकित्ति मुणिवरहु पयाहिय मणि भाइवि विणयरय
गुणभद्द गणीसें रइय इह चंदण छट्ठिहि सरस कह ॥५॥

५५—नरकउतारी दुग्धारस कथा
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभागः—
वंदिवि सिरि पासु भव-दुह-णासु विरइय मोक्खणिवासु।
णरणाणविलासु हय समतासु विमलिय तामरसासु ॥
अन्तिमभागः—
सिरी थोघू णदणु संहणपालु, तें काराविय इह कह गुणालु।
णंदउ सो णहि जा सूर-चंदु, जिय-धुम्म मंडणु कित्तीइ कंदु ॥
घत्ताः—
सिरीमलयकित्ति पय-पंकयह भसलें गुणभद्द मुणीसरेण
वरइय कह इह भवियण गणह णिय मणु अणुसारें दय परेण

५६—णिद्दुह सत्तमी कहा [निर्दुःख सप्तमी कथा]
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभाग—
णासिय मिरिकंतहो पयडियकंतहो अरहंतहो कलिलंतहो।
णिज्जिय णियकंतहो भद्दसयवंतहो पणविवि पयजुय संतहो ॥
अन्तिमभाग—
घत्ता—
गोवगिरिणयरि वसवएण मलयकित्ति पय-भत्तएण।
गुणभद्दसूरि णामेण इय णिद्दुखि सत्तमी रइया ॥५॥

५७—मउडसत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)
कर्ता—भ० गुणभद्र
आदिभाग—
पणविवि सिरि रिसहहु पयजुयलु जम्मजरामरणत्तिहरु।
आहासमि जिम जिण सद्ध फलु मउडसत्तमिहिं वरु ॥
अन्तिमभाग—
घत्ता—
सिरि मलयकित्ति सीसेण इह विरयइ गुणभद्दें सुयरु।
णियमइ अणुसारें विहिय सिव सोहइ मुणिवर रइयविय ॥

५८—पुप्फंजली कहा (पुष्पांजलि कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

सिरि अरुहु णेविप्पिणु हियइधरेप्पिणु सासयसिव-सुहकारणु ।
णियगुरु कम वंदिवि मणि अहिणंदिवि भवदुह-भूरुह-वारणु

अन्तिमभाग—

सिरि लक्खणीह कुल-कमल-चंदु,
वहु भीमसेणु गुण-रयण-सिंधु ।
तहु उवरोहें कहकहिय एह,
णंदउ चिरु पसरउ कह सुमेह ।

घत्ता—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्तियइ, रइय कहाणिय सत्तियइ ।
गुणभद्द गणीसें अप्पहिय भव्वहं लोयह थुइमहिया ॥८॥

५९—रयणत्तयवयकहा (रत्नत्रय व्रतकथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

पणविवि जिणइंदु णिहणिय तंदु केवलणाण दिवायरु ।
संसारहु तारु कय सुहसारु रयणत्ताय रयणायरु।
पुणु पणविवि सिरिपरमेट्ठि पंचणियमणिवरिगुरु-पय-हय-पवंच
रयणत्ताय कह विरियमि विचित्ति सेणियहु जेम गोयमेण उत्त

अन्तिमभाग—

सिरि मलयकित्ति पय-भत्ताएण जिणवर-गुण-अणुरत्ताएण
गुणभद्दें विरइय एह कहा णंदउ णासिय जम्म-दुहा ॥७॥

६०—दहलक्खणवय कहा [दशलक्षणव्रतकथा]

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभाग—

सिवसिरि भत्तारहो णिहणियमारहो विय लियहारहो सीयलहो
परमप्पयलीणहो दुह-सय-खीणहो पणविवि पयगिरि सीलहो

अन्तिमभाग—

पढइ गुणइ सद्दहइ जु भावइ,
मुत्तिसिरि अवसें सो पावइ ।
लक्खणसीह चउधरिय सुपुत्तहो,
भीमसेण णामहो गुणजुत्तहो ।
तह उवरोहें गुणभद्द मुणीसें,
विरइय इह कह विगय मणीसें ।
मलयकित्ति मुणिणाहहो सीसें,
मण मह लेलिहाण वरवीसें ।
सावय लोयह होउ सुमंगलु,
वरिसउ पावसु वज्जउ मद्दलु ।
घरिघरि गच्चहु कामिणि सहरसु,
घरिघरि रिद्धि विद्धि जायउ वसु ।

घत्ता—

जिणणाह करहि दयमइ किज्जउ मयणएत्ति इलहु संपज्जउ ।
रयणत्तउ सारउ भवदुहतारउ जिणवर सामिय दिज्जउ ।७

इति दशलक्षणव्रत कथा समाप्ता

६१—अणंतवय कहा (अनंतव्रत कथा)

कर्ता—भ. गुणभद्र

आदिभाग—

पणविवि सिरिजुत्तहं गुत्तित्ति गुत्तहं पंचगुरुहं पय-पंकयइं ।
आहासमि सुकय पयासमि भवियहं पाविय संपयइं ।

अन्तभाग—

सिरीजयसवाल-कुल-गयण-चंदु,
चउधरिय लखणु धम्माहिणंदु ।
सउ पंडिय सिरीमणि भीमसेणु
कलि-कलिल-पय-संदोह-सेणु ।
तहो अणुरोहें किय कह अपुव्व,
आइरियं गुणभद्देण दिव्व ।
जो पढइ पढावइ एयचित्त,
तं णाण पयासइ णाइमित्त ।
णंदउ जिणधम्मु सुदया-समेउ,
णंदउ णरिंदु अरिगण-अजेउ ।
णंदउ चउविहु संघु वि सु-भव्वु,
णंदउ मुणि-णियरु विणट्ठ-गव्वु ।
संखेवें वित्थरु परिहरेवि,
णियगुरु-पय-पंकयमणिवरेवि ।
मइ हीणें भत्ति-विसालएण,
सिरिजय अणंतकय जिय-मएण ।

घत्ता—

एत्तिउ मइ दुज्जिउ लहु संपज्जउ केवलणाण मरणु विमलु ।
णउ अण्णु जि मग्गमि जिण-पइ लग्गमि भवि भवि बोहिहोउ सयलु ॥८॥

इति अनंत व्रतकथा समाप्ता

६२—लद्धिविहाणकहा (लब्धिविधान कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

पणविवि जिणसामि सिव-पय-गामि सग्ग फलोह तरु ।
वड लद्धि-विहाणु सुवइ-णिहाणु भणमि जण-मण-णंदयरु ।

अन्तिमभाग—

उयरण संचरइ जिणालयम्मि,
णिवसंते गुणभद्दें मुणम्मि।
इय कह विरइय पद्धडियबंध,
संखेवें भव जण पुण्णबंध।
सारंग मोहं सुउ पुण्णविलासु,
इय कह भणि भावइ देवदासु

घत्ताः—

सिरि गोयम सामि एतिउ महु मइ देहि सुहु।
जहि कम्मु ण गामि मइ विरसाणहि णिच्चु लहु ॥८॥

६३—सोलह कारणवयकहा (षोडशकारण व्रत कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

वदि अपवग्ग मग्गु पच्चगहु जेण होइ जणु मुत्ति पहु।
सोलहकारणवयविहि कहमि जँ भवसायर लहु परिलहुमि ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जीवंधरसामि सिवउरगामि एत्तिउ महु मइ दिज्जइ।
जहि गउ लहुं ठाणि मइ वि पराणिबच्चु ण मग्ग णिविज्जइ॥

६४—सुगंधदहमी कहा (सुगंधदशमी कथा)

कर्ता—भ० गुणभद्र

आदिभागः—

... ...
... ...

अन्तिमभाग—

सिरि मलयकित्ति गुरु-पय णविवि सिरि गुणभद्दें रइय कहा
संखेवें कह जिह गणहरि ण णिय-मइ-अणुसारेण सिहा ॥८।

६५—अणंतवयकहा (अनन्तव्रत कथा)

कर्ता भ. गुणभद्र

आदिभागः—

णमो जिण पाय पयूरुण सुपंथ,
णमो परमेसर उज्झिय-गंथ।
णमोवर······पुज्जिय देह,
णमो भवणमि-विज्झावण-मेह।

अन्तिमभागः—

जो पढइ पढावइ गुदमणु लिहइ लिहावइ णिम्मलउ।
सो अण्णु भवंतरे गुणमहिउ णिरु पावइ मणुवंछिउ ॥

६६ आराहणासार (आराधनासार)

आदिभागः— —वीर कवि

णाणपिंड गुण सायर भुवणदिवायर पणविवि सिद्ध जिणेसर।
वोच्छमि आराहण सिव-सुह-साहण जह अक्खिय जिणवर

भरहेसर पुंच्छियउ जिणेसरु,
साहणाहु जो जग परमेसरु।
जहं तहं सेणिय पुंच्छिउ सम्मइं,
णाण दिवायरु वंतउ दुम्मइ।
मोक्खहु कारणु अक्खिय सामिय,
अवरवि तहु फलु सिवपुरगामिय।
संसारह भय-भीरु णरेसरु,
पुच्छिय सेणिय जो जगसरु।
वीरु भणइ चउविहु आराहणु,
जा दुह-णासण-सिव-सुह-साहणु।
सो णिच्छय-ववहार मुणिज्जइ,
सो भवियणु जिणवर भासिज्जइ।
दंसण णाणु चरित्तु पयासइ,
महण्णव सारउ जग विक्खायइ।
जे तच्चहरु सम्मत्त भणिज्जइ,
जाणिज्जइ सो णाणु मुणिज्जइ।
जो थिरु भावइ पउ वियज्जइ,
सो चारित्तु मणहि भाविज्जइ।
तेरह विहि जिणवर अक्खिज्जइ,
ववहारइं सु बुह जाणिज्जइ।
जो बारह विहु तउ जिण सामणु,
अवरूहि बुह सो मुणहि वियक्खणु।
पर दुव्वहारणिवित्ति जो किज्जइ,
सो तउ णिच्छउ बुह जाणिज्जइ।
इय चउविहु आराहणु जाणहि,
ववहारेण परहं वक्खाणहि।
णिच्छउ भासइ जिणवर बुह जाणहि,
अप्पा अप्पउमाण हवनयहि।
आराहण फलु जिणवर भासइ,
केवलणाणु अणंत पयासइ।

घत्ताः—

इय आराहणसार कारणु-भजण वियाणियहं।
जो अणुसहि अगणाहं जाणि णिरीय पत्तिमाणियदं ॥१॥

अन्तिम भाग:—

अहो अहो सत्थवाहि कुलभूसणु,
णिसुणि धम्मु तउ कहमि अहिंसणु ।
विणकज्जेण जीउ जे मारहिं,
कुंतलवडि असियाय [प] हारहिं ।
ते दालिद्दिम- दुह उप्पज्जहिं,
णरइ (य) पडंता केण धरेज्जहिं ।
जे अहिलास जाहिं परयारहिं,
जाहिं पुरिस ते संढ ! वियारहिं ।
जे पेसुण्ण भासंरय अणुदिणु,
सुह जणि णिंदा करहिं जि कुम्मणु ।
णिच्च गुत्ति उप्पज्जहिं ते णर,
हीण सत्त वहु दुक्ख परंपर ।
दउलायंति भमहिं परिद्धें,
ते जम्मंति इत्थु विणु विध्दें ।
खास-सास वहु वाहहि पीडा (हा)
भवि भवि हुंति पुरिसभइं मूढा ।
छिंदह दहहिं विविह जे तरु वरु,
कुदृवाहितहु दो सइ णरवर ।

घत्ता:—

जे कहहिं अदिट्ठु विदिट्ठउ,
असुवंउ सुवउ कहंति ।
ते अंधवहिरं ण पाविय,
दुक्किय भमंति ॥२०॥

(गुटका आमेर भंडार)

६७ हरिसेण चरिउ (हरिखेण चरित्र)

आदिभाग:—

भावें पणविवि मुणि सुव्वय हो चरण कमल भवताव महा ।
नि (णि) सुणहु भवियहु बहु रस भरियहु हरिसेणहु पयडेमि कहा ॥
जिण सासणि दुरिय पणासणि अहो जण कण्ण महोच्छउ दिज्ज हो ।
विमलुज्जलु तव निम्मलुयउ हरिसेण हो चरिय मुणिज्ज हो ॥

× × × ×

अन्तिमभाग:—

बुहयणाह णाव पयिच्छहो गुरु उवएसि जाणियओ ।
काचिज्जीयइ जिणु पणवेप्पिणु तें हरिसेण सम्माणिओ ।
महा चक्रवर्ती हरिषेण चरित्रं समाप्तं ।

६८ मयण पराजय (मदन पराजय)

कवि हरदेव

मंगलाचरण:—

कमल-कोमल-कमलंक तिल्लोक मन्दकिय कमल गय ।
कमल हणणं सिहरेण अंचिय, कमलपिय कमलपिय ।
कमल भवहि कमलेंहि पुज्जिय ।
ते परमप्पय पयं कमल पणमवि कलिमलचत्त ।
मयद जिणंदह जेमरणु पयडमि साजइ वत्त ।

× × × ×

अन्तिमभाग:—

विसयसेण मुणिवर अच्छेसइ, तं चारित्तनयरु रक्खेसइ ।
इम भणेवि गउ मोक्ख हो जिणवरु विसयसेणु पालइ संजमभरु ।
अमुणंतहं का इवि साहिउ, मुणिवरतं खमतु ळणाहि उ ।
जिण वरि दे पये पकय भसलि-नाविज्जाहर गणहर कुसलि
मयण पराजएण विरइय कह, हर एविरेति विघुहयण सह
गुणदोस पयाउ अक्खिउ भाउ महु छलेण विरइय कह ।
भव्वयण-पियारी हरिसंजणेरी नं (णं) दउ चउविह संघहं ॥२
इय मयणपराजयचरिए हरिएवं कइ विरइए मयण पराजयणाम दुज्जओ परिच्छेओ समत्तो ॥

प्रति आमेर भंडार, सं० १५७६

६९ सिद्ध चक्क कहा (सिद्धचक्र कथा)

पं० नरसेन

आदिभाग :—

सिद्धचक्कविहि रिद्धिय गुणहिं समद्धिय पणविवि सिद्धि मुणीसर हो ।
पुण अक्खमि भव्वहं वियलिय गव्वहं सिद्धि महापुरि सामिय हो ॥

× × × ×

घत्ता :—

जो जिण गुणमाल पढेसइ मणि भावेसइ रिद्धि विद्धि जसु लहइ पउ।
जो सिद्धि वरंगण णारिहिं हयजर मारिहिं सुहु णरसेणहं परमपउ ॥१॥

जिण वयणाउ विणिग्गय सारी,
पणविवि सरसइ देवि भडारी।
सुकइ करंतु कव्वुरसवंतउ,
जसु पसाय बुहयणु रंजंतउ।
साभय पय महु होउ पसण्णी,
सिद्ध चक्क कह कहमि रवण्णी।
पुणु परमेट्ठि पंच पण वेप्पिणु,
जिणवर भासिउ धम्मु सरेप्पिणु।
विउल महागिरि आयउ वीरहो,
समवसरणु सामिय जयवीर हो।
तहो पय वंदण सेणिउ चलियउ,
चेल्लणाहि परिवारहु मिलियउ।
तिण्णि पयाहिण देवि पसंसिउ,
उत्तमगु भूरोवि णमंसिउ।
जय ति भा मरि देविणु णाह हो,
पणविवि बहु भाविहि हयमोहहो।
गणहर णिग्गंथहं पणवेप्पिणु,
अज्जियाहं वंदणइ करेप्पिणु।
खुल्लय इच्छाकार करेप्पिणु,
सावहाणु सावय पुच्छेविणु।
णिरियहं उवसम-भाउ गरि हुव,
पुणु णरिंदु णरकोट्ठे णिविट्ठउ।
पुच्छइ सेणिउ वीर जिणेसर,
सिद्ध चक्क फलु कहि परमेसर।
ता उच्छलिय-वाणि सव्वंगहो,
सुय-सायर-सयरि तरंगहो।

घत्ता—

णावसु गणि गाहइ भउ परिणाहइ ए उइंसें पयासइ।
सिद्ध चक्क विहि इट्ठिय सिगुणिए महइट्ठिय सेणिय कहिय समासइ ॥२॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

घत्ता—

सिद्ध चक्क विहि रइयमइं णरसेणु भणइं णियसत्तिए।
भवियण जणमण आणंदयरे करियविजिणेसर-भत्तिए ॥३६

इय सिद्ध चक्क कहाए पयडिय-धम्मत्थ-काम-मोक्खाए महाराय चंपा-हिव सिरिपाल देव-मयणासुंदरिदेवि-चरिए पंडिय सिरिणरसेण विरइए इहलोय-परलोय-सुह फल कराए रोर-दुह-घोर-कोट्ठ-वाहि-भयणासणाए सिरिपाल णिव्वाण-गमणोणाम बीओ संधि परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि २ ॥

७८ अणत्थमिय कहा (अनस्तमित कथा)

कर्ता—हरिचन्द्र कवि

आदिभागः—

वासरि मेल्लंतहं णिसि भुंजंतहं पाव पिसाएं गाहिय मणु।
गुण-दोस-वियारणु सुह-दुहकारणु त परमत्थु कहेमि जिणु ॥

आइ जिणिंदु णिमहु पणवेप्पिणु,
चउवीसहं कुसमंजलि देप्पिणु।
वड्ढमाणु जिणु पणविवि भावें,
कलिमल-कलुस-विवज्जिउ भावें।
संचालिवि अइरावउ गइंदु,
जसु जम्म हवणि आयउ सुरिंदु।
णिउ मेरु सिहरि तिल्लोक णाहु,
भइ-विसम-कम्मवण-डहण-दाहु।
कलसेहिं ण्हायउ सिहासणत्थु,
चल चामरेहिं विज्जिउ पसत्थु।
चालउ णिएवि इंदस्स ताम,
चल संकउ इह हियइ ताम।
ता अवहिणाणु पविकप्पियउ,
तें मेरु अंगुट्ठइ चप्पियउ।
धर-हल्लिय धरणि धसंकु गमिउ,
गिरि डोल्लिउ सुर-समूह तमिउ।

घत्ता—

परमेट्ठि पयासणु णिरुवम सासणु वंदि वि णिज्जिय जासु गुणा।
जिणु णवेवि पयत्ते कहमि हियत्ते सुह अणत्थमिय सुणेहु जणा ॥१॥

जय वड्ढमाण सिव उरि पहाण,
तइलोय-पयासण-विमलणाण ।
जय सयल-सुरासुर-णमिय-पाय,
जय धम्म-पयासण वीयराय ।
जय सील-भार-धुर धरण धवल,
जय काम-कलंक-विमुक्क अमल ।
जय इंदिय-मय-गल-वहण वाह,
जय सयल-जीव-असरण-सणाह ।
जय मोह-लोह-मच्छर-विणास,
जय दुट्ठ-धिट्ठ-कम्मट्ठणास ।
जय चउदह-मलवज्जिय-सरीर ,
जय पंच-महव्वय-धरण-धीर ।
जय जिणवर केवलणाण-किरण,
जय दंसण-णाण-चरित्त-चरण ।

घत्ता—
जिणवरु वंदे विण गुरुहु णवेविणु भाव वाएसरि सरिवि ।
अणथमिउ पयासमि जण उब्भासमि णियमण सुद्ध भाव करिवि ॥२

अन्तिमभागः—
पुणु पाविट्ठह हउं आसवकमि,
धम्मकहा पयडे विण सवकमि ।
तेण समुच्चएण मइं जंपिउ,
भव्वयणहं उवसंतहं जंपिउ ।
इउ अणथमिउ जिणागमे उत्तउ,
एव्वहि मइं हरियंद णिवुत्तउ ।
इहु अणथमिउ जु पढइ पढावइ,
सो णरु-णारि-सुरालउ पावइ ।
जो पुणु अविचलु मणि णिसुणेसइ,
तहो सुह विमल वुद्धि पयडेसइ ।
जो अक्खलिउ अणथमिउ करेसइ,
सो णिव्वाण णयरि पइसेसइ ।
मइं पुणु भावें कव्वु चडावइ,
सुणअ सुअण वहुगुण अणुरायइ ।
पाविउ वील्हा जंडू तणएं जाएं,
गुरु-भत्तिए सरसइहिं पसाएं ।

गाथा—
अयरवालवंसे उप्पण्णाइं मइं हरियंदेण ।
भत्तिए जिणु पणवेवि पयडिउ पद्धडिया छंदेण ॥१॥
इय अणथमी कहा समत्ता ।

७१ चूनडी (रास)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

आदिभागः—
विणएँ वंदिवि पंचगुरु,
मोह-महा-तम-तोडण-दिणयर ।
वंदिवि वीरणाहु गुण गणहरु तिहुयण सामिउ गुण णिलउ
मोक्खहँ मग्गु पयासण जगगुरु,
णाह णिहालहि चूनडिय,
मुद्धउ पभणइ पिउ जोडिवि कर ॥१॥ ध्रुवकं
पणवउँ कोमल-कुवलय-णयणी,
लोया लोय-पयासण-वयणी ।
पसरिवि सारद-जोण्ह जिम,
जा अंधारउ सयलु विणासइ ।
सा महु णिवसउ माणसहिं,
हंसवधू जिम देव सरासइ ॥२
माथुर संघहं उदय मुणीसरु,
पण विवि वालइंदु गुरु गणहरु ।
जंपइ विणय मयंकु मुणि,
आगमु दुग्गमु जइ विण जाणउं ।
मालेज्जउ अवराहु महु,
भवियहु इह चूनडिय वखाणउं ॥३

अन्तिमभागः—
तिहुमणि गिरिपुरु जगि विक्खायउ,
सग्ग खंडु णं धरयलि आयउ ।
तहिं णिवसंतें मुणिवरेण,
अजयणरिंद हो राय-विहारहिं ।
वेगें विरइय चूनडिया सोहहु,
मुणिवर जे सुय धारहिं ॥३२॥
इय चूनडीय मुणिंद-पयासी,
संपुण्णा जिण आगम भासी ।

पढहिं सुणहिं जे सद्दहहिं,
तेण णिव्वुइ सहहिं पयत्तें ।
विणएं वंदिवि पंचगुरु ॥३३

७२. णिज्झर पंचमी कहा (निर्झर पंचमी कथा)

कर्ता—मुनि विनयचन्द्र

आदिभागः—

पणविवि पंच महागुरु सारदि धरिवि मणेँ,
उदयचंद गुरु सुमरि विवधविलास मुणेँ ।
विणय चंदु फलु अक्खइ णिज्झर पंचमिहि,
णिसुणहु धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमिहि ॥

अन्तिमभागः—

तिहुअणगिरि तल हट्टिय इहु रासउ रइउ,
माथुरसंघहं मुणिवर विणयचंद कहिउ ।
भवियहु पढहु पढावहु दुरियहं देहु जलु,
मारणु करहु सम्मह मणुरंजणहु अचलु ।
जे (जि) प भणनि अडाग पंचमि पंचपहु,
अम्हहिं दरिसावहु अविचलु सिद्धि सुहु ।

७३ कल्याणक रासु

कर्ता—विनयचन्द्र

आदिभागः—

सिद्धि-सुहंकर सिद्धि-पहु पणविवि ति-जय-पणामण ।
केवलसिद्धिहि कारणि सुणमि हउं, अयन थिजिण कल्याण
णिहियमल ।
सिद्ध सुहंकर सिद्धि-पहु ॥१॥
पढम पवित्त दुइज्जहि सावतहि
रिसह गब्भावहि उत्तर साढहि ।
अ पिवारो छट्ठिहि तहिमि (हउ)
वंदमि रायपुज्ज मम्भुरयउ ।
विमलु मुणिंदउ अट्ठमिहि दसमिहि
धमि जिन जम्मणु महु तउ ।
सिद्ध सुहंकर सिद्धि पहु ॥२॥

अन्तिमभागः—

एहमणु एयारि कल्लाणइ णिंथ
णिव्वाणहि अहवन रासउ ।
तिहि आयविनु जिणु भणइ
पउहिमि होइ उववासु गिहत्थहु ।
अहवा अयलहु सवणविहि
विणयचंदु मुणि कहिउ समत्तहु
इति श्री भट्टारक विनयचंद विरचित कल्याणक विधि समाप्त।

७४ सोखवइ विधान कथा

कर्ता—विमलकीर्ति

आदिभागः—

पणविवि तित्थंकर सिद्धि सुहंकर सुह संपइविहि मणहर ।
गुण गणहर विरयंतह वर दिसु वोहि महु सुन्दर ॥

अन्तिमभागः—

रिसिहेम सिस्सु वइ मुणि विमलकित्तिसि ।
महु देहिउ सत्त भय सिद्धि अपत्ति ॥

घत्ता—

जो पढइ सुणइ मणि भावइ
जिणु आरहइ सुह संपइ सोक्ख लहइ ।
णाणु वि पज्जइ भव-दुह-रिवज्जइ
सिद्धि विलासणि सो रमइ ॥

७५ चंदणछट्ठी कहा (चन्दनषष्ठी कथा)

कर्ता—पं० लाखू (लक्ष्मण)

आदिभागः—

पणवेप्पिणु भावें विमलसहावें पाय पंच परमेट्ठिहिं ।
अक्खमि निय-सत्तिए भवियन-भत्तिए ज फलु चंदण-छट्ठिहिं ॥

अन्तिमभागः—

इय चंदणछट्ठिहि जो पालइ महु सत्तल ।
सो दिवि भुंजिवि सोक्खु मोक्खहु जाणें लक्खणु ॥

७६. णिद्दुक्खसत्तमी कहा (निदुःखसप्तमी कथा)

कर्ता—मुनि बालचन्द्र

आदिभागः—

णमि जिनि इह पयसमणु भय-मय-नणु म-न्तर-णिवार ।
उदयचंद गुरु धरेवि मणे बालचंदु मुणि भणिवि णिरवद ।

णंउ दिट्ठाणउ सेविय मुसेय,
मइं सद्द-सत्थ-जाणिय ण भेय ।
णो कत्ता कम्मु ण किरिय जुत्ति,
णउ जाइ धाउ णवि संधि उत्ति ।
लिंगालंकाह ण-पय-समत्ति,
ण वुज्भिय मइ इक्कवि वि विहत्ति ।
णिग्घंटु वि यो जो अमरकोसु,
.......................।

× × ×

घत्ता—

भो सुणु बुद्धीसर वरमहि दुहहर,
इल्लराज सुअणा खिज्जइ ।
सण्णाण सुअ साहारण दोस
णिवारण वरणरेंहि धारिज्जइ ॥

इय सिरि संतिणाह चरिए णिरुवम गुणरयण संभरिए अण्णाणमयो (?) इल्लराजसुअ-महिदु विरइए सिरिणाणा सुअ-संघाहिव-महाभव्व साहारणस्स णामंकिए भव्वयण जण-मणाणंदयरे सिरि इट्ठदेव-णमोयारकरणं सेणिय महाराय सिरि वड्ढमाण समवसरण गमणं-धम्मक्खाण-निसुणणं पढमो इमो परिछेओ समत्तो ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

अहुणा णामावलि, वण्णवि आउलि पभणउ अइसुहयारी ।
सिरि वीरु णवेपिणु हियइ धरेविणु सुद्धविदा पहुकेरी ।

पद्धड़ी—

इह जोयणिपुरु पुरवरहँ सारु,
जहु वण्णणि इह सक्कु वि असारु ।
सालत्तय मंडिउ सो विभाइ,
कोसी सहि परिहा दुग्गणाइ ।
जो वण-उववण-मंडिउ विचित्तु,
णं मेरुवि चेईहर-पवित्तु ।
तण्णियड वि जउणा-णइ वहेइ,
णं गंग वि ईसहु सहु वहेइ ।
खंड गोउराइं अइ जिगि मिगंति,
खण मुहहु वि णं अवयारु दिंति ।
जह रक्खइ गोरव दंडधारि,
अरियण-गणाह जो संपहारी
पच्चंत णिवउ संगहइ दंडु,
रायाहिराउ वव्वरु पयंडु ।
मिच्छाहिउ अइव विणाय जाणु,
महसूलणोव्व जणदिण्णमाणु ।
जहिं चाउवण्ण पय सुहि वसंति,
णिय णिय किरियाइविरत्तचित्ति ।
तहिं चेत्तालउ उत्तुंग सहइ,
धयमंडिय मोक्ख [सु] मग्गु वहइ ।
जहिं मुणिवर सत्थइं वायरंति,
मह जण्ण-पूय सावय करंति
तहिं कट्ठसंघ माहुर वि गच्छि,
पुक्खर गण मुणिवर चइविलच्छि ।
जसमुत्ति वि जसकित्ति वि मुणिंदु,
भव्वयण-कमल-वियसण-दिणिंदु ।
तहु सीसुवि मुणिवरु मलय कित्ति,
अणवरय भमइ जागि जाह कित्ति ।
तहु सीसु वि गुण गणरयण भूरि,
भुवणयलि सिद्ध गुणभद्द सूरि ।

सोरठा—

तहु पय भत्तउ साहु भीमराउ जाणिज्जइ ।
गुण वड्ढियइ णिवास जोयणिपुरि णिवसज्जइ ॥१॥

चौपाई—

जें तित्थयर वि गोत्तु णिवद्धउ,
करि पयट्ठ सुह-पुण्ण वि लद्धउ ।
संघाहिउ गयपुरि संजायउ,
अयरवालु संघह सुह-भायउ ।
गग्गगोत्त-णिम्मल गुण सायरु ।
सुथिरें मेरुवि तेय-दिवायरु ।

पद्धड़ी—

तहु भज्जवि घील्हाही विसार,
णाहहु गामिणि णं गंगफार ।
तहु पुत्त पंचणं मेरुपंच,
मह-वयइ पंच णं समिइ पंच ।

पहिलारउ संघहु भारधरणु,
घउभेय संघ वहु भत्ति-करणु।
संपाहिउ खेमचिंद सारु,
तहु विण्णि भज्ज गुणगण विसारु।
पउम वि धीवगहो गुणवरिट्ठु,
बीई नानिगहो पदव इट्ठु।
तहु पुत्त चयारि वि पउ णिधांस।
धीया पउमउ भज्ज वि पमोय। —
तिहुणाहो णामें रोमिदासु,
सोउ वि जायउ सील किरणहासु।
तहु कामिणी वि गज्जो वि णाम,
बीयउ सुउ पिरथी मल्लु नाम।
तहु पियवर हिनगहो पसिद्ध,
तहु पुत्त चयारिवि गुण-समिद्ध।
पढमउ उधरणु रणणाउ विनीउ,
गुण गण गरिट्टु धणराउ बीउ।

चौपाई—

पउत्थउ मानसिंघु वि भणिज्जइ,
खेमचन्द्र सुउ तीयउ गिज्जइ।
इंदेव बीउ सो इंदराउ,
रावणहो कामिणि जो गराउ।
तहु पुत्त विण्णि णं मच्छिणिल्ल,
गंगीविहागु णारणु रंगिल्ल।
पुणु चउथउ चंदु वि चंदहासु,
दीवाहो पहु सुउ सामिदासु।

घत्ता—

भोयहु सुउ बीयउ गुण गण जुत्तउ,
णाणचंदु पभणिज्जइ।
गहु भामिणि गुन-गण-गामिणि,
सउराजही भणिज्जइ ॥७॥
गहु तिण्णि पंगहु भिण्णि रयण,
णं तिण्णि मोय ते गुरुवयण।
पढमउ गग्गेय वि जग चरणु
सारण विण्णाणे सुद्द करणु।
तहु ससण तिलोयाही गुणाल,
[illegible]।

बीयउ संघउ भार धुरंधरु,
देवसत्थ गुरु भत्ति वि पायरु।
जिण सहु पोमिणि महिमायहंसु,
पावारिसाय जो पवरहंसु।
जुण्णय-सेतु जय जत्तकारि,
विहवेण विजित्तउ जे मुरारि।

चौपई—

पंडियसमूह दप्पणु गिज्जइ,
पंडियाह गुणणाय भणिज्जइ।
साधारणु णामें सो भाणिउ,
उवना रहिउ वि जण-महि-माणिउ।
तहु वणिया सीवही णामें,
णं गरधोरणि पेमिय-कामें।

पद्धडी—

तहु चारि तणुब्भव गुण महंत,
वेहुवि सुय ममयहु चंदु मंत।

चौपई—

चंदणहो भज्जहि गसहल्लव,
बीयउ जेट्ठवि मल्लु गुणिल्लव।
घर भदासही भज्ज पसंसिउ,
तीयउ जितसल्लो वि पसंसिउ।
सो पिया वि संमसो रइ माणइ,
पुणु घउरथु सोहिलु पिउ माणइ।
तासु णारि भीखणही पावण,
णं मत्तोयरि मीमहु भावण।
सयाहिन णाणातीउ पुत्तु,
णयाहिउ तालट्ठणु गुणविभित्तु।
संपयइ वि मोयहु तीउ तीउ,
सिरियचंदुभाणंतु भोउ।

घत्ता—

[illegible] गुणहि मणोज्जा हरराजहो य भणिज्जइ।
[illegible] वि सीसा *[illegible]* गुणहि *[illegible]* गिज्जइ ॥

पद्धडी—

तहु भुल्लणु णामे तीउ (य) राउ,
जे कामिणीहि *[illegible]*।

विज्जाणंदिय दंसण साहारण भणिया ।
पंडिय सोहि पयासहु कोइल पंचमिया ॥

इति श्री नरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत कोकिला पंचमी कथा समाप्तः ॥

९१ मउडसत्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)
ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

दंसण गुणसार हो केवलधार हो तिहुवण कंज दिणेसर हो ।
कलिमल णिण्णासहो धम्म पयास हो पणविवि वीर जिणेसर हो ॥

जिण वयणुब्भव सरसइ पवित्त,
भुवणत्तय दंसण सद्दवित्त ।
सिरि कुंदकुंद गणि रयण कित्त,
पहसोम पोमणंदी सुवित्ति ।
हरिभूसण सीसु णरिंद किंत्ति,
विज्जाणंदिय दंसणवरित्ति ।
वंदे वि पयासमि सुह-णिहाण,
पुव्वुत्त मउडसत्तमि विहाणु ।

अन्तिमभागः—

अण्णजि पाले सहि वय-विहाणु,
ते पावेसहिं अमरत्त ठाणु ।

घत्ता—

जे किरीड सत्तमि विहि सुह मंगल णिह पालहिं भवसरि तारण ।
ते णरिंदकित्ती धर खयर पुरंदर होंति बंभसाहारण

इति श्री नरेंद कीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत मुकुट सप्तमी कथा समाप्तम् ।

९२ दुद्धारसि कहा (दुग्ध द्वादशी कथा)
ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

जिण सिद्ध भडारहो तिहुअण सारहो आयरियहो पुणु उज्झयहो ।
वंदे वि मुणिंद हो कुवलयचंद हो दुद्धारसि पयडमि जणहो ॥१॥

जिण वयण कमल रुहदिव्व वाणि,
पणमामि जगत्तय पुज्ज जाणि ।
णिग्गंथ सवण णिय मणि धरे वि
पहचंद भडार हो थुइ करे वि ।
दुद्धारसि कह फलु सावयाह,
जह गोयम भासिउ सेणियाह ।
तह भासमि जइ हउं मंद बुद्धि,
सर सइहि पसाएं कव्व सुद्धि ।

अन्तिम भाग :—

अण्णुवि जो इय विहि पालेसइ,
णरु तिय सो सुरलोय गमेसइ ।
जिणवर दंसण मूल गुणायर,
पोमणंदि हरिभूसण भायर ।
सीसु णरिंदकित्ति भवतारण,
विज्जाणंदि बंभ साहारण ।
पयडिय एह कहा जणमणहर,
णंदउ ताम जाम रवि ससहर ।

घत्ता—

जे पढहि पढावहि भव्वयण णियमणि णिच्चउ भावहिं ।
ते बंभ सहारण वय फलेण, अमर लोय-सुह पावहिं ॥५॥

इति णरेंद्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत क्षीरद्वादशी कथा समाप्तः ।

९३ रविवय कहा (रविव्रत कथा)
ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

केवल सिरि सारहो गुणगणधारहो कम्मकलंक वियारहो
उवसग्ग णिवारहो णयसुयर सारहो पणविवि पास भडारहो ॥१॥

वंदि वि परमेसरु वड्ढमाणु,
जसु तित्थें धम्म पवट्टमाणु ।
सुर असुर णमंसिय परम वाणि,
पणविवि गोयम गणि दिव्व णाणि ।
जिण समय मूल सिरि कुंदकुंदि,
पहचंद मुणीसर पोमणंदि ।
हरिभूसण सीस णरिंद्रकित्ति,
गुरु चरण णमंसि वि पयड कित्ति ।

पुणु दिणयर वासर कह करेमि,
भव्वयणहो मणि संसउ हरेमि ।

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जो रविवासर-वउ करहिं गलिय-मउ दंसणुत्त वय धारणु ।
ते णरिंदकित्तितणु लहहिं सुरत्तणु परम बंभ साहारणु ॥५॥

इति रविवासर कथा श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत समाप्तः ॥

९४ तियाल चउवीसी कहा (त्रिकाल चौवीसी कथा) ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

तिहुवण सिरि तिलयहो गुणं-गण-णिलयहो भविय कुमुय-वणचंदहो ।
रयणत्तय-जुत्तहो कलिमलचत्तहो पणविवि परम जिणिंदहो ॥१॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जे तियालचउवीसहे णिहय रईसहि विरयहि विहि गुण धारणु ।
ते णरिंदकित्ती पउ अमरेसर जउ लहहि बंभ साहारणु ॥५॥

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारणकृत त्रिकाल चउवीसी कथा समाप्तं ।

९५ कुसुमंजलि कहा (पुष्पांजलि कथा) ब्रह्मसाधारण

आदिभागः

परमप्पम सारहो गुणगणधारहो, पयडिय तच्च वियारहो ।
पासिय वय बम्हो दुक्ख णिसुंभहो पणविवि वीर भडारहो ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

जे कुसुमंजलि विहि विरयहि कयदिहि पाव-किलेसणि वारण ।
ते णरिंद कित्तेसर अमर खगेसर पयड बंभ साहारण ॥५॥

इति श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत पुष्पांजलि कथा समाप्तः ॥

९६ णिद्दूसो सत्तमिवय कहा (निर्दोष सप्तमी व्रत कथा) ब्रह्म साधारण

आदिभागः—

रयणत्तय धारहो भवसरितारहो समय कमल सरणे सरहो ।
गुणगण संजुतहो सिवपुरपत्तहो वंदिवि वीर जिणे सरहो ॥

अन्तिम भागः

घत्ता—

जे णिम्मल भावहि वज्जिय गावहि पढहि पढावहि एह कहा ।
ते णर सुर सुक्खइ लहहि असंखइ बंभ सहारण कहिय जहा ॥४॥

इति नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत निर्दुःख सप्तमी कथा समाप्ता ।

९७ णिज्झर पंचमी कहा (ब्रह्मसाधारण)

आदिभागः—

पणविवि परमेसरु वीर जिणेसरु वाए मणि णियमणि धरि वि ।
पहु-विति पसाए मणि अणुराएं णिज्झर पंचमी फलु कहमि ॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

सिरि मूलसंघ उदयद्दिगिरि मुणि पहु कित्ति दिणेसरु ।
तहो सीसु महारणु बंभवरु तें पयडिय पणवेवि गुरु ॥५॥

इति श्री नरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्मसाधारण कृत निज्झर पंचमी कथा समाप्तः ।

९८ अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा) ब्रह्मसाधारण

आदिभागः—

वंदिवि जिणवर वाणिगुरु पयडि तित्थ वहु सत्थ पयासिणि।
पंडिय लोयहो जडमइ णासिणि सरसइ होउ पसण्ण महु॥

सुरणर खेयर णमिय भडारी वंभ सहारण विण्णवइ।
जह अणुवेहा कव्वु पयासमि। वंदि वि जिणवर वाणि गुरु।

अन्तिमभागः—

परम तच्च सिद्धंत पयासणु,
गोयम कुंदकुंद गणि सासणु।
पहसिसि पंकयणंदि गुरु,
हरिभूसण णरिंदकित्ति तणु।
विज्जाणंदिय सीसभरु,
परम वंभ साहारण पणविय वंदिवि।

इति श्रीनरेन्द्रकीर्ति शिष्य ब्रह्म साधारण कृत अनुप्रेक्षा समाप्ता।

९८ सिरिपाल चरिउ (सिद्धचक्रव्रत कथा)

कवि रइधू

आदिभाग—

सिद्धहं सुपसिद्धहं वसु-गुण-रिद्धहं
हियम कमले धारे वि निरु।
अक्खमि पुणुसारउ सुह-सय-सारउ
सिद्धचक्क-माहप्य-वरु॥
छांगे साहु हु वंस अलंकिउ,
गुणिवर गुण भावइ निसंकिउ।
बाटू साहुहु पुत्तु धुरंधरु,
जिणणाहहो पय-पयरुह-महुयरु।
दाणें तिविह-पत्त-पोसणयरु,
दिउचंदही भज्जहि पुण जो वरु।
करमसिह णंदणेण समाणउ,
सोहय महियलिउ नय-माणउ।
सो हरसीहु साहू विक्खायउ,
जो-जिण-पय-पंकय-अणुरायउ।
जो सावय-वय-दिढधरकंधरु,
जो गुणियण तरु-पोसण-कंधरु।
जो चेयणु सु एकु मणि भावइ,
झाणें चेयण जो पुणु झावइ।
तिण्णि काल रयणत्तउ अंचइ,
जो णिउय चारिवि सं सुन्चइ।
जो परमेट्ठि पंच आराहइ,
जो पंचेंदिय विसयहं साहइ।
मिच्छामय पंचवि अवगण्णइ,
जो वासरु छह कम्महं मण्णइ।
जो छद्दव्व—भेय सुणिहालइ,
सत्त-तच्च-सद्दहइ रसालइ।
सग-दायार-गुणहिं अणुरत्तउ,
सत्त-वसण-वासणहिं विरत्तउ।
अट्ठ-सिद्ध-गुण-चिंतण-तप्परु,
णिस्संकाइ अट्ठगुण सुंदरु।
अट्ठ-दव्वजिण-चरणहं पुज्जइ,
पत्तदाणु दें विसयइं भुंजइ।
णव-पयत्थ-भेये जो जाणइ,
दहविह धम्महं जो रइ माणइ।
तहु विण तिवसें भव-हारी,
अक्खमि सिद्धचक्क कह सारी।

घत्ता—

भव-भय-सयहारी तिहुवणसारी
सिरिपालें जा विहिय चिरु।
सा रुय-णिण्णासणि विग्ध विणासणि
भणमि लोयमणुधरि वि चिरु॥

× × × ×

इय सिरि सिद्धिचक्क सुविहाणे महा मंडलेसर सिरिपाल-आयसुपहाणे सिरि महाभव्व-हरसीसाहु णामंकिए मयणसुंदरि-विज्जालाहो नाम पढमो संधि परिच्छेओ समत्तो॥ संधि १॥

अन्तिमभागः—

घत्ता—

पुणु देवि सरासइ णविवि समासइ
णेमित्ति हु वंसु जि भणमि।

पुणु जा मुहिरज्जें दुण्णयवज्जें
हुवउ सत्थु पुणु पुणमि ॥
गोपाचलु दुग्गु पसिद्धु णामु,
धय-कंचण-रिद्धु जणाहिरामु।
गोउर-पायारंकेउ सुवित्तु,
पर नर अगमु न सयहि चित्तु,
तहिं अत्थि राउ भरि कुल कयंतु,
तोमर-कुल-पायडु मह महंतु ॥
सिरिडूंगरिंदु णामेण भूरु,
विष्फुरिय पयावें णाइं सूरु ॥
तहु कित्तिपालु णंदणु गरिट्ठु,
णं रुवि कामु सव्वहं मणिट्ठु।
तहु रायरज्जि सम्माणवंतु,
सिरि अयरवाल वंसहि महंतु।
सावय-वय-पालण-विणय-तंदु,
रिसि दाण पहावें जो अमंदु।
याटहु जि साहु हुउ आसि धण्णु,
णिय जसेण जेण दिसि मग्गु छण्णु।
तहु भज्ज जसोवइ कमलवत्त,
तहु उवरि उवण्णा विण्णि पुत्त।
गुण गण भायण राहु मुजेट्ठु,
जिण चरण कमल जो भसलु मिट्ठु।

घत्ता—

बीयउ णंदणु पुणु भाविय
जिण गुणु सकल कलालउ सुद्धमणु ॥१॥
तहु नियसील विसुद्ध पउत्ती,
असपालहिय णाम मा उत्ती।
णंदण चारि ताहि उर जाया,
चारिदाण णं पायउ नाया।
पढमु साहु णयणसिंहु पउत्तउ,
णीयमग्गु जि मुणिउ णिरत्तउ।
विजयपालहिय तासु पुण भामिणी,
गुहम-सील-महाघण सामिणी।
यादु साहु हु बीयउ तणरुहु,
घण णामु सुपरियण-किय-सुहु।
बील्हाही पिय पम-भणु रायउ,
पुत्तहु जयलु ताहि उर जामउ।

जाटा णामें पढम भणिज्जइ,
गायणेहिं जो अहणिसु मिज्जइ।
जोल्हाही तहु पियय मउत्ती,
सा गोविंद सुवेण पउत्ती ॥
गोविंदहु तिय घोल्ही वुच्चइ,
तहु नंदणु तुणु चेचा गुच्चइ।
घणसीहहु सुतीयउ माला,
तहु तिय लाडो मइ सुकमाला।

घत्ता—

वाटू साहु हु सुउ तीयउ पुण
हुओ वोहिथ नामें दीहि-भुओ।
गुणगण रयणायर जिणवयणायर
नानिगही पिय भज्ज जुओ ॥२॥
जो पुणु वाटूसाहु पयासिउ,
तहु चउत्थणंदणु विजयासिउ।
हरसीसाहु नामु महि पायडु,
जो जिणभणिय सत्थ-अत्थहु पडु।
तहु कलत्त परियणहं पहाणी,
जिह सिरि रामहु सीया जाणी।
देव-सत्थ-गुरुवयण-कलायर,
दिव वंदही नामें नेहावर।
बीजी भज्जा पुणु वील्हाही,
णं गोविंदहु लच्छि पसाई।
तहु नंदणु पुणु कइयणु वणिउं,
जो डूंगर रायं निरु मणिउं।
नीमे करमसीहु सो नंदउ,
अह-निसु जिनवर चरणइं वंदिउ।
जउणाही तिहु तियमु पसिद्धी,
विहुकुल सुद्धरूव गुण-रिद्धी।
पुणु हरसीहहु पुत्ति पउत्ती,
नामा नंतमई गुण-जुत्ती।
जाइ अणंडु सीलुवउ पालिउ,
कलि-मलु अमुहु णचित्तहु खालिउ।
पुणु विननो तहु लहु सुय सारी,
मयलहु परिवारहु सुपियारी।
एहु गोत नंदउ महि मडलि,
जा रवि-ससि निवसहि आहंडलि।

एयहं सव्वहं मज्झि पहाणउ,
सत्थ-पुराण-भेय-वहु जाणउ ।
कलिकालेंजि आणुद्धरियउ,
चेयण गुण अखंडु विप्फुरियउ ।
तिण्णिकाल रयणत्तउ अंचइ,
सुद्ध धम्म जो अह-णिसु संचइ ।
जेण लिहाइ पुराण सुहं करु,
काराविउ अपमत्तें मणहरु ।
सो हरुसीह साहु चिरु णंदउ,
सज्जण चित्तहु जणिया णंदउ ।

घत्ता—

पोमावइ पुरवाड वंसिउ वणिउ कुल-तिलउ ।
हरसिंघ संघविहु पुत्तु, रइधूकइ गुणगण णिलउ ।

इति श्रीपाल चरित्रं पंडित रइधू कृतं समाप्तम् ।
आमेर भंडार प्रति सं० १६३१
(दिल्ली पंचायती मंदिर प्रति सं० १६७३ से संशोधित)

६६ पार्श्वपुराण

कवि तेजपाल

रचना काल सं० १५१५

आदिभाग—

गुण-वय-तव-सायरु उवरि जसायरु णिरुवम सासय-सुह णिलओ ।
पणविवि तित्थंकरु कइयण सुहयरु रिसहु रिसीसर कुल तिलओ ॥

देविंदेहिं णओ वरो सियरो जम्मंवुही पारणो,
कम्मारीणवि इसणो भय हरो कल्लाण मालायरो ।
झाणे जेण जिओ चिरं अणहिओ कम्मट्ठु पुट्ठासवो,
सोयं पास जिणिंदु संधवरदो वोच्छं चरित्तं तहो ॥

(इसके आगे चौवीस तीर्थंकरों का स्तवन है)—

घत्ता—

संसारो वहि तारण कुमइ णिवारण
विगय दोस गुण गण णिलया ।
गोयम पमुह भडारा णिज्जियसारा
पणवेप्पियु तिहुवण तिलया ॥२॥
जो पंच महव्वय धरणधीरु,
सुइ समिति गुत्ति भूसिय सरीरु ।
मुणि पउमणंदि तिरयण णिहाणु,
सिवणंदि सीसु तहो गुण पहाणु ।
तहो णंदणु मुणियणपायभत्त,
वुच्छिय जणाण पूरण सुसत्त ।
पढमउं भीखमु परियण सहारु,
णिव्वाहिउ जें चउ संघ भारु ।
पुणु तहो अणुउ आणंदु जाउ,
जिणधम्म धुरंधरु विगय पाउ ।
जिणदासु पुणु वि सव्वहं समत्थु,
सिवदासु अवर णामेण सत्थु ।
पंचमु रुक्सुखु गुणगण पवीणु,
छट्ठमउ चित्तू जिण समय लीणु ।
पुणु सत्तमु उत्तम जीव दुक्ख,
अवहत्थिय विहल जणाण दुक्ख ।

घत्ता—

जो तुरियउ भायरु धम्म कयायरु
रेहइ जिणमइ मत्ति रउं ।
सावय-वय उत्तिउ वसण विरत्तउ,
सेवदासु वणि विगय-भउ ॥३
तहो णंदणु णियकुल कमल मित्तु,
सव्वासा पूरण जासु चित्तु ।
जदुकुल कुवलय रयणीस तुल्लु,
पर उवयारहं जो मणि अमुल्लु ।
काराविय वहु संतीय जेण,
लच्छिहि फलु गिण्हिउ सुहमणेण ।
जिण चरण कमल गंधोवएण,
तणसिंचिवि कलि-मलु-हीणउ चित्तिजेण ।
सम्मत्तरयण भूसिय णियंगु,
जो पालिय सावय वय अभंगु ।
दाणेहि गुणेहिं विअइ पयीणु,
वुहयणभत्तिए जसु चित्तुलीणु ।
मायरिहिं लोभेण जे पूरियासु,
अवगण्णिय वहुदुज्जणु दुरासु ।
णामेण मदो पिय सुह-णिहाणु,
सम-वसण-तिमिर-हरणेकु भाणु ।
णियजस धवलिय जे भुवण सत्थु,
जे विद्ध सि णामें परम भव्वु

घणमणहु सुउ व मालपुलानु,
मे णाउं ठविअउ सुउ तेजपालु ।
भो परम निहः सुण गरव गेह,
सम्मालिय पयावगुविसुद्ध देह ।

घत्ता—

जिणवय पु निणुवरल ? गुरुवालरणण जिर गुरुयसु
पयासहिं ।
निरिपालणहंदद सुव्वणिरनर, मझेविरएवि समासहिं ॥४॥

× × × ×

गिरिपालयचरिसं रइयं बुह तेजपाल साणंदं ।
मणु मण्णियं सुहडं घूघलि णिवदास पुत्तेण ॥१॥
देवाण रयण विट्ठी धम्माएवीए सोऊणोदिट्ठो ।
कय गब्भ सोहणत्थं पउमो संति इमो आयो ॥२॥

अन्तिमभाग—

सुहडासु चरिउ पद्धडियबंधु, घूघलिनरारा विउरवणिबद्ध ।
कम्मक्खय कारणु जिणचरितु, विग्घउ भवसायर आणवलु ॥

घत्ता—

भाउच्छण सुच्छण सुच्छमई, पउ-तव-संजम-णियम-चहा ।
समुदाय पयरमहु सहियलहु, पाम जिणिद भणिद हो ॥३७

जिणु सासण वड्डउ सयण मान,
जणु वड्डउ वरिसउ मेह मान ।
सुरयाणउ मानउ महि सुहिक्खु,
गय वड्डउ वड्डउ गोह दुक्खु ।
जिण पासु हरउ अघ-कम्मयहिं,
महो देउ सुद्ध सुंदर समाहि ।
णंदउ महिलेमि णिवदासु साहू,
समसउ विमलु सम्मसगाहु ।
घूघलि साहु गो कय गुणमिणि,
पयंगिय असउ धम्मपिये विनि ।
महि विर जमहि रवि-चंदु जाम,
णिवदास वसु णंदउ वि ताम ।
विक्कम णयराह णंदउ वाणि,
पणिणयाहिं सम-असम-विमाणि ।
हम्महुं सउ पयरस सहियलहिं,
एतिवइ वि सउमउ समहिं ।
णवणिय विणु कणियहिं मणि,
धारे मललउ नरय मानि ।
निरि पालणाहु भव-कम्महिं जाणु,
महो एविउ दिज्जउ विमलणाणु ।

घत्ता—

वड्ढतण मिणु सायरि भुवण मुहायरि धणमिदु हो सुर
णियमिया ।
कइ सेय सुहलिएं, घूघलि भणिएं निरमण वाएणहि
गुमिया ॥३८

णामें सुरजण साहुपावर,
संघकंतु जगमण सोणासुत ।
धणसिरि रमणि सुहणोहासिय,
णिय जग पहरहि सरमुह वाणिय ।
सोमवर पउरयर णायर,
मयणंदण गुणमणि रयणायर ।
सुरजणसाहु गरिम्पण सुगउ,
सच्छव घरि सुहि णिवसतउ ।
ता संसार णिए वि विरत्तउ,
सागण बारह मणि सुमरंतउ ।
वेराग्ग पउणिय पर थठिउ,
सुति रमणि णहसुवरठिउ ।
णणिवि पोमणंद मुणिणायउ,
दिक्खिउ णिवरादि भडारउ ।
सुरजण पवरवणि दिक्खालउ,
कम णासेवणाग दिव्वागउ ।
वइ वय बरिस मणु धरियउ,
सल्लणेसणु सुएवि सुराविसउ ।
धम्मज्झाणें भव-सायर-णारउ,
गउ सुर हरि णिवसंतु भडारउ ।

घत्ता—

महो सुरजण साहुर मल सहिणउ अहि विलयम्य ।
णाह जिणसासणि णिम्मलणि सायर-विमलमल्हा ॥३९

सीराणु साहु पालवियहुणउ,
पुणु आणंदु सुरलिय सुगउ ।
धरणि उदयगिरि गेह परारो,
इं दि हमनिरि स दंसारो ।
देवराजु महो णंदणु आवर,
रयणु दुरम्मउ गंथ विणायउ ।

तइयउ णेमिदासु जगि सुहियरु,
आणंद हो जिणदासु सहोयरु।
तासु महादे रमणि पउत्ती,
साजिणपाय सरोरुह भत्ती।
तासु पुत्तु मण सुक्ख मणोज्जउ,
लहु भायरु माणिक्कु दुइज्जउ।
सा सुरजणहु पुत्तु चउत्थउ,
सेवदासु भुवणयलि पसत्थउ।
गेहिणिहलो सुभत्त जिणिंदहो,
णाइं सुलोयण जयहु णरिंदहु।

घत्ता—

तहो कुच्छि उ वण्णउ लक्खण पुण्णउ कुलसुहयरु पुत्तत्तउ।
णं जिणवर सासणि दुरिय पणासणि सहइ परम
रयणत्तउ ॥४०

पढमउ घूघलि गुणसंपुण्णउ,
णररूवे जिणधम्मु उवण्णउ।
जिणपूया विहि करण पुरंदरु,
सील णिहाण सव्वजण सुंदरु।
कम्मक्खय कारणु मणि भाविउ,
जेण जिणिंद चरित्त कराविउ।
तित्थयरत्त गोत्तु णिरु बद्धउ,
माडणि रमणिहि पिउ जस लुद्धउ।
णंदणु तहो दसरहु पिउभत्तउ,
सिरिचंदु वि णंदउ गुणवंतउ।
सा घूघलिहि धणू लहु भायरु,
गेहिणि दीयाणेह कयायरु।
पुणु विसण्हु वुच्चइ लहुयारउ,
कुमुम सिरिहि घरिणिहि मणहारउ।
पंच·····················

(Incomplete meeter.)(१०२वां पत्र नहीं)
प्रति—भट्टारकहर्षकीर्ति भंडार, अजमेर
पत्र १०१

१०० सिरिपाल चरिउ (श्रीपाल चरित्र)

कवि दामोदर

आदिभाग—

··············
··············
··············
··············
··············
··············

सो कुंदकुंद मुणिवरु जियक्खु,
दिवि दिवि धुयमाणुण्णय विवक्खु।
दीसइ पसंतु जगि कयकयंतु
सरतिय रंडत्तणु रय महंतु।
मंथइ गोरसु मिण्हइ ण तक्कु,
परितत्रइतवणु गच्छइणवक्कु।
रयणायरु णउ पय पुण्ण देहु,
गंभीरुण सरयब्भुवि सुमेहु।
मंतोवहि वद्दण पुण्णिमिंदु,
पहचंदु भडारउ जगि अणिंदु।
तहो पट्टवर मंडल मियंकु,
भव्वाण-पवोहणु विहुय संकु।
सिरिपोमणंदि णंदिय समोहु,
सुहचंदु तासु सीसुवि विमोहु।
परवाइ मयंगय पंचमुहु,
परिपालिय संजम णियम विहु।
तह पट्ट सरोवर रायहंसु,
जिणचंद भडारउ भुवणहंसु।
वंदिवि गुरुयण वरणाणवंत,
भत्तीइ पसण्णायर सुसंत।

घत्ता—

महो कव्व करणि गुरुयण,
सयला करहुं सहाउ जि महुरसरा।
भव्व कुमुय बोहण दिणयर
णिण्णासिय कंदप्प भरा ॥२॥
वुच्छामि पापभंजणु पवित्तु,
सिरिपाल णराहिव वर चरित्त।

सिरि सिद्धचक्क वउ वयहुयार,
मुत्तिप्पि य मागग हरण चार।
पुव्विल्ल सत्तु पिक्खिवि मणुज्ज,
विरइउ कर मूमी सग्गहि सज्जु।
जिणचंद सीसु सो धम्मचारि,
दामोयरु गरुवर मच्छयारि।
इक्खुवाय वंस संभूयएण,
सुहियण विणीय मइणा विएण।
कुल्लिउ दियराजह वर सुएण,
णक्खत्तसाहु माहिय भएण।
पुण्णिम मयंक वयणें वरेण,
परिमत्त पाय भारें परेण।
कहि रम्मु कहंतर पुण्णवासु,
संजणिय मणोहर फलु सुवासु।
आसु सु जिणचंद भव्वयणणीय,
पावंति परम गइ विणय-गीय।
भायण्णहो इच्छमि धम्मठाण,
सिरि सिद्ध चक्क कह जगि पहाण।
सिय मइ करें विविह भव्वणाव,
मगगन जण पोसण भयर वास।
सहो वयण मुणि वि हरसिउ कहेइ,
सिरि सिद्ध चक्क कह मुणि सहेइ।
सिरिसिहि दुक्कम सुकइ कव्व,
मग्गणु पुच्छि मग्गाण सव्वु।
सम्माणइ गहाउण ते सुणंति,
मग्गणु-दुग्गणु जणि पाविय भंति।
कइमाणइ उप्प महाउ भाउ,
हरिणंकु वि णीयसु सिरणाउ।
इय ते वि गहावें परिष्फुरंति,
दुग्गमु सिग्गमु धरंति।
माणम्मि कह सिरि सिद्धचक्क,
मानंकिय सिरुमिय पायचक्क।
पणवामि णमामि पुण्णकाम,
सिरि पाणय भव्व सुणि हय सुणाम।
पाव महिय कम्मु वि पासु,
मणिय सिणणाइं भरवइ।
सिंधु वि पसंदिय संभवासु,
मइ मज्झउ छ माणुए सुवासु।
पडमिल्लु लोउ मुणिवर भवंति,
विवरीय मगाणग सिह कहंति।
बीयउ वज्जायातु वि सुहंद,
तीयउ मुयंग सिरि सुवि भणिद।
वेन्नवि करिउण धरिउ पुव्व,
रविगहणनेण मग्गस्थ भव्व।
गमयेयसिद्ध तह सोउ एह,
भाणिउ पुब्वाइरियणि समोह।

× × × ×

अन्तिमभाग—

दियराज साहु वर णंदणेण,
सिरि णक्खत्तु भव्वें सुहमणेण।
सिरिपास णरणहोसुहचरिसु,
धम्मत्थ-काम-सिव कहुणगु।
मं मह विरयउ दामोयरेण,
जिणचंद चरण भत्तीपरेण।
संदउ ताम वि सिरि सिद्धचक्कु,
वउएउ सिद्धय पहुदिणारि चक्कु।
जं मरसु पधि पवरणु विहीणु,
सवलणु छडणभार णीसु।
अहिहाण पयत्थ विचार भागु,
आगम विरुद्ध उ भण णागु।
सोहत कइयर तं घरिण,
तह पहिउ हीणु परवणि पवित्तु।
सिद्ध म दोसु महोत्तमउ देवि,
उवयार करण पायव वि देवि।
जे सिरहिं सिहारहिं सुहमणीण,
सम्मत्तणिहि पावहि विरया दणीण।
गहहिं वयाहद ते पवर,
परिवारहिं सम्मुवि भणि महिर।
ते गयाविं पुहइ आयमरीण,
गगहय पुत्तारा धम्मणीण।
व चय सुणेसु सुह सिरिद णाम,
सिरि सिद्धचक्क देइ धामु।

धत्ता—

मइ समइ जिणेसर वयण मइ मार महारिय सिहुदमण।
साए सहि से सुणेमरहो दामोयर वरिय कर वयणा॥

इय सिरिपाल महाराय चरिए जय पयडं सिद्धचक्क परमातिसय विसेस गुण णियर भरिए वहुरोर-घोर-दुट्ठ-यर-वाहि-पसर-णिण्णासणे । धम्मइं पुरि सत्थपय पयासणो भट्टारयसिरि जिणचंद सामिसीस वह्म दामोयर विरइए सिरि देवराज णंदण साहु णक्खत्त णामंकिए सिरिपालराय मुक्त गमण-विहि वण्णणो णाम च उत्थो संधि परिच्छेओ समत्तो ॥

१०१ पार्श्वनाथ चरित

कवि असवाल
(रचनाकाल सं० १४७९)

आदिभागः—

सिव-सुह सर सारंग हो सुय-सारंगहो सारंग कहो गुण भरिओ ।
भणमि भुअण सारंग हो समसारंगहो पणविवि पास जिण हो चरिओ ॥

भाविय सिरि मूलसंघ चरणु,
सिरि वलयारयगण वित्थरणु ।
पर हरिय-कुमम पोमायरिउ,
आयरिय सामि गुणगण भरिउ ।
धरमचंदु व पहचंदायरिओ,
आयरिय रयण जस पहु धरिओ ।
वरपंच महव्वय कामरणु,
रणुकय पंचिंदिय संहरणु ।
वरधम्म पयासउ सावयहं,
वयधारि मुणीसर भावयहं ।
भवियण मण पोमाणंदयरु,
मुणिपोमणंदि तहो पट्ट वरु ।
हरि समउ णं भवियणु तुच्छ मणु,
मणहरइ पइट्ठ जिणवर भवणु ।
वर भवण भवणि जस पायडिउ,
पायडु ण अणंग मोहणडिउ ।
णडिया वय रयणत्तय धरणु,
धर रयणत्तय गुणवित्थरणु ।

घत्ता—

तहो पट्ट वर ससि णामें सुहससि,
मुणि पय-पंकयचंद हो ॥१॥

कुन्थुखित्ति पयासमि पहु आहासमि,
संघाहिव हो वहो अगिद हो,
इयं जंबूदीवहं पहाणु,
भरहंकिउ णं पुर एव णाणु ।
खेत्तंतरि देसकुसट्ठु रम्मु,
दो वीसमु जिण कल्लाणु जम्मु ।
कालिंदिय सुरसरि मज्झ गाई,
दस्सा छणयंतरि पवलु णाई ।
करहलु वरणयरु कण्हलुरम्मु,
यणिव परिपालणि पयलहइ सम्मु ।
चहुवाण वंसि अरि कुरुहणाई,
भोइव भोयंकिउ भायराउ ।
णाइतकुदेवि सुअ अरिगयंद,
चंदुवकुवलय संसारचंदु ।
जसुरज्जि पुव्व परिसाहि माणु,
संघाहिवेण विज्जइ पमाणु ।
सयचउदह इगहत्तरि समेय,
माहव धण सणिवासर पमेय ।
रयणमय विंव जिण तिलक सिद्धु,
तित्थयरणानु कुल आउ वद्धु ।
तहो जय रज्जिउ कय पुहइ रज्जु,
अरिकुल कयंतु पुह पुहइ रज्जु ।
तहो समइं रएउ गुणगण पसत्थु,
लेहाविउ संघाहिवेण गंथु ।
जदुवंस विकासणुभाणु सेउ
वंभुवंसु पालउ वह्म एउ ।

घत्ता—

एहु रज्जि धुरंधरु उण्णयकंधरु णिव कुवेर पहचंद गुरु ।
णयकयसुज्जिणालउ चउवीसालउ मंतत्तणि पहु संतियउ ॥२॥

तहो भज्जा तिण्णि कुसुवा पहिल्ल,
सुअकरम समरासह गुण गरिल्ल ।
सूहव वोई णक्खत्त कुमर,
मायरि पउमा लक्खणहे णवर ।
हुव पंच पुत्त गुणगण महंत,
धीरत्तणेण णं मेरु संत ।
करमसिह-समरणक्खत्त सीहु,
तुरियउ सुअकुमर अमरसीहु ।

णिव भोयमंति मंतण वियद्ध,
लक्खणो जेट्ठ भायरु गुणड्ढ ।
कमलसिरि जाय तहो तणिय भज्ज
पइवय-वयधारिणि पिय सलज्ज ।
तहिउ अरि पुत्तउ (अ) तिण्णि केय,
जि णवणिहि रयणइं तिण्ण जेम ।
पढमउ मण णंदणु णंदणक्खु,
सोणिग्गु बीउ सघवइ दक्खु ।
लहुभाइग लूणि व कज्जि दक्खु,
जिण व्रत्त पवित्त ण वित्त सत्थु ।
बहु विह विहाण उज्जावणासु,
कइहल्ल कवित्त पसंसणासु ।
जिण मल्लचरित्त णामकियासु,
सुअ तिलयताय जस पूरियासु ।
अट्ठविह पुज्जसुहदाणयासु,
जो भाइ जेट्ठु उवममधरासु ।

घत्ता—

गुणियणहं गुणायरु मंतणि कुलगुरु जिण गिहतुंग विसालउ ।
कारावण तप्परु संघाहिउ गुरुदाणेणं मयपालउ ॥४॥

तहो रामाणामें रामलच्छि,
सुरवइ सईव कुल कमललच्छि ।
सुउ गुण संघट्टवधाट मुक्खु,
णिव पयरु पियक्खर मयल चक्खु ।
इक्कहि दिणि जिणहरि ठंतएण,
जिणसत्थतच्च पयडं तएण ।
घाटेम्मताएं एह संतएण ?
दह लक्खण धम्मासत्तएण ।
जिणजत्त-पइट्ठ कयायरेण,
सयत्त रयणा रयणायरेण ।
लोणासिह भाइ णिव दुल्लहेण,
बोलिज्जइ रामावल्लहेण ।
अहो पंडिय लक्खण गुयगुलंग,
गुलराड वंसि घयवड महंग ।
किं धम्मे महधणु णिग्गुणेण,
रयणोहें बुह णिव फग्गुणेण ।
कीरइ जाणे विणु मणुयजम्मु,
सहलउ पयडेवि अहिंसधम्मु ।
संसार असारउ मुणहि एउ,
सारत्तण बुद्धिहि तच्च हेउ ।

उक्तंच—

'बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणं च,
देहस्य सारं व्रत धारणं च ।
अर्थस्य सारं किल पात्रदानं,
वाचाफलं प्रीति करं नराणां ॥'
रयणोहें किं कर जंपिएण,
किं बुद्धिएं तच्च अ जंपिएण ।
इउ सुणिवि मज्झु तोसेहि चित्तु,
करि कव्वु पासणाहहो चरित्तु ।
ते णिसुणवि कव्वहं तणउणामु,
बुहु आसुवालु हुउ जो सधामु ।
खणु इक्क विलंविवि भणइ तासु,
किं कुणमि कव्वु संघाहिवासु ।

घत्ता—

हउं मुक्ख णिरक्खरु अमुणिय सक्करु चिरु महकइ कह सोहणु ।
पावमि किरणोहें रविससि बोहें खज्जोयउ किं बोहणु ॥५॥

१०२ सांतिनाह चरिउ (शांतिनाथ चरित्र)

कवि ठाकुर रचना-काल १६५२

आदिभागः—

अति अनुपम अंगु जित्त मनंगु,
सांति सदा जगि सांतियरो ।
रवि जिम कमलाई भवि जन भाई
सह गुणकित्ति उछाह करो ॥१॥

दुवई—

जिनगुण चरित्त उदित उग्गत रवि,
जगि भवि कम्मल वेजनं ।
बोहति भवि-समूह सरमंडनि
दोस म यहंति घति मलं ॥२॥

गाथा—

सो जग सांति चरित्तं पुव्वायरिएहिं परिभिउ लोए ।
तहु कह कहण गिमित्तें ठाकुर कवि आयर कुणए ॥३॥

दोहडो—

वाणी गिम्मल णीरवहि, आगमु सरिसु पयट्ट ।
सागर वीर जिनिन्द भरि सेणिक सवणि सुइट्ठ ॥४॥

× × × ×

भट्टारक पणमि णमों जति सासणि,
सासणि जे चंदकित्ति हि लार ।
पणमो पुहवि अवर महिमंडलि,
भवणकित्ति पट्टि जे सार ॥
मानो मंडलीइ मोरिय महि,
कित्ति वंत जगकित्ति विसास ।
अनेकान्त आचार अधिक मति,
नेमिचंद सासन रखिपाल ॥

× × × ×

अन्तिमभागः—

दुवई—

एयहि अवर अवर गुण संतति,
जिण सोलहम सुह-यरो ।
ता गुण चरण चारु चितवनि महि,
ठाकुर किय कवि-सरो ॥५८॥
संवत सोलासइ सुभग सालि,
बावन वरिसउ ऊपरि विसालि ।
भादव सुदि पंचमि सुभग वारि,
दिल्लीमंडलु देसु-देसहु मझारि ।
अकबर जलालदी पातिसाहि,
वारइ तहु राजा मानसाहि ।
कूरमवंसि आंवैरि सामि,
ढूढाहड देसहु सोभिराम ।
कइ इणि णरिंदु जो अखयराज,
भगवानि सुत न कूरम सुसाज ।
सिरि मूलसंघ नंद्याम नाइ,
सुरसइ गच्छि सासन सुभाइ ।
कुंदकुंदाचारिज अनुकमेण,
सिरि पदमनंदि भट्टारकेण ।
पट्टहु सुतासु सुभचंददेव,
जिणचंद भट्टारक सुभगसेव ।
सिरि पहाचंद पापाटि सुमत्ति,
परिभणहु भट्टारक चंदकित्ति ।
तहु वारइ किय सुकहा-पबंधु,
सुसहावकरण जगि जेम बंधु ।
आचारिय धुरि हुउ रयणकित्ति,
तहु सीसु भलो जग भुवणकित्ति ।
ता कय सिक्ख-साखा बहु मुजंति,
नामाय नाम गणती अमित्ति ।
सिखि हूवउ सुमम साहण सु-सत्ति,
हुव सासण कमल-विकास मित्ति ।
दिक्खा-सिक्खा-गुण-गहणसार,
सिरि विसालकित्ति विद्याअपार ।
तहु सिखि हूवउ लक्ष्मीसुचंद,
भवि-बोहण-सोहण-भुवण मिंदु ।
ता सिक्खु सुभग जगि सहसकित्ति,
नेमिचंद हुवो सासनि सुयत्ति ।
अज्जिका अन्नतिसिरि ले पदेसि,
दाभाडाली बाई वितेसि ।
की कथा सुभग आगम-पमाण,
सासय ललोय बुज्झहि अयाण ।
पुव्विल्लि कथा जु हती अछूट,
किम् वाणंइ बहु जगि जटाजूट ।
सांसारि कथा किय सुगमसारि,
साह ठाकुर कवि मंडी विथारि ।
संवारहु सज्जन विविह-छंद,
मत्तागण लगिलंकार छंद ।
जिणवाणि अण्णु गति लब्धपार,
संतिणाहकथा जलणिही अपार ।
जाणहु जिणसासणि जैनधम्मु,
कुलि जेणे दे साधुसुकिय कम्मु ।
खंडेलवाल साल्हा पसंसि,
लोहाडिउ खेत्तात्तणि सुसंसि ।
ठाकुरसी सुकवि णामेण साह,
पंडितजन प्रीति वहइ उछाह ।

तहु पुत्त पयड जगि जसु मईय,
मानिसालोय महि मंडलीय।
गुरुयण सुभत्त गोविंददास,
जिणधम्म वुद्धि जगि धम्मदास।
णंदहु लुवायणिपुर लोयविंद,
णंदहु जिण सासण जगि जिणिंदु।
चंदप्पहु जिनमंदिर विसाल,
णंदहु पाति मंडल सामिसाल।
णंदहु जातियाइ बह्मचारि,
णंदहु पंडित सावय सुधारि।
राजा सुकलत्त तहपुत्तजुत्त,
वालक विनोयनंता कलत्त।
कीलंति विलासणि रमउ बाल,
गायंति धवल मंगल विसाल।
वासौ सुमेघ दतिरति पमाणि,
सत्त ईति जगति मा करहु णाणि।
दुरभिख पणासउ चोर-मारि,
मा होसहु पीडा-रोग-भारि।
जिणं-धम्म-चक्क सासणि सरंति,
गयणय लहु जिम ससि सोह दिंति।
जिण धम्म-णाण केवल रवीय,
तह भट्ठ-कम्म-मल-विलयकीय।
एत्तउ मांगउ जिण संतिणाह,
महु किज्जहु दिज्जहु जइ वोहि-लाह ॥५९॥

घत्ता—

कवि कला कवितणा पयडय कियउ
गुणु चिर किय कम्म पणासणे।
दुग्गम जो कव्व कये किय सुगमा
भुवे ठकुर पसन्न जिण सासणे ॥६०॥

दुवई—

संवारहु कवित्त वुहयण जण मत्ताकल वि छंदय।
ण कियउ भय लोह लालच मय मार्णेदहु भणिदियं ॥६१

इति श्री सांतिनाथचरित्रे आचार्य विशालकीर्ति शिष्य ठाकुर विरचिते श्रीशांतिनाथ णाण-णिव्वाण कारणं पंचमो संधि समत्तं। संपूर्ण।

भ० हर्षकीर्ति भंडार, अजमेर

१०३ मल्लिणाह कव्व (मल्लिनाथ काव्य)

(जयमित्रहल)

आदिभाग—

(प्रथम तीन पत्र न होने से नहीं दिया गया।)

अन्तिम भागः

मुणि पहचंद पट्ट सुपहावण,
पउमणंदि गुरु विरियउ पावण।
घरि घरि जणह मणरह-पुज्जहु,
धवल मंगलुच्छय गाइज्जहु।
पंच सद्दराय हरिसु सुण्णाह,
हुं सुणिच्छह कर दाणुण्णइ?
चउविह संघु महग्धिम पावउ,
बुहयण जण वट्टउ मणु रायउ।
चिरु णंदहु कइ हल्लइ णंदणु,
माल्हसाहु साहसु अरि यदणु।
वच्छउ वाहुसाहु कुल सारउ,
सुंदर रतणउ सज्जण मणहारउ।
गल्हू गटिहु असंछुण संदण,
होउ चिराउसु कलुस-णिकंदणु।
मल्लि-चरिउ जेण वित्थारिउ,
लेहाविवि गुणियणि वित्थारिउ।
ते णंदहु जे लिहहि लिहावहि,
मणिमाणंद जि पढहि पढावहि।
ते णंदहु जे णियमणि भावहि,
सत्थ-पसत्थ वि जे जण दावहि।

घत्ता—

चिर णंदउ देसु पुहमिणरेसु,
जिण सासणु वच्छलु धारहु।
महु वयणु सुहावउ गय परतावउ,
कुणउ चित्त संतोसुरणा ॥२०॥
इय मल्लिणाह कव्वं रयणत्तय
रयण कुंडलु महग्घ।
जय मित्तहल्ल कइणा
भणग्घमइणा वि णिम्मियं भव्वं ॥·

× × × ×

इति सिरि जयमित्तहल्ल कइणा रइयं मल्लिणाह कव्वं समत्तं॥

(अन्तिम पत्र नहीं) आमेर भंडार

इसके वाद पंचपरमेष्ठियों का स्तवन है—

अन्तिमभागः—

गण जि बलातकार वागेसरि,
गच्छ पसिद्धु जाय ओ ।
तहं पोमणंदि गुरु गणहरु,
वहु-सुद-तवणु रायओ ।
तह वहु सिस्स जाय गुणवंतइं,
विज्जा विणइ सीलमइ वंतइं ।
मुणि देविंदकित्ति अहिहाणइं,
मालवदेस पसिद्ध पहाणइं ।
जहसु पवाहिय सावय वग्गइं,
तिहुवणकित्ति सिस्समइ उग्गइं ।
ते मंडलायरिय विक्खायइं,
सिस्सवग्गतह धम्मणुरायइं ।
पुण सुदकित्ति पयडु अहिहाणइं,
आयम-भेय किंच सो जाणइं ।
धम्मपरिक्खा गंथु खडकम्मइं,
पत्त परिक्ख तहय मुणि धम्मइं ।
तं हरिवंस सगंथु चिरु पिक्खउ,
पद्धडिया छंदेण पलक्खिउ ।
पुणु परिमिट्ठ पयासु तदंतर,
सिद्धचक्क कह वहव् महत्तर ।
पुणु वर जोय-झाणु तद अक्खिउ,
संकर चिर पारंभिवि रक्खिउ ।
जोय-झाणु मणि सो अणुरायउ,
णाणाणउ णिए वि विक्खायउ ।
तह सुत्ताणु सार पारंभिउ,
पद्धडियां छंदें मणि विंभिउ ।
गिह वावार तेम सो रहियउ,
सोवइ मरु सुदकित्तिहिं कहियणउ ।

घत्ता—

तं किय उस उण्णउं वहु पय पुण्णइं
जं चिर आयम सद्दहि ओ ।
जायहु गुण अक्खिउ झाण पलक्खिय
संकर अणु लोएं महिओ ॥७१।

दुवई—

णाण वरण कम्मखय-कारण
तं सुदकि॰ि उत्तमउभइ ।
सुक्क-झाणु जिण सासणु
तव पय पुर पवित्त ओ ॥
चेवि सहस मुणि अत्थ अउव्वइं ।
जे सद्दहइ ते गइ सुह गच्छइं ।
अत्थ जि दय-धम्मह मण लीणइं ।
ते सासय-सुह लहहि पवीणइं ।
विक्कय रायहु ववगइ कालइं ।
पण्णारह सय ते वावण अहियइं ।
रयउ गंथु तं जाउ सउण्णउ ।
सेय पक्खु मग्गसिर मणुण्णउ ।
पंच····· ···दासरू जायउ ।
[सद्द अत्थ पुण जग विक्खायउ ।
मंडवचलगढ़ जो सु पसिद्धउ ।
साहि गयासु जयम्मि णरिंदउ ।
साहि णसीरु ताहि सुइ णंदणु ।
दुट्ठ दमणु सिट्ठ ति आणंदणु ।
पुंजराज वणि मंति पहाणइ ।
ईसरदास गयंदइं आणइं ।
वत्थाहरण देंस वहु पावइ ।
अह-णिसि-धम्मह भावण भावइ ।
(सावय-धम्म) मणहि अणुरायउ ।
तह जेरहद णयरु विक्खायउ ।
चेईहर सावय मणि हिट्ठइं ।
णेमिणाह जिणहर मुहिट्ठइं ।
तह यहु गंथु जाउ परिपुण्णउं ।
णिसुणिउ सखय-संघ मणुण्णउं ।
मण आणंदिय सावय वग्गइं ।
जयसिंघ णेमिदास सु-हग्गिसंगइं ।

घत्ता—

अवर जि अणुराइय गंण लिहाइय
पुण्ण पवि ढप्पिउ तह घणउ ।
कुण्णाणु विहट्टइ णाणु पवट्टइं ।
सो सिव संपइ सुह जणउं ॥७२॥

दुवई—

देसहं भरहे गामणि वरिट्ठहं, चउ विह संघ भव्वहं।
रिसह जिणंद पमुह वीरंतइं मांनि करेंहि भव्वहे।
दयजोग भाणाणुसारे निरसूरि पउतियाणु भणुसारे।
बहु जोयस्स विसेमो पढमा रंभेण संकरु हेमो।
कय सुयकिलिसउण्णो भविया भामण्णि चित्त संतोमो।
सो बुहयण गुरुरय भत्तो णाम विदोभ्रो परिच्छेभ्रो॥ समत्तो॥

तेरापंथी मंदिर प्रति जयपुर सं० १५५२

१०७ मउड सत्तमि कहा (मुकुट सप्तमीकथा)

भगवतीदास

आदिमंगल—

पणविवि दंच परम गुरु मारद धरि वि मणे।
सत्तमि मउड तणउ फलु भासमि भेउ जणे॥

अन्तिमभाग:—

भण्णुवि जो णरु णारी करणी भाउधरे।
सो एरिसु फलु लहमी वसु भरि निहालि के।
गुरु मुणि माहिंदसेण चरणयुग धर विमणां।
दासुभगौती भासं निसुणहु भविकजणां॥१४
पढहि गुणहि जे बुहियण सुणहि सुजाण णरा।
राज रिद्धि सुमंगनु दिण दिण ताहु घरा॥१५

इति मउडसत्तमि कहा समत्ता।

१०८ सुगंधदहमी वय कहा (सुगंधदशमी व्रत कथा रासु)

भगवतीदास

आदि—

वीर जिणिंद चरण जुग पणविवि गोयमु ज्ञान विमासा।
वउ सुगंधदसमी गुण निम्मल भासमि रासु रसाला।
भविकजण यहु दसमी वउ कीजइ, दुक्ख जलांजलि दीजइ

अन्तिमभाग:—

गुरु मुणि माहिंद सेणु
भट्टारउ चरण कमल नमि तासो।
रुहतग वीर जिनालय मणिहरि
भणत भगौतीदासो॥
भविक जण यहु दसमी वउ कीजइ।
णर णारि जो गावहि मन रुचि
सुणहि चतुर मनि धारी।
राज रिद्धि सुर नर सुहु भुंजिवि
मुकति वरहि वर नारी।
भविकजणु यहु दसमी वउ कीजइ,
दुक्ख जलंजलि दीजइ॥२७

इति सुगंध दसमी कहा समाप्ता।

परिशिष्ट १

कुछ मुद्रित ग्रन्थ प्रशस्तियाँ

२०६ स्सयंभुछंद (अपभ्रंश)

महाकवि स्वयम्भू

आदिभाग:—

जो पाउअस्स सारो तस्स मए लक्ख लक्खणं सिट्ठम् ।
एत्ताहे अवहंसे साहिज्जन्तं णिसामेह ॥१॥
इहि आरा विन्दु जुआ पआवसाणम्मिजह हुवन्ति लहू ।
तह कत्थ वि छन्द वसा का अव्वा उहुह आरावि ॥२॥
उआरो विन्दु जुओ पआवसाणम्मि लहू चउमुहस्स ।

× × × ×

अन्तिमभाग:—

पद्धड़िया पुण जेइ करेन्ति,
ते सोउह मत्तउ पउ धरेन्ति ।
विहिपअहिं जमउ ते णिम्मअन्ति,
कडवअ अट्ठहिं जम अहि रअन्ति ॥३०
आइहिं पुणु घत्ता समामणन्ति,
जं आवसाण छड्डणि भणन्ति ।
संखाणिबद्ध कडवेहिं संधि,
इह विविह पआरहिं तुहं विबन्धि ॥३१
संधि भेआइं ते रइअ एअ,
छड्डणियावि घत्ता भण सु भेअ ।
अण्णाउ विविह पआरिआउ,
घत्ताउ छड्डणि विआरिआउ ॥३२
तीए सुण वि वज्झन्ति ताउ,
लोएहि केण विण्णाण ताउ ।
सालाहणेण धवलाइं जाइं,
विरइ आइं अणे आइं बहु विहाइं ॥३३
इअ एम असेसव वज्झन्ति,
सअल उणा अरिअ ।
सुपसिद्धा लोए पंडिअ,
जणेहि समाअरिअ ॥३४
संधिहि आइहिं घत्ता,
दुवई गाहाडिल्ला ।
मत्ता पद्धडिआए, छड्डणिआं वि पडिल्ला ॥३५

संधिघत्ता जहा—

जिणु पच हुँ रत्तुप्पलहिं, दीवा वे विणुवारि ।
एक्कमि जम्मणु पुणु माणु, छिण्णहु अट्ठ पहा (या) रि ॥३६

अह दुवई—

पडिहि अमिण्ण कण्ण गंडत्थले विउणो विट्ठ पुच्छओ ।
णिद्द अवलिअकर पहर परिअर थिरकअणिज्ज सरीरओ ॥
छल दलिवलय मधुर झंकार विराजित कुम्भ मंडलं ।
तव नम नेन नाथ नाक्रामत्ति परि कु पितोपि केसरी ॥३७

अह गाहा जहा—

तुम्ह पअ कमल मूले अम्हं जिण दुःख भावत विआइं ।
ढरु ढुल्लिआइं जिणवर जं जाणसु तं करेज्जासु ॥३८

अह अडिल्ला जहा—

अक्क पलास विल्लुअड रूसउ,
धम्मिअ एम एम महु अरु तूसउ ।
डुद्धाइच्च वह्म हरिसंकरु,
जे मेराउ देउ हरिसंकर ॥३९

मत्ता जहा—

जअहि जिणवर सोम अकलंक, सुर सण्णअ विगअ भअ ।
राअ-रोस-मअ-मोह वज्जिअ, मअण णासण भव-रहिअ ॥४०

पद्धडिया जहा—

जिण णामे मग्रगल भुग्रइ दप्पु,
केसरि वसहो ण डसइ सप्पु।
जिण णामे ण दहइ धग्र धग्रन्त,
हुग्र वह जालासेग्र पज्जलन्त ॥४१
जिण णामे जलणिहि देइ थाहु,
ग्ररण्णे वणणु ण वधइ वाहु।
जिण णामे भव सवसग्र संसलाइं,
दुट्टन्ति होन्ति खण मोक्कलाइं ॥४२
जिण णामे पीडइ गहु ण को वि,
दुम्मइ पिसाउ ग्रोसरइ सो वि।
जिण णामे दुग्गग्र.स हिज्जन्ति,
मणुदिण वर पुण्णाइं उब्भवन्ति ॥४३
जिण णामे छिदे वि मोहजालु,
उप्पज्जइ देवलु सामि सालु।
जिण णामें कम्मइं णिहुले वि,
मोक्खग्गो पइसिग्र सुह लहे वि ॥४४

छड्डणिया जहा—

जिण णाम पवित्तं, दिवमुग्रन्तं, पाउ ग्रसेसु वि छज्जइ।
जं जिण मणें भावइ, तं सुह पावइ, दीणु ण कासु वि
किज्जइ ॥४५

संगी ग्रवज्झ महिणम संहुत्त तालिमे ग्रसिह गुणेसु।
सत्तच्छन्दो रूमं सततालं हुवे मेव्वे ॥४६
पंचच्छन्दो रूमं पंचतालं च होइ कव्विम्मि।
तेहिं रूएहिं रइमं तित्तालं तं मुणिज्जासु ॥४७
छन्दो रूएहिं विहिं जुमसं चक्कलग्रमेव च वंजहि।
कुलमं सेसेहिं हुवे चक्कं गेमं तेहिं तेहिं ॥४८

घत्ता—

छड्डणिग्राहि पद्धडिग्रा (हि) सुग्रण्ण रूएहिं।
रासा बन्धो कव्वे जणमण ग्रहिरामग्रो होइ ॥४९
एक्क वीस मत्ता णिहणउ उद्दाम गिरु।
चउदसाइ विस्सामहो भगण विरइ थिरु॥
रासाबंधु समिद्दु एउ ग्रहिराम यरु।
लहुग्र तिग्रन ग्रवसाण विरइ ग्रमुहर यरु ॥५०

जहा—

गुरु यरगुरु यरगुमउर ग्रवग्ग णिपउ चरण कम (?)
ग्रमरण महण जलहिण ग्ररोस ग्राम ममदम।
पराधीर जिण एव जयसिरिहि वरसर णिलग्र।
पहग्र दुरिग्र संतावहरण गुरु मोह विलग्र ॥५१

जहा—ग्र—

जइ विण वसुभइ मरणहं इह को वि संतरइ।
ग्रइ किलेसे सतिणि नुइ ग्र वि जइ फुरइ।
तो वि एहु मोरी वाणि विलटु कला गवइ।
ग्रहिणव घण ग्रग्र पसरहि ग्रवहंसे हि रमइ ॥५२
पंच संसार हुग्रं वहूलयं लक्ख लक्खण विसुद्धग्र।
एत्थ सग्रंभुच्छन्द ग्रवहंसत्तं परिसमत्तम ॥५३

संवत् १७२७ वर्षे ग्राश्विन सुदि पंचम्यां गुरौ रामे नगरे लिखित मिदं कृष्ण देवेन।

Journal of the University of Bombay,
Vol. V, November, 1936, Part III.

११० भविसयत्त कहा (कवि धणवाल)

ग्रादिभाग—

जिण सासणि सा तु णिद्दु म पाव-परिल-मनु।
सम्मत्त विसेसु निसुणहु सुय पंचमिहि फलु॥
पण विप्पिणु जिणु तइलोय बंधु,
इसरसर भव णिव्वुड संधु।
भव्वयण वयण पंकय पयंगु,
कय कमणे मोह तिमिरोह भंगु।

× × × ×

इय भविसत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काममोक्खाए बुह धणवाल कयाए पंचमि फल वेण्णणाए भविसयत्त जम्म-वण्णणो नाम पढमो संधी सम्मत्तो ॥१॥

ग्रन्तिमभाग :—

घत्ता—

धक्कडवणिवंसि माएसरहो समुब्भविण।
धणसिरि देवि सुएण विरइउ सरसइ संभविण ॥८॥

दूरयर पणासिय पावरेणु,
एहु जो सो सुंभइ पारमधेणु।
फलु देइ ग्रहिच्छिउ ग्रसलोइ,
चिंतामणि सुम्भइ सेय सोइ।
एउ जो सो सुम्भइ भुवणसारि,
ग्रह मवन हो गह सोवाण पंति

नर नारिहि विग्घइं अवहरेइ,
जो जं मग्गइ तहो तंजि देइ ।
निव्वाहइ जो निय सिवि भरेण,
सुपुन्नवंतु किं वित्थरेण ।
उववास करइ जो सत्तसट्ठि,
उज्जमणि तहो सुहि तुट्ठि पुट्ठि ।
जइ भज्जइ अंतरि विग्धु होइ,
तहु सद्दहाणि फलु तं जि तोइ ।

घत्ता—
अहो किं वहुवाया वित्थरेण, एवकवि चित्ति महत्तरिण ।
अणुमोएं ताहिं तिहुं संपन्न गुणंतरिण ।१०।

अरि उरि अइरायइ दीहरच्छि,
धणयत्तहो गेहिणि धणयलच्छि ।
उज्जमिय ताएं चिरु संजुण्ण
भाविय धणमित्तें तहिं सुएण ।
तह कित्ति सेण नामुज्जयाइ,
अणुमोइय वज्जोयर सुआइ ।
तहो फलिण ताए तिण्णमि जणाइं
चउ थइ भवि सिवलोयहो गयाइं ।
पहिलइ धणयत्त हो धणयदित्ति,
इयरइ विन्नि वि धणमित्तु कित्ति ।
विज्जइ भवि पंकयसिरि सरूअ
सुउ भविसयत्तु भविसाणु रूअ ।
तिय लिंगु हणि वि तिन्निमि सुतेय
पहचूल रयण चूलाइ देव ।
तइ यइ भविसत्तु वि कणय तेउ
हुउ दहमइं तहिं जि विमाणि देउ ।
चउथइ भवि सुव पंचमि फलेण
निद्दड्ढु कम्मु झाणानलेण ।

घत्ता—
निसुणंत पढंतहं परिचिंततहं अप्पहिय ।
धणवालि तेण पंचमि पंच पयार किय ।११।

इय भविसयत्त कहाए पयडिय धम्मत्थ काम मोक्खवाए बुहधणवाल कयाए पंचमि फल वण्णणाए कमलसिरि भविसदत्त भविसाणुरूव मोक्ख गमणोणाम वावीसमो संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ।

१११ महापुराण

महाकवि पुष्पदन्त

आदिभाग—
सिद्धिवहू मणरंजणु परमणिरंजणु भुवण कमल सरणेसरु ।
पणविवि विग्घविणासणु णिकवमसासणु रिसहणाहु परमेसरु ॥ध्रु•

सुपरिक्खिय रविखय भूय तणु,
पंचसय धणुण्णाय दिव्वतणु ।
पयडिय सासण पयणयर वहं,
परसमय भणिय दुण्णयर वहं ।
सुहसीलगुणोह णिवास हरं,
देविंद थुयं दिव्वास हरं ।
जुइ णिज्जय मंदर मेहलयं,
पवि मुक्क हार मणि मेहलयं ।
सोहंता सोयरमिय विवरं,
उव्वासिय वहुणारय विवरं ।
सुरणाह किरीट पहिट्ठ पयं,
अइ पउर पसाय पहिट्ठ पयं ।
णवतरणि समप्पहभावलयं,
णिर दुस्सह दुम्मण भावलयं ।
हरि मुक्क कुसुम चित्तलियणहं,
अरुहंत मणंत जसं अणहं ।
सीहासण छत्त त्तय सहियं,
उद्धरिय पर स किवं सहियं ।
दुंदुहि सरपूरिय भुवण हरं,
बंधूअ फुल्लसं णिहणहरं ।
पुरुए व जिणं जिय कामरणं,
दूरुज्झिय जम्म-जरा-मरणं ।
विरयं वरयं णिय मोह रणं,
उद्धूय भीम णिय मोह-रयं ।
पणमामि रविं केवल किरणं,
मत्ता समयं मणियं किरणं ।

घत्ता—
अवरु वि पणविवि सम्मइं विणिहय दुम्महं कोव पाव विद्धंसणु ।

जासु तित्थिमइं लद्धउ णाणसमिद्धउ णिम्मलु सम्मद्दंसणु ॥१

× × × ×

इय महापुराणे तिसट्ठि पुरिसगुणालंकारे महाकइ पुप्फयंत विरइए महाभव्व भरहाणु मण्णिए महाकव्वे सम्मइसमागमो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१

अन्तिमभागः—

सिद्धि विलासिणि मण हर दूएं,
मुद्धएवी तणु संभूएं।
णिद्धण सघण लोय सम चित्तें,
सव्वजीव णिक्कारण मित्तें।
सद्दसलिल परि वड्ढिय सोत्तें,
केसव पुत्तें कासव गोत्तें।
विमल सरासय जणिय विलासें,
सुण्ण भवण देवलय णिवासें।
कलि-मल पवल पडल परिचत्तें,
णिग्घरेण णिप्पुत्तकलत्तें।
णइ वा वीतलायकयण्हाणें,
जर चीवर वक्कल परिहाणें।
धीरें धूलिय धूसरियंगें,
दूरय.वज्जिय दुज्जण संगें।
महि सय णयलें करि पंगुरणें,
मग्गिय पंडिय पंडिय मरणें।
मण्ण खेड पुरवरि णिवसन्तें,
मणि अरहंत धम्मु झायंते।
भरह सण्ण णिज्जें णय णिलए,
कव्व पवंध जणिए जण पुलए।
पुप्फयंत कइणा धुय पंक,
जइ अहिमाण मेरु णामंके।
कयउ कव्व भत्तिट्ठ परमत्थें,
जिण पय पंकय मउलिय हत्थें।
कोहण संवच्छरि आसाढइ,
दह मइ दियहि चंद रुइ रुढइ।

घत्ता—

णिरु णिरुद्ध भरहहु बहु गुणहु कइकुल तिलएं भणियउं।
सुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहि मि पुरिसहं चरितं समाणियं उ ॥१४

इय महापुराणे तिसट्ठि महा पुरिस गुणालंकारे महाकइ पुप्फयंत विरइए, महा भव्व भरहाणुमणिए महा कव्वे जिणिंद णिव्वाण गमणं णाम दुत्तरसय परिच्छेदाण महापुराणं सम्मत्तं ॥१०२

११२ जसहर चरिउ (यशोधर चरित)

महाकवि पुष्पदंत

आदि भागः—

तिहुवणसिरिकंतहो अइसयवंतहो अरहंतहो हय वम्महहो।
पणविवि परमेट्ठिहि पविमल दिट्ठिहि चरण जुयल णय सय महहो ॥

कोंडिल्ल गोत्तणह दिणयरासु,
वल्लह णरिंद घर महयरासु।
णण्णहो मंदिरि णिवसंतु संतु,
अहिमाणु मेरु कइ पुप्फयंतु।
चिंतइ य हो धण णारी कहाए,
पज्जत्त उ कय दुक्किय पहाए।
कह धम्म णिबद्धी का वि कहमि,
कहियाइ जाइ सिव सोक्खु लहमि।
पंचसु पंचसु पंचसु महीसु,
उप्पज्जइ धम्मु दया सहीसु।
धुउ पंचसु दससु विणासु जाइ,
कम्मंधियराइ पुणु पुणु वि होइ।
काला वेक्खइ पडमिल्लु देइ,
इह धम्मवाइ णिय वसह केउ।
पुरुएउ सामि रायाहिराउ,
भरहंकिउ वउगुरुवर णिवाउ।

घत्ता—

वत्ताणुट्ठाणें जणुधणदाणें पइं पोसिउ तुहुं खत्तधरु।
तव चरण विहाणें केवलणाणें तुहुं परमप्पउ परम परु ॥१

× × × ×

अन्तिमभागः—

जिण पट्टणे छुगे णाहु णाहु,
तहो सुउ खेला गुणवंतु साहु।
तहो तणुरुहु वीसलु णाम साहु,

वीरो साहु णियहि सुलद्धु णाहु ।
सोयारु सुणाण गुण गण सणाहु,
एक्कइ या चितइ चित्ति लाहु ।
हो पंडिय ठक्कुर कण्हपुत्त,
उवयारिय वल्लह परममित्त ।
कइ पुप्फयंतु जसहर चरित्तु,
किउ सुट्ठु सद्द लक्खण विचित्तु ।
पेसहिं तहि राउलु कउलु अज्जु,
जसहर विवाहु तह जणिय चोज्जु ।
सयलहं भव-भमण भवंत राइं,
महु वंछिय करहिं णिरंतराइं ।
ता साहु समीहिउ कियउ सव्वु,
राउलु विवाहु भव-भवण-भव्वु ।
वक्खाणि उ पुरउ हवेइ जाम,
संतुट्ठउ वीसल साहु णाम ।
जोयणि पुरवरि णिवसंतु सिट्ठु,
साहुहिं घेर सुत्थियणहु घुट्ठु ।
पण सट्ठि सहिय तेरह सयाइं,
णिव विक्कम संवच्छर गयाइं ।
वइसाह पहिल्लइ पक्खि वीय,
रविवार समित्थिउ मिस्सतीय ।
चिरुवत्थु वंधि कइ कियउ जंजि,
पद्धडिया बधि मइं रइउ तं जि ।
गंधव्वें कण्हड णंदणेण,
ग्रायहं भवाइं किय थिर मणेण ।
महु दोसु ण दिज्जइ पुव्विं कइउ,
कइ वच्छराइं तं सुत्तु लइउ ।

घत्ता—

जो जीवदयावरु णिप्पहरण करु बंभयारि हय-जर-मरणु ।
सो माण णिसंभणु धम्मु णिरंजणु पुप्फयंतु जिणु महु सरणु ॥३०

पावणि सु भणि मुद्धाबंभणि,
उयरुप्पण्णों सामलवण्णें ।
कासवगोत्तिं केसवपुत्तिं,
जिण पयभत्तिं धम्मासत्तिं ।
वय संजुत्तिं उत्तम सत्तिं,
विमलियसं कि अहिमाणं कि ।
पहिसिय तु डि कइणा खंडें,
रंजिय वुह सह कय जसहर कह ।
जो आयण्णइ चंगउ मण्णइ,
लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ ।
जो मणि भावइ सो णरु पावइ,
विहुणिय घणरय सासय संपय ।
जण वय णीरसि दुरियिमलीमसि,
कइ णिदायरि दुसहे दुहयरि ।
पडिय कवालइ णर कंकालइ,
वहु रंकालइ अइ दुक्कालइ ।
पवरागारि सरसाहारि,
सण्हिं चेलि वरतंवोलि ।
महु उवयारिउ पुण्णिं पेरिउ,
गुण भत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ ।
होउ चिराउसु वरिसउ पाउसु,
तिप्पउ मेइणि घण कण दाइणि ।
विलसउ गोमिणि णच्चउ कामिणि,
घुम्मउ मंदलु पसरउ मंगलु ।
संति वियंभउ दुक्खु णिसु भउ,
धम्मुच्छाहिं सहुं णर णाहिं ।
सुहु णंदउ पय जय परमप्पय,
जय जय जिणवर जय भय भय हर ।
विमलु सु केवलु णाणु समुज्जलु,
महु उप्पज्जउ एत्तिउ दिज्जउ ।
मइं अमुणंति कव्वु करंति,
जं हीणाहिउ काइं मि साहिउ ।

घत्ता—

तं माय महासइ देवि सरासइ णिहय सयल संदेह-दुह ।
महु खमउ भडारी तिहुवणसारी पुप्फयंतु जिण वमण कह ॥३१

इय जसहर महाराय चरिए महामहलणण्ण कण्णा हरणे महाकइ पुप्फयंत विरइए महाकव्वे चंडमारि देवय मारिदत्तरायवम्मलाहो णाम चउत्थो परिच्छेऊ समत्तो ॥४

११३ णाय कुमार चरिउ (नाग कुमार चरित)

(महा-कवि पुष्पदन्त)

आदिभागः—

पणवेप्पिणु भावें पंच गुरु कलिमलवज्जिउ गुणभरिउ ।
आहासमि सुय पंचमिहे फलु णायकुमार चारुचरिउ ॥ध्रुवकं

दुविहालंकारें विप्फुरंति,
लीला कोमलइं पयाइं दिंति ।
महकव्वणिहेलणि संचरंति,
बहु हाव भाय विब्भम धरंति ।
सुपसत्थें अत्थें दिहि करंति,
सव्वइं विण्णाणइं संभरंति ।
णीसेसदेसभासउ चवंति,
लक्खणइं विसिट्ठइं दक्खवंति ।
अइरुद्द छंद मग्गेण जंति,
पाणेहि मि दह पाणाइं लेंति ।
णवहि मि रसेहिं संचिज्जमाण,
विग्गह तएण णिरु सोहमाण ।
चउदह पुव्विल्ल दुवालसंगि,
जिणवयण विणिग्गय सत्तभंगि ।
वायरण वित्ति पायडियणाम,
पसियउ महु देवि मणोहिराम ।

घत्ता—

सिरि कण्हराय करयलि णिहिय असिजलवाहिणि दुग्गयरि ।
धवल हरसिहरि हयमेह उलि पविउल मण्णखेड णयरि ॥१

मुद्धाई केसव भट्ट पुत्तु,
कासव रिसिगोत्तें विसाल चित्तु ।
णण्णहो मंदिरि णिवसंतु संतु,
अहिमाणमेरु गुणगणमहंतु ।
पत्थिउ महिपविवीयाण,
विणएण महोवहि सीमाएण ।
दुग्गिम्र दुविष मोहरोन
[illegible]

सो पुप्फयंत पडिवण्णपणय,
मुद्धाई केसवभट्ट तणय ।
तुहुं वाई सरिदेवीणिकेउ,
तुहुं अम्हहं पुण्ण णिबंधहेउ ।
तुहुं भव्वजीव पंकरुह भाणु,
पइं घणु मणि मण्णिउ तिण समाणु ।
गुणवंत भत्त तुहुं विणयगम्मु,
उज्झाय पयासहि परम धम्मु,

घत्ता—

ओलग्गिउ भावें दिणिजि दिणे णियमण पंकइयरु थविउ ।
कइ कव्वपिसल्लउ जस धवलु सिसु जुयलेण पविण्णविउ ॥२

सण भण सिरिपंचमिफलु गहीर,
आयण्णहिं णायकुमारवीर ।
ता वल्लहरायं महंतएण,
कलि विलसिय दुरिय कयंतएण ।
कोंडिण्णगोत्त णहससहरेण,
दालिद्द कंद कंदल हरेण ।

× × × ×

इय णायकुमार चारुचरिए णण्णामंकिए महाकइ पुप्फयंत विरइए महाकव्वे जयंधर विवाह कल्लाणवण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ॥

अंतिमभागः—

गोत्तमं गणहर एवं सिट्ठउ,
सूरि परंपराए जय इट्ठउ ।
णायकुमार चरित्तु पयासिउ,
इय सिरि पंचमिफलु मइं भासिउ ।
सो णंदउ जो पढइ पढावइ,
सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ ।
सो णंदउ जो विवरि सिहावइ,
सो णंदउ जो भावें भावइ ।
णंदउ अब्भुइ मागणु गम्मइ,
णंदउ धम्म सुहु णंदउ णरवइ ।
चितउ चित्तउ वरिसउ पाउसु
णंदउ लोगु होउ दीहाउसु ।
णण्णहो मंगुवंतु सुरविगइं,
[illegible]

णण्णहो होंतु पंचकल्लाणइं,
रोय-सोय-खयकरण विहाणइं ।
णण्णहो जसु भुअणत्तए विलसउ,
णण्णहो घरिवसुहार पवरिसउ ।
सिवभत्ताइं मि जिणसण्णासें,
बेवि मयाइं दुरिय णिण्णासें ।
बंभणाइं कासवारिसि गोत्तइं,
गुरुवयणामय पूरिय सोत्तइं ।
मुद्धाएवी ··· सवणासइं,
महु पियराइं होंतु सुहधामइं ।
संपज्जउ जिणभावें लइयहो,
रयणत्तय-विसुद्धिदंगइ यहो ।
मज्झु समाहिबोहि संपज्जउ,
मज्झु विमलु केवलु उप्पज्जउ ।

घत्ता—

णण्णहो मज्झु वि दयकरउ पुप्फयंत जिणणाह पियारी ।
खमउ असेसु वि दुव्वयणु वसउ वयणें सुयदेवि भडारी ॥१

सुहतुंग भवण वावारभार णिव्वहण वीर धवलस्स ।
कोंडिल्लगोत्त णहससहरस्स, पयईए सोमस्स ॥१
कुंड दव्वा गब्भ समुब्भवस्स, सिरिभरहभट्टतणयस्स ।
जस पसरभरियभुअणो यरस्स, जिणचरणकमल भसलस्स ॥
अणवरय रइयवर जिणहरस्स, जिणभवण पूयणिरयस्स ।
जिण सासणाय मुद्धारणस्स, मुणि दिण्णदाणस्स ॥३
कलिमल कलंकपरिवज्जियस्स, जिय दुविहवइरि णियरसस्स ।
कारुण्णकंदणवजल हरस्स, दीणयण सरणस्स ॥४
णिव लच्छी कीलासरवस्स, वाएसरि णिवासस्स ।
णिस्सेसविउस विज्जा विणोय णिरयस्स सुद्ध हिमयस्स ॥५

णण्णस्स पत्थणाए कव्वपिसल्लेण पहसियं मुहेण ।
णायकुमार चरितं, रइयं सिरि पुप्फयंतेण ॥६

११४ करकड चरिउ (करकुंड चरित)

मुनि कनकामर

आदिभागः—

मण-मारविणासहो सिवपुरिवासहो पाव-तिमिर-हर-
दिणयर हो ।
परमप्पयलीणहो विलय विहीणहो सरमि चरणु सिरि
जिणवर हो ॥

जय अणुवम-सिव-सुह करण देव,
देविंद फणिंद णरिंद सेव ।
जय णाणमहोवहि कलिय पार,
पारा विय सिव पहे भवियसार ।
जय कम्म भुवंगम दमणमंत,
मंताण वीज मण गह कयंत ।
जय चउ गइ डरिय जणेक्कसरण,
रण रहिय सुयण-दुहणिवह-हरण ।
जय संयम सरवर रायहंस,
हंसोवम बुहयण कय पसंस ।
जय कोह-हुआसण पउर वारि,
वारिय-तम केवल णाण धारि ।
जय सासय संपय हिययवास,
वासव सय सेविय सुह णिवास ।
जय भविय सरोरुह कमल बंधु,
वंधुर गुण णियरस बहुलसिंधु ।

घत्ता—

जयदेवणिरंजण भव-भय भंजण मंडण भुवण महाघर हो ।
तव चरण णमंत हो मणे सुमरंतहो होइ समिच्छउ
फलु णरहो ॥१

मणि घरि वि सरासइ दिव्वदाय,
तह पंडिय मंगल एव पाय ।
जण सवण सुहावउ महरुललिउ,
कल्लाणय विहिर यणेण कलिउ ।
पुणु कहमि पयडु गुण णियर भरिउ-
करकंडणरिंदहो तणउं चरिउ ।
जइ दुज्जण वंकुड मणि णिरुत्तु,
जइ जणवउ णीरसु मलिण चित्तु ।
वायरणु ण जाणमि जइ वि छंदु,
सुअजलहि तरेव्वइं जइ वि मंदु ।
जइ कह व ण पसरइ ललियवाणि,
जइ बुहयण लोयहो तणिय काणि ।
जइ कवियण सेवहु मइं ण कीय,
जइ जडयण संगइं मलिण कीय ।

तो सिद्धसेण सुसमंतभद्द,
अकलंकदेव सुअजल समुद्द।
जयएव सयंभु विसालचित्तु,
वाएसरि घरु सिरि पुप्फयंतु।

घत्ता—
इय हियए सरंतहो विणउ करंत हो मह मंजायउ जंजि फलु।
तम्हा सुह भरियउ दुह परिहरियउ पयडमि वंछिउ णत्थि छलु ॥२

× × × × ×

इय करकंड महाचरिए मुणिकणयामर विरइए भव्वयण कण्णा वयंसे पंच कल्लाणविहाण कप्पतरु फल संपत्ते करकंड जम्मोप्पत्ति वण्णणो णाम पढमो परिच्छेउ समत्तो ॥ संधि १॥

अंतिमभागः—

चिरु दियवर वसुप्पण्ण एण,
चंदारिसि गोत्तें विमलएण।
वइराइं हुयइं दियंवरेण,
सुपसिद्धणाम कणयामरेण।
बुहु मगलएव हो सीसएण,
उप्पाइय जण मण तोसएण।
आसाइय णयरि संपत्तएण,
जिण चरण सरोरुह भत्तएण।
मच्छं लई तहिं मई चरिउ एहु,
पर पयडिउ भवियणि विणउ णेहु।
मई सत्थ विहीणई भडिउ किंपि,
सोहेविणु पयडउ विवुह तं पि।
परकज्ज करेण उज्जुय मणाहं,
अप्पाणउ पयडिउ सज्जणाहं।
कर जोडिवि मग्गिउ इउ करंतु,
महो दीणहो तें मयनु वि खमंतु।

घत्ता—
जो पढइ गुणइ मण भिन्नवइ जणयाए लपडेउ इउ चरिउ।
सो णरु भुवणहो मंडणउ लहइ मणिन्नएण गुण भरिउ ॥२८

जो णवजोव्वणे दिवसहिं चडियउ,
अमर विमाणहो णं सुरु पडियउ।
कणयवण्णु अइमण हरगत्तउ,
जसु विजवालु णराहिव रत्तउ।
धम्म महानरु निचिय अप्पुणु,
जो विजवालहो णं सुहदप्पणु।
जो अरि णिहणइ दुस्सह नीलइं,
जसु मणुरंजिउ कुंजर कीलइं।
बधव इट्ठ मित्त जण रोहणु,
णिव भूवालहो जो मणु मोहणु।
दीणाणाहहो जो दुह-भंजणु,
कण्णणरिंद हो आसयरंजणु।
जो बोलंतउ णिव संखोहइ,
जो ववहारइं णरवइ मोहइ।
जो गुरु सयरि अडमय धीरउ,
जो जण पयडु ण कायर हीरउ।
जो चामीयरं कंकण वरिसणु,
जो वंदीयण सहसउ करिसणु।
जो जिण पाय सरोयहं महुयरु,
जो भव्वंगु वि णयणहं सुंदरु।
जो कामणिहिं मणम्मि ण मुच्चइ,
जो जण सील तरंगिणि उच्चइ।
कित्ति भमंतिय कह व ण थक्कइ,
जसु गुण नित्तीं सरसइ संकई।
तहो सुय आहलु रल्हो राहुल,
मुणि कणयामर पय उव्वाहुल।

घत्ता—
तहो मणुराए इउ चरिउ मइ जणवइं पयडिउ मणहरउ।
से वंधव पुत्त कलत्तसहु चिरु णदहु जा रवि-ससि हरई ॥२६

इय करकंड महा राय चरिए मुणि कणयामर विरइए भव्वयण कण्णा वयंसे पंचकल्लाण कप्पतरु फलसंपत्ते करकंड सव्वत्थ सिद्धिसाहोणाम दहमो परिच्छेउ समत्तो ॥१०

माणिक माणिणि णं कामिमल्लि,
लखणसिरि णाम णारी मतल्लि।
घेणा धरजिउ णं काम भत्थु,
संगहिउ जांहि जिण धम्म वत्थु।
मयणा भज्जो यति माह मीय,
णामेण सया सीलेण सीय।
मल्ला पिय मणसिरि पउम धण्ण,
पट्टो मंगा भिक्खो सुवण्ण।
सुय रामचंदु कुल कमलनंदु,
णंदउ चिरु इह णं वीरचंदु ॥१५६
नंदा पूना वे भज्ज जुत्त,
चिरजीवउ वीरु कमलवन्तु।
एयाहि मज्झि सिरि पोमिसिंह,
जिण सासण णंदणवण सुसिंह।
विज्जुल चंचलु लच्छी सहाउ,
भालो इवि हुउ जिण धम्मभाउ।
जिणगंथु लिहावउ लक्खु एक्कु,
सावय लक्खा हारीति रिक्ख।
मुणि भोअण भुंजाविय सहासु,
चउवीस जिणालउ किउ सुभासु।
पेना पाउधरियनिमित्त दव्वु,
तेणज्जिउ लाइवि जें भउब्व।
पुणु एव जिणा मदणु जि विचित्तु,
गमिहव सुपाढि हेरट्ठ जुत्तु।
णिम्मविउ भव बुहि आणवुत्तु,
रयणत्तय जुय जुय पास जुत्तु।
कारिय पइट्ठ जिण समय दिट्ठ,
भवलोय णाणिय सयल सचित्ति हिट्ठ।

घत्ता—

णंदउ सिरि हंसराउ सुहउ, णंदउ पउमसिंहु सुयउ।
णंदउ परिवाय सच्चिउ कलिउ णंदउ लोउ गुणेहि जुउ।
पायागम्म जिणस्स य जिह धंतं णो वि सहइ न गुणस्स।
सिरिसोमसिंह सिहने णो पावइ मुण लिहालस्स ॥१
सिरिपउहमसिंह पउमं इह मोए जइ ण हौं तु वा पउमा।
सीना रूप भरंती मुयाणु पुणा विजोएहि ॥२

(जैन साहित्य संशोधक खंड-२ अंक १ पृष्ठ ८०)

विबुध श्रीधर के भविष्यदत्त चरिउ
(की लिपि प्रशस्ति)

सं० १५३०

माहुरकुल णहलच्छण ससंकु,
जिण भासिय धम्मं विमुक्क संकु।
बुह णियर दाणविहि करणधुत्तु,
णय-मग्गणि रउ वज्जिय मजुत्तु।
तहो भाढी णामें घरिणि जाय,
णावइ लच्छी सयमेव भाय।
कोइल इव सुहयर ललियवाणि,
परिरइय कज्ज जाणं वि आणि।
तहो गब्भें समुप्पण्णउ रवण्णु,
साहारणु सुउ णय कणयवण्णु।
पउमउ परियाणिय णाय मग्गु,
जिण धम्म-कम्मं साहिय सुमग्गु।
बीयउ णारायणु णयणिउत्तु,
मणे परियाणिय जिण भाणिय सुत्तु
णिम्मलयर जमलच्छी णिहाणु,
माहुर गयणहयल सेय-भाणु।
मइवंत संतु पाविय पसंसु,
जिणवर कह कय कण्णावतंसु।
करुणालउ किरियावंतु साहु,
सुद्धामउ भयरहस्स-मणाहु।
तह रुप्पिणि णामें जाय-भज्ज,
सिरिहरहो सिरि व जाणिय सकज्ज।

घत्ता—

सज्जण सुहयारिणि पाव-णिवारिणि
पविमल सीला लंकरिया।
बंधवहं पियारी भोयणसारी
विणय पाइय गुणगण भरिया ॥२
तहो पउमु सुउ पट्टु णामें,।
हुउ णं मम्मउ दरसिउ कामें।
माणुवरूव सारुप्पिण सोयहा,
धम्म पहावें माणियं भोप हो।
बीयउ वासुएउ संजायउ,
वासुएव जिह णिह विक्खायउ।

घत्ता—
चेयालयेवि मह उतंग विसाल ताहि ।
धवलिय सिहरग्ग मंडिय कंचण कलस जहि ॥१

णंदणवणु यसवण बहु मंडिय,
धम्मणिलय पायारि विहूडिय ।
धय-तोरण-उल्लोवय सोहिय,
पिच्छ महुच्छउ सुर णर मोहिय ।
कित्तिमयणिमउ कित्ति मवेहिय,
जिम कइलासहु दीसहिं सोहिय ।
मंगलीय महुच्छउ किज्जइ,
दुंदुहि सुर बहु पुह विर इज्जइ ।
एवकु कट्ठसंघचेइहरु,
धम्मसंघु णिण्णासिय भवरुह ।
सत्थ-पुराण-पूयजिणणाहउ,
किम वण्णमि सियलच्छि सणाहहु ।

घत्ता—
सावय पुरवाउ णिव्वाहिय गिह-धम्म भरु ।
वय चाइ समत्थ तिविह पत्त उण्णंकरु ॥२

तहि बीयउ पसिद्ध जिणमंदिरु,
भवियणा-जण-मण णयणाणंदिरु ।
मूलसंघ जिण सासण सारउ,
रवि-विवुध-तम-णियर-णिवारउ ।
गुज्जर गोट्ठि धम्म भर संचउ,
णिय धणु पुण्ण णिमित्तें संचिउ ।
सोहइ सहयउ संघ समिद्धउ,
मुणि तय-तेयव रिद्धिय रिद्धउ ।
चिरु सामिय सिरि गोयमु गणहरु,
तहु संतउ थणेय णिज्जय सरु ।
कुंद कुंद आयरिय गरिट्ठहु,
अंग पुव्वपर आयम सिट्ठउ ।
तासु पट्टि भणु कमेण कुकवउ,
धम्मकित्ति मुणिवरु मल-मुक्कउ ।
तासु सिस्स-णिक्खणिय अणेय वि,
महवय-अणुवय-धुर बहु भेय वि ।
तहि चेयालइ थिउ सिरोमणि,
भवियण-कमल-पबोहण-दिणमणि ।
पोमावइ पुरवाड गुरुवत्त,
धम-मय-विणय-समाय-विमक्कउ ।

सीलम (?) विवसंगंदु मह पंडिउ,
णिम्मल विज्ज चारि-दह-मंडिउ ।
आगम-वेय-पुराण-पहाणउ,
जोइस भरह सत्थ गुण जाणउ ।

घत्ता—
चामह सुपहाणु चाइमल्लु सरसइ णिलउं ।
पण वासवणाइं सोहइ बुहयण कुल तिलउ ॥३

गुज्जर गोठि गुट्ठि सुपहाण वि,
सेयंसु व पयडे चउ दाण वि ।
धम्म जुत्त सम्मत्तालंकिय,
पुण्ण पवित्ता णाम चदं किय ।
रज्ज-कज्ज-सज्जण मुह-दाइण,
विउवि लच्छि चेईहर लाइय ।
पूय पतिट्ठ इह मुह णिमित्तें,
णिय उण्णय कर-मुकल चित्तें ।
मंगल-गीय-सह-णाडय-रस,
णिच्च महुच्छव पुण्णहु सरहस ।
जिण कल्लाण मिलि वि णारीणर,
तणु सिंगार सार सोहं धर ।
हाव-भाव-विब्भम भइ कुच्छर,
चउ-णिकाय सुरणावइ सच्छर ।

घत्ता—
कि वण्णमि ताहं गुज्जरगुट्ठि समत्थ जहि ।
जिण धम्मपहाणुं पयइ पहावण धम्मु तहिवें ॥४

जेण लिहाविउ गंथ गरिट्ठउ,
पंयडमि तासु वंसु सु विसिट्ठउ ।
गुज्जरगुट्ठि आसिर धमडियनम,
पोसिय भव्वलोय चाएंरस ।
हरसा साहु णासु सुगरिट्ठउ,
मल्लुरागो वि वस मग इट्ठउ ।
हरसो भज्ज लच्छि कमलच्छिय,
गिह-धम्मह परिपालण दच्छिय ।
तासु उयरि णंदणु उप्पण्णउ,
ऊधू णामु जगरासि मण्णउ ।
तास सरो गेहिणि गय-गामिणि,
धम्मलीण परिवारहु सामिणि ।
तासु पुत्त चंदु चंदाणणु,
भविय विणि मसाग्र माणणु ।

घत्ता—

तहो धम्मणिमित्तहो दिढ-सम्मत्तहो सासयसुह तह कारणहो,
वण्णमि मगहाहिउ भव्वयणहं पिउ भव्व कव्व रयणायरहो।।५।

अन्तिम भाग—

इय णेमिणाहचरिए महामुणि कमल भद्द पच्चक्खे महाकइ कणिट्ठ दामोयर विरइए पंडिय रामयंद आएसिए महाकव्वे मल्ह सुअ णागएव आयण्णिए णेमिणिव्वाण गमणं पंचमो परिच्छेओ सम्मत्तो ।।१४५।।

बारह सयाइं सत्तासियाइं, विक्कम रायहो कालहं ।
पयारह पट्ट समुद्धरणु णरव्वइ देवपालहं ।।
तहं तणइ मंति सुर गुरु सवाणु,
धम्मेउ धम्मु गुण गण णिहाणु ।
गुणहद्दहं पट्टु समुद्धरणू,
मुणि सूरिसेण कालि-मल हरणू ।
तहं तणउ सीसु मुणि कमलभद्दु,
भव्वयणविंद जण मण अणंदु ।
तहिं वणिवरु एकु पसण्णचित्त,
णागेउ णाम भव्वयण-मित्तु ।
मेडत्तय वंस उज्जाण करणु,
जे हीण दीण-दुह-रोय-हरणु ।
मल्हह णंदणु गुण गण पवित्तु,
तेणि भणिउ दल्ह विरयहिचरित्तु ।
मइं सलखणपुरि णिवसंतएण,
किउ भव्वु कव्वु गुरु आयरेण ।
पिहिमी धर णंदणु गयणिचंदु,
उवएस करइ महु रामयंदु ।
जस एवहं णंदणु जस णिहाणु,
वच्छल्लउ अइ मह एउ जाणु ।
जिण एवहुं णंदणु कइ कणिट्ठु,
दामोयरु सुजस णिहाणु दिट्ठु ।
तिण विरयउ णेमीसरचरित्तु,
स भलइ जु कवि साणंद चित्तु ।
जो पठइ पठावइ लिहइ वि देइ,
सो मोक्ख महा पुरिपइ सूरेइ ।

घत्ता—

जगि सन्ति समिच्छओ जणु सुद्धइ छओ अट्ठकम्म पयडउ विलउ ।
सलखणपुरि दिट्ठओ चित्तिगविट्ठओ वीरणाह तिहुवण तिलउ ।।१४६।।

देसहं रायहं पुरवरहं संति सयलद्धि भव्वयणु ।
पढइ सुणइं जो एक्कमण तहो होउ संति सव्वपरिण ।।

चउविहि संघहं सुह-संति करणु,
णेमीसरचरिउ-वहु दुख-हरणु ।
दुज्जीह जि किणि वय गुणइं लेहि,
भविभाव सिद्धि संभवउ तेहि ।
विसहर जिम जे पर छिद्दणियहिं,
ते कम्म कलंकिय दुट्ठ-भवहिं ।
जे सुवण सुणहि धरि साहिलासु,
ते लहहिं सग्गि सुहमइ णिवासु ।
पोसियइ सप्पुधिय दुट्ठएण,
परिणवइ होइ वि सुतक्खणेण ।
दुज्जण जं किज्जइ विणय संति,
तं तहं गुणस्स तह होउ संति ।

सं० १५८२, जयपुर शास्त्र भण्डार
और टोडारायसिंह राजस्थान

इस ग्रन्थ की प्रति क्षुल्लक सिद्धिसागरजी और पं० कस्तूरचन्द जी शास्त्री एम. ए. के सौजन्य से प्राप्त ।

परिशिष्ट ४

जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के ग्रन्थ और ग्रन्थकार

१ अजिय पुराण	विजय सिंह	११७
२ अणंतवय कहा	×	१०५
३ अणंतवय कहा	भ० गुणभद्र	१०४
४ अणत्थमिय कहा	हरिचन्द कवि	१०७
५ अणथमी कथा	रइधू कवि	९५
६ अणुवेक्खा	अल्हू कवि	१११
७ अणुवेक्खा	ब्र० साधारण	१२२
८ अणुवेक्खा दोहा	लक्ष्मीचंद	१११
९ अनुवेक्खारासो	जल्हिग कवि	११०
१० अप्पसंबोहकव्व	रइधू कवि	९९
११ अमरसेन चरिउ	माणिक्कराज	५७
१२ आयास (आकाश) पंचमी कहा		१०३
१३ आराहणासार	वीर कवि	१०५
१४ कल्याणकरासु	विनयचंद मुनि	१०९
१५ कहाकोसु	श्रीचंद	७
१६ कुसुमंजलि कहा	ब्रह्म साधारण	१२१
१७ कोइल पंचमी कहा	ब्रह्म साधारण	११९
१८ चंदणछट्ठी कहा	लाखू या लक्ष्मण	१०९
१९ चंदणछट्ठी कहा	भ० गुणभद्र	१०३
२० चंदायणवय कहा	भ० गुणभद्र	१०३
२१ चंदप्पह चरिउ	भ० यशःकीर्ति	३७
२२ चूनडी रास	विनयचंद मुनि	१०८
२३ छक्कम्मोवएस	अमरकीर्ति	१३
२४ जंबूसामि चरिउ	वीर कवि	५
२५ जसहर चरिउ	रइधू कवि	९३
२६ जिणदत्त चरिउ	(पं०) लक्ष्मण	१५
२७ जिणरत्ति कहा	भ० यशःकीर्ति	४४
२८ जिणरत्ति विहाण कहा	नरसेन	१२३
२९ जीवंधर चरिउ	रइधू कवि	१०१
३० जोगसार	श्रुतकीर्ति	१२३
३१ णागकुमार चरिउ	माणिक्यराज	६१
३२ णिज्झर पंचमी कहा	ब्र० साधारण	१२१
३३ णिज्झर पंचमी	कहारासु विनयचंद मुनि	१०६
३४ णिद्दुह सत्तमी कहा	बाल चन्द मुनि	१०७
३५ णिद्दुह सत्तमी कहा	भ० गुणभद्र	१०३
३६ णिद्दुसि सत्तमि वय कहा	साधारण	१२१
३७ णेमिणाह चरिउ	कवि लक्ष्मण	५६
३८ णेमिणाह चरिउ	अमरकीर्ति	५५
३९ तियाल चउवीसी कहा	ब्र० साधारण	१२१
४० दहलक्खण वय कहा		१०४
४१ दुद्धारस कहा (दुग्धारस कथा)	भ० गुणभद्र	१०३
४२ दुद्धारसिकहा	ब्र० साधारण	१२०
४३ दुद्धारसिका	बालचन्द मुनि	११०
४४ धण्णकुमार चरिउ	रइधू कवि	९१
४५ धम्म परिक्खा	बुध हरिषेण	५
४६ पउम चरिउ	स्वयंभूदेव	१
४७ पउम चरिउ	रयधू कवि	७३
४८ पक्खवइ कहा	गुणभद्र	१०३
९ पंडव पुराण	यशःकीर्ति	३८
५० पज्जुण्ण चरिउ	सिद्धवा सिंह कवि	२०
५१ परमेट्ठि पयास सारो	श्रुतकीर्ति	११२
५२ पासचरिउ	असवाल कवि	१२८
५३ पासणाह चरिउ	श्रीधर कवि	४५
५४ पासणाह चरिउ	रइधू कवि	७२
५५ पासणाह चरिउ	देवइद (देवचंद)	२३
५६ पास पुराण	पद्मकीर्ति (पद्मसेन)	४
५७ पास पुराण	तेजपाल कवि	११४
५८ पुण्णासव कहा	रइधू कवि	९७
५९ पुण्फंजली कहा	गुणभद्र	१०४
६० पुरन्दर विहाण कहा	अमरकीर्ति	१५
६१ बारह अणुवेक्खा रासो	योगदेव	१११
६२ बाहु बलिदेव चरिउ	धनपाल	३२
६३ भविसयत्त कहा	श्रीधर कवि	४९
६४ मउड सत्तमी कहा	गुणभद्र	१०६

परिशिष्ट नं० १

परिशिष्ट नं० २

परिशिष्ट नं० ३

णेमिणाह चरिउ	कवि लक्ष्मण
रोहिणी विधान कहा	देवनंदि
वड्ढमाण चरिउ	विबुध श्रीधर
संतिणाह चरिउ	शुभकीर्ति

परिशिष्ट ५

संघ, गण, गच्छ

परिशिष्ट ६

देश, नगर, पुर, ग्राम आदि

परिशिष्ट नं० ७

वंश, गोत्र, अन्वय आदि

परिशिष्ट नं० ८

राजा, मंत्री आदि

परिशिष्ट नं० ६

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित आचार्य, विद्वान और भट्टारक

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित जिन-जिनालय अंगपाठी मुनि आदि

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित ग्रन्थ

प्रशस्ति संग्रह में उल्लिखित श्रावक-श्राविका

---

१०१ वीं पासणाह चरिउ की प्रशस्ति का अंतिम अंश पृ० १२६

(यह अंश प्रेस से खो गया पुनः ग्रन्थ से लेकर दिया जा रहा है।)

अन्तिम भाग :—इगवीरहो णिव्वुइ गुच्छराइं, सत्तरिसहुँचउसयवरिसराइं।
पच्छइं सिरिणिवविक्कमगयाइं, एउणसीदीसहुं चउदहसयाइं ॥
भादवतमएयारसिमुणेहु, वरिसिक्के पूरिउ गंथु एहु।
पंचाहियवीससयाइं मुत्तु, सहसइं चयारि मंडणिहिजुत्तु ॥
वहुलक्खणभूगासुउ वरिट्ठु, आणंदमहेसर भाइ जेट्ठु।
जसु पंचगुत्तसोहंतियाइं, हुअ करम-रयण महमयणराइं ॥
सो करम उलेविणु सज्जणांह, आहासइ गुणियण गुणमणाहं।
जो दुविहालंकारइ मुणेइ, जो जिणसासणि दंसणु जणेइ ॥
जो सम्मत्तायरुगुणअगव्वु, जो आयम-सत्थइं मुणइं भव्वु।
जो जीवदव्व तच्चत्थभासि, जो सद्दासद्दहं कुणइं रासि ॥
गुणयास भाउ संवग्गु भेइ, जो वग्गु वमा मूल जि मुणेइ।
जो संख असंख अणंत जाणि, जो भव्वाभव्वहं कय पमाणि ॥
जो घण घण मूलहं मुणइं भेउ, सो सोहिवि पयडउ गंथुएउ।
अह णमुणइं तो मज्झुत्थ होउ, अमुणंतहं दोसु म मज्झ देउ ॥

घत्ता :—जिण समय पहुत्तणु गुणगणकित्तणअवसविमहिविरथारइ।
हउं तसु पयवंदमि अप्पउ णिदमि जो सम्मत्तुद्धारइ ॥१॥
सो णंदउ जिणु सिरिपासणाहु, उवसग्गविणासणु परमसाहु।
णंदउ परमागमु णंदिसंघु, णंदउ पुहवीसरु अरिदुलघु ॥
णंदउ परमणु अहिंसभाउ, वुहयणु सज्जणु अमुणियकुभाव।
णंदउ सिरि बाम्हहो तणउवंगु, कोनउ णियकुलजिमसेरहि हंसु ॥
णंदउ जिणधम्म णिवद्धराउ, लोणायरु सुअ हरिवम्ह ताउ।
णंदउ णंदणु सहुं भायरेहिं, धाटम्मता दपहसिय मणेहिं ॥
णंदउ लहुभायरु सहुं सुएण, परमत्थु जेण वुज्झिउ मणेण ॥
णंदउ अवरवि जिणसमयलीणु, मउजाउ दुट्ठु मिच्छत्तु हीण।
णंदउ जो पयडइ पाम वित्तु, आतम सारंकिउ गुण विचित्तु ॥
जो सुरगिरि रविससि महिपओहि, ता चउविहु संघहं जणहि वोहि।
अगुवालु भणइ मइं कयउ राउ, जिणु केवललोयणु मज्झुदेउ ॥

किंचोज्ज जासुघरिजं हवइ। भो किं सेवय रहो तं ण देइ ?

घत्ता—जा जिणमुहणिग्गय सग्ग सुभंगम गिरनइ लोणहो सारी।
जं किउ हीणाहिउ काइंमि साहिउ तमहु खमउ भंडारी ॥९॥

इय पासणाह चरिए आयमसारे सुवग्ग चहुंभरिए बुह असवाल विरइए संघाहिप सोणिगस्स कण्णाहरण सिरिपासणाह णिव्वाण गमणोणाम तेरहमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥१३॥

तृतीय परिशिष्ट (पृ० १५०) का वड्ढमाणचरिउ प्रशस्ति का अन्तिम भाग

(तृतीय परिशिष्ट के छप जाने पर भाद्रपद में व्यावर के ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन में प्राप्त ग्रंथ से नोट की हुई वड्ढमाणचरिउ प्रशस्ति का अंतिम भाग यहाँ दिया जा रहा है)।

इह वोदाउ णयरे मणोहरे, विप्फुरंत णाणाविह सुरवरे।
जायसवंस सरोय दिणेसहो, अणुदिणु चित्त णिहित जिणेस हो।
णरवर सोमइं तणु संभूवहो, साहु णेमिचंदहो गुणभूवहो।
वयणें विरइउ सिरिहरणामें, तियरण रक्खिय असुहर गामें।
'वील्हा' गब्भ समुब्भव देहें, सव्वयणहि सहुँ पयडियणेहें।
एउ विरज्जिय पावखयंकरु, वड्ढमाणजिणचरिउ सुहंकरु।
णिवइविक्कमाइच्च हो कालए' णिव्वुच्छव वर तूर खालए।
एयारह सएहिं परिविगयहिं, संवच्छर सय णवहि समेयहि।
जेट्ठ पढम पक्खइं पंचमिदिणे, सूरुवारे गयणंगणि ठिइयणे।
होउ संति संघ हो चउभेयहो, वड्ढउ बुद्धि सुयण संघाय हो।
रामयंदु णियकुल हरिदीवउ, अमुणिय वरिस सहासइं जीवउ।
सिरिचंदु व चंदु व परियट्टउ, सम्मत्तामलसिरिआयट्टउ।
विमलचंदु चंदु व जणवल्लहु, होउ अमुक्कउ लच्छिए दुल्लहु।
एयहि णियहि णिय पुत्तहिप रियारियउ, जिणवर धम्माणंदे भरियउ।
णेमिचंदु महियले चिरु णंदिउ, जिण पायारविंद अहिवंदउ।
एयहो गंथ हो संख मुणिज्ज हो, वे सहास सय पंच भणिज्ज हो।

घत्ता—इयचरिउ वीरणाहहो तणउ साहु णेमिचंदहो मलु।
अवहरउ देउ णिव्वाणसिरि, बुहसिरिहरहो वि णिम्मलु।

इयसिरि वड्ढमाणतित्थयरदेव चरिए पवर गुण रयण णिय भरिए विबुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमचंद अणुमण्णिए वीरणाह णिव्वाणगमणो णाम दहमो परिच्छेओ सम्मत्तो।

—ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन व्यावर प्रति।

सुगन्ध दसमीकहा (सुगन्ध दसमी कथा) भ० विमलकीर्ति

आदि मंगल

पणवेप्पिणु सम्मइ जिणेसर हो जा पुव्वसूरि आगम भणिया।
णिसुणिज्जहु भवियहु इक्कमना कह कहमि सुगंधदसमी हित भणिया॥

× × × ×

अन्तिमभाग

दसमिहि सुग्रंध विहाणु करेविणु तहय कप्प उपण्ण मरेविणु।
चउदह आहरयेहि पसाहिय सागी सहुइ भुंजइ अविरोहिय॥
पुहवी मण्डणु पुरु सुरदुल्लहु, राउ पयाउ दयाजण वल्लहु।
मानस सुंदरि गत्ति उपण्णी मयणावलि नाम संपुण्णी॥
दिणि दिणि कुमरि वि पावहु भत्ती भव्वलोय माणस मोहंती।
सामवण्ण मण्णवि सुरहि तणु, जिणवरु सामिउ पज्जइ अणुदिणु।
दाणु चउविह दिति ण थक्कइ, तह वच्छल्ल का वण्ण ण सक्कइ।
धम्मवंत पेखि णरणारहि पोमाइयइ धम्मह असगहि।
रायं सा परिणाविय जामहि पुत्तकलत्तहि वड्ढियतामहि।
रामकित्ति गुरुविणउ करेविणु विमलकित्ति महियलि पडेविणु।
पच्छइ पुणु तवयरणु करेविणु सइ अणुक्कमेण सो मोक्खु लहंसइ॥
घत्ता—जो करइ करावइ एह विहि वक्खाणिय विभवियह दावेइ।
सो जिणणाह भासियहु सग्गु-मोक्खु फल पावइ॥८॥

इति सुगंध दसमी कथा समाप्ता

पुप्फंजलिकथा (अनन्तकीर्ति गुरु)

आदि मंगल

जय जय अरुह जिणेसर हयवम्मीसर मुत्तिसिरी वरंगण धरण।
अयसय गण भासुर सहय महीसर जुत्ति गिराधर समकरण॥

अन्तिम भाग

वलवत्तरिगणि रयणकित्ति मुणि सिस्स वूहिवं दिज्जइ।
भावकित्ति जुउ अनंतकित्ति गुरु पुप्फंजलि विहि किज्जइ॥११॥

पुष्पांजलि कथा समाप्ता

—राजस्थान ग्रंथ भंडार सूची भा० ४ पृ० ६३२

मेघमालवयकहा (कवि ठकुरसी)

रचना काल सं० १५८०

आदिभाग

णुय मरिम जिणिंदु वि दय कंदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णयिरो॥

दिण्णेक ढुंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिअ सत्थि।
तहिं अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासिसि वर मुणीसु, सह संठिउ णं गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय भव्व, णिसुणंत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तहं मल्लिदास वणि तणु रुहेण, सेवइ सुवुत्तु विणयं सहेण।
भो घेल्हणंद ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहणु लीह।
महु मेहमालवय कह पयासि, इण कियइ केण फलु लद्धु आसि।
इह कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बंध मित्त।
ता विहसि वि जंपइ घेल्हणंदु, जो धम्म कहा कहणि अमंदु।
भो मित्त ! पइमि वुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम वुज्झउ ण अत्थु।
वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवद्दम दीठउ रसु रसालु।
जो हरइ जड तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु।
कह कहणि वुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रंजावमि चित्त तुज्झ॥

अन्तिम भागः—

सुअभंयडी चिरू लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तयं।
उणग्गलं जंपय मत्त जंपिया, खमेउ तं देवी भारही मया॥
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वंसि मय सायरु।
विणयं सज्जण जणमण रंजणु, दाणि दुहियणह उल-भं जणु॥
रूवें मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि।
जिण गुण णिग्गंथह पयमत्तुवि, तोसण पंडिय कवियण चित्तु वि।
वुच्छिय वयण सयल परिपालणु, बंधव तिय सहयर सुयलालणु।
एलीतिय भण रुहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिढु मणि।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें ?
पुणुवि पहाड़ियाह वरवंसवि, लद्धीसयल णयरि सुपसंसवि।
जीणा नंदणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसंतें।
पुणु पारस तणेण दुहुवीरें, गहिउ सुवउ जइ तइजस धीरें।
पुणु वाकुलीयवाल सुविसालुवि, वाल्हू वउली यो घणमालुवि।
पुणु कह मुणिवि ठकुरसी णंदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि।
पुणु णाथूसी वग्गरि भुल्लणि, लीयउ वउ जिउ रिय भय डुल्लणि।
पुणु कह सुणिवि मणोहर गारिहि, अवरहि भव्वण यर णार-णारहि।
मेघमालावउ चंगउ महियउ, इंछिउ फलु लहि सहि कवि करियउ।
चंपावतीव णयरि णिवसंते, रामचन्दपहु रज्जु करंते।
हाथुवसाहु महत्ति महत्तें, पहाचन्द गुरु उवएसंते।

पयरह सइजि असांवे अगल सावण मासि छट सिय मंगल ।
पयउ पहाडिए वंसनिरोमणि, घेल्हा गद तसु तिय वर घर मिणि ।
तह तणइ कवि ठाकुरि सुंदरि, यह कहि किय संभव जिन मंदिरि ।
घत्ता— जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ लेहाइ विसइ करि लिहिये ।
तसु वय की यह फलु होइ विणिम्मलु राम सुगणि गोयमु कहिये ।

वत्थुबंध—जेण सुंदरि विणयइ वयणेण काराविय एह कह ।
मेहमालवय विहि रवण्णिय पुणु पुथि यह लिहाविय करि ।
पयउ कज्जिय पंडियह दिण्णिय मल्लाणंदु सु महियलह सेवउ सेवउ गुणह गहीद ।
नदउ तव लगु जउलइ, वहइ गंगनदि नीर ॥११५॥
इति मेघमाला कहा समाप्त मिति ।

पाठ—भेद

प्रशस्तिसंग्रह के छप जाने पर कुछ शुद्ध प्रति देखने को मिलीं जिन का पाठ शुद्ध प्रतीत हुआ, उसे नीचे दिया जाता है, पाठक उसका अवलोकन कर यथास्थान दूसरा पाठ भी बनालें ।

६० वीं प्रशस्ति के ब्यावर की प्राचीन प्रति के पाठ-भेद :—

६० १ पं० ५ में जेण मसावकमु हुउं दामार गुण मकरिउ के स्थान पर 'जेण मणुक्कमि हुउ दामारु गुणमकरिउ'।
६० १ पं० १६ में लक्खणु चउरथो लक्खणु पमरथु के स्थान पर 'तसमणु चउरथो लक्खण पमरथु' ।
६० १ २५ तहु पियणयण वइदेहं जायदणं के स्थान पर 'तहु पियमणं वइ देह जाय' ।

पृष्ठ ८६ की पंक्ति १० के बाद का घत्ता निम्न प्रकार है :—

घत्ता इय सुल्लयवयणें पोमिय णयणइं अवहारि पंडिउ चवइ ।
मोरण्णव पाणिउ सुरयण माणिउ को जडु घड उल्लें मवइ ॥३॥

शुध्द-पत्र

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	१६	गंधम्मि	गंधार्ण
५	१	२४	गयउ	गउ
८	१	३३	बंध	धर
११	२	२०	संधसेणु	संवसेणु
१२	१	२६	——	विण्हु मुणि सुय-सागर पारएण
१५	२	२५	जिणदत्त चरित्र,१३	जिनदत्त चरित्र
१६	१	१७	में गिरिणामें	सेनिग्हिरणामें
२३	१	६	कविदेवई	कवि देवचंद
२३	२	३६	कव	कय
३२	२	१६	महीर-माहि	महीरणाहि
३३	२	२१	मनियतकादे	मनियतस्तदं
३३	१	२१	मणनिय	मणनिय
३३	१	८	परमणय	परमप्पय पय

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	१	२४	माणावम	माणासव
३३	१	२८	जिहमउ	जिहियउ
३३	२	१५	जमहुए	जगरहु
३३	२	२१	वय यम	पिय यम
३४	१	७	बाहुवाए	चाहुवाण
३६	१	१२	भरगु	भप्पु
३६	१	२५	महोयम	मनोरह
३६	१	२६	जिय-सागर	जिय सागर
३८	२	६	पंडवपुराणु	२१ पंडवपुराण
५०	१	३०	——	दुग्गिय पयार बच्छर मु णि
५०	१	३१	कागुण	फागुण
५१	२	१२	मणोम जिदिण्ड-न	संभाजिदिय
५१	१	१२	भवविनिहित	सवविवि मुनिंद

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	२	२३	संभवहो	संभवणाहहो
५३	१	१२	देवदातु	देवदासु
६६	१	६	दोमुणु	दोणु
८८	२	२८	अरिट्ठणेमि चरिउ	रिट्ठणेमिचरिउ
८६	१	२०	णिवड्ढ	णिवड्ढे
८६	१	१६	तसणिउ	ता भणिउ
९०	१	३२	विणंमिय	वियंभिय
९०	२	३६	धम्मभेण	धम्मभेय
९१	१	६	सरवाया	सहाया
९१	२	२८	मिच्छमय	मिच्छामय
९१	२	३६	वट्टमाण	वड्ढमाण
९८	२	३५	थुड	थुउ
९८	१	१२	वणसरु	वणिवरु
१०१	२	२५	कईयण्णा	कईयणमण
१०४	२	१६	सिरीमणि	सिरोमणि
१०५	१	१६	४	६४
१०७	१	३१	गायमु	गोयमु
१०८	२	२७	तिहुमणि	तिहुयणि
१०८	१	३४	पाविड	पाविउ
१०९	२	१३	सम	यम
१०९	२	१६	आरहइ	आराहइ
११०	१	८	दुधारसी	दुद्धारसी
११०	२	५	कविदेवदत्त	नयनानन्द
११०	२	७	देवदत्तहं	देवत्ताहं
११०	२	२१	भलु	फलु
११२	१	८	मंडलामरिय	मंडलायरिय
११४	२	१७	जागि	जगि
११४	२	२१	भोमराड	भोयराड
११५	१	१२	नामा	नाम
११५	१	२७	भोयहु	पुणु भोयराय
११५	२	११	माणिउ	माणें
११५	२	२१	जितसल्लो	जितमल्लो
११८	२	२३	एपारस	एयारस
११९	१	२३	चेथाल	चेयाल
११९	२	१४	समरण्णा	समरह

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२०	१	१३	रयणकित्ता	रयणकित्ति
१२२	१	१६	९८	९९
१२३	२	२१	दिवयंदही	दिवचंदही
१२४	१	१७	९९ पास पुराणं	१०० पास पुराण
१२६	२	१	१००	१०१
१२८	१	८	१०१ पास पुराण	१०२ पासचरिउ
१२८	२	२६	संतियउ	संठियउ
१२८	२	३७	सुग्र कुमर	सुअलक्खण
१२९	१	३०	सयत्त रयणा	सम्मत्त रयण
१२९	२	२१	——	देखो, पृ० १७७
१२९	२	३२	१०२	१०३
१३०	१	३३	सुरसइ	सरसइ
१३१	२	१	१०३	१०४
१३२	१	१	१०४	१०५
१३२	१	२५	१०५	१०६
१३३	१	११	कुमुमचंदु	कुमुयचंदु
१३३	२	१६	१०६	१०७
१३५	१	१०	१०७	१०८
१३५	२	१	१०८	१०९
१३५	२	२९	बुवस	दुवस
१३६	१	३	१०९ स्सय भुछंद	११० सयंभुछंद
१३७-२-१४			११० भविसयत कहा	१११ भविसयत्तकहा
१३८	२	२	प० १-११० महापुराण	१११ महापुराण
१३९	२	५	प० १-११२	११३
१४१	१	१	प० १-११३	११३
१४२	१	३०	प० १-११४	११५
१४४	१	५	प० २-१	११६
१४७	२	२९	साहुणासु	साहुणामु
१५०	१	—	तीनग्रन्थों	चारग्रन्थों
१५०	२	२९	प० ३ जिसजिणेराहं	णेसराहं
१५१	२	३०	दामोपर	दामोयर